ओ३म
दिव्य राम कथा

ईश्वर की सृष्टि के अद्भुत व्याख्याता पूज्यपाद गुरुदेव श्रृंगी मुनि कृष्णदत जी महाराज द्वारा विशेष योग समाधि में,देवयान की आत्माओ को सम्बोधित प्रवचनो का संकलन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्ण दत्त जी महाराज

प्रकाशक :
वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)
संकलन–कर्ता–डा॰अशोक कुमार आर्य–अवैतनिक
श्री सुमन कुमार शर्मा–अवैतनिक
अन्तरजाल सम्पादक : श्री सुकेश त्यागी–अवैतनिक
अन्तरजाल विशेष सहयोग : डा॰सतीश शर्मा (अमेरिका)–अवैतनिक
अन्तरजाल पुस्तक संस्करण : प्रथम प्रेषण
सृष्टि सम्वत् : 1,96,08,53,111
विक्रम सम्वत् : मार्ग शीर्ष, शुक्ल पक्ष नवमी ,2067

गुरुदेव का जीवन

14 सितम्बर 1942,उतर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के ,ग्रम खुर्रमपुर सलेमाबाद में एक बालक का जन्म हुआ ।

बालक जन्म से ही एक विलक्षण से युक्त था और विलक्षणता यह कि जब भी वह बालक सीधा, शवासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेटजाता या लिटा दिया जाता तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती , कुछ मन्त्रोच्चारण और उसके बाद पुरातन संस्कृति पर आधारित 45 मिनट के लगभग एक दिव्य प्रवचन होता । बाल्यावस्था होने के कारण, प्रारम्भ में आवाज अस्पष्ट होती और जैसे आयु बढने लगी वेसे ही आवाज और विषय दानो स्पष्ट होने लगे । पर एक अपठित बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा , इस बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विशय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नही था । प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा , इस बालक की एंसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नही था ।

इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनो से ही हुआ । कि यह सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालो में श्रृंगी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्म के शाप के कारण इस युग में जन्म का कारण बनी । गुरुदेव इस जन्म में भले ही अपठित रहे,लेकिन शवासन की मुद्रा में आते ही इनका पूर्वजन्मित ज्ञान,उदबुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष–स्थ आत्माओ का दिव्य उद्‌बोधन ,प्रवचन करते और शरीर की स्थिति यहॉ होने के कारण हम सबको भी इनकी दिव्य वाणी सुनाई देती । इन पंवचनो में ईश्वरीय की सृष्टि का अद्‌भुत रहस्य समाया हुआ है , ब्रह्माण्ड की विशालता , सृष्टि का उद्‌देश्य,विभिन्न कालो का आंखो देखा वर्णन भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन की दिव्यता का दर्शन क्या कुछ दिव्य न हीं है इन प्रवचनो में ये किसी भी मनुष्य का,समाज का और राष्ट्र का मार्ग दर्शन करने का सामर्थ्य रखते है ।

20 वर्ष की अवस्था तक ये प्रवचन ऐसे ही जनमानस को आश्चर्य और मार्गदर्शन करते रहे ।

दिल्ली के कुछ प्रबुद्ध महानुभवो ने प्रवचनो की इस निधि को शब्द ध्वनि लेखन उपकरण के द्वारा संग्रहित करके ,पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निश्चय किया, जिसके लिए वैदिक अनुसन्धान समिति नामक संस्था का गठन किया । जिसके अर्न्तगत सन् 1962 से प्रवचनो को संग्रहति और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इस दिव्यात्मा ने पूर्व निर्धारित 50 वर्ष के जीवन को भोगकर सन् 1992 में महाप्रयाण किया ।

इस अन्तराल इनके 1500 प्रवचन, शब्द ध्वनि लेखित यन्त्र के द्वारा ग्रहण किये गये । जिनको धीरे–धीरे प्रकाशित किया जा रहा है।वैदिक जीवन और वैदिक संस्कृति का जो स्वरूप इनमे समाया हुआ है । उसके सम्वर्धन , संरक्षण और प्रसारण के लिए हर वैदिक धर्मी के सहयोग की अपेक्षा है । जिससे वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति से निहित यह महान ज्ञान जनमानस में प्रसारित हो सके।

वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)

१. प्रथम अध्याय–उपाधियां

वैदिक साहित्य में प्रायः यह आता रहा है कि हमारे यहाँ ब्रह्मणे वृतं देवत्वमं ब्रह्मः उपाध्यसतुते यह सब उपाधियो से अलंकृत होने वाला जगत है। जैसे हमारे यहाँ इन्द्र नाम की उपाधि है शिव नाम भी उपाधि है,शिव नाम भी उपाधि है,ब्रह्मा भी उपाधि मानी गयी है,विष्णु भी उपाधि है और ऋषियो में वशिष्ठ भी उपाधि है और 'जमदग्नं' ब्रह्मः व्रणस्सुतम,जमदग्नि भी एक उपाधि है,'अत्रि'भी एक उपाधि मानी गयी है। हमारे यहाँ ऋषि मुनि जब अपनी लेखनी–बद्ध करना प्रारम्भ करते है तो वाणी को अत्रि कहते है, यह एक उपाधि से अलंकृत है। अत्रि उसे कहा जाता है जो अपनी वाणी का अति उपयोग करके उस सिद्धांत से अपने वाक्यों का उदगीत रूप में गाता है अथवा गम्भीर,परमात्मा के अथाह समुद्रो में समुद्रित हो करके अपनी वाणी का उद्गीत गाता है। तो वह अत्रि कहलाता है। हमारे यहाँ 'विश्वमित्र' भी एक उपाधि रूप में वर्णित है। 'दधीची' भी एक उपाधि है , इस साहित्य में दधीची के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। इन्द्रो वर्णं ब्रह्मः देवत्वाम्'मानो देखो ,हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में जो उपाधियां है, उनके गुणो को जानना अथवा उनके गुणो के आधार पर सब उनको स्वीकार करते हैं तो वे हमारे विचारों में विचित्र रूप से विचरण करने लगती हैं।

इन्द्र

हमारे यहाँ इन्द्र है, जो एक सौ एक अश्वमेध याग करने वाला है, वह इन्द्र बनता है। हमारे यहाँ परम्परागतो से यागों में इन्द्र की उपाधि क्यों ? क्योंकि इन्द्र उसे कहते हैं जो सर्वत्र राजाओ को अपने ज्ञान से,अपने कौतुक से, अपने वीरत्व से,अपनी महानता से विजय कर लेता है ज्ञान के द्वारा,दीक्षा के द्वारा,यन्त्रो में द्वारा किसी भी प्रकार से वह विजय कर लेता हे तो वह अश्वमेध याग का अधिकारी होता है। वह राजा जब अश्वमेध याग करता हे तो उसे इन्द्र की उपाधि प्रदान की जाती हे जो उपाधियों से अलंकृत है,इन्द्र कहलाता है। जो 'उपं ब्रह्मः वृतम'।

विष्णु

चार भुजा

विष्णु वह कहलाता है जो 'विष्णुं' ब्रह्मः कृतं देवतं विष्णुः', जो राजा चार भुजों को ले करके अलंकृत होता है। सबसे प्रथम भुजो में पदम्,गदा,चक्र और शंख ध्वनि होती है। जिस राजा के राष्ट्र में सबसे प्रथम चरित्र,पदम् होता है ,द्वितीय में गदा होती है ,तृतीय में चक्र होता है जिससे वह अपनी संस्कृति का प्रसार करता है।शंख ध्वनि के सन्मबन्ध में बेटा ! एक बड़ा विशेष रूप माना गया है। जो शंख ध्वनि है ,मानो देखो,'शंखां भूतम ब्रह्म लोकं वाचन्नमं ब्रहे देवत्वाम'। जब ध्वनि के ऊपर अनुसन्धान करने लगते हैं तो वह ध्वनि अपने में ध्वनित होती रहती है। जैसे हमारे यहाँ वेदों का उद्गीत गाने वाला जब उद्गीत गाता है। तो वह सबसे प्रथम उस उदगीत को गातो है जैसे जट ब्रह्मः कृतं देवं मालः बृहे', जैसे जटा–पाठ है,माला पाठ है, विश्रग और उदात और अनुदात में वह पण्डित अपने में गान गाता है। राजा के राष्ट्र में पवित्र वेदो का ज्ञान जटा पाठ और माला पाठ में गाया जाता है । राजा के राष्ट्र में जितना बुद्धिजीवी प्राणी होते हैं। ,वह अपने को स्वर–संगम में परिणीत कर देता है। बुद्धिजीवी उस प्राणी को कहते हैं। जो ज्ञान में कर्म में और उसकी करनी कथनी दोनो एक ही तुल्य होते है । विचार आता है कि उस राजा के राष्ट्र में विवेकी,जो ज्ञान ,रजोगुण,तमोगुण से उपरामता को प्राप्त होते हैं, सतोगुण से उपरामता को प्राप्त होने वाला योगी कहलाता है, वह मानो देखो ,विवेकी पुरूष होता है। राजा को इस प्रकार का ज्ञान हो,राजा भी देखो ,विवेकी होना चाहिएं यदि राजा की दृष्टि में अपनी संतान का मोह होगा और प्रजा का उतना मोह नही होगा तो वह राजा राज्य का अधिकारी नही होता । न्यायलय में विद्यमान हो करके न्यायधीश जब न्याय करता है। एक स्थली पर उसका पुत्र है, एक स्थली में प्रजा का स्वामी है , जब राजा दोनो का न्याय करता है तो वह परमात्मा की कृतिका का न्याय होता है। उसका निष्पक्ष न्याय ही उसको देवता बनाता है। तो इस प्रकार वह उसको विवेकी बना देता है,ज्ञानी बना देता है।

शिव

शिव–पार्वती ताण्डव–नृत्य

महाराजा शिव ने एक समय ताण्डव नृत्य किया। माता पार्वती और शिव दोनो ने जब वह ताण्डव–नृत्य किया तो उसमे से शब्दो और स्वरो का संगम ,स्वरो की ध्वनियां उत्पन्न होती रहीं। परन्तु यह विचार तो बहुत पुरातन काल में भी आया है। आज भी एक वेद–मन्त्र आ रहा था,'शिवःसुन्दरं ब्रहे कृतव प्रवाहं ब्रहे' मानो वह जो शिव है, उसके हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। शिव नाम राजा को कहा गया है और शिव नाम परमपिता परमात्मा का भी वाची है और शिव नाम उसको कहा जाता है जो ब्रह्मवर्चोसी अपने में जो आधिपत्वादी होता है , उसको भी शिव कहते हैं। जो संकल्पवादी होता है जिसका संकल्प महान बना करता है,वह शिव कहलाता है हमारे वैदिक साहित्य में भिन्न–भिन्न प्रकार के पर्यायवाची की विवेचना होती रही है। शिव नाम सूर्य का भी है, जो प्रकाश देने वाला है। यहाँ 'शिवम ब्रह्मणा वृतम' राजा का नाम शिव कैसे कहलाता है, यह प्रसंग आता है।

हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में जहाँ शिव का वर्णन आता है वहां विद्यालय में ब्रह्मचारियो से शिव संकल्पवादी कराते हैं और कहते है कि –''हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें शिव संकल्पवादी बनना चाहिए।'' विचार आता है कि शिव का कैसा वह संकल्प है , जो शिव संकल्पवादी कहलाता है। हमारे यहाँ नाना प्रकार का विचार–विनिमय होता रहा है, परन्तु विचार यही आता है कि शिव नाम राजा का है और उस राजा का नाम शिव कहलाता है,जो हिमालय का राजा है। वह ऊंचा है, वह महान है। इसी प्रकार राजा जब अपने राष्ट्र में प्रजा को संकल्पवादी बनाता है और यह कहता है कि–''हे प्रजाओ ! आओ तुम अपने में संकल्पवादी बनो ।''प्रजा इतने ऊंचे विचारो की होनी चाहिये, जैसे कैलाश मानो 'सर्वतां रोहणी वृतम'। हम कैलाश की उपमा देते रहें और यह उदगीत में गाते रहें कि शिव को राजा कहते है। और यह राजा जिसकी प्रजा शिव संकल्पवादी होती है, वह राजा शिव कहलाता है ,जिसकी प्रजा में महानता की ज्योति जागरूक रहती है। जैसे हिमालय ऊंचा होता है, वैसे ऊर्ध्वा में विचारवेता की ही हिमालय से तुलना कर सकते हैं।

विचार आता रहा है कि उस राजा का नाम शिव है, जहाँ प्रजा इस प्रकार ऊर्ध्वा में विचारवान हो जिन विचारो में महानता की ज्योति जागरूक हो जाती है। वह हिमालय के तुल्य होनी चाहिये, जिससे वह ऊर्ध्वा में गमन करता है। यह 'शिव संकल्प ब्रह्मणा वृतम'। हमारे **हमारे यहाँ राजा को जहाँ शिव की उपाधि प्रदान की है , वहां परमपिता परमात्मा का नाम भी शिव कहलाता है। वह प्रजा का स्वामित्व और वेद–मन्त्रो का आधिपत्य करने वाला हो और प्रत्येक प्राणी के ह्रदय में महानता की एक प्रेरणा जागरूक होती हो । ऐसा जो प्रजा का नेतृत्व करने वाला है,उसे शिव कहते हैं। हमारे यहाँ शिव अपने में संकल्पमयी कहलाता है।**

त्रेता काल में शिव

शिव,हिमालय का राजा,त्रेता के काल में भी राजा रहे थे। राजा रावण ने उनसे बहुत सी शिक्षाओ का अध्ययन किया था। वह शिव कहा जाता ह। जो विज्ञानवेता हो। माता पार्वती और शिव दोनो गुण,कर्म,स्वभाव के आधार पर भयंकर वन में मनन और चिन्तन करते रहे हैं। उनके मनन करने की शैली बड़ी विचित्र रही है। उनका मनन चिन्तन अपने में बड़ा तार्किक रहा है।

शिव शंकर

शंकर नाम परमात्मा का है। इस संसार तथा इस गंगा को धारण करने वाले को ,बेटा! शिव कहा जाता है। शिव कहा जाता है। शिवा नाम तो राजा का भी है, शिव नाम सूर्य का भी है, शिव नाम परमात्मा का भी है। परमात्मा को शिव कहते हैं,जो गंगाओ को धारण करने वाला है। बेटा ! शिव नाम पर्वतो का भी है, क्योंकि नाना प्रकार की धातुओ से शिव शब्द बना करता है। यहाँ पार्वती का नाम भी शिव कहा गया है। (7 अप्रैल 1962,विनय नगर,नयी दिल्ली)

कैलाश पर्वत पर महाराज शिव हुए जिनकी 'अहिंसा परमोधर्मः' में बड़ी गति थी। जिनके द्वारा हिंसक प्राणी भी उनके चरणो का छूते थे। उनका तीसरा नेत्र क्या है ? वह जो ऊर्ध्वगति,यज्ञशाला है ,वह जो एक सुन्दर सा स्थल है, उसमे जब ब्रह्मचर्य ऊर्ध्व गति हो करके भ्रमण करता है और वह

ऊर्ध्व गति से द्यु–लोक को प्राप्त होता है।,उस काल में उसकी एक आभा का प्रायः सुन्दर दिग्दर्शन होता है। वह आचार्य , वह ब्रह्मचारी , वह ऋषि ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता हुआ इस संसार में एक महता उज्ज्वलता को धारण करता रहता है। (25 फरवरी 1962,लाक्षागृह)

दक्ष का यज्ञ और सती

महाराज दक्ष के यहाँ बहुत पुरातन काल में एक याग हुआ था । वह त्रिकोण याग हुआ था । महाराजा दक्ष के हृदय में यह कामना जागी कि मेरा राष्ट्र प्रिय राष्ट्र प्रिय और सुन्दर बने, परन्तु जब वहां पूजन की विवेचना आयी, पूजन की चर्चा आयी, तो देखो पूजन में सतोगुण,रजोगुण और तमोगुण उनके सामान्य रूप बना लें, रूप बना करके इन्ही तीन देवताओ के रूपो में उन्होने त्रिकोण याग का अपने में वर्णन किया । रचना करने के पश्चात उसमे याग हुआ। जब याग हुआ तो ब्रह्मा ने उस याग में उदगान गाया उसमे और उदगान गा करके , क्योंकि वह स्वयं उदगाता बने, ब्रह्मा बन करके उदगीत केतु गाने लगे , तो जब याग हुआ तो शान्ति की स्थापना हो गयी।

महानन्द जी:– ''भगवन ! हमने ऐसा श्रवण किया है कि महाराज शिव की पत्नी सती अपने प्राणो को त्याग दिया था, ऐसा कहीं आता है क्या ?''

गुरुदेवः–बेटा! ऐसा आता होगा ,मुझे तो कोई इसका भान नही है कि उसने अपने शरीर को त्याग दिया है।

महानन्द जी:–''भगवन्! हमने ऐसा श्रवण किया है कि महाराज दक्ष के यहाँ बिना पति की आज्ञा के सती याग में पंहुची और जब शिवजी का पूजन नही दृष्टिपात किया तो उन्होने अपने शरीर को अग्नि में त्याग दिया। यह कहां तक यथार्थ है ''?

गुरुदेवः–बेटा वह काल इतना पामरो का काल तो नही था । यह तो पामरो के काल की चर्चाए है। वास्तव में हमारे यहाँ बहुत से शिव नाम के पर्यायवाची शब्द हैं, क्योंकि शिव नाम परमात्मा का भी है ,शिव नाम राजा का भी है और सती जो संस्कार में राजा की कन्या राजा के यहाँ पंहुची, परन्तु राजा के पूजन होने का कोई प्रसंग ही नही बनता है ,जब राजा के यहाँ पूजन कर प्रसंग नही बनता वहां विजेता का प्रसंग बनता है । क्या कोई राजा अश्वमेध याग नही करवाता? उसे या तो ज्ञान के द्वारा प्रसन्नता से विजेता बनाओ या उसका अच्छी प्रकार से आह्वान करें। उससे संग्राम करके और विजेता बने। विजय के पश्चात वह याग करने का अधिकारी होता है ,राष्ट्र भी इसिलिए याग करता है क्योंकि अश्व जो राजा के यहो प्रजा है,पशु धन है , उसमे हर प्रकार की शान्ति हो जाये,इसलिए वह याग करता है।

महानन्द जी:–''तो क्या भगवन ! इस वाक्य को हम मिथ्या स्वीकार कर लें?''

गुरुदेवः– पुत्र मै नही कहता कि तुम मिथ्या उच्चारण कर रहे हो, परन्तु प्रायः ऐसा हमारी दृष्टि में वर्णन नही आया कि उसने याग में अपने शरीर को हूत कर दिया। याग में हूत करने का प्रसंग कदापि नही बनता,क्योंकि वह हिंसा हो गयी और किसी याग में जाने के पश्चात किसी के याग को अपमान में आकर विध्वंश कर देना कोई बुद्धिमता नही होती। इसलिए हमारे विचार में ऐसर कहीं विधान आता नहीं , ऐसी कोई गाथा भी नही आती है , यहाँ तक तो गाथा मुझे आयी हे कि शिव ने कहा ,तुम महाराज दक्ष के यहाँ न जाओ , तो उन्होने , आज्ञा का उल्लंघन किया और कहा ,मै अवश्य जाऊंगी, वह मेरे पिता है। उन्होने कहा,बिना निमन्त्रण के किसी भी गृह में प्रवेश नही करना चाहिए। शिव ने जब ऐसा कहा तो उन्होने स्वीकार नही किया और वहां से सती अपने पिता के यहाँ पुहुची और पिता के यहाँ जा करके याग को दृष्टिपात किया, वहां देवताओ के पूजन का प्रसंग ही नही बन पाता, क्योंकि देवता राजा नही होते, देवता वह होते है जो देते है। जैसे जो बुद्धिमान है वह देवता है। ,पितर जन है, वह देवता तुल्य है ,ब्रह्मवर्चोसी है , वे देवता है। जड़ देवता सूर्य,चन्द्रमा इत्यादि है, ये देवता कहलाते है। यह देवता है , पर यहाँ उसके पूजन का प्रसंग नही बनता। जैसे शिव नाम परमात्मा का है , वह भी देवता है , ब्रह्म नाम परमात्मा का है वह भी देवता है परन्तु देवता की परिभाषा यह है कि जो व्यापक रूपो से हमारे गुणो का वर्णन करते है , वह देवता की परिभाषा यह कि जो वयापक रूपो से हमारे गुणे का वर्णन करते है, वह सब देवता कहलाते है। परन्तु ये पामरो का वचन हे कि कोई देवी जाकर उस याग को समाप्त कर दें यह कहीं कर्मकाण्ड की पद्धति या साहित्य में प्राप्त नही हुआ इतना ही प्राप्त होता है कि वह देवी हिमालय के यहाँ पंहुची , वह उनकी पुत्री थी, उस याग में उनका आदर भी हुआ और किसी कारण वश उन्होने उनकी कुशलता न जानने के कारण ,उन्होने अपना अपमान स्वीकार किया । उस अपमान को ले करके वह अपने आश्रम को चली आयी,ऐसा तो साहित्य में कहीं आता है। परन्तु ऐसा नही आता कि उन्होने अपने शरीर को त्याग दिया हो। जैसा तुम उच्चारण कर रहे हो कि महाराज शिव ने उसे लिये हुये सर्वत्र पृथ्वी में भ्रमण किया हो, ऐसा कही नही आता। ये पामरो के कार्य है कोई महापुरूषो का कार्य नही होता।

महानन्द जी:–''तो क्या,भगवन! आधुनिक काल में जो इस प्रकार की वार्ता स्वीकार की जा रही है कि शिव ने उसे लिए भ्रमण किया और जहाँ जहाँ उस अग्नि में प्रवेश हुई ,देवी के अंग जाते रहे, वही उसकी पूजा का विधान आज के जगत में बना हुआ है। ''

गुरुदेवः– बेटा ! बना होगा,परन्तु प्रायः ऐसा नही , क्योंकि देवी नाम हमारे यहाँ प्रकृति का है, जहाँ जैसे प्राणियो की जैसी प्रकृति होती है , जैसा वायुमण्डल होता है, जैसे आचार्यो की पद्धति बन जाती हे, उसी प्रकार वहां उस प्रकार का पूजन होना प्रारम्भ हो जाता है उसी प्रकार के पूजन में यदि रूढ़ि नही आती तो वह पूजन सत्य बन करके रहता है। उसमे रूढ़िया आ जाती है तो रूढ़िया राष्ट्र के लिए हानिप्रद बन जाती है। (17 दिसम्बर 1982, जोर बाग , नयी दिल्ली)

वशिष्ठ

उपाधिदाता–वशिष्ठ

महाराजा विश्वमित्र के मन में एक भाव था कि अब मै ब्रह्मर्षि बनूं। परन्तु ब्रह्मर्षि बनने के लिए जब तक गुरू वशिष्ठ 'ब्रह्मर्षि' की उपाधि न दे, तब तक उन्हे कोई भी ब्रह्मर्षि नही कह सकेगा। वह गुरू वशिष्ठ मुनि के आश्रम में आये,अस्त्र–शस्त्रो से युक्त है, तपस्वी जीवन है ,परन्तु जब उन्हे वशिष्ठ ने 'ब्रह्मर्षि' नही कहा और राजर्षि ही कहा तो उन्होने गुरू वशिष्ठ के सर्वत्र पुत्रो का विनाश कर दिया उसके पश्चात जब अगले दिवस आये तो उस दिवस भी गुरू वशिष्ठ ने उन्हे ''राजर्षि'' ही कहा। जब राजर्षि कहा तो विश्वमित्र ने निश्चय कर लिया कि –'' यह ब्राह्माण अभिमान में ह, आज इसे मै नष्ट करूंगा।'' रात्रिकाल में वह गुरू वशिष्ठ के आश्रम पर एक स्थान में शान्त मुद्रा में विराजमान हो गये ।

उस दिवस पूर्णिमा का दिवस था वशिष्ठ मुनि की पत्नी अरूण्धति बोली,''भगवन ! चन्द्रमा की जैसी कान्ति है। किसी द्वितीय की नही होगी, बड़ा शन्तिमान प्रकाशक है। '' वशिष्ठ मुनि ने कहा कि –'' हे देवी ! यह तो बहुत सूक्ष्म प्रकाश है। महाराज विश्वमित्र की इतनी तपस्या है कि यदि नाना चन्द्रमा मिलकर प्रकाश दे तो उसके बराबर नहीं हो सकेगा।'' अरूणधति ने कहा–''प्रभु ! उन्होने आपके पुत्रो को नष्ट कर दिया है और जब आपके समीप आते है तो आप उन्हे ब्रह्मर्षि नही कहते , वे आपकी हानि करते जा रहे है। आप उनके मुख पर प्रशंसा क्यों नही करते ?'' उन्होने कहा कि –''देवी ! मै क्या करू ? जब वह रूप रेखा ऐसी बना कर आते है कि उन्हे 'राजर्षि' ही कहना युक्त होता है। उनके हृदय में नम्रता अब तब नही आयी है। '' वशिष्ठ ने कहा ,'' प्राणी तपस्या कर लेता है और यदि तपस्या करने के पश्चात भी नम्रता नही आयी,वेश भूषा उसके अनुकूल नही होती तो उसे वह पद कदापि भी प्रदान नही करना चाहिए, उसमे मर्यादा की हानि होती है। संसार में मेरे पुत्र नष्ट हो गये ,पुत्र और भी उत्पन्न हो सकते है परन्तु मर्यादा भंग होने के पश्चात उत्पन्न नही होती। देवी ! आज मर्यादा का होना बहुत अनिवार्य है , चाहे और पुत्र न हो परन्तु मेरा जो मिथ्या वाक्य है, वह अंतरिक्ष में मेरे विनाश का कारण बन जाएगा।'' जब गुरू वशिष्ठ ने ऐसा कहा , तो विश्वमित्र का हृदय उदार बन गया और उसी के प्रभाव से कहा , '' यह तो कितने देवता है '' ! वह अस्त्र–शस्त्रो को त्याग करके चषि के चरणो में नतमस्तक हो गये और कहा कि –''प्रभु ! मुझे क्षमा करो, मै बहुत पापी हूं। मैने आपके सब पुत्रो को विनाश कर दिया''

उन्होने कहा कि '' कोई बात नही , उनका तो विनाश ही होना था और तुम्हे भी नम्रता में अवश्य आना था , परन्तु मुझे वाक्य मिथ्या नही उच्चारण करना था'' जब आत्मा में ज्ञान रूपी भोजन होता है तो वह मानव विवेकी होता है और संसार में व्यापकता को स्थापित कर देता है। (11 मई 1967,सीता राम बाजार दिल्ली)

हमारे यहाँ वशिष्ठ मुनि का वर्णन साहित्य में उस काल में आता है जब स्वयंभु मनु थे । स्वयंभु मनु के पुत्र इक्ष्वाकु ने एक पुत्रेष्टि यज्ञ किया जो महाराजा वशिष्ठ ने कराया था । वे उसक ब्रह्मा रहे। वही परमपरा पुरातन काल से चली आयीं। त्रेता काल आया। उसमे भी रघुवंश में वशिष्ठ ही उंचे पुरोहित माने जाते थें। भगवान मनु के 7500 वंशलज हुए, स्वायंभु मनु के पुत्र का नाम इक्ष्वाकु मनु था। इक्ष्वाकु मनु के पुत्र का नाम चन्द्रकेतु मनु था । चन्द्रकेतु मनु के पुत्र का नाम रेनकेतु मनु था और उनके पुत्र का नाम स्वाभिनी था। इस प्रकार इनके 7500 वंशजो ने इस पृथ्वी मण्डल पर राज्य किया और अपने को अनुशासन में करते हुए इस प्रजा को नियन्त्रण में लाने का सर्वत्र प्रयत्न किया। वशिष्ठ जहाँ उस काल में इक्ष्वाकु मनु का पुत्रेष्टि यज्ञ कराने में भी रहे उसके पश्चात ज्ञान श्रुति के समय में भी रहे और आगे रघुवंश में ,सूर्यवंश में भी यह पुरोहित कहलाते थे। राजा को पुरोहित वही होता है,जो अपने जीवन को संयमी बना लेता है और ब्रह्म को अपने में समाहित कर लेता है। (22 फरवरी 962,लाक्षागृह,बरनावा)

हमारे यहाँ यह माना गया है कि जो भी राजा अयोध्या में मनु वंश में हुए है उन सबके राजपुरोहित का नाम वशिष्ठ रहा है मुझे कई वशिष्ठो को अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सबसे प्रथम जो ऋषि वशिष्ठ का निर्वाचन हुआ था,और,द्वितीय जो वशिष्ठ हुआ,उनका नाम सोमनी वशिष्ठ कहलाया गया। इस प्रकार इस वंश में वशिष्ठ एक उपाधि रूप में परिणीत होती रही है। (25 फरवरी 1982,लाक्षागृह,बरनावा)

हमारे यहाँ वशिष्ठ मुनि की उपाधि वाले को ब्रह्मवाद का उपदेश दिया जाता था । एक समय महर्षि सोमकुतु के यहाँ एक समाज एकत्रित हुआ। उसमे महर्षि दधीची,श्वेतकुतु आदि ऋषिवर विराजमान थे। स्वांगकेतु मुनि महाराज को वशिष्ठ बनाना था। उन्हे ब्रह्मा का अधिकार देना था।'ब्रह्मव्यापक प्रवे अस्ति', क्योंकि ब्रह्मवादी जिसको यह उच्चारण करे, उसको सब ऋषियो का अधिकार प्राप्त होगा। क्योंकि वह इतने दृढ़ और इतने साहसी रहते थे कि पुत्र समाप्त हो जाए ,पत्नी समाप्त हो जाए,आश्रम नष्ट हो जाए परन्तु वह अपनी सता से नष्ट नही होते थे। उनका अन्तःकरण विनाश को प्राप्त नही होता था इसीलिए ऐसे महात्मा ऋषि को ब्रह्म का उपदेश देने का अधिकार प्राप्त होता था। ऐसे ऋषियो का तपा हुआ विचार सबके लिए कल्याणकारी होता था। (13 अप्रैल 1972,योग निकेतन)

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के पिता , देखो इनको सुनीती 'सुनेतम भावम' ऋषि करते थे। मावम ऋषि एक समय अपने आसन पर विद्यमान थे, वे अपनी पत्नी से बोले –''हे देवी ! आओ हमारी इच्छा है कि कुछ अध्ययन करें, प्रभु का चिनतन करे और यागाम् अपने जीवन को यागमय बनाये !'' वे दोनो अपने में स्वीकार करने लगे । ऐसा मुझे स्मरण है कि वे बहुत काल तक अपना तप करने लगे। देखो ,कुछ समय के पश्चात उनके हृदय में यह वाक्य आया,कि–देवी ! हम पुत्रेष्टि याग करना चाहते है '' उन्होने कहा –''बहुत प्रिय , भगवन ! परन्तु देखो हम भयंकर वनो में रहते है , हम मानो तप करते है , आत्मा परमात्मा और प्रभु से मिलान मिलने की हमारी पिपासा रहती है और उसके मध्य में आप पुत्रेष्टि याग करेंगे। यह भी वास्तव में हमारा कर्तव्य है।''

देखो , वे दोनो,मुनिवरो ! भ्रमण करते हुए, महाराजा अश्वेतकेतु राजा के द्वार पर पंहुचे। अश्वेतकुतु राजा के दोनो को स्वीकार करते हुए, बेटा! अपनी राजस्थली को त्याग दिया और त्यागने के पश्चात उन्होने कहा–''कहो,भगवन ! आज कैसे आगमन हुआ ? यदि तुम सूचना मुझे दे देते तो मैं तुम्हे वाहन में लाता ।'' मेरे पुत्रो ! ऋषि बोले–कोई बात नहीं ,राजन ! मानो हमारा भी तो तपोमय जीवन चल रहा है। हम बहुत समय से वेदो का अध्ययन कर रहे है।,तप कर रहे है। हमारी इच्छा यह है कि हम पुत्रेष्टि याग करे। परन्तु ,देखो राष्ट्रीयता ,तमोगुण की प्रतिभा में नही। वेदो के वचन यह कहते है वेदो के मन्त्र कहते है कि मानो देखो ,पुत्रेष्टि याग करो, तो उस समय अन्धकार छाया हुआ हो सूर्य की किरण भी हमें दृष्टिपात न कर सके और मानो देखो वहां देवत्वम तो होने चाहिए परन्तु ''अन्धकाराम भूतम ब्रह्मणे लोकम।''जब उन्होने यह कहा तो अश्वेतु राजा ने कहा–''आप क्या चाहते हो ,ऋषिवर!'' उन्होने कहा–''हमारे लिए एक आसन बनवाइये।'' उन्होने अपनी वाटिका में एक आसन का निर्माण कराया और जब निर्माण कराया तो उसमे भोग इत्यादि ,ऐश्वर्य की सामग्री को एकत्रित किया। उसके पश्चात , उन्होने एक पुत्रेष्टि याग किया। जब पुत्रेष्टि याग हुआ तो कुछ समय के पश्चात महर्षि वशिष्ठ का जन्म हुआ। महर्षि वशिष्ठ मनि महाराज को दोनो पति–पत्नी शिक्षा देते रहते, ब्रह्मज्ञान में परिणीत करते रहते। एक समय उनकी पत्नी बोली,''भगवन! अब पुत्रेष्टि याग हो गया है, अब हमें उनकी राजा की स्थली को त्याग देना चाहिए,क्योंकि राष्ट्रीय अन्न जो होता है, यह रजोगुण–तमोगुण होता है, इससे आगे चल करके यह जो यह हमारा जो पुत्र है, कहीं तमोगुणी न बन जाए। यह सतोगुणी बनना चाहिए।यह तमोगुण–रजोगुण में सना नही होना चाहिए। '' ऋषि ने वह वाक्य स्वीकार कर कहा–''चलिए,देवी!''

उस कालक को उन्होने ब्रह्मवेता बनाने के लिए शिक्षा दी। वह ब्रह्मचारी तपोमय रहता। महर्षि वशिष्ठ मुनि का जीवन तपोमय रहता था उनके जीवन में एक महानता का दर्शन मानो वह 'ब्रह्मः वाच प्रवाः' ।देखो वे रघुवंश में महाराजा सगर से ले करके यह एक राष्ट्रीय उपाधि चली आयी । जो इस प्रकार का तप करता था,वही वशिष्ठ मुनि बनता था। जो मान से ,अभिमान से रहित हो जाता है , उसको ब्रह्मा उपाधि प्रदान करते, वही ब्रह्मवेता बनता था, वही ब्रह्मनिष्ठ कहलाता था। (1968,लाजपत नगर नयी दिल्ली)

महर्षि वशिष्ठ, राजा दशरथ को विभिन्न स्थलो में प्रेरणा दिया करते थे और कहा करते थे कि –''हे राजन ! आज तेरे राष्ट्र में जो संस्कृति है वह इसी प्रकार रहनी चाहिये और यह उसी काल में रह सकेगी,जब तुम्हारा एक एक अंग और हृदय ऊंची वैदिक संस्कृति से ओत–प्रोत होगा'' मुनिवरो ! महाराजा रघु ने वानप्रस्थ ले करके अपने राष्ट्र का जो अनुभव था,उससे अपने पुत्र अज को शिक्षा दी।अज के पुत्र दशरथ हुए, दशरथ का उन्होने शिक्षा दीं वह शिक्षा महर्षि वशिष्ठ भी देते चले आयें आज राष्ट्र के ब्रह्माणो को,बुद्धिमानो को व दार्शनिको को चाहिये कि वे राजा से कहें , जो दुराचार कर रहा है,'' वह संस्कृति तुम्हारे लिए लाभदायक नही,तू वैदिक संस्कृति और ऋषि'' परम्परा को स्थापित कर जो राष्ट्र के लिए लाभदायक है। और प्रजा इसके भाव से अपने को ऊंचा बना सकती है''(19 अप्रैल 1964,जम्मू)

जहाँ वशिष्ठ जैसे पुरोहित हो जो परम्परा से उस प्रणाली को पवित्र बनाते चले आते हो , राजाओ में उन भावनाओ को प्रविष्ठ कराने वाले हो, जिन भावनाओ में राष्ट्र पवित्र बनता है,जिन भावनाओ से राष्ट्र में सदाचारिता से राष्ट्र अपनी शत्रुता को नष्ट करता है। हे प्रभु ! आज तू वशिष्ठ जैसो का अवतरण कर और यहाँ राजा हो तो शिव हो,विष्णु हो,राम हो,दशरथ हो और ब्राह्मण हो तो वशिष्ठ और विष्वमित्र जैसे। (30 सितम्बर 1964,जम्मू)

महर्षियो ने कहा कि–''इन्द्र लोक में महाराजा इन्द्र के पास एक महान कामधेनु है।''वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरून्धती दोनो ने अनुरोध किया, महाराजा इन्द्र ने वशिष्ठ मुनि को कामधेनु गो प्रदान की। आज हमें विचारना चाहिए कि वह इन्द्र लोक कौन सी कामधेनु है। आज हम इन गूढ़ वाक्यो को जो वेद वाणी में आते है , विचार नही पाते है। जब मानव संसार में आता है तो कामधेनु को प्राप्त करने के लिए आता है जिसे प्राप्त कर मानव जीवन का कल्याण हो जाता है। मुनिवरो! कामधेनु किसको कहा जाता है ? **कामधेनु नाम ही यह सरस्वती है , कामधेनु नाम ही यह गायत्री है। जब मानव इस संसार में आ करके उस कामधेनु अमृत को धारण करते है, अपने कण्ठ में उसके दुग्ध को पान कर लेता है , तो वास्तव में उसका कल्याण हो जाता है। जब करोड़ो गायत्रियों का गान किया जाता है, तो उसमे अमृतधारा प्राप्त हो जाती है।** इसी प्रकार महाराजा वशिश्ठ मुनि महाराज और माता अरून्धती के पास वह महान कामधेनु थी, जिए कामधेनु से जो चाहते थे,वही मनोकामना पूर्ण होती थी। राजा इन्द्र के राष्ट्र में रहने वाले देवता कामधेनु के पदार्थो को आहार करके अपने जीवन को मधुर बना लेते है और महान बना बरके अमर लोको में पंहुच जाते हैं। (15 मई 1962,मालवीय नगर नयी दिल्ली)

महर्षि वशिष्ठ मुनि के द्वार पर कामधेनु गऊ थी,जिसके दुग्ध का वे आहार करते थे। कामधेनु का अभिप्रायः यह है कि जो मानव की कामनाओं की पूर्ति कर दे यह कैसी गऊ थी ? गऊ नाम विद्या का है, गऊ नाम पशु का भी है। परन्तु वह जो गऊ है, वह तो इन्द्र से प्राप्त हुई थी। इन्द्र नाम परमात्मा की उपासना से जो कामधेनु उन्हे प्राप्त हुई थी, वह मन की कामनाओं की पूर्ति करने वाली थी। वह विद्या , योग–विद्या कहलाती हैए उसको कामधेनु कहते

है। पुरातन काल में जब श्रृंगी ऋषि जी, वशिष्ठ जी से कहा करते थे कि –'' महाराज! कामधेनु का भान करा दे'' तो उनका ऊतर यह था कि –कामधेनु इन्द्र से प्राप्त हुई है, देवताओ को धरोहर है, देवता उसी का दुग्धपान करते है। देवता इन्द्र के द्वार से कामधेनु प्राप्त करते है '' महर्षि वशिष्ठ ने 94 वर्ष तब कोई वाक्य मिथ्या उच्चारण नही किया था। महर्षि वशिष्ठ ब्रह्म चिन्तन करते थे । जब उनको ब्रह्मवेता की उपाधि प्राप्त होने लगी तो उन्होने 12 वर्ष तक श्वास के एक भी मनके को (ओ३म) के धागे से दूर नही होने दिया । 12 वर्ष का अभ्यास था वह ब्रह्मवेता बन गये । गायत्री छन्दो को धारण करने वाले विश्वमित्र ने अपने राष्ट्र को त्याग करके ओ३म रूपी सूत्र को पिरोने का प्रयास किया। मन का प्राण में प्रवेश करा दिया तो परिणाम यह हुआ कि वे तपस्वी बनें । तपस्वी बने तभी तो वशिष्ठ ने कहा ''हे देवी यह जो चन्द्रमा का प्रकाश है , यह विश्वमित्र की तपस्या के आगे कोई प्रकाश नही है। महर्षि विश्वमित्र का इतना तप है कि सहस्रो चन्द्रमा भी उनके तप को आच्छादित नही कर सकते।'' विश्वमित्र में तप तो था, परन्तु नम्रता की सूक्ष्मतता थी। नम्रता में प्रभु है, , नम्रता में ही देवता है , नम्रता ही मानव का सुलक्षण कर्तव्य है। तब उनमे नम्रता आ गयी तो वे ब्रह्मर्षि बन गये। (02 मार्च 1976,लाक्षागृह बरनावा)

एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विराजमान थें महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अरून्धती से 12 बारह वर्ष के संस्कार के पश्चात बोले । जब पति पत्नी को बारह वर्ष हो गये,एक स्थली वर ब्रह्म विद्या को अध्ययन करते हुए और उन्होने ब्रह्म उपाधि को प्राप्त कर लिया तो माता अरून्धती एक समय रात्रि काल में बोली कि–''प्रभु हमारे यहाँ एक पितर याग भी होना चाहिए, क्योंकि पितर याग करना बहुत अनिवार्य है।'' महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि –''तुम्हारी कामना सिद्ध हो, जैसे तुम पितर याग कर सकते हो, वैसे करो। हम दोनो की पन्द्रह वर्ष की तपस्या चल रही है, अब पितरयाग अवश्य होना चाहिए । उन्होने कहा कि धन्य है देवी ! '' जब दोनो पति पत्नी ने पितर याग किया तो पितर याग के पश्चात उनके गर्भ में जरायुज की स्थापना हो गयी। माता अरून्धती के कुछ समय के पश्चात पुत्र का जन्म हो गया और पुत्र जन्म के पश्चात माता अरून्धती से वशिष्ठ बोले कि–''देवी ! हमारा पितर याग पूर्ण हो गया है। अब हमें देवता बनना है।हम देवता कैसे बने ?इसके ऊपर विचर विनिमय होना चाहिय ।

माता अरून्धती बोली कि –''भगवन ! हम देवता अवश्य बनेंगे।'' वह कितना उज्ज्वल भाव होता है। पति पत्नी का यह कितना महान संकल्प है। दोनो संकलपवादी बन गये और अपने बालक को शिक्षा दे रहे है वह देववत के लिए अपने बालक को शिक्षा दे रहे है , वह देववत के लिए ऊर्ध्व गति के गमन कर रहे है। पूर्णिमा का दिवस होता तो चन्द्रमा की नाना कान्तियो से वह सोम–रस का पान करते थे। माता अरून्धती अरूण मण्डल में गमन करने के लिए तत्पर हो गयी और वशिष्ठ , वशिष्ठ मंडल के लिए। मुझे वह काल स्मरण आने लगता है तो हृदय गद गद होने लगता है। उनकी कैसी साधना थी ! बारह वर्ष तक उन्होने दुग्ध का पान नही किया। परन्तु वह पीपल का पांचांग पान करते थे, जाल का पांचांग पान करते थे, शमी को पांचांग पान करते थे, पलाश का पांचांग पान करते थे । नाना प्राकर की औषधियो को ले करके , वह नक्षत्र नाम की औषधि पान करते थे । जब उनका पान करते हुए बारह वर्ष हो गये , तब उनके मस्तिष्क में निर्मलता आ गयी, पवित्रता हो गयी। दोनो ने महान तपस्वी बन करके नाना लेखनीयो का निर्माण किया वह नाना विद्याओ में गति करने लगे । अपनी उड़ान को लोक–लोकान्तारो में ले गये। एक लोक को दृष्टिपात करते तो द्वितीय लोक उनके समीप आने लगा, जब द्वितीय लोक को जाना तो तृतीय आकाश गंगा दृष्टिपात आने लगी, एक आकाश जाती तो द्वितीय आकाश गंगा दृष्टिपात आने लगी उन्हे नाना आकाश गंगाए दृष्टिपात आने लगी। उन्होने अपने तप के द्वारा ब्रह्मचर्य को ऊर्ध्व बनाया और औषधियो का नित्य प्रति पान किया महाराज इन्द्र ने उन्हे कामधेनु गऊ को प्रदान किया और जब उन्हे कामधेनु गऊ प्रदान हो गयी तो वह उसके दुग्ध का आहार करते थें उसका पान करते थे । प्राण के द्वारा मन की ऊर्ध्व गति बनाते थे।(04 मार्च 1976,बरनावा)

वशिष्ठ मुनि महाराज को ब्रह्मवेता कहा जाता है। उन्होने अपने जीवन में दो पुत्रो का`उत्पन्न कर अपनी पत्नी अरून्धती से कहा था कि '' हमें केवल तीन पुत्र उत्पन्न करने है। '' अतः जीवन में अरून्धती और वशिष्ठ ने केवल तीन बार सहवास किया और तीन पुत्र उत्पन्न किये। इसके पश्चात वे सुप्रजन्य ब्रह्मचारी रहे , जिसको इन्द्र नाम का ब्रह्मचारी भी कहा जाता है , जिसको ब्रह्मवेता कहा जाता है। (02 मार्च 1976,बरनावा)

मुनिवरो ! महाराजा वशिष्ठ जी ने कहा था कि–''वेद के अनूकूल माता को संसार में अपने पुत्रो को पवित्र बनाना है, उनके गर्भस्थल से जो उत्पन्न होने वाली सन्तति है, मानो पुत्र है , पुत्रियां है , उनहे सबसे प्रथम पवित्र बनाना है , उनके अन्तःकरण में उन भावनाओ को प्रविष्ठ कर देना है, जिनके द्वारा उनका जीवन सूर्य–तुल्य प्रकाशमान हो।''(30 अक्तूबर 1964,गीता भवन जम्मू)

जब माता अरून्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज , भयंकर वन में तप करते थे, तो वनस्पतियो का पान करते थे˙ उनहे वनस्पतियो का ज्ञान था, उनका वह पान करते थे और सांयकाल को वायु का आहार करते थे, जिससे प्राण शक्ति अनकी प्रबल रहती और उनकी साधना में महानता रहती।(06 अगस्त 1977,जोर बाग , नयी दिल्ली)

उपाधि का अभिप्रायः यह है कि बुद्धिमान जब किसी को चुनते है तो उनकी परीक्षा करने के पश्चात˙ वह ऋत और सत को जानने वाला हो उसको क्रोध तो आता ही नही उस काल में उसको ब्रह्मवेता कह करके पुकारा जाता है , जिसके लिए मानव यह उच्चारण करे कि यह ब्रह्मवेता है। वह सर्वत्र बुद्धिमानो को और ब्राह्मण समाज को मानव होता है। इसी प्रकार वेदो के पण्डित होने के नाते , कर्मकाण्ड से युक्त होने के नाते , रचना कराने के नाते, ब्रह्म की उपाधि प्रदान की जाती है। (25 फरवरी 1962,लाक्षा गृह बरनावा)

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है , हमारे यहाँ वशिष्ठ नाम की एक उपाधि मानी गयी है , जो भी उनकी पत्नी है वह भी अरून्धति के रूप में वर्णित रही ह। । रघुवंश में जितने राजा हुए है , राजा सगर हुए है और हरिश्चन्द्र हुए है और भी नाना जैसे भागीरथ इत्यादि राजा हुए उनमे सर्वत्रता में एक वशिष्ठ नाम का पुरोहित रहा है। यह भी हमारे यहाँ एक चलन रहा है कि मनुवंश से परम्परा चली आ रही है और वशिष्ठ उस ऋषि को कहा जाता हे जो ब्रह्मवेता है, जो शान्ति प्रिय है , मानो जो मान–अपमान से रहित होता है , जैसे ब्रह्म परमपिता परमात्मा में मान,अपमान नही क्योंकि वह अकाय होने से मानो उसे मान अपमान का ज्ञान ही नही है। वहां ज्ञान है क्योंकि मान अपमान वहा है ही नही । इसी प्रकार वह जो ब्रह्मवेता होते हे , उनको मान अपमान नही होता । वह मान अपमान से रहित जब तब नही होता, जब तक ऋषि मुनि उसे ब्रह्मवेता की उपाधि भी नही प्रदान करते है। तो इसिलिए महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज , मान अपमान से रहित होते थे।(08 मार्च 1962,बरनावा)

भारद्वाज

महर्षि भारद्वाज भी अनेक उपाधियों के रूप में परिणीत हुए है। ज्ञान और विज्ञान में जो परायण है वह इन उपाधियो को प्राप्त होते रहे है ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहने वाला भारद्वाज एक वंश माना गया था, ब्रह्मा के पुत्रो से जिसका निकास हुआ था । एस सन्म्बन्ध में ऐसा मुझे स्मरण है कि ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा थे । अथर्वा के पुत्र का नाम रोहिणी कृतवाची था। वाची के पुत्र का नाम स्वातिक था और स्वतिक के पुत्र का नाम गुणोवाचकेतु था । ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा का लगभग इक्कीस हजार तब जो वंश था, उसके पश्चात वायु गोत्र में उसका परिवर्तन हुआ। उन्नीस हजार वर्ष के पश्चात उसका परिवर्तन हरिद्रत गोत्र में हो गया। हरिद्रत गोत्र में इक्कीस हजार पांच सौ वर्ष समाप्त हुए , भारद्वाज गोत्र में उसका परिवर्तन हुआ और परिवर्तन हो रके यह सब उपाधिया प्रारम्भ हुई । भारद्वाज वह कहलाया गया जो विज्ञान में परायण होता था ।

भारद्वाज का जो वंश है , हरिद्रत गोत्र से उसका निकास है और हरिद्रत गोत्र का निकास दद्दड़ गोत्र से है। और दद्दड़ गोत्र का निकास वायु ऋषि गोत्र से माना जाता हे और वायु का गोत्र , अथर्वा में माना जाता है, अथर्वा जो गोत्र है वह हरिकेतु भानु ऋषियो से माना जाता है। तुम्हे यह प्रतीत होगा कि हमारे यहाँ परम्परा से ब्रह्मवेता होते चले आये है , वैज्ञानिक भी होते चले आये । जहाँ आध्यात्मिक विज्ञान को जानते है , वहां भौतिक विज्ञान में भी पारंगत होना उाका मौलिक कर्तव्य रहा है। (06 मई 1976,अमृतसर)

ब्रह्मवेता–काकभुषुण्ड और लोमश मुनि

ऋषियो का जन्म

आधुनिक काल में यह अज्ञानता का ही क्षेत्र है , जो काकभुषुण्ड जी को काग उच्चारण कराना , अपने से दूर कर देना है। मानव का यह कर्तव्य हे कि अपने मस्तिष्क में से इन वार्ताओ को शान्त कर दे । ऐसे कोई पक्षी भी हो सकते है जिन्हे कागा कहते है, परन्तु मुझे उनका जीवन भली भान्ति स्मरण आता है।

रेणकेतु नामक एक ऋषि थे । रेणकेतु मुनि महाराज भारद्वाज गोत्रीय कहलाते थे और इसका जो शासन परिवर्तन हुआ तो अंगिरस गोत्र में प्रवेश कर गये । वह ऋषि महान और पवित्र कृतियो में एक समय अपनी पत्नी के समीप विद्यमान थे। उनकी पत्नी का नाम रूषेणकेतु था । एक समय उन्होने अपनी पत्नी से कहा कि हे देवी ! हम एक ब्रह्मवेता ब्रह्मचारी को जन्म देना चाहते है , हम याग करना चाहते है। उन्होने कहा कि–''बहुत प्रियतम''। तो ऐसा मुझे स्मरण है कि उन्होने पुत्र याग किया और याग करने के पश्चात नौ माह तक माता उसे ब्रह्म–विद्या प्रदान करती रहती थी।

उनके निकटतम जो आसन था वह महर्षि वैश्मपायन ऋषि का था। वैश्मपायन की पत्नी का नाम शकुन्तका था । शकुन्तकेतु ने भी यह निश्चय किया था कि–''मै भी ब्रह्मवेता पुत्र को जन्म देना चाहती हूं। शकुन्तकेतु के गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक का नाम महर्षि लोमश हुआ और रूषेणकेतु के गर्भ से उत्पन्न बालक का नाम कागोवशिष्ठ हुआ, उनको प्रीती में कागभुषुण्ड भी कहते थे। दोनो को माता पिता ने महान तपस्वी बनाया स्वयं तप करने के पश्चात उन्हे विद्या का पान करायामाता लोरियो का पान कराती रहती थी और लोरियो का पान कराते कराते उन्हे शिक्षा और दीक्षा में परिणीत कर दिया। (04 मई 1976,अमृतसर)

माता एक पंक्ति में विद्यमान करके ब्रह्मचारियो का महान बनाती और **काग भुषुण्ड जी की माता प्रीती में आ करके 'कागा' कहा करती थी। उनका नाम तो सोजनी ब्रह्मचारी था । बालक का नाम सोजनी ब्रह्मचारी और देखो जब वह प्यार प्रीती में आती थी तो माता उसे कागा कहा करती थी। वे कागा क्यों कहती थी क्योंकि बाल्यकाल में उसके जो दो विधाता और थे। उनके अन्न को भी वह पान कर जाता था। ज बवह उनके अन्न को पान कर जाता था तो माता मग्न हो करके यह कहती–''तू कागा है कागा प्रवृति का है ! '' तो माता ने जब ऐसा कहा तो उनका नाम 'कागा' हो गया।**

भुषुण्डी उस काल में उनका नामोकरण हुआ जब यह लोमश मुनि ने उनका नाम भुषुण्डी रख दिया देखो कागा तो माता का दिया नाम था और भुषुण्डी महर्षि लोमश जी कहते थे और वह कयो कहते थे ? जब वह विद्यालय में अध्ययन करते थे, तो महर्षि लोमश और महर्षि के गुरू थे, आचार्य श्रुति महाराज श्रुति ऋषि महाराज के द्वारा जब अध्ययन करते थे तो वे दोनो संग संग प्रीती से योगाभ्यास करते थे । जब योगाभ्यास करते , व्याकरण का अभ्यास करते शब्दो की रचना करते रहते थे और परमपिता परमात्मा के स्वरूप का दर्शन करने लगते थे , तो वह उनको 'भुषुण्डी जी' कहते थे और भुषुण्डी जी क्यो कहते थे ? क्योंकि उनकी बुद्धि किसी–किसी काल में निर्मल हो जाती थी । जब बुद्धि निर्मल हो जाती तो उसको लोमश जी मग्न हो करके 'भुषुण्डी जी' कहते थे , तो इस प्रकार नामोकरणो की जब रचनाए हुई , इन्ही रचनाओ का प्रादुर्भव यह हो सकता है कि समाज में उनको काकभुषुण्ड जी एक कागा में नामो से उसके अर्थो का अनुमोदन प्रारम्भ कर दिया हो।(15 मार्च 1986,बरनावा)

ब्रह्मवेताओ की शिक्षा

आचार्य के कुल में जब उनका प्रवेश कराया तो वेद उनका विषय रहा, वह ब्रह्म–विद्या में विश्वनीय बन गये। काग भुषुण्ड जी और लोमश दोनो एक ही गुरू के शिष्य ब्रही व्रताय कहलाते थे। अध्ययन की प्रतिभा में दोनो ने निश्चय किया कि हम दोनो वेद का अध्ययन करते करते अपने प्राणो को समाप्त कर दे। यदि हम इस संसार से जायेंगे तो आत्मवेता बन करके संकल्प से अपनी आत्मा को त्यागेंगे, इस शरीर में से विच्छेद करेंगे। हम अपने में अनुसंधान करते हुए और दोनो प्रश्नोतर को ले करके अपने जीवन को व्यतीत करेंगे। वे केवल ब्रह्म–विद्या में तल्लीन रहते थें। ब्रह्म विद्या के उतर प्रश्न होते रहते थे। वे एक अणु को लेते ,दूसरे अणु से उसका मिलान मिलान रहते थे। आध्यात्मिकवाद में उसका सम्मिलान कराते रहते थे। पृथ्वी विज्ञान को लिया और उसके गुरूत्व को , परमाणुवाद को ले करके दोनो विषलेषण करते और करते–करते इतना दूर चले जाते थे कि वह उसका अपनी आत्मा में समन्वय करते रहते थे । उन्होने आपो के परमाणुओ को ले करके उसके ऊपर विश्लेषण करना प्रारम्भ किया प्रारम्भ करते–करते वह महतत्व को अपने से मिलान कराते रहते थे। वे अग्नि के ऊपर चयन करने लगे तो अग्नि के परमाणुओ को ले करके , अग्नि की धाराओ को ले करके वह महान क्षेत्र में प्रवेश कर जाते थे। (04 मई 1976,अमृतसर)

आयुर्वेदज्ञ कागभुषुण्ड

ऐसा मुझे स्मरण है, आधुनिक जगत काकभुषुण्ड को कुछ और ही उच्चारण कर रहा है परन्तु मै यह कहा करता हूं कि वह त्रेता के काल में एक ऐसा महान ऋषि था, जिसको औषधियां रात्रि के समय में स्वप्न में उनको ज्ञान और निर्णय कराती रहती कि–''मै अमुक रोग की औषध हूं'' उस औषधि के पान करने से मानव रूग्ण से दूरी हो जाता।

कागभुषुण्ड जी जब भगवान राम जी के द्वार पर आये तो उनकी 684 वर्ष की आयु थी और वह आयुर्वेद के मर्म को जानते थे। जब भगवान राम ने एक समय प्रश्न किया कि '' महाराज ! यह तो आयुर्वेद का विज्ञान है,जो औषध विज्ञान है इसको आप ने पूर्णतः जाना है । '' तो उन्हेने कहा –''हे राम ! मैने 400 वर्षो तब इसके ऊपर अनुसंधान किया है परन्तु मै कुछ के गुणो का वादन कर सकता हूं। यह इतना विशाल विज्ञान है , यह अनूभूति को अस्तित्व में लाता है, क्योंकि किसी में अग्नि हे तो किसी में जल है।, किसी में पार्थिव–तत्वो का प्रतिपादन हो रहा है। मैने जो जाना हे , वह बहुत सूक्ष्म है , उसका विज्ञान और भी आगे अनन्त है। '' देखो , एक ऋषि इतना अनुसन्धान करने के पश्चात भी यह वाक्य कह रहा है !

इसमे काकभुषुण्ड जी ने यह कहा कि–''सूर्य की किरणो में कुछ ऐसे तत्व रहते हैं जो मानव के शरीर का शोधन करते है। चन्द्रमा की कान्ति में कुछ ऐसे तत्व होते हे जो मानव के रूग्णो को समाप्त करते है। मानव का विज्ञान इस संसार में महान रहा है। प्रत्येक औषध और प्रत्येक आभा में रमण करने वाले वैज्ञानिक इस संसार में रहे है , सूर्य की कुछ किरणे ऐसी होती है कि कुछ औषधिया उन किरणो के साथ भ्रमण करती है कुछ चन्द्रमा की किरणो के साथ भ्रमण करती है क्योंकि जितना रस और रसावदन हे वह पृथ्वी को चन्द्रमा ने प्रदान कर दिया है। चन्द्रमा रसो का बहाने वाला हे और सूर्य प्रकाश को बहाने वाला है। वह प्राण–शक्ति को ओत–प्रोत मानो, बिखरने वाला है। (15 अगस्त 1981,बरनावा)

आधुनिक काल का जो प्राणी है, वह गरूड़ जैसे ऋषि को पक्षी की संज्ञा दे रहा है। 'काक भुषुण्ड ऋषि को पक्षी की संज्ञा देते है। कि यह कागा है। का पक्षी बन करके उड़ान उड़ता है इस प्रकार उसको काग की उपाधि दे दी गयी है। परन्तु कहां चला गया वह साहित्य ? कहां चला गया वह दर्शन–विज्ञान जिसके ऊपर वह सदैव अध्ययन करते रहते थे । काकभुषुण्ड जी ने एक पोथी का निर्माण किया था बहुत पुरातन काल में , त्रेता के काल में , लाखो वर्षो पूर्व निर्माण किया था। काग भुषुण्ड जी ने जिस पोथी का निर्माण किया था । उसका नाम था–चन्द्रयाणकृत पोथी।

वैज्ञानिक काकभुषुण्ड

चन्द्रमा के ऊपर वह अनुसंधान करते थे और कहते थे कि सूर्य की किरणे से चन्द्रमा प्रकाश लेता है और वही प्रकाश चन्द्रमा को 'कृत' करता है। चन्द्रमा अपनी कलाओ से द्वितीय कला , तृतीय कला, पूर्णिमा के दिवस वह पूर्ण हो जाती हे वह लोको की छाया में रहता है। जितनी किरणे जाती रहती है , उतना वह बलवती होता रहता है। उन्होने एक वाक्य यह कहा कि वह जो चन्द्रमा जो है यह सूर्य से सहायता लेता है वाक्य यह कहा कि वह जो चन्द्रमा है, यह सूर्य से सहायता लेता है। और शनि मण्डल के लगभग पच्चासी चन्द्रमा है जो उसे चन्दित करते रहते है। एक राहिणीकमतु मण्डल की उन्होने चर्चा की उसे एक ही मण्डल को लगभग बहतर सूर्य प्रकाशित करते है। इस प्रकार का विज्ञान महर्षि कागभुषुण्ड जी ने वर्णन किया । कागभुषुण्ड जी रेणकेतु प्रव्हाण ऋषि के पुत्र थे। रेणकेतु प्रव्हाण अंगिरस गोत्र में हुए थें। जब बाल्यकाल में माता की लोरियो में वह बालक पनप रहा था। तो माता उसे शिक्षा देती

रहती थी। और यह कहती रहती –"हे बालक ,जैसे यह कागा कितना महान अपने में विश्वनीय कहलाता हे इसी प्रकार तुझे भी अपने को ऊंचा बनना है। और इतना विश्वनीय बनना है। " क्योंकि कागा जो पक्षी होता है जैसे वह अपने में उड़ान उड़ता रहता है। इसी उड़ान के ऊपर कागभुषुण्ड जी ने एक यन्त्र का निर्माण किया था 'कागाम चथवेतु यन्त्र' । यह यन्त्र उन्होने जब कागा पक्षी गति कर रहा था,वायु वेग में उसी उड़ान के साथ एक यन्त्र को उन्होने निर्माण किया पक्षी की प्रेरणा ह्रदय की प्रेरणा दोनो का मिलान हुआ और मिलान होने से यन्त्र का निर्माण किया, वह उससे उड़ान उड़ करके वायुमण्डल में गति करते रहते थे। तो ऐसे काकभुषुण्ड जी थे। परन्तु यह जो वर्तमान का काल चल रहा है , इसमे उन्हे पक्षी की संज्ञा प्रदान की जाती है। (2 मार्च 1983,खतौली)

काग भुषुण्ड जी ने एक सविता नामक पोथी का निर्माण किया था, जिसमे यन्त्रो का सर्वत्र विधि विधान वर्णित किया था। उन्होने बारह–बारह वर्ष के अनुष्ठान किया। काकभुषुण्ड जी ने लोमश मुनि की आज्ञा से जो ऋषि आते उसके भागो को जान करके उनको वृत कर दिये थे। (11 मार्च 1992,बरनावा)

रावण के अश्वमेध याग के ब्रह्मा

महानन्द जी – "तुम्हे राम के काल में ले जाना चाहता हूं, जिस वाक्य को मेरे पूज्य पाद गुरुदेव प्रगट करते रहे है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वर्णन कराया कि कागभुषुण्ड जी की माता ने एक पंक्ति में बैठाकर तीनो ब्रह्मचारियो को ब्रह्म का उपदेश दिया। परन्तु आधुनिक जगत वर्तमान का काल उन्हे क्या कहता है कि कागभुषुण्ड तो एक पक्षी है। और वह कागा थे । उनको कागभुषुण्ड इसलिये करते थे क्योंकि वह लोमश मुनि की शरण में आये और महर्षि लोमश मुनि से उनका परस्पर विचार–विनिमय होता रहता। मै भोले प्राणियो से यह जानना चाहता हूं कि एक जो कागा है और महर्षि लोमश , जो महान तपस्वी है, परन्तु क्या एक ऋषि का और कागा का समन्वय हो सकता है ? यह मेरे विचार में नही आ रहा है। वहां एक उक्ति तो आती हे , जैसे पूतयपाद गूरूदेव कहते है कि कागभुषुण्ड जी ऋषि थे, परन्तु आधुनिक जो वर्तमान का काल है, उन्हे ऋषि नही कहता, उन्हे कागभुषुण्ड जी पक्षी कहते है। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव यह कहते है लोमश मुनि और कागभुषुण्ड जी दोनो ने रावण का अश्वमेध यो कराया था। जो अश्वमेध याग कराता हो कयावह कागा ही बना रहेगा" ? (13 मार्च 1986,बरनावा)

महानन्द जी :–"मैने पूजयपाद गुरुदेव से एक प्रश्न किया था कि –"भगवन ! आधुनिक समाज कागभुषुण्ड जी को यह कहते हे कि वह कागा पक्षी थे और राम ने अपना तरकश उस पक्षी के भागो में स्थापित किया था, यह कहां ते यथार्थ है ? " मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह निर्णय देते हुए कहा थ कि कागभुषुण्ड जी अपने में कितने महान थे, प्राण विद्या पर उनका कितना आधिपत्य था एक समय ऋषिवर वशिष्ठ और माता अरून्धती जैसे महात्मा प्राण की विद्या को जानने के लिये उनके समीप गये और विद्या का अध्ययन करते रहे। माता अरून्धती को महर्षि कागभुषुण्ड जी ने छः माह तक प्राण की विद्या प्रदान की। वशिष्ठ को, विश्वमित्र को भी उन्होने प्राण–विद्याा प्रदान की। वह विद्वान कितने प्राण विद्या को जानने वाले थे। परन्तु आधुनिक काल यह कहता हे कि वह तो कागा थे ! वे कागा जब कहते है, तो मेरा अन्तरात्मा दुःखित होता है। हे भेले प्रणियो ! आज तुम अपने महापुरूषो को जैसे थे, वैसे ही स्वीकार करो तो उसमे इनकी महानता है , तुम्हारा यर्थाथवाद है। उसी से तुम्हारा जीवन पवित्र बन सकता है। (03 मार्च 1985,बरनवा)

रामायण के प्रणेता महर्षि बाल्मीकी

बाल्य काल

महर्षि बालमीकी त्रेता काल में हुए , उनका जीवन अग्रण्य था। अमृतां ब्रह्मणे बाल्यकाल में उनका जीवन कुछ त्रुटिपूर्ण रहा। बाल्यावस्था से युवास्था तक उन्होने नाना प्राकर के प्राणियो को महाकष्ट दिये ˙ नाना प्रकार के प्राणियो को नष्ट करके उनका द्रव्य ले करके उसको अपने विधाता को अर्पित करता रहता था। बाल्यावस्था में उनका नाम रत्नाकार था। एक समय देवर्षि नारद मुनि उनके द्वार पर आये और भी कुछ ऋषि साथ थे । नारद मुनि को उसने कहा कि " अरे ! कौन सन्यासी जाता है ?" नारद बोले, क्यों भाई ?

बाल्मीकीः– महाराज ! जो कुछ आपके द्वारा समीप है , वह सब कुछ मेरे अर्पित कर दीजीये ।

नारदः– भाई यह क्यो लेते हो ?

बाल्मीकी :– महाराज ! मेरे माता है , पिता है , सन्म्बन्धी है , परिवार है , उनकी उदर–पूर्ति के लिये।"

नारदः– तो भाई तुम मनुष्यो को क्यो कष्ट देते हो? अपने अंगो से कुछ पुरूषार्थ करो।

बाल्मीकी :– नही, महाराज यह भी तो पुरूषार्थ है , मै इसी पुरूषार्थ को किया करता हूं । दूसरो को नष्ट करता हू, द्रव्य लेता हूं।

ऋषि ने कहा कि " अच्छा , एक काम करो कि अपने सम्बन्धियो से पता करके आओ कि कोई तुम्हे नष्ट करने लगे तो वे तुम्हारी सहायता करेंगे अथवा नही। " वह वहां से बढ़ते हुए अपनी माता के द्वार पंहुचे और बोले , माता"! कोई अगर मुझे नष्ट करते तो मेरी सहायता करोगी?" माता ने काह , कदापि नही , जो पाप कर्म करता है , उसका संसार में कोई साथी नही होता यही वाक्य पिता ने काह , यही वाक्य सम्बनिधयो ने कहा । यह वौय जान क रवह वहां से चलकर ऋषि के द्वार आ पंहुचा ऋषि ने कहा कि अरे क्या कहा , उसने कहा कि , तुम्हारा कोई साथी नही । देवर्षि नारद बोले कि जब माता पिता तुम्हारे साथी नही तो तुम इतना पाप ही क्यों करते हो ? यह पाप मत करो ˙ उस बालक को वैराग्य की भावनाए आनेलगी। उसनेकहा, तो प्रभो ! मै कया करूं ? उन्होने कहा कि –तुम राम का पूजन करो, भगवान का चिन्तन करा, तुम्हारा उत्थान होता चला जायेगा।

तपस्या काल

उस बालक ने परमात्मा का चिंतन करना प्रारम्भ कर दिया और यहं तक सुना जाता है कि रा रमेति शबदार्थो से उसके ह्रदय में अमूल्य प्रकाश हो गया, वह अग्नि जाग्रत हो गया , उसे ज्ञान होने लगा कि संसार का ज्ञान क्या है।, विज्ञान क्या है , आत्मिक विज्ञान क्या हे ? यह सब ज्ञान उसके द्वारा ओत प्रोत होने लगा । जब बालक ऋषि बनने लगा तो आचार्यो ने उसका नाम ऋषि बाल्मीकी चुना । जो बाल्यावस्था में कुकर्म करने वाला हो और आगे ऋषि बन जाये, उसी का नाक बाल्मीकी कहलाता है। वे महान , प्रकाण्ड , बुद्धिमान, ब्रह्म ज्ञानी, तत्ववेता कहलाने लगे । ऋषि बाल्मीकी ने दशरथ से लेकर राम तक के जीवन चरित्र का, जो कुछ उन्होन किया, सब का पोथी रूप में निर्माण किया।

बाल्मीकी जब रत्नाकार से राष्ट्रीय यज्ञ में परिणीत होने लगे तो उन्होने नारद से कहा कि " महाराज ! आप ही मेरे कल्याण का मार्ग दे सकते है। मै द्रव्य को नही चाहता, कयोंकि यह यज्ञ का द्रव्य है , अतः इसे ब्रह्मचारियो के मध्य रहना चाहियें " नारद ने उपदेश दिया कि " पंचक यज्ञ (पांचो ज्ञानेन्द्रियो का संशोधन) करो "लगभग एक वर्ष तक नारद ने उनकी आत्मा को शुद्ध कराया। इसके पश्चात कहा कि – तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे तुम्हारा ह्रदय शान्त हो जाये। चित उस समय शान्त होता है , जब मानव में क्रोध न रहे , न ममता और न मोह हो , न अभिमना हो। इन सबके समाप्त हो जाने के पश्चात तप ही तप आ जाता है। तप का तात्पर्य यह है कि प्राण की अग्नि में इन्द्रियों का तपाना । इन्द्रियों को संयम में लाने वाला पुरूष इन्द्रियों को शुद्व कर लेता है । इस प्रकार वह पंचक यज्ञ करने वाला पुरूष गायत्री छन्दो का विवेकी बन जाता है। जब महर्षि बाल्मीकी विराजामन होकर गायत्री छन्दो वाले ऋषि बने तो वे शास्त्रीय तथा वैदिकता में सुगठित कहलाये।

बाल्मीकी ने 14 वर्ष तब इसी प्रकार तप किया। सर्व प्रथम उन्होने विचारा कि मैने इस वाणी का कठोरता से व्यवहार करके इसको खो दिया ˙ उसने प्रभु से याचना की कि प्रभु मेरी वाणी को ऊंची बना अध्ययन करते समय नारद आते तथा उनकी परीक्षा लेते , वह परीक्षा में उतीर्ण होते । इस प्रकार बाल्मीकी इतनी ऊर्ध्वगति वाले बन`कि जो भी अतिथि आता, वे उसका स्वागत करते। दूसरो का हनन करके द्रव्य प्राप्त करते वाला अतिथियो की सेवा करने लगा, यही तो आत्मिक यज्ञ है। उसी वाणी में कटुता के स्थान पर महता आ गयी, यह तप की महिमा तथा गायत्री मां की करूणा है तथा प्रभु की महता है।

महर्षि बाल्मीकी ने रामायण साहित्य लेखनीबद्ध किया जो साहित्य उनके समीप आता रहा वह लेखनीबद्ध होता रहा। उन्होने राम के जन्म से लेकर के और राम के मरण पर्यन्त के काल को लेखनीबद्ध किया।

महर्षि बाल्मीकी केवल तपस्वी ही नही थे, वे आयुर्वेद और धनुर्विद्या में पारांगत थें । धनुर्विद्या प्राप्त कराते थे। बाल्मीकी तपस्या करने में पश्चात महाराजा रेणकुतु राजा के यहा राजपुरोहित भी रहे। वह लगभग पचास वर्ष तब उनके राजपुरोहित रहे। वे अस्त्रो–शस्त्रो की विद्या शिक्षालय में प्रदान कराते रहे।

हमने पूर्व भी वर्णन किया था कि वह वाक्य यथार्थ है कि महर्षि बाल्मीकी ने ऋषि स्वागत गो के बछड़े को मार कर किया परन्तु संसार ने इस वाक्य को जाना नहीं इस वाक्य को जैसा देखा वेसा प्रयोग कर दिया इसके दार्शनिक रूप को जान लेना चाहिए । हमारे यहाँ ऋषिता है कि गो के बछड़े को मारकर ऋषि का स्वागत किया जायें **गो नाम आत्मा का हे और उसका जो पुत्रवत बछड़ा है , वह मन है ; मन रूपी बछड़े का मार कर ऋषि का स्वागत किया जाता है। एक – दूसरे का जब इस प्रकार स्वागत किया जाता है , तो वहां प्रीती होती है , आनन्द होता है और ज्ञान विज्ञान की चर्चाए होती है।**

महर्षि बाल्मीकी के महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से प्रश्न उतर चले कि यह मन का बछड़ा किस प्रकार हो सकता है ? तो उनकी आलोचता चली कि जैसे गो का बछड़ा चंचल होता है, इसी प्रकार वह मन चंचल होता है , इसिलिए उसकी गो के बछड़े से उपमा अी जाती है। जैसे गो आनन्द को देने वाली है , इसमे दुग्ध होता है , घृत होता है , आननद भरा होता है , उसी प्रकार यह जो आत्मा है इसमे ज्ञान और प्रयत्न है , इसके साथ नाना परिवान है , इसिलिए इस को गो कहते है।

दोनो का विचचार विनिमय चला । महर्षि बाल्मीकी ने कहा कि – ''गो चन्द्रमा को भी कहते हैं चन्द्रमा की कान्ति भी बड़ी विचित्र है , इसकी कान्ति से लगभग 101 व्याहृतियां होती है। जहाँ–जहाँ जाती है , जिस–जिस तत्व पर जिस–जिस धातु पर जाती है , उनही धातुओ को वह कान्तिदायक बनाती है। जैसे सूर्य की किरणे स्वर्ण पर जाती है। तो वही स्वर्ण बनाती है और विष पर जाती है तो विष । इसी प्रकार चनद्रमा की कान्ति चलती है इसकी एक तुरिध नाम की कान्ति होती है , यह पृथ्वी में जहाँ स्वर्ण होता हे , वहां जाती है और उसको शीतल बनाती है, सूर्य की कान्ति का जो तेज हे उसमे शीलतता देती हे जिससे उस धातु की और प्रगति होती है। इसी प्राकर एक सुधित नाम की कान्ति होती है। यह वहां जाती है , जहाँ वज्रो में से पत्थरो से , स्वर्ण से भी अधिक अमूल्य वस्तु निकाली जाती है। यह समुद्रो में भी रमण करती हे , जहाँ सूर्य का तेज भी जाता है , विद्युत भी वहां रहती है , जल भी वहां रहता है। वहां सब मिश्रण हो करके समुद्र से राष्ट्र की अमूल्य भूषण–धातु उत्पन्न होती है। एक कुदित की कान्ति होती है , जो वहां पंहुचती है , जहाँ पृथ्वी से नाना प्रकार के खनिज पदार्थो की उत्पति होती हे , जिससे वाहन चलाने वाली धातु और जिससे नाना यन्त्रो को आविष्कार कर लेते है। इसी प्रकार एक कुड़ित नाम की कान्ति होती है , जो अन्तरिक्ष में रमण करती है वह विद्युत में रमण करती है। जब उसका अन्तरिक्ष में मिश्रण होता है तो भैतिक वैज्ञानिक उसके यन्त्र बना करके अन्तरिक्ष में जो परमाणु रमण कर रहे है , उन परमाणुओ का निकालते है, उससे महा अणु, त्रिसेणु उत्पन्न होते है और नाना प्रकार के यन्त्रो का आविष्कार किया जाता है। चन्द्रमा का नाम गौतम है , वह अमृत देता है। माता के गर्भस्थल में जब हम प्रविष्ट होते है , तो उस समय माता के निचले विभाग में एक चन्द्रकेतु नाम की नाड़ी होती है। उसके द्वारा चन्द्रमा की कानित नाड़ियो में रमण करती हुई **प्राणमय कोष** में जाती है और माता के द्वारा जो प्राणसता बालक को मिलती है, उसमे मिश्रित हो करके उस बालक को अमृत प्रदान करती है। ''

ऋषि बाल्मीकी और महर्षि वशिष्ठ मुनि दोनो का इस प्राकर का अनुसंधान चलता था, जिन्हे आज का यह संसार यह उच्चारण करता है कि वह मांस भक्षण करते थे । मांस का भक्षण तो वह किया करते है ,जिनकी बुद्धि पामर होती है। मांस का भक्षण करने वाले पामर कहलाते है , जिनकी बुद्धि पामर होती है। मांस का भक्षण करने वाले पामर कहलाते है , कयोंकि उनकी बुद्धि ऋषिता का न प्राप्त होकर रजोगुण बुद्धि होती है। (20–10–1964,मोगा,पंजाब)

मानव को यह विचार लेना चाहिये कि जो मनुष्य दुराचारी होता है, वह संसार में ऋषि भी बन जाता है , जैसे ऋषि बाल्मीकी ! इसी प्रकार हमें आज विचार लेना चाहिये कि हम शुभ कर्म करें और वह कर्म करते चले जाये जिससे प्रकृति हमारी साथी बन जाये और यह हमारे विचारो के अनूकूल हमें फल देने वाली हो । हमें परमात्मा के अनुकूल अपना जीवन बना लेना चाहियें (22 अक्तूबर 1964, मोगा,पंजाब)

आज का समाज यह कहता हे कि पूर्व का ऋषिमण्डल , पूर्व का मानव मांस का भक्षण करता था। आज के संसार को इस भ्रांति में नही जाना चाहियें मुनिवरो ! वनस्पतियो का आहार करके सोमरस का पान करके हमारे पूर्वज ऋषि बनें आज हमें उनके जीवन पर विचार करना चाहिये हमे महर्षि बाल्मीकी के जीवन की कैसी महानता प्राप्त होती है कि उन्होने राम–रमेति शब्द की याचना करते–करते अपने शरीर पर महान जीवो का अपना गृह बनाने दिया हो और शरीर में अस्थियो का पिंजरा और महान प्राण रह गया ! आज हमें उन ऋषियो को कितनी महानता देनी चाहियें (28 जुलाई 1963,मालवीय नगर नयी दिल्ली)

२. द्वितीय अध्याय–राम के पूर्वज

मनु

आदि मनु और राष्ट्र निर्माण

मानव जिसकी रक्षा करता है , वह प्राणी उसकी रक्षा करता है। मैने एक समय ' अहिंसा परमोधर्म' का वर्णन करते हुए कहा, यदि हम किसी की रक्षा न करेंगे तो हमारी भी संसार में कोई रक्षा न करेगा । यह तो अन्तःकरण और प्रवृति के साथ–साथ मानव का जीवन संचार होता है। वास्तव में जब मनु महारजा को प्रतीत हो गया कि अब धर्म पर भिन्न–भिन्न स्थानो पर आक्रमण होने लगा है , दैत्यो का प्रभाव अधिक होता चला जा रहा है , देवता शून्यता को प्राप्त होते चले जा रते है , उन्होने उसी काल में आदि ऋषियो को एकत्रित किया, जिसमे महर्षि विभाण्डक, महर्षि पारा आदि–आदि सब ऋषि विराजमान थे । महाराजा मनु ने दनससे कहा कि –'' आज मै वेदो का स्वाध्याय कर रहा था तो वहां राष्ट्र का बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था कि राष्ट्र नाम का कोई नियम है। '' ऋषियो को निर्णायत्मक करते हुए महर्षि तत्ववेता ने कहा – हे भगवन ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि वेदो में राष्ट्र का विधान है ,और उस समय में है जब मनुष्य अपने कर्तव्यो से विहिन हो जाता है , धर्म से पतित हो जाता है। धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र का निर्माण किया जाता है । आदि ब्रह्मा का भी यही कथन है। वास्तव में अब राष्ट्र का निर्माण करना चाहिये ''। उस समय मनु ने कहा कि – मुझे कुछ कहायता प्राप्त होगी तो मै अवश्य राष्ट्र का निर्माण करूंगा। यह मेरी उत्कट इच्छा है। दैत्यो को नष्ट करने के लिएष दुराचारियो का दुराचार नष्ट करने के लिए, राष्ट्र का सुगठित होना बहुत ही अनिवार्य है।

वर्ण व्यवस्था

महाराजा मनु ने ऋषियो की सहायता प्राप्त कर सबसे पूर्व वर्ण व्यवस्था स्थापित की। शिक्षालयो में शिक्षा पाने के लिए ब्रह्मचारी जाता तो उनका आचार्य निदान किया करता कि जो भी ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी है यह किस वर्ण का है। जैसे कोई पुत्र बुद्धिमान है, उसे ब्राह्मण की उपाधि प्रदान करते । जिसकी बुद्धि वाणिज्य आदि में तीव्र है उसे वैश्य और जो दूसरो की रक्षा करने वाला , अस्त्र–शस्त्र और धनुर्वेद में रूचि रखने वाला है , तो उसको क्षत्रिय की उपाधि प्रदान की जाती और जो इन तीनो प्रकार की विद्या प्राप्त न कर सके उसे हमारे यहाँ शूद्र की उपाधि प्रदान की जाती।

महाराजा मनु ने सबसे पूर्व इस राष्ट्र का निर्माण किया। महाराजा मनु आज नही बहुत पूर्व काल में हुए। वह कितने दयालु थे। महाराजा मनु एक कमण्डल लेकर नित्य–प्रति स्नान–ध्यान करने जाया करते थे । एक समय समुद्र तट पर नित्य कर्म करने के पश्चात जब समुद्र से कमण्डल में जल लेने लगे तो उनके कमण्डल में एक सुन्दर सी मछली आ गया और मनु महाराज से कहने लगी कि – महाराज मेरी रक्षा करो, मै रक्षा चाहती हूं। मनु महाराज

मछली को अपने कमण्डल में ले आयें कुछ समय वह कमण्डल में ही रही । उसके पश्चात उन्होने सूक्ष्म सा गढ़ा बनवाया , उसमे जल अर्पित किया और फिर उसमे मछली को अर्पित कर दिया । मछली वहां प्रबल होने लगी। जब उग्रता को प्राप्त हो गयी तो एक समय मछली नम कहा कि –प्रभु ! मै समुद्र को जा रही हूं, अपने स्वराष्ट्र में जा रही हूं, जहाँ हमारी जातिया रहती है। भगवान मनु से एक वाक्य और कहा कि एक समय जल–प्लावन आयेगां उस समय तुम नौका बनवाना और मै तुम्हे हिमालय–कन्दराओ में प्राप्त होऊंगीं मेरे मुख पर एक सूक्ष्म सा सींग होगा , उस सींग में उस नौका को अर्पित कर देना , प्रभु तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे। मछली समुद्र में चली गयी। मनु महाराज तपस्या आदि करते रहे। मुछ समय पश्चात जल–प्लावन आ गया। जल–प्लावन के आते ही संसार में त्राही हरेने लगी। महाराजा मनु ने मछली के कथनानुसार एक सून्दर नौका बनवाई और उसक नौका पर अपने कुछ ऋषि समाज सहित विराजमान हो गयें जल–प्लावन बड़ा प्रबल था जब वह नौका हिमालय की कन्दाराओ के निकट पंहुची । तो उन्होने देखा कि मछली वहां विरालमान है नौसा को उस मछली से स्थिर कर दिया , महाराज मनु और उनके सन्म्बन्धी जो उसक नौका वा विराजमान थे, उनके प्राणो की रक्षा हो गयीं जल प्लावन समाप्त हो गया, शुष्कता आ गयी तो महाराज मनु अपने स्थान पर आ पंहुचे।

अयोध्या–निर्माण

महाराजा मनु अब यह सोचा कि मेरे राष्ट्र के नियम तो बन गयें ऋषि–मुनियो ने राष्ट्र के नियम बना दिए अब राष्ट्र के लिए राजा की आवश्यकता है और राजा के लिए किसी नगरी की आवश्यकता है। मुनिवरो ! भगवान मनु ने सबसे पूर्व अयोध्या नगरी का निर्माण किया। उसी प्रकार निर्माण किया जैसे परमपिता परमात्मा ने मानव शरीर का निर्माण किया है। उस अयोध्या नगरी में मुनिवरो ! नो द्वार थे जैसे मानव शरीर में नौ द्वार माने जाते है। उस नगरी में राज उसी प्रकार शासन चला रहा है ,जैसे मानव शरीर का निर्माण परमातमा ने राष्ट्रीय करण से आधारित किया है। यह जो हमारा शरीर है , यह नो द्वारो वाली अयोध्या है। दो घ्राण , दो चक्षु , दो श्रोत्र, एक वाक , उपस्थ और गुदा यह सक मिलाकर नो द्वार कहलाते है। यह सब नौ द्वारो वाली अयोध्या कहलाती है। इसमे दशरथ जो दसो इन्द्रियों पर शासन करता है राज्य करता हे दशराथ इस नगरी का अधिपति माना जाता है और रमेति रमण गच्छति ब्रह्मे वह जो राम है वह इस अयोध्या नगरी के कण–कण में व्यापक हो रहा है व्यापक होने के नाते एक–एक परमाणु में राम रमेति परमात्मा रमण कर रहा है और अयोध्या नगरी को पवित्र बनाता चला रहा है।

महाराजा मनु जी ने इस मानव शरीर की कल्पना की और कल्पना करके अयोध्या नगरी का भैतिकवाद के आधार से निर्माण किया। भगवान मनु ने सबसे पूर्व राष्ट्र का गठन किया, नौ द्वारो वाली अयाध्या–पुरी का निर्माण किया, और स्वयं उसमे राजा बने। राजा बन करके राष्ट्र नियम चलाने लगे। राष्ट्र क्यो बनाया गया ? राष्ट्र का जो निर्माण होता है , राष्ट्र के जो नियम होते है , ये केवल धर्म रक्षा करने के लिए होते हे और जिस राजा के राष्ट्र में धर्म की रक्षा नही की जाती, वह राष्ट्र आज नही तो कल अवश्य नष्ट हो जाएगा। (7 जुलाई 1965,फिरोजपुर)

मनु महाराज ने जो राष्ट्र की पद्वति बनाई , उसी पद्वति के आधार पर चलना है। वह पद्वति सार्वभौम मानी जाती है। इस आर्यावर्त में जब तक मनु जी की पद्वति रही, वह धर्मज्ञ रहा । इसके विचार दूसरे राजा अपनाते थे, जेसे महाराजा रघु थे, महाराजा दिलीप थे, महाराजा अज थे उसके पश्चात भगवान राम हुएं परन्तु एक दशरथ ऐसा हुआ जो आलस्य और प्रमाद में चला गया था। तीन पत्निया गृह में रहती थी, इसिलिए मै उसका कोई मान नही करता । मान देता हू। भगवान राम को जिन्होने अपने राष्ट्र को राम राज्य बनायां रावण की प्रणाली का नश्ट करके उनके विधाता विभीषण का लंका का स्वामी बनाया।(28 जुलाई 1966,जोर बाग)

मनु ने ही अयोध्या का निर्माण किया था, जो अष्ट चक्र, नौ द्वारो वाली पुरी कहलाती है। जब राष्ट्र का निर्माण किया तो राजा के यहाँ देखो एक नियमावली बन गयी । राजा ने यह घाषणा कर दी कि – राष्ट्र में मानो प्रत्येक गृह में सुगन्धि होनी चाहिये, प्रतयेक गृह में वेद ध्वनि होनी चाहिये, जिससे वह गृह और ऊंचा बन जाए। देखो भगवान मनु ने ऐसा कहा । वृतिका मनु ने भी ऐसा ही कहा । देखो भगवान स्वयम्भु मनु ने इसी प्रकार नियम बनाए और उसी प्रकार के नियम आगे बनते रहे। तो विचार–विनिमय क्या – **कि प्रत्येक गह में सुगन्धि होनी चाहिये और सुगन्धित विचारो की सुगन्धित हो। देखो गृह ऊंचे बनते है जब गृह में गृहस्वामी और गृहस्वामीनी वेद का पठन–पाठन करते है और दर्शनो का पठन–पाठन करते है ।और मानवीय–दर्शन को अपने समीप लाते है। गृह स्वामी और गृह स्वामिनी जब इस प्रकार के क्रियाक्लापो को करते है तो देखो उनके गृह में जितना भी जन समूह है चाहे वह पुत्र के रूप में है , चाहे वह पुत्री के रूप में है , उनके विचारो के अनुसार अपने गृह को व्यतीत करते रहते है।**

रघुकुल प्रणाली

आज राजा राज्य को त्याग करके देखे , वानप्रस्थी बन करके देखो कि उससे राष्ट्र में सदाचार की कैसी सुगन्धि आती है और इससे समाज का कितना ऊंचा कल्याण होता है। हे परमात्न! वह समय किस काल में आयेगा जब राजा रघु जेसे वानप्रस्थी बन करके अज को शिक्षा देने वाले बनेंगे । हे प्रभु ! वह राष्ट्र किस काल में आयेगा, जब महाराजा दिलीप जैसे अपने राष्ट्र को तयाग करके वानप्रस्थ को धारण कर अपने पौत्रो को शिक्षा देने वाले बनेंगे दशरथ जैसो को शिक्षा देने वाले बनेंगे । हे परमात्न ! वह समय किस काल में आयेगा जब सुरन्धुत नाम के राजा वानप्रस्थी बन करके रघु को शिक्षा देनेवाले बनेंगे।

हे परमात्न! व्ह समय कस काल में आयेगा जब यह प्रणाली ऊंची बनती चली जायेगी। हे प्रभु! जैसे दशरथ के पिता अज , अज के पिता रघु, रघु के पिता दिलीप, दिलीप के पिता भागीरथ और भागीरथ के पिता कद्दीप राजा और कद्दीप के पिता महाराज विरूत , विरूत के पिता सुखमंजस और राजा सुखमंजस के पिता महाराजा सगर थे। इसी प्रकार यह प्रणाली चली आयी। दशरथ के पुत्र राम हुए , राम के लव हुए, लव कुश के सुधित नाम के राजा हुए और सुधित के मनधुत नाम के राजा हुए मनधुत के कुसधुन नाम के राजा हुए और यहाँ आकर यह प्रणाली समाप्त हो गयीं आज इस पर हमें विचार करना चाहिये , यह रघु की प्रणाली क्यों चली आयी ? यह सब वानप्रस्थी बनते चले आये और इससे इसका राष्ट्र संसार में ओत–प्रोत था, जब राजा इनके आधीन रहते थे। आज वानप्रस्थी बनकर देखना चाहियें कि यह वानप्रस्थ हमें कहां ले जाता है। (22 अप्रैल 1964,कोटली जम्मू)

महाराजा हरिश्चन्द्र

महाराजा के सगर के ऊर्ध्वा भागो में महाराजा हरिश्चन्द्र हुए है। वह स्वप्न में विद्यमान है और स्वप्न में एक महात्मा विद्यमान है और याग करते के लिए महात्मा स्वप्न में दान मांगता है। वह जब दान देकर स्वप्न को त्याग करके संसार में आये तो उन्होने कहा, मैने यह राष्ट्र दान में दे दिया। मैने सर्व द्रव्य दानेषु बनाया है तो उन्होने ,ब्रह्मणे एक साधु ने जब श्रवण किया। यह कहते है। , कि महाराजा विश्वमित्र जो अपने में जीवन मुक्त होने जा रहे थे, वह उनके द्वार पर पंहुचे और कहा–मुझे दानेषु। उन्होने कहा–बहुत प्रियतम! आप वह महात्मा है , जो मुझे स्वप्न में दृष्टिपात आ रहे थे। भगवन ! आओ मै आपको दानेषु दान देना चाहता हूं। तो उन्होने सव्र द्रव्य जो राष्ट्र में था कोष में था, वह सर्वत्र उन्हे दान में समर्पित कर दियां परन्तु इसमे एक सम्बन्ध तर्क का आता है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक प्रश्न भी किया था कि देखो वह राजा है प्रजा को दान में देने का राजा को कोई अधिकार नही होता । देखो, यहाँ नियम भी यही बना हुआ है कि राजा जो होते है अपनी इन्द्रियों पर संयम करने वाले होते है , वह अपनी प्रजा पर भी अनुसन्धान करने वाले होते है और जो उन्होने अपने मुखारबिन्द से कहा कि मै 'इदं न मम' राष्ट्र नही भोगूंगा , यह राष्ट्र मानो मेरा दायित्व , यह महात्मा का बन करके रहेगा की घोषणा करता है, अपने पदो की लोलुपतता को त्यागता है और उसे दूसरो को प्रदान कर रहा है तो यह दानेषु कहलाता है। देखो राजा हरिश्चन्द्र,'ब्रह्मम् कला वृतिः देवाः'अपना सर्वस्व दान महात्मा को संकल्पमात्र से कर गये । द्वितीय राष्ट्रो में जा करके अपने मै सेवा करके अन्न को पान करने लगे । बेटा , यह दान कहलाता है। (05 नवम्बर 1988,लाजपत नगर नयी दिल्ली)

महाराजा श्रुतकेतु

एक समय श्रुतकेतु राजा थे । वह रघुवंश में थे । महाराजा सुखमंजस के महापिता थे और महान राजा थे । उनके पुत्र का नाम सगरकेतु था उस राजा के मन में आया कि मै अश्वमेध याग करूं उन्होने स्वर्ण से सुज्जित करके एक अश्व को राष्ट्र में त्याग दिया और राष्ट्र में त्यागने के पश्चात उसे किसी ने ग्रहण नही किया तो राजा ने प्रजा को एकत्रित करके प्रजा से यह प्रश्न किया कि – एक दूसरे का कोई ऋणी तो नही है ? प्रजा ने कहा –भगवन ! कोई ऋणी नही है। राजा ने प्रजा से कहा कि – तुम्हारे यहाँ पितृयाग होता है ? प्रजा ने कहा –प्रभु ! होता है। क्या तुम देवयाग करते हो ? प्रत्येक गृह में अग्निहोत्र होता है अथवा नही ? प्रजा ने कहा –भगवन! जब आपका आदेश है, आपका आचरण है , आपका राष्ट्रीय नियम बना हुआ हे तो कौन प्रजा ऐसी है , जो असको अपना नही सकती। राजा ने यह विचारा कि मेरे राष्ट्र में कोई एक दूसरे का ऋणी नही है, उन्होने प्रजा को एकत्रित किया और अश्वमेध याग रचाया, और नमगता से वह संसार में दिग्विजय राजा बन गये थे। परन्तु राजा का नियम क्या था ? वह प्रातःकालीन सूर्य उदय होने से पूर्व अपने आसन को त्याग करके पति पत्नी पत्नी अपनी क्रियाओ से निवृत हो करके अग्निहोत्र करना , देवताओ को आहवान करना, देवयाग करना, ब्रह्मचिन्तन करना , उसके पश्चात वह फिर अन्य उद्योग करते थें उनके घर के आंगन में एक सूक्ष्म की भूमि थी और उसमे अन्नाद को उत्पन्न करने का कर्म करते थे। उसके पश्चात वह अपने राष्ट्र में भ्रमण करना , उस क्रिया को समाज मे लाना, समाज के नियमो का पालन करना । वही राजा अश्वमेध याग कर सकता हे जो इस प्रकार की नियमावली को धारण करता है। (21 अक्तूबर 1962,पंजाबी बाग ,नयी दिल्ली)

राजा सगर

राजा सगर ने जिस समय अश्वमेध याग किया तो उससे पूर्व यह जानकारी की कि मेरा कोई शत्रु तो नही है। जब कोई शत्रु नही रहेगा तो राजा को यह अधिकार है कि वह राष्ट्र का पालन करता हुआ अश्वमेध याग का रचाने वाला हो महाराजा सगर ने अपनी चहुमुखी सेना को कहा कि – तुम इस घोड़े के पीछे चले जाओ और जो भी इस घोड़े को अपने आसन पर नियुक्त कर लेता है , उस राजा को विजय करना है। महाराजा सगर ने अपने पुत्र सुखमंजस से कहा कि – हे सुखमंजस ! मेरा यह अश्व जा रहा है , अश्वमेध के लिए इसमी सुरक्षा करनी है। उन्होने कहा , बहुत प्रियतम ! राजा का अश्व शृंगार से सुशोभित है स्वर्णमय उसका श्रृंगार बना है। उसके मस्तक पर एक लेखनीबद्ध कर दी कि यह अश्वमध याग का प्रतीक है। और जो भी इसे अपने में धारण करेगा, उसको विजय करना होगा। यह विचार हो रहा था। अमृताम ब्रह्मणेः प्रव्हा सधनम दृष्टतः अश्वमेध याग करनेवाला वेद के मंत्रो को लानने के लिये तत्पर रहता है , उसको जानता हुआ अपने में क्रिया रिता रहता है।

महाराजा सगर के भ्रमण करते अश्व को किसी ने अपने यहाँ स्थिर नही किया। महर्षि कपिल मुनि महाराज अपने विद्यालय में विद्यमान थे। उनके यहाँ जय और विजय दो राजकुमार अध्ययन करते थे। वे अस्त्र–शस्त्र विद्या में पूर्णता को प्राप्त हंए थे । उन्होने अश्व को अपने विद्यालय में स्थिर कर लिया। जब अश्व कहीं दृष्टिपात नही हुआ तो महाराजा सगर ने अपने पुत्र सुखमंजस से कहा कि – हमारी चौमुखी पुत्रवत सेना के साथ अश्व को लेने जाओ। वे सर्वत्र पुथ्वी पर भ्रमण करके कहीं अश्व को प्राप्त नही कर सके। वे राजा सगर के द्वार पर आकर बोले प्रभु हमें कहीं ऐसा भान नही हुआ कि हम ब्रह्मे कृतम कि उस अश्व को ले आये। उन्होने कहा–कहां गया प्रभु ! हमें कोई प्रतीत नही है। उन्होने कहा जानकारी लाओ। वे सेनापति सहित पुनः भ्रमण करने ले और पृथ्वी के ऊपर तथा गर्भ में दृष्टिपात करने लगे। इसी प्रकार भ्रमण करते जब वे कपिल मुनि के द्वार पर पंहुचे तो महात्मा कपिल ने उन्हे आसन दिया। उन्होने दृष्टिपात किया कि अश्व यहा विद्यमान है उन्होने कहा हे कपिल! टमृताम भूतम ब्रराजसुताहम राजकीय विचार हे कि तुम्हारा हमारा संग्राम होगा, क्योंकि तुमने अश्वमेध याग के अश्व को अपने यहाँ स्थिर किया है। उन्होने कहा भगवन बहुत प्रिय! कपिल मुनि महाराज दर्शनो के मर्म को जानते थे , जहाँ वे तपस्वी थे वहां अस्त्रो–शस्त्रो की विद्या भी वह भली प्रकार जानते थे । जय और विजय जो उनके शिष्य थे वह इस विद्या के ऊपर यन्त्रो का निर्माण भी करते थे।

कपिल मुनि महाराज ने अमृताम ब्रह्मे वृतं राज सुताहम कहा हे राजन ! तुम इस प्रकार वृतियो में रत्त न हावें उन्होने कहा नही हम संग्राम करेंगे । बहुत प्रिय कहकर जय और विजय को आज्ञा दी । जय और विजय धनुर्याग करते थे । धनुर्याग में महात्मा कपिल मुनि बड़े परायण थे । धनुर्विद्या के आधार पर उन्होने संग्राम करना प्रारम्भ किया । जय और विजय ने एक दो यन्त्रो का प्रहार किया तो उनकी बहुत सी सेना नष्ट हो गयीं सर्वस्व सेना के नष्ट हो जाने पर राजा को यह प्रतीत हुआ कि यह दशा जय और विजय ने की है और महात्मा कपिल के यहाँ जिनका वृतम ब्रह्मे अध्ययन होता रहता है उसमे सब विद्या विद्यमान है। (18 मई 1990,लाजपत नगर ,नयी दिल्ली)

राजा सगर को यह प्रतीत हुआ कि जय और विजय ने तुम्हारी सेना नष्ट कर दी है और वह अश्व भी नही त्यागा तो सुखमंजस राजा सगर की कुछ सेना ले करके महर्षि कपिल मुनि के आश्रम में पंहुचे। कपिल मुनि महाराज ने जब आश्रम का वृत देखा, दृष्टिपात किया तो उन्हाने कहा–आईये भगवन ! विराजिये, हे राजन कैसे आगमन हुआ है तो सम्भूति ब्रह्मा सम रूद्रो भागाम बन्धनं ब्रहे कृतम मेरे पुत्रो उन्होने कहा कि–यह हमारे विचार में आ रहा हे हम इस विचार को महान और पवित्रता म`ले जाना चाहते है। मेरे पुत्रो राजा सगर के पुत्र सुखमंजस ने कपिल मुनि के चरणो की वन्दना करके प्रार्थना की कि महाराज ! हमारा गमनम प्रव्हे गमनम व्रहे कुतम देवाः न गमनम तम ब्रीही! मेरे पुत्रो ! ऐसा शब्द उन्होने उच्चारण किया । विचार आता रहता है बेटा, इन विचारो को बहुत समय हुआ कि उन्होने अपनी प्रतिक्रियाओ को परिवर्तन किया । विचार–विनिमय क्या कि राजा सगर के सेनानायक तो युद्ध में संग्रम करने के लिए तत्पर हो गये थे , परन्तु राजा ने ब्रहू अमृताम ब्रह्म लोकाम वाचाः उन्होने कहा , प्रभु ऐसा क्यों, उन्होने कहा, स्म्भू धनंजम व्रते देवम आभ्याम रूद्र भागो सम्भवा क्रते देवाः हे प्रभु मै नि प्राह व्रते, अश्व को लेने के लिए आया हूं। उन्हाने कहा कि अश्वमेध याग नही करना हे ? सुखमंजस ने कहा कि –प्रभु ! यदि आप आज्ञा देगे तो याग हो सकेगा। उन्होने कहा कि जय और विजय से प्राप्त करो। वे जय और विजय के द्वार वर पंहुचे । जय और विजय ब्रह्मचारी थे और वह ब्रह्म का चिनतन कर रहे थे । राजा सुखमंजस ने कहा – हे प्रभु ! हम तुम्हारे अश्व को ले जाना चाहते है। तो बेटा ! यह नम्रता का सूचक है।

राजा सगर ने अपने अश्व को लेकरके कपिल मुनि महाराज से यह प्रार्थना की कि महाराज मै ! एक अश्वमेध याग कर रहा हूं। उन्होने कहा कि –तुम जय और विजय से अनुमति प्राप्त करो कि हम एक अश्वमेध याग कर रहे हे , तुम्हारी क्या इच्छा है ? उन्होने स्वकृति दी और कहा कि – याग तो अमृत हे याग तो मानव को ऊंचा बना देता है , यागाम ब्रह्में दोनो हर्ध ध्वनि करने लगे । महर्षि कपिल मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियो को आज्ञा दी और अप्रतिम ब्रह्मे आश्वाम गच्छातम व्रताम दधि रूपाम देवाः। (12 मार्च 1989,लाक्षा गृह बरनावा)

महाराजा दिलीप

जब दिलीप के कोई सन्तान नही हुई तो ऋषि मुनियो को एकत्रित किया गया और यह कहा कि महाराज!द्वितीय संस्कार तो मेरे लिए एक शाप है मेरे कुल में ऐसा नही हुआ , परन्तु मेरी इच्छा यह है कि पुत्रेष्टि याग हो और सन्तान का जन्म होना चाहिये। उस समय सब ऋषियो ने एक स्वर में कहा था कि – तुम नन्दिनी की सेवा करो , तपस्या करा और देवी पत्नी से कहो कि कि तुम प्राणायाम करो । तुम मन और प्राण को एकाग्र करके ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति बनाओ । कयोंकि बारह वर्षो का जीवन वैसे ही पूर्ण नही होता । देवी ने नत मस्तक हो करके कहा प्रभु ऐसा ही होगा उनका नारम सुलक्षणा था । ऐसा रघुवंश में आता हे कि उनसे आग्रह किया गया कि सन्तान का जन्म होना चाहिये एक पुत्रनिर्तिका प्राणायाम होता है। बहुत पुरातन काल में महाराजा अश्वपति के यहाँ में बारह वर्ष तक पुत्रियो को इसका अभ्यास कराता रहा। महाराजा दिलीप की धर्म देवी सुलक्षणा की एक सह पाठिन का नाम शकुन्तला था । दोनो को अभ्यस्त कराया कि तुम मन और प्राण को इस संसार की प्रत्येक आभा में दृष्टिपात करो। उन्होने कहा, बहुत प्रिय! इसके पश्चात इस वुक्ष जिसका नाम ही पुत्रदा है , उसका पांचांग बनाया। उसके समकालीन पांचो वस्तुओ को ले करके और उसमे पीपल के फल को लिया और वट वृक्ष के दुग्ध को लिया और उसे अग्नि में तपा करके उसका पात बना लिया गया । बारह वर्षो तक वही उसका पान रहा , क्योंकि उसमे जो सूक्ष्मता थी, रज जनमब्रहे

वरूणां सरसवतम् वहि कृतानी । यह वस्तु न रहने से उन्हे कुछ अन्न का सूक्ष्म आहार भी कराते थे । उस अन्न के आहार में तन्दुल होते हैं तन्दुलो में ग्रहीस्ताम गा रस होता है वह पान कराया गया।

बारह वर्ष तक महाराज दिलीप तो कामधेनु के पीछे गति कर रहे है और देवी प्राणायाम कर रही है पाचांगो का पान करती हुई वह प्राणायाम कर रही है। पुत्रदा प्राणयाम कौन सा होता है पदम आसन और सिद्धासन , दोनो आसनो से प्रातःकाल विद्यमान हो खेचरी मुद्रा को अभ्यास किया जाता है और संकुचित प्राणयाम किया जाता है। मध्य का काल में चनद्रवाहिनी प्राणायाम किया जाता है। रसना का तालु से समन्वय मिलाते हुए और उसमे जब प्राण से वायु का सिंचन किया जाता है तो वायु में चन्द्रमा के जो परमाणु गति कर रहे है वही परमाणु शरीर में आयेंगे द्वितीय परमाणु नही आ सकता।

एक वायु केतु प्राणायाम होता है , इसमे पृथ्वी के परमाणु आते है। चन्द्रमा के जब त्रिवान परमाणु आने लगे, तो वह मां सुलक्षणा प्रभु की गोद में चली गयी, प्रभु के आंगन में रमण करने लगी । उद्देश्य क्या कि यह राष्ट्र चले और लक्ष्य यह कि मै प्रभु को प्राप्त करूं। इनके द्वारा यह दोनो लक्ष्य थे । महाराज दिलीप कामधेनु नन्दिनी के पीछे , नन्दिनी जहाँ जाती है वही जाते । यह इतिहास है। मुझे स्मरण है बारह वर्षो में दिलीप जी कहां कहां रहे , यह विषय बहुत विस्तृत है , एक एक वर्ष के एक एक दिवस की मै विवेचना करूंगा तब यह पुत्रेष्टि यज्ञ की विवेचना पूर्ण हो सकेगी , आज तो केवल मै परिचय दे रहा हूं। उसके पश्चात बारह वर्ष उन्होने पुत्रदा पांचांग का पान किया और दिलीप जी नन्दिनी को ले करके जब अयोध्या में आये तो उन्होने ऋषि मुनियो को एकत्रित कर पुत्रेष्टि याग किया।

पुत्रेष्टि याग का जो कर्मकाण्ड है , उसमे इसी प्रकार का साकल्य एकत्रित होता है। पुत्रदा की पांचो वस्तु सामग्री में , साकल्य में परिणीत होती है। तन्दुल होते है, अन्नाद होता है और भिन्न प्रकार की औषधिया होती है। जो आन्तरिक जगत में परमाणु प्रवेश करा देती है उससे वह परमाणु उत्पन्न हो जाते है जिन परमाणुओ से माता अपने लक्ष्य में पूर्णता को प्राप्त हो जाती है। वह साकल्य बनाया गया। देखो याग के पूर्ण होने के नौ माह के पश्चात महाराज रघु का जन्म हुआ था। रधु कैसा विचित्र था? यह मुझे साक्षी देने की आवश्यकता नही । जितना राष्ट्र में द्रव्य था, उसका सर्वत्र याग कर देता था ! महाराजा कुबेर से ले करके ब्रह्मचारी कौत्स को दान दे रहा है। कैसे विचित्र बालक माताओ के गर्भ से उत्पन्न होते है। इनका साक्षी देना मेरे लिए कोई शोभनीय नही रहा। (03 मई 1980,अमृतसर)

भगवान राम के महापिताओ में महाराज दिलीप कितने ने याग कर्म करने से पूर्व तपस्या की। पर वह तपस्या कितनी विचित्र थी वह कामधेनु गऊ की सेवा करते थें नन्दिनी की सेवा करते रहते और बारह वर्षो तक उन्होने भयंकर वनो में तप किया । गऊ के पीछे भ्रमण करते वह गायी छन्दो का वह पठन–पठन करते रहते थे । उनका आत्मबल इतना बलिष्ठ हो गया एक समय जब 12 वर्ष व्यतीत हो गये नन्दीनी के पीछे भ्रमण करते हुए , तो पर्वत पर पर्वतीय झरनो में से जल बह रहा हथा, महाराजा दिलीप उस झरने को दृष्टिपात करके अपने पन को दर्शन करने लगे, मानो मन उसमे लग गया । इतने में नन्दिनी जब भयंकर वन में थी, सिंहराज ने उस नन्दिनी पर आक्रमण किया तो नन्दिनी ने अपनी ध्वनि की । महाराजा दिलीप का मन जब झरने से उस नन्दिनी की स्वच्छ ध्वनि पर पुहुचा तो सिंहम ब्रह्मः हे सिहम लिंगम ब्रह्मे वाचक प्रहा राष्ट्रदक प्रवीदिदम उस समय महाराजा दिलीप ने प्रार्थना की और यह कहा कि – हे सिंह राज ! मै जानता हू कि मै तेरे राज्य में विद्यमान हूं। यह तेरा राष्ट्र है जिस वन में आ गया हूं, परन्तु यह नन्दिनी गऊ है मेरी पूज्या है क्योंकि जिस राष्ट्र में गऊ का पूजन होता है तो वह राष्ट्र स्वतः पवित्र बन जाता है। यह मेरी पूज्या हे , मै इसका पूजन करता हूं। हे सिंह राज ! क्षमा प्रवणम बृहम। मै यह जानता हू कि तुम मेरी पूज्या को त्याग दो यह तेरा आहार न बने मुझे ऐसा स्मरण है जब महाराजा दिलीप ने इस प्रकार प्रार्थना की, वह प्रार्थना में लीन हो गये , तो सिंहराज ने अपनी वृन्द ध्वनि से कहा हे राजन! आप धर्मात्मा राजा है तो आप महान और पवित्र राजा है। अहिंसा परमोधर्मी राजा है।तेरे राष्ट्र में हम स्वतन्त्र भ्रमण करते है । हिसां करने वाला तेरे राष्ट्र में कोई नही है। उसी समय नन्दिनी को त्याग दिया और नन्दीनी दिलीप के द्वार पर आ गयी । सिंहराज ने कहा ऐसे राजा के राष्ट्र में मै नन्दीनी पर प्रहार नही करूंगां यह अहिसां तपस्या का बल है जब मानव तपस्या करता है तो उसका आत्मिक बल इतना विशाल बन जाता हे कि सिंहराज भी अपने हिंसकपन को त्याग देता है। महाराज दिलीप अपने में बड़े प्रसन्न हुए और कामधेनु नन्दिनी को लेकर उन्होने अपने राष्ट्र के लिए गमन किया। (29 अक्तूबर 1987,विकास पुरी)

महाराजा दिलीप की पत्नी,शुम्भक्रंशवती अपने ब्रह्मचारी को बाल्य को , जब गर्भस्थल में ही था, उसे लेकर के देखो , आचार्य के द्वार अध्ययन के लिए चली गयीं आयुर्वेदाचार्यो के यहां प्रायः सन्तानो का उर्पाजन परमपरागतो से होता रहा है। मुनिवरो! देखो पिता को भान नही होता कि माता वह उर्पाजन करते हुए सनतान को वनो में आचार्य के कुल में अध्ययन करना प्रारम्भ कर देती है और उनका जीवन तपोमय बनता हुआ अपने गृह में प्रवेश होता रहा है। बेटा ! त्रेता के काल में यह पवित्र विद्या का अध्ययन होता रहा है। (12 मार्च 1989,बरनावा)

महाराजा दिलीप जब एक कामधेनु गऊ के पीछे वन को जा रहा है तब प्रजा यह नही कहती कि यह क्या हो रहा है? वशिष्ठ की आज्ञा है ब्रह्मवेता की आज्ञा है, क्योंकि राष्ट्र वंशलज को ऊंचा बनाना है। वह क्या धर्म नही है ? एक गऊ की पशु की रक्षा करना ही राजा का धर्म है और इस धर्म से वह वंचित हो जाता है तो वह राष्ट्र अधर्म में परिणीत हो जाता है।

दिलीप के पुत्र–रघु

राजा दिलीप के पुत्र रघु के नाम से प्रसिद्ध हुए। महाराजा रघु सम्भव प्रव्ह लोकाम वह भी गऊओ की सेवा करते थे । वह बड़े विचित्र दानेषु में गमन करते थे। (04 नवम्बर 1988,नयी दिल्ली)

एक समय , मुनिवरो ! महाराजा रघु भ्रमण करते हुए महर्षि वशिष्ठ मुनि के आश्रम में पंहुचे, क्योंकि अपनी प्रजा का वह निरीक्षण किया करते थे कि मेरे राष्ट्र में कोई भी मानव इस प्रकार का तो नही , जहाँ गृहस्थ , वानप्रस्थ और सन्यास का अकर्तव्य प्रसंग तो नही आता ब्रह्मचारी अपने–अपने कर्तव्य का पालन कर रहे है अथवा नही?

राजा रघु अपने राष्ट्र में निरीक्षण कर रहे थे तो रात्रि छा गयीं रात्रि के समय भयंकर वन में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में उनका वास हुआ । राजा का वास होने से ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और उन्होने कहा–आइयो , राजन ! आप उचित स्थान पर विद्यमान है।

प्रातः काल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरून्धती अपने ब्रह्मचारियो में मध्य में मानो अपनी सर्वत्र क्रियाओं से निवृत हो करके उन्होने प्रातःकालीन ब्रह्मयाग का अवधान किया। ब्रह्मयाग में ब्रह्मचारियो को ब्रह्म की शिक्षा देना और नैतिकता में ब्रह्म में परिणीत कराना यह उन दोनो का कर्तव्य था । ब्रह्मज्ञान दे करके उसके पश्चात देवपूजा में परिणीत होना और देवपूजा में नाना प्रकार का साकल्य , दुग्ध और घृत के द्वारा वे प्रातःकालीन याग ब्रह्मचारियो के मध्य करते रहे। माता अरून्धती उस याग के पश्चात यहय उपदेश देती रही कि – हे ब्रह्मचारियो ! **यह जो याग है, यह आध्यात्मिक और भैतिकवाद दोनो से कटिबद्ध रहता है। याग अपने में पूर्णता को लिए हुए होता है और याग में आध्यात्मिकवाद और भैतिक विज्ञान , दोनो ही निहित रहते है , क्योंकि जितना भी यह संसार है , जब इस संसार से याग की प्रभा अथवा याग चला जाता है तो इस संसार का क्रियाक्लाप नग्न हो जाता है। नग्न होने का अभिप्रायः हे कि अज्ञान आ जाता हे और अज्ञान के आ जाने से मानव अपने में ही मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। माता अरून्धति क यह उपदेश प्रारम्भ रहता ।**

जब माता अरून्धति ने अपने वाक्यो को समाप्त कर दिया। इसके पश्चात राजा , माता अरून्धती और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और महर्षि व्रष्टकेतु अपने में विचार–विनिमय करने लगे । जब वे इस प्रकार की आभा में परिणीत हो गये तो राजा ने नतमस्तक हो करके कहा कि–प्रभु ! मै यह संकल्प करने लगा हूं। कि मै अपने राष्ट्र में सर्वस्व याग करना चाहता हूं। मेरे कोष में जितना द्रव्य है में सर्वस्व का याग करना चाहता हू। उस समय महर्षि वशिष्ठ बोले कि – हम राजन ! तुम सर्वस्व याग करना चाहते हो , परन्तु जो राजा का द्रव्य होता है, वह प्रजा का द्रव्य होता है यदि किसी प्रजा ने यह प्रश्न कर दिया कि–इस द्रव्य का तुम्हे याग में परिणीत करने क्या अधिकार है। तो राजा ने कहा कि–द्रव्य भी राष्ट्र का है प्रजा का है। याग और प्रजा हम

सब मिल करके परमात्मा की धरोहर है। राजा का जब यह उतर मिला तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज मौन हो गयें उन्होने कहा कि – राजन तुम धन्य हो ! वह सब सभा ब्रह्मर्षि सहित अपने में मौन हो गयी और राजा ने इस वाक्य को स्वचीा?कार किया कि अमृतम यागाम भूतम मै सर्वस्व याग कयंगां महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि–हे राजन तुम्हारे राष्ट्र में जितने ऋषि है बुद्धिमान , तपस्वी है उनकी एक सभा बननी चाहिये और सभा में विद्यमान हो करके विचार–विनिमय हो। जितनी बुद्धिमती देवियां और बुद्धिजीवी है उनकी भी इस सभा में उपस्थित होनी चाहिये । और विचार–विनिमय हो करके याग होना चाहिये। राजा ने कहा बहुत प्रियतम। (08 मार्च 1962,लाक्षा गृह बरनावा)

राजा रघु ने सर्वत्र राष्ट्र के जितने प्रतिष्ठित महापुरूष थे, बुद्धिमान और वेदज्ञ थे, उन सबको निमनत्रित किया । उन्होने हिमालय में रहने वाले महाराज शिव को भी निमन्त्रित किया। (09 मार्च 1962,लाक्षा गृह बरनावा)

राजा रघु के यहाँ याग जब प्रारम्भ हो गया तो नाना ऋषि मुनि उसमे विद्यमान है , निर्वाचन हुआ तो वशिष्ठ मुनि महाराज पुरोहित बने और महर्षि साकलय मुनि महाराज उस याग के आचार्य बने और ब्रह्मकेतु ब्रह्मा और महर्षि शीतल व्रेनकेतु विश्वमित्र उस याग के ब्रह्मत्व को प्राप्त हो गये। और भी नाना ऋषि , जैसे व्रण इत्यादि , अपनी–अपनी उपाधियो में अलृंकृत हुए । कोई अध्वर्यु बना, कोई उदगाता बना, कोई विचार–विनिमय करने वाला वृत बना। याग का प्रारम्भ हो गया।

वह रघु याग लगभग छः माह तक प्रारम्भ रहा। छः माह के पश्चात उसका समापन हुआ । जब समापन हुआ तो राजा रघु ने कोष के एब द्रव्य को ब्रह्मवेताओ को दक्षिणा में परिणीत कर दियां राजा ने यह कहा कि–तुम हमें अमृतम ब्रह्माः देवत्वम तुम हमें अमृत दो । राजा रघु ने कहा , प्रभु ! अमृत कहां प्राप्त होता है ? उन्होने कहा यज्ञमान यदि अमृत में चला गया है तो हमें वह अमृत प्राप्त हो गया है। राजा ने कहा प्रभु यह कैसा वाक उदगीत गा रहे हो ? आप तो ब्रह्मवेता हो , ब्रह्मनिष्ठ हो , आत्मा को विष्णु रूप बनाने वाले हो। हे प्रभु ! आप तो स्वतः अमृत हो मै आपके शब्दो को नही जान पाया हूं उन्होने कहा कि– हमें द्रव्य नही चाहिये।, कयोंकि राष्ट्र का जो द्रव्य है वह हमारी बुद्धि को संकुचित न कर दे, हे राजन ! हम यह चाहते है कि तुम्हारे हृदय में , तुम्हारी अन्तर–इन्द्रियों में , चित के जगत में जितनी त्रुटियो को तुम हमें जितना भी प्रदान कर दोगे , हमें जितना भी दक्षिणा में परिणीत कर दोगे , उतना ही यह राष्ट्र और समाज पवित्र बनता चला जायेगा। हमें पवित्रता की आवश्यकता है हमें द्रव्य की आवश्यकता नही ह। । द्रव्य तो हम परमात्मा के राष्ट्र में वायु से ग्रहण कर लेते है। हम देखो , जब प्राणायाम करते है , खेचरी मुद्रा में परिणीत हो जाते है तो अपने उदर की पूर्ति कर लेते है। हम जब सूर्य प्राणायाम करते है तो सूर्य से ऊर्ज्वा प्राप्त कर लेते हैं जब चन्द्र प्राणायाम करते है तो चन्द्रमा से हम कान्ति को ग्रहण कर लेते है। और वायु से प्राण को ले लेते है , और प्रकृति मण्डल से मन को लेकर आत्मा को उसमे वृत कर लेते है । आत्मा से चेतना को प्राप्त हो जाते है। हमें चेतना की आवश्यकता है और यदि हम मृत्यु से पार होना चाहते है तो मृत्युंजय बनने के लिये हम सदैव अध्ययन करते है। प्राणायाम करते हुए मन और प्राण दोनो को एक सूत्र में ला करके परमात्मा के उस ब्रह्मसूत्र में पिरो देते है तो मृत्युंजय बन जाते है। हे राजन! हमे कया चहिये, दच्छिणा का अभिप्रायः केवल यह कि हमें हृदय चाहिये क्योंकि हृदय से दक्षिणा का समन्वय होता हे जैसे चाक्राणी ने याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से कहा था कि दक्षिणम भूतम ब्रह्मेः लोंकाम। कयोंकि दक्षिणा का समन्वय हृदय से है और हृदय का समन्वय श्रद्धा से हे और श्रद्धा का समन्वय दक्षिणा से स्वीकार किया गया हे तो हमें दक्षिणा चाहते है। हमें द्रव्य नही चाहिये, हम केवल दक्षिणा चाहते है।

रघु शान्त हो गया। उनकी देवी ने कहा , प्रभु ! आप कया दक्षिणा दे सकते हो ? उन्हाने कहा–जो इनकी इच्छा हो, अवश्य दूंगा यदि दक्षिण नही दूंगा तो मेरा याग सम्पन्न नही होगा। यदि याग सम्पन्न करना है तो मुझे दक्षिणा देनी होगी। मानो द्रव्य तो इनका रायस्तम ब्रह्मे । ब्रह्मवेताओ ने कहा , प्रभु ! द्रव्य यदि दोगे तो वह भी हमारे राष्ट्र की धरोहर है प्रजा की घरोहर हे और प्रजा में हम भी है तो हमारी भी धरोहर मानी गयी है। मानो यदि हमें वेद की पोथी दोगे तो वह पोथी भी हमारी धरोहर है परन्तु वेदो का ज्ञान हम जब अध्ययन करते हे उसका अध्ययन से समन्वय रहता है। और अध्ययन का समन्वय मानो देखो , मन से है और मन का समन्वय प्राण से हे और प्राण का समन्वय देखो हृदय से माना गया है और हृदय ही प्रभु की धरोहर है वह प्रभु की धरोहर मानी गयी है , कयोंकि जो हृदय ही प्रभु की अवहेलना करता है वही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। राजा अपने में वर्णम ब्रह्म कृतम शान्त हो गयां तो ब्रह्मवेताओ ने कहा हे प्रभु हम दक्षिणा में कुछ नही चाहते , केवल उदगीत चाहते है। जैसे परमात्मा का यह जगत हृदय है , ऐसे ही समाज ,राष्ट्र का हृदय है और देखो इस जन समूह में जो यह समाज है उसमे एक दूसरे की भावना एक दूसरे में सूत्रित है। जैसे मनका है धागा है और दोनो का समन्वय हो करके माला बन जाती है। प्रभु ऐसे हमें माला चाहियें राष्ट्र में प्रत्येक मानव का सम्मान होना चाहियें सम्मान तब होता हैं जब कि राजा अपनी विद्या का सम्मान करता है , राजा अपने राष्ट्र में क्षत्रिय बल का सम्मान करता है।

इस प्रकार जब उन्होने उदगीत गाया तो राजा रघु अपने में मौन हो गया और राजा रघु ने कहा कि –प्रभु ! जो तुम्हारी इचछा हो मै अवश्य दूंगा उन्होने कहा कि प्रभु हम यह चाहते है कि तुमहारा जीवन मृत्यु से पार होना चाहिये, हम यही दक्षिणा में चाहते है। राजा ने कहा कि–मेरा जीवन मृत्यु से कैसे पार होगा ? उन्होने कहा, इस परमात्मा के रचाये हुए शरीर में पांच ज्ञानेनिद्रया मानी गयी हे इन ज्ञानेन्द्रियो का जो विषय हे जेसे नेत्रो का विषरू है दृष्टिपात करना उसका विषय रूप है और अग्नि उसका देवता माना गया है , परन्तु उसको संकीग्रता में न दृष्टिपात करते हुए उसे ? जब हम अग्नि स्वीकार कर लेंगे तो अग्नि होते ही हमारे नेत्र मृत्यु से पार हो जायेंगे । उन्होने कहा,जैसे वाणी है , वाणी मानो , अंतरिक्षम ब्रह्माः वृतम यह शब्द अंतरिक्ष से आता है । जब हम अपने को अन्तरिक्ष ही स्वीकार कर रहे है तो शब्द अन्तरिक्ष की आभा में परिणीत हो जाता है तो मृत्यु से पार हो जाते है। उन्होने कहा जैसे हमारे श्रोत्रो में शब्द आता है दिशाओ से भ्रमण करके आता है जब हम श्रोत्रो को दिशा स्वीकार कर लेंगे तो दिशाओ में एक एक परमाणु गमन करता है। एक एक परमाणु संघर्ष करता हरता है और वह जो संघर्ष करता है , परमाणुवाद जब दिशा बन जाती हे उसे जब दिशा स्वीकार कर लेते है तो हमारा जीवन अमृत बन गया और वह हम ब्राह्मण वृतम , देखो हम मृत्यु से पार हो गये । हे प्रभु! हम यह चाहते है कि आपकी वाणी रसोमय रहनी चाहिय, उसमे प्रत्येक प्रकार का रस होना चाहिये। उसका प्रतिनिधि जल है और जल में नाना प्रकार का स्वादन होता है। जब वह जल रूप बन जाता हे तो जहाँ भी जल जाता हे वहीं प्राण सता देता है। तो हे राजन ! जब तुम्हारा जीवन प्राण सता देने वाला बनेगा, वाणी तुम्हारी प्राण सता देने वाली बनेगी तो तुम मानो ब्रह्मेः देखो वाणी तुम्हारी प्राण सता देने वाली बनेगी तो तुम मानो ब्रह्मे देखो राष्ट्रम ब्रह्माः वेतम वही हमारी दक्षिणा है। प्रत्येक इन्द्रियों का जो दोष हे उसे तुम हमें प्रदान कर दो तो यही हमारी दक्षिणा है।

जब उन्होने कहा तो राजा रघु ने मौन होकर अपनी देवी से कहा कि अब क्या किया जाये, हम इन बुद्धिमानो को क्या उतर दे सकते है। उन्होने कहा, हे देव ! आपको दक्षिणा देनी है , परन्तु जो इनकी इच्छा हो वह प्रदान करो ' राजा रघु ने कहा , हम प्रभु ! मैने यह निश्चय किया है कि लगभग एक वर्ष में छः माह तक अपने जीवन को उतरायण में ले जाऊंगा और अपने राष्ट्र का पाजन भी करता रहूंगा। राजा रघु ने दक्षिणा में यह प्रदान कर कहा कि मै छः माह तक अपने जीवन को उतरायण बनाऊंगा । उतरायण का अभिप्रायः है कि जीवन को प्रकाश में ले जाऊंगां उतरायण जैसे सूर्य उदय होता है और वह प्रकाश देता चला जाता है। उर्ज्वा देता है ऐसे ही हमारा जो उतरायण है , वह ज्ञान है , वह कर्म है। कर्म के साथ में हमारा ज्ञान हो और ज्ञान के साथ में कर्म हो तो उसके साथ जब मेरा जीवन व्यतीत होगा में अपने जीवन को उतरायण में ले जाऊंगा। ऋषियो ने वह दक्षिणा स्वीकार कर ली, स्वीकार करते उन्होने कहा–धन्य है !

अब राजा रघु ने एक वाक्य कहा प्रभु मैने आपको दक्षिणा प्रदान कर दी परन्तु मुझे आशीष क्या देना चाहोगे तब ऋषियो ने कहा कि हमारा जो हृदय है वह राष्ट्र के लिए है । कयोकि हृदय में सर्वत्र देवता अपना नृत्य करते रहते है । क्योकि नेत्रो से प्रकाश आता है ।रूप आता है वह हृदय में रहता है और रसना में रस आता है वह भी हृदय में रहता है और श्रोत्रो से शब्द आता है वह भी हृदय में रहता है । और इसी प्रकार पृथ्वी से गन्ध आती है ' वह भी हृदय में है । वायु में प्रीती आती है ' वह भी हृदय में है । तो हृद ही तो एक विशाल यज्ञशाला है । इस यज्ञशाला को हम आपको समर्पित करना चाहते

है । मेरे पुत्रो जब यह वाक्य उन्होने उदगीत रूप में गाया तो राजा रघु मौन हो गया और उन्होने ऋषि–मुनियो के चरणो को स्पर्श किया उन्होने कहा धन्य है प्रभु (12 मार्च 1992,लाक्षा गृह बरनावा)

इसी प्रकार राजा ने अपने सर्वत्र द्रव्य को साकल्य बना करके अग्नि के मुखरबिन्दु में परिणीत कर दिया। परिणीत हो जाने के पश्चात याग सम्पन्न हो गया ।

इसी प्रकार राजा ने अपने सर्वत्र द्रव्य को साकल्य बना करके अग्नि के मुखारबिन्द में परिणीत कर दियां परिणीत हो जाने के पश्चात याग सम्पन्न हो गया।

गोत्र और वर्तेन्तु , दोनो शिष्य और गुरू की आभा में निहित रहते । गोत्र के हृदय में गो ब्रहेः ब्रहः मानो उन्होने कहा, प्रभु ! मै आपको दक्षिणा देना चाहता हू। उन्होने कहा– क्या दक्षिणा देना चाहते हो ? उन्होने कहा, प्रभु आपने मुझे महान बनाया है। आपने मुझे बुद्धिमान और विवेकी बनाया है। प्रभु ! मै आपको कुछ समर्पित करना चाहता हू। उन्होने आवेश में आ करके कहा जाओ मुझे 14 लाख मुदाय चाहिये। ब्रह्मचारी ने विचारा किया यह मुझे कहां प्राप्त हो सकती है क्योंकि आचार्य को तो देनी है। कौशम ब्रहः कृतो देवः वर्तेन्तु के चरणो को स्पर्श करते हुए उन्होने कहा प्रभु! मुझे आज्ञा दीजीये । वह भ्रमण करते हुए अयोध्या में पधारे। अयोध्या में राजा रघु और उनकी पत्नी ओनो के उनके चरणो को सपर्श किया और जब मिट्टी के पात्रो को लेकर उनका स्वागत करने लगे तो ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु ! मै यहाँ से गमन कर जाऊंगा। महाराजा रघु और उनकी पत्नी ने उनके चरणो को स्पर्श करके कहा , प्रभु ऐसा क्यो ? उन्होने कहा मुझे अपने पूज्यपाद गूरूदेव को दक्षिणा प्रदान करनी है और आपके स्वागत के मुझे यह प्रतीत हो रहा हे कि मेरे वचनो की यहाँ पूर्ति। नही हो सकेगी।

राजा रघु नेकहा , नही भगवन ! आप पधरिये। हम प्रयास करेंगे । वह विराजमान हो गये वह चिन्तन करने लगे । राजा ने रात्रि के काल में अपने राष्ट्रवेताओ को और सेना नायको को एकत्रित करके कहा, देखो धर्म संकट आ गया है। और संकट आ गया है ब्रह्मणे ब्रहे हे प्रभु ! एक ब्रह्मचारी के मेरे द्वार से यदि उसकी इच्छा पूर्ण नही हुई तो मेरे राष्ट्र को धिक्कार है, मानो उसकी पूर्ति होनी चाहियें उन्होने कहा–भगवन ! जो आप आज्ञा देंगे। उन्होने कहा ब्रह्मचारी के लिये चौदह लाख मुद्राये देनी है। यह सेना इसीलिये होती हे कि राष्ट्र की आवश्यकताओ की पूर्ति हो। उस समय राजवेताओ ने मानो राज वृतियो ने कहा– हे प्रभु ! किसके द्वार पर जाकर इतनी मुद्रा ला सकते है। उन्होने कहा, कुबेर के द्वार पर कुबेर के यहा के एक गुप्त वृतियो में रत्त रहने वाले प्राणी उरके राष्ट्र में रहते थे । वह वहां से गमन करते है और महाराजा कुबेर से जाकर के कहा कि तुम पर आक्रमण होने वाला है। राजा रघु ने योजक यन्त्र से ही निर्माण किया कि तुम्हारा द्रव्य ले जायेंगे अन्यथा तुम प्रदान कर दो । महाराजा कुबेर के हृदय में यह वार्ता समाहित हो गयीं उन्होने रथो में अपने वाहनो में स्वर्ण मुद्राए ले करके बेटा! वह गमन कर गये और उनहे वह आक्रमण करने से पूर्व ही वह मुद्राए प्राप्त हो गयी। और राजा बड़े प्रसन्न हुए और राजा कं प्रसन्न होने पर उन्हे ध्नन्यम ब्रहः राष्ट्र में धन्य होने लगा । जब मुद्राओ को गणना में लाने लगे तो चौदह लाख मुद्राओ से कुछ विशेष थी। अब ब्रह्मचारी ने कहा कि भगवन,भगवन मुझे तो चौदह लाख मुद्राए ही चाहिए। राजा ने कहा ऋषिवर ब्रह्मचारी यह जो द्रव्य रह गया है यह मै अपने राजकोष में समर्पित नही करूंगा । इसको राष्ट्र में नही ला सकूंगा । उन्होने कहा तो प्रभु मुझे इतनी मुद्राए ही दीजीए। जितनी मुझे अपने पूज्यपाद गरूदेव के चरणो में समर्पित करनी है। मै विशेष मुद्रा को अपना नही सकूंगा। राजा का और ब्रह्मचारी का दोनो का विचार–विनिमय होने लगा। परन्तु न तो राजा का और न ही ब्रह्मचारी स्वीकार करे । अन्नतः यह निर्णय हुआ कि चलो यह जो एक द्रव्य है,कुबेर को ही प्रदान कर दिया हाये।

उन्होने कुबेर को निमन्त्रित किया। कुबेर जब निमन्त्रण के अनुसार राजा रघु के यहाँ विराजे , तो राजा रघु ने प्रार्थना की कि – महाराज! आपका जो द्रव्य है , वह कहीं अधिक विशेष है। भगवन! इस द्रव्य को अपने राष्ट्र कोष में ले जाईये। महाराजा कुबेर ने कहा – प्रभु ! ऐसा नही होगा । जो मेरे द्रव्य से आ गया, वह तुम्हारा हे या ब्रह्मचारी का है। मेरा इसमे अब कोई अधिकार नही रहा। जब कुबेर ने यह कहा कि मेरा इस पर कोई अधिकार नही है, यह मैने प्रदान कर दिया तो इस पर दोनो कुबेर और राज रघु को विचारो में संघर्ष होने लगा । दोनो में से कोई उस धन को स्वीकार न करे। ब्रह्मचारी को कहा तो वह भी स्वीकार न करे।

उन्होने वशिश्ठ मुनि महाराज को निमन्त्रित किया। ऋषि पुरोहित रूप में आये तो उन्होने कहा–प्रभु यह द्रव्य है , इसका आप बंटवारा कीजीए। उन्होने कहा, आप कया चाहते हो ? राजा ने कहा यह द्रव्य है इसे कोई भी अपना नही रहा है। यह मेरे राजकोष में नही जाना चाहिये। ब्रह्मचारी कहता है कि जितना मुझे लेना है , उतना ही लेना है और कुबेर कहता है – जो मेरे द्वार से आ गया वह वहां नही जा सकता, तो अब क्या होना चाहिये ? वशिष्ठ मुनि महाराज ने माता अरून्धती से कहा देवी! यह जो एक धर्म संकट है , इसके लिये विचारा जाये। दोनो विचारने लगे। विचार कर उन्होने कहा– राजन ! जो तेरे राष्ट्र में गऊए है,उन गऊओ को जो कोष तुम्हारो राष्ट्र में होता है उस कोष में द्रव्य को प्रदान करो और इस द्रव्य से गऊओ की सेवा होनी चाहियें यह वाक्य रघु ने भी और कुबेर ने भी स्वीकार किया और ब्रह्मचारी हर्ष ध्वनि करने लगे। ब्रह्मचारी चौदह लाख मुद्रायें लेकर बेटा! वह गमन कर गये और वह अपने आचार्य के समीप पंहुचे।

मुनिवरो ! वर्तेन्तु ने कहा, हे ब्रह्मचारी यह कहां से तुम्हे प्राप्त हुआ। उन्होने कहां, हे प्रंभु मेंझे राजा रघु के यहा से यह प्राप्त हुई है। उन्होने सब संघर्ष को उदगार रूप में प्रकट कियां वर्तेन्तु ने यह कहा–ब्रह्मचारी! यह जो द्रव्य तुम मेरे लिए लाये हो यह महाराजा कुबेर को दो। यह तुम्हे ज्ञान हो , तेरे ऊपर आक्रमण होगा उससे त्रास होकर यह द्रव्य तुम्हे प्रदान किया होगा। उन्होने कहा नही पूज्यपाद यह तो प्रसन्नता से प्रदान किया है। उन्हाने कहा यदि वह प्रसन्नता से करते तो उनके गुप्तचर विभाग वालो ने यह कहा कि आक्रमण होने वाला है अन्यथा द्रव्य दे दो । यह द्रव्य मेरा नही है। इस द्रव्य को तुम पुनः से अग्नि के मुख में प्रदान कर दो। अब गुरू शिष्य दोनो का परस्पर अपने में एक विचार–विनिमय होने लगा कि प्रभु आपने ऐसा क्यो कहां उन्होने कहा हे ब्रह्मचारी! तुम्हे प्रतीत हे ऐसे द्रव्य से ऋषि मुनियो का विवके नष्ट हो जाता है। जब वर्तेन्तु ने यह कहा तो ब्रह्मचारी को बड़ा आश्चर्य प्रतीत हुआ। वर्तेन्तु ने यह कहा–हे ब्रह्मचारी ! जब कुबेर ने यह द्रव्य दिया तो उन्होने यही विचार कर दिया की राजा का आक्रमण होगा। भयभीत होकर यह द्रव्य प्रदान किया। मानो यह द्रव्य राष्ट्र का द्रव्य हे इस द्रव्य का अन्न , जब ऋषि मुनियो के हृदयो में प्रवेश करेगा या मुद्रित होकर जायेगा, तो उनका जो स्वर्णमयी,विवेकमयी,ज्ञानयुक्त जीवन है , वह इससे समाप्त हो जायेगा। कौत्स ने कहा प्रभु! वाक्य तो आपका यर्थाथ है , क्योंकि दर्शन और विवके तो यही कहता है। अब भगवन! किया कया जाए? उन्होने कहा, इस द्रव्य को सबके लिए अग्नि में समर्पित किया जाएं उन्हाने पुरोहित इत्यादियो को निमन्त्रित किया और साकल्य घृत एकत्रित करके वह अग्नि में मुखारबिन्दु में परिणीत कियां उस द्रव्य के द्वारा याग किया गया। याग करने के पश्चात , बेटा ! उसके विचार अग्नि ने भसम कर दिये और वेद मन्त्रो की जो शुद्ध पवित्र ध्वनि हुई उस ध्वनि से स्वाहा के ऊपर प्रत्येक धारा अग्नि के ऊपर विश्राम करके द्यौ लोक चला गया। तो द्रव्य का यह उपयोग हुआ। (09 नवम्बर 1988,लाजपत नगर नयी दिल्ली)

३. तृतीय अध्याय–राम के माता–पिता

महाराजा दशरथ

महाराज रघु ने वानप्रस्थ ले करके , अपने राष्ट्र का जो अनुभव था, उससे अपने पुत्र अज को शिक्षा दी। अज के पुत्र दशरथ हुए,दशरथ को उन्होने शिक्षा दी। आगे वह शिक्षा महाराजा वशिष्ठ भी देते चले आये। (01 अप्रैल 1964,सरोजनी नगर नयी दिल्ली)

राजा दशरथ के काल में , रघुकुल प्रणाली के कुछ न्यूनता आ गयी थी। रघु के पुत्र का नाम अज था। अज के कुछ त्रृटिया आयी। वह ऐश्वर्य में संलग्न हो गये।

दशरथ की तीन रानियां

अज के पुत्र का नाम दशरथ था। वह भी ऐश्वर्य में इतना आ गयाकि उनके द्वारा तीन पत्निया थी, उन्ही में संलैन रहते और उन्हे यह विचार न रहता हक कहां ते मेरे राष्ट्र की सीमा है। लंका के राजा रावण ने महाराजा रघु के साम्राज्य पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। राजा दशरथ का इस पृथ्वी पर सूक्ष्म का राज्य अयोध्या रह गया था, जहाँ रावण का राज्य नही था, इसलिए माता कौशल्या को भगवान राम को जन्म देने की आवश्यकता हुई, क्योंकि माता कौशल्या यह जानती थी कि मेरा पति तो ऐश्वर्य में आ गया है और राष्ट्र का उत्थान होना चाहिये। वशिष्ठ मुनि और अरून्धती भी यही चाहते थे, क्योंकि रावण का राज्य सुन्दर नही था, उसमे दुराचार की मात्रा अधिक थी और चरित्र नाम की कोई वस्तु नही थी।(09 नवम्बर 1968,आगरा)

परम्पराओ से हमारे यहा तीन संस्कार कराना अपराध मना गया है। भगवान राम ने स्वयं अपने में स्वीकार किया कि हमारी रघु वंश परम्परा है , राजा सगर से लेकर जो वंश चला आ रहा है। , इस वंश में आ करके महाराज अज के पुत्र जो राजा दशरथ थे, उन्होने पुत्र के मोह में तीन संस्कार कराये, और प्रमाद में परिणीत हो गये। जिसका परिणाम यह हुआ कि राजा रावण का राष्ट्र सर्वत्र पृथ्वी पर फैलता जा रहा था (09 नवम्बर 1973,खैतड़ी राजस्थान)

माता कौशल्या

माता कौशल्या की शिक्षा

माता कौशल्या मुनि के गुरू का नाम तत्व मुनि महाराज था। तत्व मुनि महाराज की आयु 284 वर्ष की थी, वह अखण्ड ब्रह्मचारी थे। एक समय शिक्षा अध्ययन करते करते जब कौशल्या दर्शनो का अध्ययन कर रही थी, तो उनके मन में एक विचार आया कि – हे गूरूदेव! मै गृहस्थ आश्रम में परिणीत नही होना चाहती। ऋषि ने कहा कि –पुत्री! जैसी तुम्हारी इच्छा परन्तु कौशल्या ने अधिक अध्ययन किया तो एक समय रात्रि में अपने गुरू के द्वार पर पंहुची और चरणो का छूकर बोली कि – हे प्रभु! मेरी इच्छा है कि मै अपने गर्भस्थल से एक ऊंचे और महान बालक को जन्म देना चाहती हूं। उस समय गुरू ने पुनः से आज्ञा दी कि–पुत्री ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो।

राजा दशरथ से संस्कार

कौशल्या का यह संकल्प कि वह एक ऐसे महान बालक को जन्म देगी जो संसार से आतातियो का नाश करके धर्म की पताका फहरायेगा। यह विचार ऋषि मुनियो में चर्चा का विषय बन गया और यह वार्ता महाराजा रावण को भी प्रतीत हो गयीं अतः रावण ने कौशल देश के राजा से कहा कि – अपनी पुत्री हमको अर्पित करो हम इससे संस्कार तो नही करांएगे। पर इस कन्या को बन्दी करके रखेंगे। कौशलेश ने अपनी पुत्री कौशल्या को रावण को दे दिया और रावण ने उस कन्या को, समुद्र के मध्य में एक टापू पर दुर्ग बनाकर यन्त्रो में ओत–प्रोत कर दिया।

राजा दशरथ को भी यह भेद पता चल गयां अतः जब वे रानी कैकेयी के साथ कुबेर को युद्ध में परास्त कर लौट रहे थे तो मार्ग में समुद्र के बीच बने दुर्ग में अपने वाहन से पंहुचे और वहा से उस यन्त्र को लाए जिसमे कौशल्या को बन्द किया हुआ था। इस प्रकार कौशल्या माता की रावण के बन्दीगृह से मुक्ति कहाई तथा कुछ समय के पश्चात कौशल्या का संस्कार राजा दशरथ के साथ हो गया और संस्कार होने के पश्चात वह गृह में प्रविष्ट हो गयीं रघु परमपरा के अनुसार वह राष्ट्र–गृह में आ पंहुची।

त्रेता के काल में राजा दशरथ के यहा जब देखो रघुकुल शांत होने लगा। जब राजा दशरथ के कोई सन्तान का जन्म नही हुआ, उन्होने सन्तान के लिए संस्कार भी करए, परन्तु उनसे सन्तान का कोई उर्पाजन नही हुआ। जब नही हुआ तो उन्होने ऋषि मुनियो की एक सभा में यह निर्णय हुआ कि पुत्रेष्टि याग होना चाहिए।

४. चतुर्थ अध्याय–पुत्रेष्टि याग

दशरथ की इच्छा

दशरथ की इच्छा जब राज दशरथ के कोई सन्तान का जन्म नही हुआ तो एक समय राजा अशरथ महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वार पर पंहुचें माता अरून्धजी और वशिष्ठ मुनि महाराज प्रातःकालीन याग करके अपने ब्रह्मचारियो के मध्य में उपदेश दे रहे थे। राजा उनके समीप पंहुचे तो ऋषि ने उनका स्वागत किया। वे विराजामन हो गये तो ऋषि ने कहा कि–कहो राजन ! कैसे आगमन हुआ है ? दशरथ ने कहा कि –प्रभु! अयोध्या राष्ट्र ऋषियो की अनुपम कृपा से ऊर्ध्वा में गमन करता रहा है। । जब महाराजा दिलिप के कोई सन्तान नही हुई तो ऋषि मुनियो ने ही उनका वृत किया और रघु का जन्म हुआ। इसी प्रकार , भगवन! अब पुनः से धर्म संकट आ गया है , इसका उद्धार कीजीये। महर्षि वशिष्ठ बोले कि– जाओ तुम 184 वर्ष के ब्रह्मचारी महर्षि श्रृंगी के द्वारा पुत्रेष्टि याग कराओ तो पुनः से तुम्हारे राष्ट्र की आभा का जन्म हो सकता है। (16 जुजाई 1962 मकनपुर,गाजियाबाद)

जब राजा दशरथ के यहाँ पवित्र यज्ञ कर्म हुआ उस समय तीनो पत्निया और राजा दशरथ लगभग एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हुए पृथ्वी पर उनका आसन रहा। जब यज्ञ का समय हुआ तो ब्रह्मा की आवश्यकता हुई । महर्षि वशिष्ठ से कहा कि –प्रभु ! यज्ञ का समय हो गया है , यज्ञ आरम्भ कराईये । तो ऋषि बोले– मै तो यज्ञ कर्म बराने का अधिकारी नही हे, जिस विषय को मै जानता नही, उस विषय का ले कर के मै यज्ञ कर्म करूं तो ये मेरे में सामर्थय नही। राजा ने कहा तो क्या तो क्या होना चाहिए प्रभु ? उन्होने कहा ''श्रृंगा ब्रह्मणे वात नः धर्मश्चरतिः ब्रह्मवर्या बासो नरोति ब्रह्माणि अप्यातम कदितम जाति वत गृति अस्ते। ऋषि ने कहा – हे राजन ! उस यज्ञ को कराने के अधिकारी तो महर्षि श्रृंगी है। उन्हे किन्ही गुणो से कजली वनो से लाईये,जहाँ उनके पिता की उनहे संयमी बनाने की धारणा रहती है। आप ऐसे महापुरूष को ओत–प्रोत कराकर सुन्दर यज्ञ कराईयें उस समय राजा दशरथ एवं ऋषियो आदियो के द्वारा भयंकर वनो से उस ऋषि आत्मा को लाया गया। कहा जाता है कि वह उस समय 184 वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचारी थे। (16 जुजाई 1966 पंजाबी बाग,नयी दिल्ली)

श्रृंगी ऋषि को बुलाकर याग कराना

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने भयंकर वन को गमन किया और भ्रमण करते वे कजली बनो में पंहुचे। उन्होने वहा श्रृंगी ऋषि को निमन्त्रण दिया। निमन्त्रण के कथानुसार अयोध्या में उनका आगमन हुआ। आगमन पर यज्ञशाला की रचना हुई , जहाँ महर्षि वायु मुनि महाराज और अंगिरस आदि सब विद्यमान हो थे। श्रृंगी जी ने याग का विधान किया और पुत्रेष्टि याग की रचना कीं नाना प्रकार की वनस्पतियो को ले करके उन्होने पुत्रेष्टि याग की रचना की। नाना प्राकर की वनस्पतियो को ले करके उन्होने पुत्रेष्टि याग का चरू बनायां उन्होने गो–दुग्ध और कुछ वृक्षो का रस ले करके एक प्रसाद का निर्माण कियां उन्होने एक याग का निर्माण किया,यागाम भूतम ब्रह्मे कृतमं जिस याग प्रारम्भ हुआतो कुछ समय तक याग चलता रहा, क्योंकि वे ब्रह्मवर्चोसी थे और ब्रह्मवर्चोसी ही याग का वर्णन कर सकता है अथवा उसको रचा सकता है। उन्होने नाना प्रकार की वनस्पतियो के द्वारा साकल्य का अथवा चरू का निर्माण किया और उसके द्वारा यह याग सम्पन्न हुआ। (16 जुलाई 1992,मकनपुर गाजियाबाद)

जब महाराजा दशरथ के यहा पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया था, उस समय मै लगभग 84 वर्ष तक वेद का अध्ययन कर चुका था। पुत्रेष्टि यज्ञ कराने का वही अधिकारी होता है , जो आयुर्वेद का महान पण्डित होता है और आयुर्वेद का पंडित की यज्ञ की सुगन्धित औषधियो को जानता है कि यज्ञ में कौन कौन सी औषधियो का पान कराने के यज्ञमान की नासिका, नेत्रो व उसकी रसना के अग्रभाग के कानै–कौन से रोग दूर होते है। यह सब आयुर्वेद का पंडित ही जानता है। यह कोई आसान विज्ञान नही है , जिसको हम दो ही दिवस में जान जाये, अपितु यह एक ऐसा विज्ञान हे जिस पर हमें बहुत अनुसन्धान करना होता है। (17 जुलाई 1970,बरनावा)

महाराजा दशरथ के यहा पुत्र नही था तो उन्हाने एक पुत्रेष्टि याग कराया था। मुझे यह याग स्मरण आ रहा है वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह प्रार्थना महर्षि श्रृंगी से की कि महाराज पुत्रो भवन्तम ब्रह्मः क्रतम देवाः, वेद में यह मन्त्र आये है कि औषधि होनी चाहिये, परन्तु यह गृह को प्रकाशमान हो जाना

चाहियें उस समय उन्होने अंगिरा से यह प्रार्थना की , कि महाराज आप इस वेदमन्त्र को जानते है इस प्रकार की औषधि लाओं कजली वनो से उस औषधि का लाया गया और उसे इसी प्रकार दखरल कियया गया और उसी प्रकार की समिधा एकत्रित की गई इसी प्रकार का साकल्य एकत्रित किया गया और एक–एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का देखो ब्रह्म का चिन्तन किया गया।

महाराजा दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि याग हुआ और गुडाकेशम नामक औषधियो को ला करके और सुधनकेतु और मरीचिका नामक औषधि का ले करके उसको खरल बनाया और उसको गो घृत और गो दुग्ध के द्वारा जो यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो रही है , साकल्य वाली अग्नि हे , समिधा वाली अग्नि है , जब उसमे अन्नाद भूतम देखो तन्दुलो के साथ जब तपाया जाता है तो वह औषधि बन जाती है जब वह माताओ को प्रदान की गयी तो उनके गर्भस्थल की अशुद्व हो गयी ग्रंन्थिया या उनके हो गया रूग्ण नही रह गया तो वह धारया बन गयी। (27 फरवरी 1990, लाक्षागृह,बरनावा)

सर्वप्रथम राजा दशरथ का ही निदान किया गया कि दशरथ अकृत के द्वार में क्यों था ? कयोंकि मानव के द्वार नौ होते है और उन द्वारो में देवता विराजमान होते है। उन देवताओ को शुद्व करने के लिए नौ ही प्रकार की औषधियां होती है , इन औषधियो को जानना होगा। हमारे एक नेत्र में जमदग्नि बैठा हुआं,एक में विश्वमित्र बैठा हुआ है , एक श्रोत्र के अगले भाग में भारद्वाज है, एक नासिका के अग्रभाग में अश्विनी कुमार है। हमें इनको शोधन करनेके लिए उन औषधियों का जानना होगा, क्योंकि औषधियों के नाम भी इन्ही के नाम से उच्चारण होते है।

पुत्रेष्टि याग में , आक की समिधा होती है , शमी की समिधा होती है , जटामासी होती हे , त्रिकाट होती है , चन्दन होता है , अनूभूत चन्दन भी होता है, उसमे एक सोमभूक नाम का वृक्ष होता है , जिसमे अनीकृत नाम की समिधा होती है। इस प्राकर इसमे लगभग दस प्रकार की समिधाये होती है। इन समिधाओ का निदान किया जाता है कि यज्ञशाला में उन समिधाओ को कैसे प्रतिष्ठित करना है। जैसे मेरे उस चैतन्य देव ने माता की योनि बनाई है ,उसी प्रकार की हमें यज्ञशाला बनानी है। इस प्रकार बहुत कुछ जानने की आव्श्यकता होती है। यह मुझे बड़ी संशय रहती है कि मै इस संसार को कैसे जानु क्योंकि आयुर्वेद का तो इतना बड़ा विज्ञान है , जिसमे मानव के जन्म जन्मानतर समाप्त हो जाते है। मुझे इसका निदान करने का सौभगय मिला। मैने तीनो रानियो को एक पंक्ति में एकत्रित कियां उस समय में यह नही जानता था कि पुत्रीवत कैसी होती है ? मैने आयुर्वेद के सिद्वान्त से कहा कि तुम मुझे अपनी योनियो का दिग्दर्शन कराओ, जब तक मै योनि को नही जानूंगा तब तक मै यज्ञशाला भी कैसे बनाऊंगा , यह एक लज्जा का विषय बन गया, परन्तु महर्षि वशिष्ठ इन विषयो को जानते थे। तत्पश्चात उन सब पुत्रियो ने मुझे अपना दिग्दर्शन कराया । आयुर्वेद के पण्डित का इसमे दोषारोपण नही होता। इस प्रकार मैने उनकी योनियो को जानां तीन ही प्रकार की यज्ञशालाये बनाई गयी, एक ही यज्ञशाला में तीन प्रकार का भाव बनाना पड़ा।

पुत्रेष्टि या के विषय पर मैने कई प्रकार की लेखनी लिखीं उस पोथी के एक एक भाग में लगभग एक एक हजार पृष्ठ थे । वास्तव में यह बहुत विशाल विज्ञान हे , आज मुझे वह लेख प्राप्त नही होते है। तो वाक्य क्या कि तीनो रानियो व राजा दशरथ का निदान किया गया।

उन्होने एक वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पृथ्वी का आसन बनाया। पीपल का पांचांग बनाया व अष्टांग का पान कराया। अधुधूत और सिंवानी,अन्चारी,निधिनाश्चा,आधूरोती,स्वर्ण,अनात इन सभी को बराबर मात्रा में ले कर सोमरस बना कर उसे ही चालीस दिवस तक पान करके माता का गर्भस्थल पवित्रत्व को प्राप्त होने लगता है। इस प्रकार एक–एक औषधि पर विचार करके निदान करते हुए पुत्रेष्टि याग किया गया। (17 जनवरी 1970, लाक्षागृह,बरनावा)

राजा दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि याग का आयोजन हुआं महर्षि वेती अंगिरा मुनि महाराज उस याग में विद्यमान हंए और महर्षि श्रृंगी ने उस याग के पूर्ण रूपेणता में परिणीत कराया। याग करने के पश्चात याग की भूमिका में आचार्यो ने यह उपदेश दिया– ब्रह्म व्रचो समीव ब्रह्म कृतस। हे राजनं तुम अपने को ब्रह्म में पिराया हुआ स्वीकार करो कयोंकि ब्रह्मचर्य का अभिप्रायः यही होता है , जो अपने को ब्रह्म में पिरो देता है। अंगिरा मुनि ने नाना प्रकार के साकल्यो को ले करके उसे श्रृंगी ऋषि की सहायता से उन्होने उस याग में औषधियो का एक पात बनाया और पात बना करके वह औषधियो का पात उन देवियो को प्रदान कर दिया। (30 जुजाई 1990, माछरा)

यज्ञ की दक्षिणा

राजा दशरथ के यहा जब पुत्रेष्टि याग हुआ तो उस याग में नाना देवता , बुद्धिमान महापुरूषो को आगमन हुआ। परन्तु जब याग की समाप्ति हुई , याग के समाप्त होने के पश्चात वहां दक्षिणा का प्रश्न आया। राजा ने अपनी शक्ति के अनंसार गऊ और मुद्राए प्रदान की। परन्तु माता कौशल्या के हृदय में यह आकांशा उत्पन हुई कि मै भी ब्राह्मण समाज को , बुद्धिमानो को गऊंए दक्षिणा में दूं । जब माता कौशल्या दक्षिणा देने के लिए तत्पर हुई , दक्षिणा देने लगी तो उस समय ऋषियो ने कहा – हे देवी ! हमें यह दक्षिण नही चाहिये, हम तुम से मुद्रा नही चाहिये। वह बोली तो महाराज ! क्या चाहते हो? उन्होने कहा–हम संकल्प चाहते है। हमें यह प्रतीत हो रहा है कि इस समय अराजकता आ गयी है। अराजकता को समाप्त करने के लिए महापुरूषो को चाहते है। इस संसार में एक महापुरूष होना चाहिए ऋषि मुनियो ने कहा–हे देवी! हम यह चाहते है तुम्हारे गर्भस्थल से ऐसी सन्तान का जन्म होना चाहिये जिसकी आभा चन्द्रमा की भांति शीतल और महान बन करके अमृत को बहाने वाली हो जो राष्ट्र का उत्थान करने वाली हो। आज महापुरूषो की रक्षा होनी चाहिये।

मता कौशल्या ने इन वाक्यो को श्रवण किया और दक्षिणा प्रदान कीं उनके विचारो की पूजा करने लगी और कहा कि–प्रभु ! जब मै विद्यालय में अध्ययन करती थी, उस समय भी मेरे पूजयपाद गुरुदेव मुझे यह प्रकट कराया करते थे, कि मानव को अपने जीवन में स्वतन्त्र रहना चाहिये। मानव को स्वतन्त्रता से महता प्राप्त होती है। इसीलिए मै महान बनने के लिए बहुत समय से अपने विचारो की कल्पना करती रही हूं । आज भी मै कल्पना कर रही हू। परन्तु आप मुझे प्रेरणा दे रहे है। में उस प्ररेणा का अवश्य पूजन करूंगी। यदि समय बलवती बनेगा ,मै अवश्य पूरा करुंगी।(18 नवम्बर 1986, भैंसी ग्राम)

हमारे यहाँ दक्षिणा का यह जो प्रसंग हे , यह मानवीयत्व में परमपरागतो से ही माना गया है। यह सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक मानो एक नृत्य होता चला आ रहा है और उसे कहते है–दक्षिणां दक्षिणा द्रव्य नही है। दक्षिणा में देना चाहिये जो यज्ञमान के हृदय में या बेटी के हृदय में किसी प्रकार की तृटियां या किसी प्रकार की न्यून्ता मानी गयी है , उसे वह आचार्य को प्रदान करते चले आये है। जब सब परिपूर्ण हो गया, याग सम्पन्न हो गया, चरित्र उनका निर्माणीत हो गया, उस समय सबने अपनी अपनी दक्षिणा के लिए ऋषि का आव्हान किया और ऋषि से सबसे देखो राजा ने द्रव्य युक्त पूर्णाहुति पूर्णता को प्राप्त कराई ।

जब कौशल्या जी का वृत हुआ तो कौशल्या माता ने कहा– हे प्रभु ! जो भी दक्षिणा आप मेरे स्वीकार करेंगे, मै वही प्रदान करूंगी, क्योंकि दक्षिणा का समन्वय हृदय से होता है ,वह श्रद्धा से और श्रद्धा का जो समनवय हे वह देखो हृदय गन्धनं ब्रहे वह अर्न्तहृदय से हे और मानव के अर्न्तहृदय का जब समन्वय हो जाता हे तो वहा से दक्षिणा का प्रादुर्भव होता है। हे प्रभु ! हृदय की श्रद्धा और दक्षिणा मानो इन दोनो का एक–दूसरे से परस्पर मिलान रहता है। तो हे देवी– अमृताम भू: उन्होने कहा– प्रभु ! जो भी आप दक्षिणा मेरे से स्वीकार चाहते है उदगीत गाइये, मुखारबिन्दु से उच्चारण कीजीये। महर्षि। अंगिरस गोत्रीय और महर्षि श्गी दोनो शान्त है , परन्तु देवी ने चरणो की वन्दना करते हुए कहा कि –प्रभु ! आप अपने मुखरबिन्द से उदगीत गाईये ?कि आप क्या चाहते है। दक्षिणा में उन्होने कहा–देवी ! यदि तुम दे सकती हो तो हम तुमसे स्वीकार भी कर पांयेंगे, जो तुम देना चाहती हो। उन्होने कहा–भगवन जो तुम मेरे आग्रह करागे, दूंगी आज्ञा दीजीए, प्रभु ! उन्होने कहा – हे पुत्री जिस भावना से हमनेचय को यज्ञशाला में परिपूर्ण कराया है औषधियो का पात बनाया और वह तुम्हे प्रदान किया है , तो हम यह चाहते है कि तुम्हारे गर्भ से ऐसे बाल्य का जन्म होना चाहिये, जिससे राष्ट्र और समाज महान से महान पवित्रता को प्राप्त हो जाये। उन्होने कहा–यह कैसे हो सकता है ? महर्षि श्रृगी ने कहा – हे पुत्री! एक समय में आचार्य के द्वारा अध्ययन करता था तो मुझे स्मरण नही आता था मानो मेरी बाल्यकाल में ही स्मरण शक्ति सूक्ष्म बन गयी तो मेरे आचार्यजन ने कुछ औषधियो का खरल बना कर उसका पात बना कर उसका लेपन करते हुए उन्होने कहा कि–तुम गूगल,ब्रीती,मृचिका इन तीन औषधियो के तीन वृक्षो के पत्रो को पान करो और उनको

पान करने से मानो तुम्हारे मस्तिष्क की जो ग्रन्थिया है उनका स्पष्टीकरण हो जायेगा। उन्होने कहा कि अन्नादि तुम्हारा पवित्र होना चाहिये। मुझे जब अन्न के लिए कहा गया तो मैने उसी अन्न को पान करना प्रारम्भ किया। उसको अग्नि में जल में तपा करके पान करना, मूल में यह कि उदर की पूर्ति करना । जब अध्ययन के क्षेत्र में चले गये तो यह जो बुद्धि की ग्रन्थिया थी उनका स्पष्टीकरण होने लगा और जीवन में परिणीत हो गया। ऋषि ने कहा – हे पुत्री हम यह चाहते है कि तुम्हारे गर्भ से ऐसे बालक का जन्म होना चाहिये, जो राष्ट्र और समाज को ऊंचा बनाये और संसार में रूढ़ि न रह पायें क्योंकि ईश्वर के नाम पर जो रूढ़िया होती है वह राष्ट्र और समाज का विनाश कर देती है। जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया तो कौशल्या नेकहा –प्रभु ! ऐसा ही होगा । (31 जुजाई 1990, माछरा)

ऋषि ने कहा कि –हे दिव्या! हम द्रव्य की दखिणा नही चाहते । हमें तो दक्षिणा दीजीये कि अब जो राष्ट्र है , यह रसातल को जा रहा है , यहाँ आलस्य और प्रमाद बलवती होता जा रहा है। रघुवंश और राजा रघु का जो राज्य था, महाराजा दिलीप की जो उतम प्रणाली थी उसमे सूक्ष्मवाद आ गया है । माता कौशल्या बोली– ऋषिवर !पूज्यपाद ! जो तुम कया चाहते हो वर्णन करो? उन्होने कहा – तुम्हारे गर्भ से एक ऐसे बाल्य का जन्म होना चाहिये जो त्यो और तपस्या में ही परिणीत होने वाला हों माता कौशल्या ने यह स्वीकार कर लिया और उन्होने कहा कि– भगवन ! मै तपस्या में ही अपने जीवन को व्यतीत करूंगी, मै राष्ट्र का अन्न नही ग्रहण करूंगी। यह उन्होने संकल्प किया मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि कैसे उन्होने अपने में संकल्प किया और अपने गृह में वास करने लगी।(14 अप्रैल 1986,दिल्ली)

माता कौशल्या ने स्वयं अन्न को एकत्रित करना प्रारम्भ किया। स्वय। कला–कौशल करना उन्होने प्रारम्भ किया और जो भी कला–कौशल से द्रव्य आता उसको वह ग्रहण करती रहती । जब वह ग्रहण करती रहती तो उनके मस्तिष्क में महान तरंगो का जन्म होने लगा। (31 जुजाई 1990,माछरा)

५. पंचम अध्याय–गर्भवती कौशल्या का तप

कौशल्या द्वारा राष्ट्रीय अन्न–त्याग

कौशल्या का यह नियम था कि वे स्वयं कला कौशल करती और उसके द्वारा जो द्रव्य आता, उसको स्वयं। ग्रहण करती। उसने संकल्प धारण किया था जो कि मै राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण करना चाहती, क्योंकि राष्ट्र में आकर ऊंचे बालक को उसी काल में जन्म दे सकती हूं । जब मेरे मन की प्रवृतियां पुरुषार्थी होंगी महान होंगी पवित्र होंगी और अन्न की जो प्रतिभा है, वह ऊंची होगी,महान होगी,पवित्र होगी, और अन्न की जो प्रतिभा है वह ऊंची होगी क्योंकि अन्न से मन की प्रतिभा उत्पन्न होती है। कुछ काल के पश्चात आदि ऋषियो के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया, पुत्रेष्टि यज्ञ के पश्चात माता कौशल्या के गर्भ की स्थापना हो गयी । गर्भ की स्थपना हो जाने के पश्चात माता कौशल्या का यही नियम था कि वे स्वयं कला–कौशल करती और उसके द्वारा जो द्रव्य आता उसक ग्रहण करके सन्तुष्ट रहती।

जब कौशल्या के हृदय में यह धारण हुई कि मै गर्भ से जिस शिशु को जन्म देना चाहूंगी, वह महान होना चाहिये तो माता कौशल्या सोमलता को भंयकर वनो से लाती और उसका पान करती। अणिमा से उसका खरल करती और जो प्रभान , तो आवुति है , उससे वह खरल करती रहती। खरल करते करते उसके हृदय में जो पुरातत नाम की नाड़ी है , जिसका समन्वय बाल्य के शिशु के हृदय से होता है उससे , उसमे उसकी तरंगे जा जा करके बालक की पुरातत नाम की नाड़ी से समन्वय हो करके , उस नाड़ी का समन्वय मस्तिष्क से होता हुआ, हृदय अगम्यता को प्राप्त होता रहा है। वह माता अपने में विचित्रता को अनुभव करती रही है। उसके हृदय में जो शिशु विद्यमान है , वह महान पवित्रत्व को प्राप्त होता रहा है। (17 फरवरी 1991,बरनावा)

गर्भवती कौशल्या शृंगी–आश्रम में

जब माता कौशल्या के गर्भस्थल में आत्मा विद्यमान थी, राम जैसा शिशु विद्यमान था तो माता कौशल्या ने अपने म नही मन में यह विचारा कि मुझे क्या करना है देखो , अंगिरस गोत्र में एक ऋषि थे, उनके द्वार पर पंहुची । उन्होने कहा कि–ऋषिवर ! आपने मेरा पुत्रेष्टि याग किया और मेरे गर्भस्थल में शिशु का प्रवेश हो गयाहै , अब मै कया करूं? उन्होने कहा कि–महर्षिश्रृगी से उनके द्वार पर जाकर यह प्रश्न करो। मै इस सनम्बन्ध में इतना नही जानता हूं उन्होने ऋषि के द्वार पर जाकर यह प्रश्न किया तो उन्होने कहा कि हे दिव्या ! तुम्हे अपने गर्भ के शिशु को कैसा बनाना है ? तुम त्याग तपस्या वाले अन्न को ग्रहण करो। त्याग–तपस्या वाला अन्न वह है कि जिन विचारो से तुम अन्न को भोजानलय में तपाओगे उन्ही विचारो का वह अन्नाद होगा। उसको तपा करके पान किया जाये, उस अन्नाद के रस है , उसी से माता के गर्भस्थल में पिण्ड का निर्माण होता है। (08 फरवरी 1991,बरनावा)

माता कौशल्या श्रृंगी से बोली , हे प्रभु ! मेरे गर्भ में तृतीय माह के अमृताम बाल्य वृतियों में प्राप्त हो गया है। हे प्रभु ! मुझे कोई उदगीत गाइये, कयोंकि मेरा मस्तिष्क तो उस आहार से पवित्र बन गया है। प्रभु ! मै जानना चाहती हूं कि अब में क्या करूं? उन्होने कहा–प्राणम कृतम यह तो तुम्हारा प्राण है इस प्राण को तुम व्यान में प्रवेश कर दो और व्यान को समान में प्रवेश कर दो और समान प्राण को उदान में परिणीत करते हुए तुम वहां चित के मण्डल का दर्शन करो और चित के मण्डलो दर्शन करते हुए वह जो तुम्हारे गर्भ स्थल मे जो शिशु पनप रहा है । चतुर्थ माह मे उस आत्मा से तुम वार्ता प्रगट कर सकती हो । उस समय ये युक्तिया देवी को परिणीत करा दी। माता कौशल्या ने कहा –प्रभु ! धन्य है। पन्द्रह दिवस ऋषि के आश्रम में उन्होने प्राण विद्या को जाना , क्योंकि हमारे यहाँ परम्परागतो से ही प्राण विद्या का बड़ा नृत्य होता रहा है। प्राण विद्या का अपने में नृत्य करते हुए, रूग्णो के रूप में , यदि रूग्णो को नष्ट करना है तो प्राण के द्वारा जैसे खेचरी मुद्रा पाणयाम किया जाता है , तो उससे जो शरीर में अग्नि का ताण्डव , अग्नि प्रचंड हो गयी है वह अग्नि उससे शमन हो जाती है , वह अग्नि को अपने में शमन कर लेता है और यदि शीतलता का प्रकोप आ गया है तो उस समय शीतलता को शान्त करने के लिए वह सूर्य प्राण का आश्रय लेता हे , सूर्य प्राणाणम करता है । देखो जब माता को अपने मे प्राणाणम करना हो और गर्भ की आत्मा से कुछ वार्ता प्रगट करनी हो तो बेटा! एकान्त स्थली में विद्यमान हो जाओ और वह मन और प्राण दोनो का आश्रय ले करके और प्राण का उदान में प्रवेश करते हुए और उदान को समान में समना को व्यान में प्रवेश करते हुए अपने गर्भ की आत्मा से वह मेरी प्यारी मां वार्ता प्रगट कर सकती है और वह महती है –कतमो सम्भवः प्रव्हे कतमोऽसि हे आत्मा तू कहां से आयी है हे आत्मा तू कौन है ? मानो वह अपनी आत्मा से आत्म परिचय लेती है। बेटा महात्मा श्रृंगी ने उन्हे यह वार्ता प्रकट करायी और प्रकट कराने के पश्चात उन्होने कहा–धन्य है , प्रभु ! पन्द्रह दिवस उन्होने यह अभयास किया। अन्नादि का पान करती थी, फल–पुष्पो के द्वारा ! पन्द्रह दिवस के पश्चात वह पुनः अपने गृह में प्रवेश हो गयी।

राष्ट्रीय अन्न त्याग से चिन्तित दशरथ

जब वह गृह में आ पंहुची तो राजा को कुछ समय में यह प्रतीत हुआ कि कौषलया जी अन्न को ग्रहण नही कर रही है। एक समय देखो राजा कौशल्या के कक्ष में पंहुचे और उन्होने कहा–हे देवी! मैने यह श्रवण किया हे कि तुम राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण नही कर रही हो? उन्होने कहा–हां प्रभु! मै ग्रहण नही कर रही हूं। उन्होने कहा – कयों नही कर रही हो? उन्होने कहा– राष्ट्र का जो अन्न होता है वह रजोगुण और तमोगुण से सना हुआ होता है , क्योंकि राष्ट्र का अन्न पवित्र नही होता, इसिलिए मैं इसको ग्रहण नही कर पाऊंगी । मेरे जो पूज्यपाद गुरुदेव , जिनको मैने दक्षिणा प्रदान की है , अन्नादि के लिए उन्होने मुझे वार्ता प्रकट कराई थी कि एक समय में वह अपने कुछ ब्रह्मचारियो सहित महाराजा अश्वपति के यहाँ पंहुचे और उन्होने महाराजा अश्वपति के राष्ट्र का अन्न ग्रहण नही किया था। तो प्रभु ! मेरी भी यह मनोकामना हे , मेरी प्रबल इच्छा है कि मै राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करना नही चाहती हूं। कि मेरे गर्भस्थल में जो शिशु पनप रहा है , देवता उसकी रक्षा कर रहे है। तो प्रभु ! देखो मेरी अन्तरात्मा यह कहती है कि प्रभु ! मै राष्ट्र के अन्न को ग्रहण न करूं। देखो राजा ने हे , देवी ! यह तो **अकृता** हो जायेगी,क्योंकि राजा के राष्ट्र के अन्न को न ग्रहण करना यह तो बड़ा अनर्थ है। उन्होने कहा–प्रभु ! मै तो संकल्पवादी हूं। और संकल्प ही बड़ पवित्र हातो है। क्योंकि तुम राजा जो हो वह केवल संकल्पमात्र से हो और प्रभु! संकल्प ही तुम्हे राष्ट्रीय प्रणाली में ऊर्ध्वा को गकन करा रहा है। इसलिए यह जो ब्रह्माण्ड है , यह सर्वत्र एक प्रकार का यह जगत संकल्प ब्रव्हेः यह संकल्प मात्र

कहलाता है हे पभु ! देखो जब यज्ञमान यज्ञशाला में उपस्थित होता है तो वह याग करने का अपने में संकल्प लेता है देवी से कहता है – हे देवी! आओ हम संकल्प करते है कि हम याज्ञिक बनेंगें तो मानो वह संकल्प करते है यागां प्रवहे, वह अपने दिवस की प्रणाली का उदघोष करते रहते है तो वे संकल्पमयी है। जब पति और पत्नी का संस्कार होता है , वह संकल्पमात्र से ही देखो जीवन की प्रणाली , जीवन की लीला प्रारम्भ होती है और वही जीवन की आभा शान्त हो जाती है। तो यह क्या है ? केवल एक संकल्प मात्र है भगवन! मेरा अमृतां संकल्प दृश्या ।

उन्होने कहा हं देवी! मै तुम्हारे व्याख्यान को व्याख्यान के द्वारा परास्त नही कर सकता। मानो मेरी तो एक प्रार्थना है कि तुम अन्न को ग्रहण करूंगी देवी ने कहा–प्रभु ! मैं अन्न को ग्रहण नही करूंगी , कयोंकि मैने आचार्यो को यज्ञ में दक्षिणा दी है और दक्षिणा का हृदय से ही समन्वय रहता है और हृदय से उदघोष होता है। राजा ने विचारा कि–यह तो अकृता है , वह देवी मेरे वाक्य को स्वीकार नही करेगी। मै आज महात्मा वशिष्ठ और माता अरून्धती के द्वार पर पंहूचूंगा और ये दोनो ही उसको अन्नादि ग्रहण करा सकते है।

दशरथ वशिष्ठ ऋषि आश्रम में

राजा ने सांय काल के समय में उनके आरम को प्रस्थान कियां और वह भ्रमण करते हुए महात्मा वशिष्ठ के आश्रम में पंहुचे । वशिष्ठ आश्रम में रात्रि छा गयी थी। माता अरूनधती और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की विवेचना हो रही थी, अपने में चर्चा कर रहे थे वे तपस्वियो की चर्च करते रहते थे। देखो पति पत्नी वे ही महान बनते है जो जब रात्रि छा जाती है ,चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओ से युक्त हो जाता है , या प्रतिपदा से लेकर के मध्यम ब्रव्हे तो सांय काल को जब पति पत्नी विद्यमान हो तो उनको महापुरूषो की चर्चा। करनी चहिये कि–अमुक तपस्वी कितना महान है और हम कितने निकृष्ट है। अपने में देखो अपने पन को भी विचाराना चाहियें ।

माता अरून्धती और वशिश्ठ महाराज देखो एकान्त स्थली में विराजमान हो गये और वह यह चर्चा करने लगे । अष्टम दिवस मानो देखो अष्टम ब्रव्हे उस समय देखो वह जो दिवस था, अष्टमी का था , अष्टमी के दिवस देखो वह जो दोनो चर्चा करने लगे ।

उन्होने कहा–प्रभु ! यह अर्धभाग वाला जो चन्द्रमा है , कैसा प्रकाश दे रहा है और इसके प्रकाश का तो कोई द्वितीय इसकी आभा प्रकट नही कर पाता! महात्मा वशिष्ठ मुनि बोल, हे अरून्धती! यह जो चन्द्रमा अपना प्रकाश दे रहा है ऐसे ऐसे हमारे सहस्रो चन्द्रमा मिलकर अपना प्रकाश देने लगे तो तपस्या के आगे वह प्रकाश न होने के तुल्य होता है। उन्होने कहा–तपां ब्रह्मणे देवम। माता अरून्धती बोली कि – प्रभु! तपसया किसे कहते है जिसकी आप चर्चा कर रहे है ? उसका मुझे आप निर्णय तो दीजीये। उन्होने कहा–**देवी!तपस्या उसे कहते है जो मन–कर्म–वचन में एक सा जिसका चलन रहता हे तो यह उसके व्यवहार का तप बन गयां उससे आगे चल कके आत्मा , परमात्मा और प्रकृति के स्वरूप को जानना और उसकी भिन्नता में जब रमण करता है तो उसको यह मानसिक चिनतन और उसकी भिन्नता में जब रमण करता हे तो उसका यह मानसिक चिनतन को जानना और उसकी भिन्नता में जब रमण करता है तो उसका यह मानसिक चिनतन , मानसिक तप हो गया हे और हे देवी ! जब आत्मा परमात्मा से वार्ता प्रकट करने लगता है तो यह आत्मीय तप बन गया है। देखो इसका नाम ही तप है** उन्होने कहा कि–प्रभु ! यह तपस्वी क्या कया कर सकता हे ? उन्होने कहा हे देवी ! जाम मानव व्यावहारिक तप में पवित्र होता है उसका यह लोक, यह जो पृथ्वी लोक है वह इसे विजय कर लेता है , जैसे व्यवहार में उसके मन–कर्म–वचन की प्रतिभा महान बन जाती है। वह मन से स्वच्छ रहता है और वह जो मन–कर्म– से स्वच्छ रहता है मन से स्वच्छ रहता है। और वह जो मन कर्म से स्वच्छ रहता है , मनं ब्रह्मे वह जो मनन करता हे इन विषयो को जो मनन करने वाला है , वह मानव ,बुद्धिमानो से वार्ता प्रकट करता रहता है , अपने को नम्र बना लेता हे और नम्र बना करके मानो यह जो पृथ्वी लोक है, वह इसको विजय कर लेता है , सारथी बन जाता है। और उसके पश्चात जो मन–वचन–कर्म से पवित्र बनने वाली जो धाराएं है , वे जब उदबुद्ध हो जाती है , तो वही संसार की आंतरिक प्रतिक्रियाओ को जानने लगता हे और जान करके , बेटा ! लोक लोकान्तरो की माला बना लेता है। और वह विज्ञानवेता बन जाता है वह एक एक कण–कण में विज्ञान को दृष्टिपात करने लगता है। तो यह उसका द्वितीय प्रकार का तपस्यं ब्रहं और जब आत्मा परमात्मा और प्रकृति को जानने लगता है तो वह कहता है कि मै कौन हूं ? वह कहता है –मै आत्मा हूं। वह कहता है – यह परमात्मा हे जो मेरा संचालन कर रहा है। और आगे कहता हे कि जिसकी गाड़ी के विद्यमान हो करके वह जो प्रकृति रूपी गाड़ी है जिसमे मै विद्यमान हूं और जो मेरा स्वामित्व कर रहा है , गति दे रहा है वह परमपिता परमात्मा है और मै प्रकृति के मंडल में विद्यमान हो करके लोक–लोकान्तरो की यात्रा कर रहा हूं।

मेरे प्यारे! छेखो , ऋषि वशिष्ठ न`कहा – हे देवी! यह नाना प्रकार की धाराओ में जो मानव रत्त होता है , वही तो अपने अनहद रूप मे विद्यमान होता है। वशिष्ठ मुनि ने कहा – एक समय देवी! मै ब्रह्मा जी के द्वार पर चला गया और ब्रह्मा जी तपस्या में परिणीत हो रहे थे। उनके मैने कहा–प्रभु ! यह आप कया कर रहे हो ? उन्होने कहा मै व्याकरण की पद्धति का निर्माण कर रहा हूं। जब ऋषि ने यह कहा कि मै व्याकरण की पद्धति को निर्धारित कर रहा हू, तो पूछा प्रभु! आप कैसे कर रहे है ? तो देखो एकान्त प्राण का जो सरगम होता है प्राणो का जो अपान मे सरगम होता है,अपान का जो समान मे सरगम होता है और समान का उदान में जो सरगम हो करके व्यान में प्रवेश कर जाता है तो वहां प्राणो की ध्वनिया को प्रारम्भ हो जाती है और उस ध्वनि को ऋषि मुनि परमपरागतो से ही अनहद के रूप मे परिणीत करते रहे है। मस्तिष्क में जो स्वर ध्वनि हो रही है ,जैसे लोक–लोकान्तरो की एक तरंग दूसरी तरंगो से तरंगित होती रहती है। एक दूसरी तरंगे जैसे चन्द्रमा की तरंगे है वे सूर्य से तरंगति हो जाती हे और सूर्य की जो अद्वितीय तरंगे है वे मानो अमृतां ब्रह्मणे वृताः वे और नाना लोक लांकान्तरो में प्रवेश कर जाती है और एक दूसरे की तरंगो में तरंगित हो करक यह ब्रह्माण्ड ध्वनि धारक बन जाता है, ध्वनित होने लगता है। इसी प्रकार जो महान साधक है , ऋषि जन है जो व्याकरण की पद्धति को जानना चाहते है स्वर ध्वनियो में उसमे सम्भवः प्रवाहः ब्रहे अपने में ध्वनित हो जाते है। और ध्वनित कैसे होते है? वह अनहद की स्वर ध्वनि को , सरगम को अपने में धारण करने लगते है। मेरे प्यारे, देखो वह इन्द्रियों का जो विषय है , वह मन मे समाति हो जाता है और मन का जो विषय है वह प्राण मे समाहित हो जाता है। प्राणो का जा विषय हे वह एकाग्र हो करके मन और प्राण का समन्वय हो करके वह जो एक ध्वनि आती है , उससे पूर्व एक ध्वनि होने लगती है , उसको अनहद कहते है उनके जो स्वर है उन्ही में से देखो सूत्रो को निकास होता है वही देखो नृत्य होता है। जैसे मुनिवरो ! सती ने महाराज शिव से कहा था कि महाराज अमृताम ताण्डव नृत्य होना चाहिये। शिव को कहते है कि वह तांडव नृत्य कर रहा है। बेटा ! परमपिता परमात्मा का जो एक विवाद है , परमात्मा की जो प्रतिभा है , वही तो एक स्वर संगम में प्रवेश हो करके वह नृत्य हो रहा है। वह ताण्डव नृत्य हो करके उन में से स्वर संगम को स्वर–ध्वनि को जो अपने में धारण करता है , उससे शब्दो के उदगीत गाने की पद्धतियो का निर्माण होने लगता है। वह निर्माणीत हो करके देखो वेद के प्रत्येक मन्त्र में जो उसके गर्भ में विद्यमान ह वह बाध्यता में परिणीत हो करके उसके गुणावादन गाने लगता है। बाल्यकाल में हम आचार्य कुलो में प्रवेश हो करके अध्ययन करते रहते थे।

महर्षि मुनि महाराज और माता अरूनधती की यह विचित्र चर्चाए हो रही थी। गृह वही पवित्र होता है , जहाँ पति और पत्नी विराजमान हो करके , बेटा वे रात्रि में प्रकृति को निहारते रहते है , परमात्मा के जगत को निहारते है , जैसे माता अरून्धती और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की चर्चाए मुझे स्मरण आती रहती है। उनका जो नृत्य था , उनकी जो बुद्धिमता थी, वह मुझे स्मरण आती रहती है। राजा दशरथ वहां शान्त मुद्रा में विद्यमान हो गये। परन्तु माता अरून्धती ने कहा–प्रभु! धन्य है। आपने तो मेरे जीवन में जो प्रकाश किया है वह महान प्रकाश है भगवन! महाराजा वशिष्ठ ने माता अरूनती से कहा –देवी ! इतना प्रसन्नीय जगत नही है , परमात्मा का तो यह अनन्तमयी जगत है ,मैं उसको अपने में माप नही सकूंगां माता अरून्धती बोली–प्रभु । आप माप तो नही सकते हैं।, परन्तु देखो आप ने जो मुझे वर्णन कराया है वह मेरे लिए बड़ा विचित्रत्व माना गया है। हे प्रभु में आपकी आभारी हूं। उन्होने कहा– नही परमात्मा का यह अनन्त जगत है इसमे कोई किसी का आभारी नही होता । उसमे कोई किसी की प्रसन्नता नही होती। परमात्मा का जो यह ज्ञान और विज्ञान है , वह सदैव नवीन बना रहता है। आज जिस परमाणु को त्रेताकाल में जाना गया है वह परमाणु कलयुग के काल में जाना जा सकता है और कलयुग में जाना जा सकता हे वह सतयुग में भी जाना जाता है , कयोंकि परमात्मा ाक यह जो ज्ञान और विज्ञान है वह सदैव नवीन बना रहता है, इसमे वृद्धपन नही आता। ऐसा उच्चारण कर माता अरून्धती मौन हो गयी।

माता अरूंधती ने कहा–प्रभु यह चन्द्रमा अपनी कैसी मालाओ से प्रकाश दे रहा है उन्होने कहा–देवी! यह जो चन्द्रमा है यह अमृत के बनाने वाला है और इस पृथ्वी को अमृत दे रहा है , उसी अमृत को पान करने वाला विचारता है कि कहां कहां उसका समन्वय है। यह बड़ा विचारणीय प्रश्न हे देवी! चन्द्रमा प्रकाश दे रहा है , समुद्रो से मिलान कर रहा है समुद्रो से जलो का उत्थान होता है , जल का अमृत बन रहा है यह अमृत कृषि में जा रहा है वही अमृत देखो हम जैसे शिशु जब माता के गर्भस्थल में होते है , वहां भी प्रवेश कर रहा है। हे देवी! यही चन्द्रमा चरू का अमृत बना करके स्वाहा और ध्वनि के रूप मे परिवर्तित हो करके मानव के द्वार पर आ जाए, जिससे उसको जन–जीवन चलता है। ऋषि कहता है –देवी ! तुमने यह जान लिया है देवी! आगतयम ब्रह्माः मानो यह जो चन्द्रमा है असका समन्वय रात्रि से रहता है। रात्रि का जो शृंगार है वह क्या है ? रात्रि का शृंगार अन्धकार है , उस अन्धकार को ही चन्द्रमा अपनी आभा में परिणीत कर देता है। और वही चन्द्रमा हे जिसका समन्वय अमृत से रहता है उसका जो समन्वय है वह कहां से सहायता लेता है ? वह सूर्य से लेता है और जो सूर्य महत्वदायक हे अपनी किरणो के द्वारा इसे तपायमान कर रहा है इसे प्रकाश दे रहा है। अपनी किरणो के द्वारा इसे तपायमान कर रहा है , इसे प्रकाश दे रहा है। परन्तु यह शीतल होने से शीतलता में परिणीत हो रहा है, वाह रे प्रभ ! तेरे जगत की महिमा कर व्याख्यान करने के लिए नही केवल में उदगीत गाने के लिए आया हूं। प्रभु तू तो अन्नत है तेरी जो रचना हे वह विचित्रतम ब्रह्मः बड़ी कहान है। देखो ऋषि ने इस प्रकार कर देवी से कहा–हे देवी !तुम जान गयी हो अमृताम चन्द्रमा का समन्वय सूर्य से है और सूर्य का समन्वय अदीती से है और अदीती का समन्वय आदिती से है और आदितय का जो सन्म्बन्ध है वह अदितियो से प्राप्त होता रहता है ,जिसको महतत्व कहते है। हे देवी! यह कैसा विचित्र तप है यह अदिती भी नही कहा जा सकता,अदीती के मानो महतत्व के रूपाम ब्रह्मेः और अदिती का जो रूप रहता है , वह गनधर्वो में रहता है और गन्धर्व जो है वह सौरमण्डल का नेतृत्व करने वाला है। बेटा ! सौर मण्डलो में कितनी प्रतिभा मानी गयी है , वही प्रतिभा तो एक महानता में रमण करा रही है। । विचार आता रहता है बेटा! ऋषि ने नाना प्रकार की ग्रन्थियो का स्पष्टीकरण कर दिया और स्पष्टीकरण करते हुए अपने में अपनेपन का आहवान करते हुए ऋषि ने वेद मन्त्रो का उदगीत गाते हुए कहा–हे देवी!देखो एक दूसरे से सहायता ले करके एक दूसरे में सूत्रित यह जगत होता रहता है।

पति और पत्नी का विचार–विनिमय होते हुए कहा कि–यह जो विज्ञान हे हे प्रभु ! यह विज्ञान कहां सार्थकता में समाहित होता है उन्होने कहा यह जो विज्ञान है , यह उन तत्वो में समाहित हो रहा है। मानो यह विज्ञान और वहा से ही उसकी अपलब्धि होती है और उपलब्धि हो करके परम–तत्वो में उपलब्धि होती है। मानो वह जो प्रसारण , गति,ध्रुवा,ऊर्ध्वा और देखो आंकुचन इन प्रतिभाओ में यळ विज्ञान समाहित रहता है। इनमे ही समाहित रहता है। इनमे ही उद्बुध हो जाता है। लोक लोकान्तरो का प्राण जो हे , वह माला बन करके सूत्र बरन करके उसकी माला बना देता है और उन मालाओ में सूत्रित हो जाता है। देखो देवता बन जाता है , वह महानता को प्राप्त हो जाता है।

महाराजा दशराथ को देखकर उन्होने कहां–हे राजन ! तुम्हारा आगमन इस स्थली पर कैसे हुआ है ? उन्होने कहा–प्रभु ! मै अमृतम ब्रव्हे मै सायं ही आ गया था परन्तु तुम्हारे विचारो में इतना मग्न हो गया कि मुझे यह प्रतीत नही रहा कि ऋषि से मै अपने देव से मिलने के लिए आया हूं। भगवन मै आपकी वाटिका में शान्त हो करके इतने समय माता और पिता के विचारो में ही मग्न हो गया। (31 जुलाई 1990,माछरा)

वशिष्ठ ने राजा से कहा–कहो भगवन ! कैसे आगमन हुआ? उन्होने कहा–प्रभु मै इस समय बड़ा आपातकाल में हूं। वशिष्ठ बोले कि – क्या आपात काल है ? उन्होने कहा कि –माता ब्रह्मणे वृतम देखो माता अरून्धती और आप दोनो को मै चाहता हू कि राष्ट्र–गृह में जा करके कौशल्या जी को शिक्षा दो, क्योंकि कौशल्या जी राष्ट्र का अन्न ग्रहण नही कर रही है ,वे क्षुधा से पीड़ीत रहती है अथवा नही, इसको मै नही जान पाया। उन्होने स्वीकार किया और अपनी क्रियाओ से निवृत हो करके उनके वाहन में विद्यमान हो करके गमन किया । भ्रमण करके वे राष्ट्र गृह अयाध्या में आ पंहुचे । पर्दापण हुआ तो अयोध्या में आनन्दवत छा गया।

वशिष्ठ और अरून्धती का कौशल्या से आग्रह

ब्रह्मवेता का राष्ट्र में आगमन होना एक सौभाग्य था, राष्ट्रगृह में आना और भी सौभाग्य था । वे कौशल्या जी के समीप पंहुचे। माता कौशल्या जी ने उन्हे तीन आसन प्रदान किये–एक राजा को एक माता को और एक पितर को । जब वे आसन पर विद्यमान हो गये,तो उन्होने बारी–बारी चरणो को स्पर्श किया और कहा कि–भगवन ! आज कैसे मेरा सौभाग्य जागरूक हो गया है ! मैं कितनी सौभाग्य शालिनी हूं! हे भगवन ! आप उदगीत गाइये, कैसे आगमन हुआ है , बिना सूचना के , बिना कोई कारण के , महर्षि वशिष्ठ बोले–देवी! तुम शान्तं ब्रव्हे कृता वह शान्त विद्यमान हो गयीं महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि – हे दिव्या! हे पुत्री ! हम तुमसे कुद प्रश्न करना चाहते है। कौशल्या जी ने कहा – भगवन् जो मझे आज्ञा दोगे, उसको में सादर अपने में धारण करूंगी। उन्होने कहा कि हे दिव्या!हमने यह श्रवण किया है कि तुम राष्ट्र का अन्न ग्रहण नही कर रही हो? उन्होने कहा–प्रभु ! मै नही कर पा रही हू। उन्होने कहा –क्यो? उन्होने कहा–इसलिये कि मैं अपने गर्भस्थल से ऐसे महापुरूष सन्तान को जन्म देना चाहती हूं जिससे वह त्याग और तपस्या में अपने जीवन को व्यतीत करें मेरी यह कामना है उसी कामना में मै सदैव तत्पर रहती हूं। जब उन्होने ऐसा कहा–हे ब्रह्मणे ब्रह! हे पुत्री! हमारी इच्छा यह कि तुम राष्ट्र का अन्न ग्रहण करो। उन्होने कहा–प्रभु ! मै राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नही करूंगी, यह मेरा संकल्प हो गया है और यह जो परमात्मा जगत है यह संकल्पो में ही निहित रहता है। यदि परमात्मा को यह संकल्प है जब परमात्मा ने तप किया था तपस्या मे बहुधा ब्रह्म एको बहुधा की इच्छा बनी तो यह ब्रह्माण्ड नाना प्रकार के लोक लोकान्तरो में परिणीत हो गया। हे प्रभु ! यह प्रभु का संकल्प है जितनी आयु उनहे प्रदान की है, वे उतनी आयु में रहेंगे, उतने समय तक उनका पिण्ड बना रहेगा । चाहे प्राण सता चली जाये, प्राण छिन्न–भिन्न हो जाये, प्रभु संकल्पोमयी यह संसार है और मै भी अपने संकल्प को नष्ट करूंगी।

ऋषि ने जब यह श्रवण किया तो वे निरूतर हो गये, माता अरूनधती ने कहा – हे दिव्या! हे पुत्री! हमारी इच्छा ऐसी है कि राष्ट्र का अन्न ग्रहण करो कयोंकि राष्ट्र का अन्न ग्रहण करना तुम्हारे लिए बहुत अनिवार्य है। उन्होने कहा–मातेश्वरी ! क्यो अनिवार्य है ? उन्होने कहा–तुम राष्ट्र का अन्न इसलिए ग्रहण करो कि ब्रह्मे वर्चस प्रवे राजकुमार का जन्म होना चाहिये। उन्होने कहा कि –ममत्वाम ब्रह्मः माता की यह इच्छा नही है , तपस्य ब्रह्मणं वाचन्मः कृति लोकाम जो इस प्रकार की संतान को जन्म दे। मेरी यह कामना हे मेरी इच्छा है कि मै त्याग और तपस्या से पुत्र को जन्म देना चाहती हूं। हे मातेश्वरी! राष्ट्रीय अन्न से यदि यह विकृत हो जायेगा तो यह छिन्न–भिन्न हो जायेगा। । संकल्पो में ही मानो समाप्त हो जायेगा।

इस पर माता अरूंधती मौन हो गयी । पुनः वशिष्ठ बोले कि – हे पुत्री ! राष्ट्रीय अन्न में कोई दोषारोपण नही होता तो उन्होने कहा–मै स्वयं कला–कौशल कर लेती हूं, और उसके बदले जो अन्न आता हे उससे अपने उदर की पूर्ति कर लेती हूं हे प्रभु आप तो जानते है , क्योंकि आप ब्रह्मवेता हो और ब्रह्मवेताओ की बुद्धि बड़ी प्रखर होती है और बड़ी ऊंची उड़ान उड़ती रहती है। इस उड़ान के साथ यह स्वीकार करना तुम्हारे लिए अनिवार्य हो जायेगा कि प्रत्येक मानव एक संकल्प है। राजा भी एक संकल्प मात्र है, प्रजा संकल्प मात्र है ,इसी प्रकार माता भी संकल्प मात्र है, पितर भी संकल्प है यह सूर्य भी एक प्रकार का संकल्प है अरून्धती मण्डल भी एक प्रकार का संकल्प है , ध्रुव मण्डल भी संकल्प है। हे भगवन! हे मातेश्वरी ! हे पितर! हे आचार्य! हे ब्रह्मवेता ! तुम जानते हो कि यह सर्वत्र जगत केवल संकल्प मात्र कहलाता है। (14 अप्रैल 1989,नयी दिल्ली)

कौशल्या–संकल्प–निष्ठा

उन्होने कहा–प्रभु ! मै राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नही करूंगी। उन्होने कहा–क्यों नही करोगी ? हे प्रभु ! जब यहा पुत्रेष्टि.याग हुआ था तो महर्षि शृंगी ने पुत्रेष्टि याग कराया ˙ जब याग कराया तो उस समय उन्हे दक्षिणा दीं दक्षिणा में ऋषि ने क्या इच्छा प्रकट की ? यह मै तुम्हे उच्चारण किये देती हूं। उन्होने जब या समाप्त हो गया , यज्ञ के समापन होने के पश्चात मेरा इच्छा संकल्प जागा कि मै आचार्य को गुरू को कोई दक्षिणा प्रदान करूं , तो जब मै दक्षिणा प्रदान करने लगी तो आचार्य कहने लगे–हे पुत्री! मै चाहता क्या हूं ? मैने कहा–क्या चाहते है भगवन ? जो आप इच्छा करेंगे मै वही प्रदान करूगी। उन्होने कहा–मै संसार का द्रव्य नही चाहता, वैभव नही चाहता। मै केवल दक्षिणा यह चाहता हू कि यह जो समाज है यह जो राष्ट्र आधुनिक चल रहा है , त्रेता का यह काल है , जहाँ आतातयी रावण का आतंक दाया हुआ है। क्योंकि रावण के राष्ट्र मे सूर्य अस्त नही होता हे न उदय होता है। मै यह

चाहता हूं। कि ऐसे आततायी रावण के राष्ट्र को जो कर्तव्यवादी बना दे। मै ऐसी सन्तान को चाहता हूं। उस समय मंगल बृहि मैने यह दक्षिणा प्रदान कर दी और कहा–ऐसा ही होगा तो यह विचारा गया कि यह तो अन्नादि भूतम ब्रह्मेः यह तो राष्ट्रीय अन्न है। यह तो दूषित होता है। मैने स्वयं कला कौशल करके अन्न को ग्रहण कियाहै। उस अन्नादि को मै पान करती हूं । पान करने के पश्चात देखो उस अन्न के द्वारा ही में अपनी जीवीका पूरी करती हॅ। मेरा यह संकल्प है। मै चाहती हू, मेरे गर्भ से ऐसी सन्तान का , ऐसी भव्य दिव्य आत्मा का जन्म हो जो इस ससार को महान बना सके और राष्ट्रीयता में धारण कर सके।

उस समय माता कौशल्या ने जब ऐसा कहा तो वशिष्ठ और अरून्धती ने दोनो ने कहा – नही पुत्री ! तुम अन्न ता ग्रहण करने ही लगो । उनहोने कहा–प्रभु! टापको प्रतीत है कि संकल्प में संसार हे जब मानव का संकल्प समाप्त हो जाता है तो उसका प्राण चला जाता है। मैने जो संकल्प किया है , वह संकल्प मानो मेरा है अकृति बवृताः–मेरी प्रतिभा नष्ट नही होनी चाहियें में अप्रतिभावान बनना नही चाहती हूं। उस ब्रह्मवेता के समीप मैने एक संकल्प किया है। प्रभु ! में इसको नष्ट नही कर सकती, क्योंकि यह जो प्रभु का जितना भी जगत है यह सब संकल्पमात्र से है। सूर्य उदय होता है सांयकाल को अस्तांचल को चला जाता है ,रात्रि आ जाती है ? दिवस आ जाता हे –यह प्रभु का कैसा संकल्प है ! सूर्य के आंगन में सूर्य के अर्न्तगत , सूर्य की ये नाना पृथ्वीयां परिक्रमा कर रही है ! भगवन अरबो वर्षो से परिक्रमा हो रही है , परन्तु कैसी भव्य परिक्रमा है यहॉं यह जगत तो संकल्पमयी माना गया है। मानो देखो ! तीस लाख पुथ्वीयां है तो प्रभु एक सत्र में बन्ध करके सूर्य की परिक्रमा कर रही है और सूर्य से नाना प्रकार की रश्मिया आती है वे रश्मियां आ करके नाना पृथ्वियो को तपायमान कर रही है। इसी प्रकार चन्द्रमा आता है वह सोम दे रहा हे कृषि उतम बन रही है सोम में पदार्थ का आव्हान हो रहा है। वहां नाना प्राकर आभा में कोमल–लताओ की उत्पति हो रही है।

कौशल्या कहती है हे प्रभु ! सर्वत्र ब्रह्माण्ड में मुझे प्रभु का संकल्प मात्र दृष्टिपात आता है। जिस प्रकार हे प्रभु ! आपको तो यह प्रतीत है कि माता के गर्भसथल में जब बाल्य की स्थापना होती है , यह माता पिता का संकल्प मात्र ही तो है। परन्तु जो उस शरीर में आत्मा है उसको न माता जानती है न पितर जानते है उसको कोई नही जानता , न आचार्य बानता है किस प्राणी की आत्मा स्थित है। परन्तु यह माता–पिता का संकल्प मात्र ही तो है परन्तु जो उस शरीर में आत्मा हे उसको न माता जानती है , न पितर जानते है उनको कोई नही जानता , न आचार्य जानता हे किस प्राणी की आत्मा स्थित है । परन्तु यह माता–पिता का संकल्प मात्र हे ं यह उसी का पुत्र कहलाता हे वह माता का पुत्र है पिता का पुत्र बना हुआं तो प्रभु ! यह माता–पिता का संकल्प मात्र ही तो कार्य कर रहा है , इस संसार में । जो आध्यात्मिक दृष्टि से गम्भीरता से दृष्टिपात करोगे तो न तो कोई किसी का पुत्र है न पुत्री है आत्मा किसी की पुत्र नही होती । शरीर मानो जड़ वस्तु है । वह किसी को पुत्र–पुत्री बना नही बना सकता है । जब चेतना चली जाती है तो माता–पिता भी उसे स्वाहा कह कर अग्नि में प्रदीप्त कर देता है । तो क्या प्रभु! यह संकल्प मात्र जगत नही है ? आप मेरे संकल्प को नष्ट क्यो करा रहे है? मैने एक ऋषि के समीप संकल्प किया है ,प्रभु!

संकल्प के ऊपर कौशल्या जी विचार–विनिमय करने लगी। उन्होने कहा–हे प्रभु ! ये नाना पृथ्वीयां नाना सूर्य परिक्रमा कर रहे है लगभग 1000 सूर्य है जो बृहस्पति की ही परिक्रमा कर रहे है । कैसा विचित्र यह प्रभु का संकल्प हे ! आध्यात्मिक वेताओ ने तो यहॉं तक कहा हे कि असंख्य पदम सूर्य एक ही आकाश गंगा में संकल्प मात्र से गति कर रहे है । मेरे प्यारे ! मेरे प्यारे ! कितने सूर्य , कितनी पृथ्वीयां होंगी, कितने बुध मण्डल होंगे, कितने शुक्र होंगे ? उनको कोई गणना में ला सकता है? यह असम्भव हो जाता है ं ये ता ऋषियो को अनुभव में प्राप्त होते है । समाधि लगा–लगा करके ऋषियो ने अन्तरिक्ष को दृष्टिपात किया है । पृथ्वी के गर्भ में पंहुच गये हे । पृथ्वी के गर्भ में जो अग्नि प्रचण्ड हो रही है , वह अग्नि ऐसी गति कर रही है , जैसे मानो देखो , भयंकर अग्नि जल को तपा रही है , वही धातुओ को तपा रही है , कहीं खनिजो को निर्माण हो करके,खाद्य पदार्थो का निर्माण हो रहा है । यह कैसा प्रभु का जगत है! यह कैसा संकल्प हे ! मै पितर इसलिए हूं।क्योंकि मै पितर बनना चाहती हू। मेरी कामना जागी है कि मै पितर बनू और पितर उसी काल में बन सकती हूं, जब मै वास्तव में पुत्र का निर्माण अच्छी प्रकार कर सकूं।

पुनः उन्होने कहा कि–पुत्री हमारा एक ही अंतिम वाक है कि तुम अन्न ग्रहण करने लगो। जैसे ही उन्होने यह कहा तो कौशल्या ने पुनः अन्न ग्रहण करने लगो। जैसे ही उन्होने यह कहा तो कौशल्या ने पुनः कहा–प्रभु! जैसे पभु के संकल्प समाप्त होने पर प्रलय काल आ जाता है । ये एक दूसरे में लय हो जाते है और यह कैसे लय होते है ? मानो यह जितना भी जगत आपको दृष्टिपात आ रहा है चार प्रकार की सुष्टि कहलाती है –एक सृष्टि का नाम स्थावर कहलाता है , द्वितीय अण्उज है , तृतीय उदभिज है और चतुर्थ जंगम कहलाती है यह चार प्रकार से सृष्टि की उत्पति होती है । चार प्रकार से प्राणियो की उत्पति होती है , चाहे यह पृथ्वी मण्डल का हो चाहे सूर्य मण्डल में क्यों न हो, चाहे चन्द्र मण्डल मे प्राणी गति कर रहे हों चाहे मंगल में गति कर रहा हो । जिस भी लोक में तुम दृष्टिपात करोगे,स्थावर जो पृथ्वी में जड़वत रहती है। ं द्वितीय अण्डज कहलाती है , अण्डज से नाना योनियां उत्पन्न रहती है । और तृतीय मानो उदभिज जो जल के और अग्नि के संयोग से उत्पन्न होती है । एक जंगम है जिसमे मानव भी एक आता है और भी नाना जातियों का निर्माण होता रहता है । परिणाम क्या? ये चार प्रकार की सृष्टि है प्रभु कीं सबसे प्रथम ये चारो प्रकार की सृष्टि पृथ्वी में लय हो जाती है चेतना सब इस पृथ्वी मे लय हो जाती है । और यह जो पृथ्वी हे यह जल ओत–प्रोत हो जाती है ,जल मे यह समाहित हो जाती है पृथ्वी का अस्तित्व समाप्त हो जाता है यह जो जल है यह अग्नि मे ओत–प्रोत हो जाता है अग्नि में यह स्थिर हो जाता है , अग्नि इसे अपने में धारण कर लेती है । जब यह अग्नि धारण कर लेती है तो अग्नि वायु में ओत–प्रोत हो जाती है। जहॉं अग्नि होती है , वहा वायु होती है और जहॉं वायु नही होती वहां अग्नि भी नही होती, तो यह अग्नि वायु में ओत–प्रोत हो जाती है । वायु को प्राणेश्वर कहते है अग्नि के सहित। जैसे मानव के शरीर में प्राण कार्य कर रहा हैं प्राण के साथ में देखो वायु विद्यमान रहती है , अग्नि के तत्व में अग्नि की तरंगे विद्यमान रहती है , जब यह प्राणेश्वर प्राण कहलाता है । यह वायु अनतरिक्ष की आभा में ओत–प्रोत आकाश में ओत–प्रोत रहती है , कही इसे स्थली प्राप्त होती है तो यह आकाश है आकाश में बेटा! इसका अपना तत्व परमाणु नहीं होता, क्योंकि ये तीन प्रकार के परमाणु होते है और पंच–तन्मात्राए कहलाती है ।

कौशल्या जी अपने वाक्य प्रकट कर रही है । उन्होने कहा–प्रभु यह जो अनतरिक्ष हे यह महतत्व में ओत–प्रोत हो जाता है वह प्राणमयी पिण्डाकार जगत कहलाता है ।उस काल में महतत्व प्रभु के गर्भ में विद्यमान रहता है। जिस प्रकार माता के गर्भस्थल में पुत्र होते हैं तो माता के ही गर्भस्थल में ही वह निर्मित हो रहा है । और उसकी स्थली अब्रहा शान्त और शून्य रहती है । इसी प्रकार , मुनिवरो ! यह जो जगत एक दूसरे में लय हो रहा है , लय होता हुआ एक दूसरे में दृष्टिपात आ रहा है ं यह बेटा ! कैसा सूत्र है ? एक ही सूत्र में यह ब्राह्माण्ड लय हो गया। एक ही ब्रह्माण्ड में वह अवस्थित हो गया। जब यह उपलब्ध होता है तो सबसे प्रथम जो महतत्व पिण्डाकार है, वह विभक्त होता है और विभक्त हो करके उसमे से अन्नत असंख्य परमाणु जो गणना में नही आते, वे परमाणु अन्तरिक्ष में गति करने लगते है । जब अन्तरिक्ष में गति आयी उससे वायु के परमाणुओ में विशेष गति आयी, जब वायु परमाणुओ में गति आयी, प्राणेश्वर में विशेषता की, तो मुनिवरो! अग्नि के परमाणुओ की उपलब्धि हो गयीं जिसमे एक आभा उत्पन्न हो गयी। उसकी आभा जब उत्पन्न हो गयी। जल की आभा से जल के परमाणुओ में गति आयीं जल के परमाणुओ से पृथ्वी के परमाणुओ में गति आयी और पृथ्वी के परमाणुओ में गति आ करके पुनः से यह संसार उसी प्रकार रच गया।

कौशल्या ने कहा–यह संसार क्या है प्रभु! यह मुझे प्रभु का संकल्प दृष्टिपात आता है । जब संकल्प समाप्त होता है तो अंधकार आ जाता है, उसको ब्रह्म–रात्रि कहते है और जब दिवस आता है सृष्टि रचना को दिवस कहते है वह ब्रह्म–दिवस कहलाता है तो हे प्रभु ये जो दिवस और रात्रि है मेरे उस प्यारे प्रभु संकल्प है , जिस संकल्प से सर्व–जगत ओत–प्रोत है जैसे पति पत्नी को दोनो का संस्कार होता है वह संस्कार क्या है मुनिवरो वह केवल एक एंकल्प कात्र है वह उन्हे एक दूसरे मे ओत–प्रोत कर देता है और वे पितर बनते है । ओत–प्रोत जब तक नही होते तब तक पितर भी नही बनते।

माता कौशल्या ने कहा–हे ऋषिवर!मै अपने संकल्प को समाप्त नही करूंगी। हां एक कारण से कर सकती हूं। यदि प्रभु आप दोनो माता अरून्धती और आप विद्यमान है अपने संकल्प को पति–पत्नी पन को समापत कर दो तो प्रभु ! मै समाप्त कर सकती हू। वशिष्ठ मौन हो गये, अरून्धती मौन हो गयी , क्योंकि दोनो ब्रह्मवेता थे । उन्होने कहा–प्रभु ! जैसी कौशल्या की इच्छा,इनके संकल्प को नष्ट न करो वे संकल्पवादी है । (08 जुलाई 1978,अमृतसर)

वशिष्ठ और अरून्धती ने कहा–ब्रह्मणे वृताः। उन्होने अपने आश्रम को गमन किया और उन्होने राजा से कहा – हे राजन ! यह तो संकल्प है । आचार्य के द्वारा उन्होने संकल्प किया हुआ है और संकल्प उनका नष्ट नही होना चाहियें यदि संकल्प चला गया, प्राण चला गया तो मानवता चली गयी । हे राजन ! तुम देवी को इसी प्रकार रहने दों तुम अपने क्रियाक्लापो में परिणीत हो जाओ । उस समय राजा भी मौन हो गया।(18 अप्रैल 1989,दिल्ली)

सनतान को जन्म देने वाली माता अपने में तपक र रही है , वह तपस्या में रत्त हो रही है , तप रही है , राष्ट्र का अन्न ग्रहण नही कर रही है राजा कहताहै –हे देवी! राष्ट्र का अन्न ग्रहण कर। कौशल्या कहती है – कदापि नही। राष्ट्रीय अन्न रजोगुण,तमोगुण से सन्ना हुआ अन्न होता है , उस अन्न को ग्रहण नही करूंगी । माता के गर्भ से राष्ट्रीय पुत्र का जन्म होना होगा तो माता कौशल्या जैसा अवश्य बनना होगा। मेरे प्यारे ! माता कौशल्या राम को जन्म देने वाली थी , जो त्याग में स्वयं कला–कौशल करके तपक र रही है,दार्शनिकता में रमण कर रही है , अपने को गायत्राणी छन्दो में ले जा रही है । गर्भ में रहने वाला शिशु पनप रहा है , अन्नाद और ज्ञान को प्राप्त कर रहा है । (21 अकतूबर 1982,पंजाबी बाग,नयी दिल्ली)

तपस्या में चिन्तन–व्यवहार

जब माता कौशाल्या तपक रती थी तो वह तप करती हुई पृथ्वी के कहती थी कि–हे पृथ्वी! तू ब्रह्मा के तुल्य है । तेरे गर्भस्थल में नाना प्रकार का परमाणुवाद गति कर रहा है और वही परमाणुवाद हमारे प्राण के द्वारा हमारे में प्रवेश करके हमें जीवन दे रहा है , हमें वह महानता प्रदान कर रहा है । (12 मार्च 1986,बरनावा)

मुझे त्रेता काल का स्मरण आता रहता है , जब राजा दशरथ के यहा पुत्रेष्टि याग हुआ। पुत्रेष्टि यज्ञ के ऊपर माता कौशल्या ने और तीनो राज लक्ष्मियो ने यह संकल्प किया था कि हम यगा करेंगी, महारा जीवन यागमय होगां माता कौशल्या का यह संकल्प बन गया। अपने पूज्य गुरुदेव(शृंगी मुनि) की जब दक्षिणा प्रदान करने लगी, तो उन्होने दक्षिणा में यही कहा कि –प्रभु ! मेरा जीवन याज्ञिक हो , मै अपने जीवन को याज्ञिक बनाना चाहती हूं। तो आचार्य ने उसे आशीर्वाद दिया। माता कौशल्या के गर्थस्थल मे राम जैसी पुनीत आत्मा जब प्रवेश हो गया, तो माता कौशल्या याग करती थी, वर्चोंसी अग्नि की पूजा करतीं आत्मा को चेतनित करने के लिए तपस्या करने लगी, क्योंकि माता की यह कामना थी कि मेरे गर्भस्थल से तो याज्ञिक पुत्र होना चाहिये। माता कौशाल्या तपस्या में परिणीत हो गयीं अपने जीवन को उन्होने क्रियात्मक बनाना प्रारम्भ किया। वह प्रातःकालीन समिधाओ को ले करके जब अग्न्याधान प्रारम्भ करती थी तो कहती थी कि – हे अग्ने! तू प्रकाश हे , तू मेरे अन्तःकरण का प्रकाश हे । हे अग्ने ! तेरी ही ज्योति उर्ध्व में रमण करती है हे अग्ने!तू सप्त जिव्हा वाली है । प्रत्येक जिव्हा से तू संसार का कल्याण करती है । माता कौशल्या उस अग्नि की आराधना करती थीं मध्य समय आता तो कला कौशल करती थी। राजा ने बहुत विचारा कि अपने उदर की पूर्ति किया करती थी। राजा ने बहुत विचारा कि राज–लक्ष्मी इस राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करने लगे,परन्तु माता कहती है कि–हे राजन ! मै राष्ट्र का अन्न नही ग्रहण कर सकती, क्योंकि मैने आचार्यो के समीप , बुद्धिमानो के समीप,अग्नि को साक्षी करके प्रतिज्ञा की थी और वह प्रतिज्ञा क्या, कि मै अपने जीन को तपस्वी बनाऊं और मेरे गर्भ से लन्म लेने वाला बालक थी तपश्चर होना चाहियें राजा ककी एकाकी वार्ता को उन्होने श्रवण नही किया। । (03 अक्तूबर 1981,नागोला)

भगवान राम जब माता कौशल्या के गर्भ में थे तो उस समय माता कौशल्या राष्ट्र को कोई अन्न और जलपान नही करती थी, न राष्ट्र का वस्त्र ही धारण करती थी। एक समय गुणक ऋषि महाराज ने प्रश्न किया कि–हे देवी! तुम राष्ट्र के वस्त्रो को, राष्ट्र के अन्न को क्यो नही पान कर रही हो। उस समय माता ने कहा था कि – हे ऋषिवर ! प्रभु गुणक ब्रह्मणे पुत्राणी व स्वयंच शुद्धं पवित्राणी गृहगामी गर्भस्य गच्छता। हे ऋषि मै अपने गर्भ से ऊंचा बालक चाहती हूं ,श्रेष्ठ पुत्र चाहती हू। मेरे हृदय की वेदना हे कि मेरे गर्भस्थल से उत्पन्न होने वाला बालक के शरीर में उसके रज और अग्रहणो, किसी प्रकार भी ऐसा अन्न का अंकुर न चला जाये जिससे मेरा बालक राजसी बन जाये और राजसी बन करके राज्य के ऐश्वर्य में आ करके वह प्रजा का कल्याण नही कर सकेगा। राजा दशरथ भी कहते कि–हे देवी ! तुम राज–स्थान में रहती हो सुन्दर राष्ट्र गृह है परन्तु इसका अन्न क्यां पान करती हो? कौशल्या उस समय कहा करती कि – राजन ! मेरा अधिकार नही है । जब तब प्रभु ने हमारे यह दो भुज बनाये हे , सुन्दर स्वच्छता से शरीर बनाया हे , यदि इसमे हम सुन्दरता को पान नही करते , अपने हृदय को पवित्र नही बनाते , शुद्ध अन्न से और शुद्ध विचारो से ऊंचे बालक को जन्म न दे सकें तो हमारे जीवन को धिक्कार है । (12 जुलाई 1966,सरोजिनी नगर, नयी दिल्ली)

बारह वर्ष तक माता कौशल्या ने गायत्री का पठन पाठन किया। असके पश्चात माता कौशलया कला कौशल करके अन्न का ग्रहण करती थी । गर्भ स्थापन के पश्चात भी कार्य करतीं उस माता का जो तप था, वह व्यर्थ नही गयां भगवान राम जैसे पुत्र को जन्म दिया। (29 जुलाई 1967,जोर बाग,नयी दिल्ली)

गौरवमयी मां कौशल्या

वह माता कितनी पवित्र होती है , जो अपने गर्भ से महान वीर पुत्र को जन्म देती है । महान आत्माओ को जन्म देती है ! उन माताओ को धन्य हे जहॉं भगवान राम जैसे पुत्र जन्म लेते है ! भगवान राम का जीवन कितना उदार था, उनका हृदय कितना उदार था, हृदय कितना विवेके , कितना त्याग तपस्या थी। (18 अक्तूबर 1964,मोगा मण्डी , पंजाब)

माता कौशल्या गान गाती थी । जब माता कौशल्या गान गा रही है , वह मधु–विद्या का गान गा रही है , जब गर्भाश्य में भगवान राम विद्यमान है । आठ लाख वर्षो से भी अधिक वर्ष हो गये, आज तक माता कौशल्या को माता कहा जाता है । माता क्यो कहा जा रहा है पुत्र के कारण ही तो माता कहा जा रहा है । यदि माता कौशल्या के राम जैसा पुत्र नही होता तो कौन माता कहता ? यदि माता गान नही गाती तो राम कैसे जन्म लेते ? राम जैसी पुण्य आत्मा कैसे आती इस संसार में ? उसका परिणाम यह हुआ कि उनको आज तक माता ही कहकर पुकारा जाता है ! (23 फरवरी 1977)

६. षष्ठ अध्याय–दशरथ–पुत्रो का नामकरण

राजाओ एवं ऋषियो को आमन्त्रण

महाराजा दशरथ के यहा जब राजकुमारो का आगमन हुआ , जन्म के पश्चात उनके नामकरण की चर्चा आयीं जब नामकरण का समय आया तो महाराजा अशरथ ,महर्षि वशिष्ठ मुनि के पास पंहुचे और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा –मुनिवर! आपने हमें वेदो का अध्ययन कराया है। जिसमे कहा हे कि बाल्यकाल में नामोकरण होना चाहिये तो मुनिवरो ! नामकरण करके मेरे बाल्यो का नाम घोषित करें वशिष्ठ मुनि महाराज ने उनकी विनय करे स्वीकार कर लिया, क्योंकि वे महाराजा दशरथ के राजपुरोहित थें। प्रत्येक पुरोहित का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने यज्ञमान के द्वारा होने वाले हर क्रियाक्लापो, नाम करण संस्कार अत्यादि को पूर्ण करे। जब महर्षि वशिष्ठ मुनि ने नामकरण करना स्वीकार कर लिया तो ऋषि की पतनी माता अरून्धती से भी प्रार्थना की गयी, तो उन्होने भी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उन्होने महाराजा दशरथ से कहा कि–यह एक बहुत पवित्र कार्य है । इस कार्य में अनेको विद्वानो का होना अति आवश्यक है । अतः आप समस्त राष्ट्रो के सर्वत्र विद्वानो , आचार्यो , बुद्धिमानजनो को आमंत्रित करें।

महाराजा दशरथ ने उसे स्वीकार कर लियां उसके पश्चात उन्होने महर्षि काकभुषुण्ड, महर्षि लोमश, महर्षिप्रेतकेतु,महर्षि , महर्षि। विभाण्डक, महर्षि शृंगी, महर्षि वैश्मपायन इत्यादि अनेको महर्षियो , ब्रह्मवेताओ, ब्रह्मचारियो,महाराजाओ के आमन्त्रित करते हुए महाराजा दशरथ ने नामोकरण का उत्सव मनाया।

नामोकरण संस्कार उत्सव

जब उत्सव मनने लगा तो उनके आमनत्रण पर महाराजा शिव का भी आगमन हुआ। सभी ऋषियो इत्यादि के आगमन के पश्चात वहां एक महर्षियो की, एक ब्रह्मवेताओ की तथा एक पंक्ति ब्रह्मवर्चोसीयों इत्यादि की भी विराजमान हो गयीं जितने भी ब्रह्मवेता तथा ब्रह्मवर्चोसी थे, महाराजा दशरथ के आमन्त्रण पर सभी विराजमान हो गये, जिनकी गणना भी नही हो सकती थी, मुझे तो ऐसा दृष्टिपात व प्रतीत है कि वेद के वांगमय में जितने भी तपसवी थे, सबको महाराजा दशरथ के द्वारा आमन्त्रित किया गया था आमन्त्रित विद्वानो को स्थान देने के पश्चात महाराजा दशरथ सभा के मध्य में अपने बाल्यो के साथ विराजमान हुंए और उदघोष करने लगे कि –भगवन! महषि। वशिष्ठ महाराज जी! यज्ञ का आयोजन कीजीये और महर्षि वैश्मपायन और महर्षि विभाण्डक मुनि से कहा कि–आईये, भगवन ! हम आपको पुरोहित के रूप में , ब्रह्मा के रूप में निर्वाचित करते है और ब्रह्मा का आसन ग्रहण करने को कहा । जब ब्रह्मा अपने आसन पर विद्यमान हो गये । तो ब्रह्मा ने महाराज दशरथ से कहा कि – हे महाराज! तुम अपने बाल्यों के नामकरण का उदगीत गाओ औरहमे यह बताओ कि तुम अपने बाल्यो के नामकरण क्या करना चाहते हो तो महाराजा दशरथ ने चारो बाल्यो का नाम राम,लक्ष्मण,भरत और शत्रुघ्न उनके गुणे को बताते हुए, नामकरण का उदगीत गाया। इसके पश्चात उन आत्माओ से जो शिशु रूप मे थी उनसे अपना परिचय उदगीत रूप में गाने को कहा, तो बाल्यो की आत्माओ ने अपना कोई परिचय नही दिया, तो महर्षियो ने उनका नामकरण पूछा जब, उसका भी कोई उतर न मिला तो ब्रह्मर्षियो ने कहा– हे आत्माओ! हम राम,लक्ष्मण,भरत और शत्रुघ्न के रूप में तुम्हारा नामोकरण उदघोषित करते है । नामकरण के उदघोष के पश्चात यज्ञ प्रारम्भ हुआ।

माता अरूनधती का आशीष

यज्ञ की समाप्ति के पश्चात जब बाल्य अपने नामकरण का उच्चारण करने लगे, तो महाराजा दशरथ में महर्षि वशिष्ठ तथा माता अरून्धती से कहा कि–हमारे यहाँ ये जो चारो राजकुमार राजस्थली को प्राप्त हए है,इनका कुछ पूर्व परिचय भी होना चाहिये । तो माता अरूनधती ने कहा कि ये चारो राजकुमार शिशु रूप मे विद्यमान हे और जो शिशु के रूप मे रत्त रहता है । यह आत्मा जो शरीर में भास रहा है वह जो बाल्य रूप से एक रूप मे विद्यमान रहता है । शरीर का अपनी आभा के अनुसार उसका परिवर्तन होता रहता है । आत्मा का कोई परिवर्तन नही होता। माता अरून्धती न कहा कि – हे आत्माओ ! तुमने इस राष्ट्र में प्रवेश किया है। तुम्हारी वृतियां इस प्रकार की हों कि यह राष्ट्र उज्ज्वलता को प्राप्त हो। तुम्हारी इस राष्ट्र में सदैव प्रतिभा बनी रहे! तुम राष्ट्र के एश्वर्यो मे परिणीत न हो करके अपने–अपने अस्तित्व को समाप्त न करना शिशु को कर्तव्य होना चाहिये की वह त्याग और तपस्या मे परिणीत हो करके राष्ट्र व समाज का कल्याण और माता–पिता की आज्ञा का पालन करने वाला हों पुनः माता अरून्धती ने कहा कि –आचार्य कुल में प्रवेश हो करके आचार्यो के द्वारा प्राप्त शिक्षा को ग्रहण करके ऐसे ओजस्वी बने की आचार्यो की प्रतिभा में रत्त रहे, आचार्य तथा अपने कुल को महानता में ले जाये, ब्राह्माण्ड तथा पृथ्वी के गर्भ की चर्चा को जानने वाले हो, महान वैज्ञानिक हो ! हे श्रोत्रीय रूप शिशु! तू इन वाकयो को ग्रहण करके अपने में उज्ज्वल बनता चला जा। यह उच्चारण करके माता अरूनधती अपनी स्थली पर विराजमान हो गयी।

महर्षि वशिष्ठ को उपदेश

तब महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि–इस समय जब इन बाल्यो का जन्म हंआ है, यह वायुमण्डल विज्ञानमयी है , यह वायुमण्डल आध्यात्मिक से तपा हुआ है , आध्यात्मिक के बिना वायुमण्डल पवित्र नही हो सकता। यह आध्यात्मिक , त्याग और तपस्या से भरा हुआ होना चाहिये। बिना त्याग व तपस्या के यह आध्यात्मिक पूर्ण नही हो सकता है । **राजा उसे कहते है जो अपनी इन्द्रियों का राजा होता है । राजा प्रजा पर शासन करने वाले को नही कहते। राजा उसे कहते हे जो मन को अपना प्रतिनिधि बना करके इन्द्रियों का उसके वशीभूत का देता है । प्रत्येक इन्द्री उसमे रत्त हो जाती है। उस समय वह अधिराज कहलाता है ।** मेरी तो अन्र्तातमा यह कहती है कि ये जो शिशु है, इनकी प्रत्येक इन्द्रिया समाहित होती हुई आपस में रत्त रहे, शिशुओ की अन्तरात्मा की पुकार उन्हे प्रेरणा देती रहे, और उनका जीवन में हृदय , आत्मीयता की तरंगे राष्ट्र को सूखद बनाती रहे, वे पूर्ण रूप से राष्ट्र समाज व शरीर को पनपाने वाले रहें। महर्षि वशिष्ठ अपने उन दो शब्दो को उपदेश दे कर अपने पुरोहित के आसन से निचले भाग में विराजमान हो गये, कयोंकि वहां पर दनससे भी बड़े तपस्वी व ब्रह्मवेता विराजमान थे।

महर्षि विभाण्डक का उदगान

उस समय महाराजा दशरथ ने कहा कि – अब में महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज जी से प्रार्थना करता हूं। वे भी इन बाल्यो के संदर्भ में अपने कुछ उदगीत गायें और अन्तरात्मा की जो प्रतिभा है उसका वर्णन करें। तो महर्षि विभाण्डक जी उपस्थित हुए , उपस्थित हो करके **शरणामंगलम** गान गाया, गान गाने के पश्चात उन्होने उदगान गाया कि–आज इस सभा में उपस्थित हो करके मेरा अन्र्तात्मा बड़ा प्रसन्न हो रहा है । राजा दशरथ के चार राजकुमारो का जन्म हुआ है, और उनका नामकरण भी घोषित हुआ है । मेरा हृदय तो यह कह रहा है कि आत्मा का कोई नाम नही होता , आत्मा तो एक चेतना है जो सब शरीरो में व्याप्त हो रही है । जब यह आत्मा कहीं वायुमण्डल में भ्रमण करती हुई किसी माता के गर्भसथल में प्रवेश करती हे तो सर्वत्र देवता माता के शरीर में प्रवेश कर जाते है । सर्वत्र देवता माता के शरीरो में प्रविष्ट होते हुए, माता–पिता के संकल्प मात्र से पुत्र या पुत्री माता के गर्भ में आते है । आत्मा ने पुत्र होता है न पुत्री होता है और न उसका नामकरण होता है । इस संसार में आने के पश्चात शरीर का नामकरण किया जाता है।

महर्षि विभाण्डक ने कहा–हमारी अन्तरात्मा बड़ी प्रसनन है, इस अयोध्या राष्ट्र में जो राजा हुए है मनु से लेकर सगर इत्यादि इसी वंश में हुए, जिनकी निष्पक्ष परम्परा रही है । उनके राष्ट्रो में वैदिकता का उदघोष रहा है इसी प्रकार इन बाल्यो को ऐसा संस्कार होना चाहिये जिससे यह अयोध्या राष्ट्र पवित्र बना रहे। माता–पिता का कर्तव्य है कि आत्मा को चेतनित करते रहे अपने में अपनेपन की आभा में निहित होते हुए आत्म चिन्तन की और अग्रसर हों। मैने इस संसार का बहुत दृष्टिपात किया है,माताओ का अपने अपने पुत्रो के सनम्बन्ध में भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण रहा है । मेरी प्यारी माता ने यह उपदेश दिया कि तुझे ब्रह्मवेता बनना है , इस संसार के वैभव में नही रहना है मेरी माता यह कहकर शान्त हो गयी थी। वे विचार आज तक हमारे हृदय में प्रतिभाषित हो रहे है ,जिससे यह आधत्मिकवाद,उत्पादवाद नाना प्रकार के रूपो में एक रस बना रहें यह वाक्य उच्चारण करके मै अपने हृदय से यह कामना कर रहा हू कि अनकी आयु दीर्घ बनी रहे, जिससे यह राष्ट्रवाद ऊंची आभा में रता होता रहे। यह उच्चारण करके महर्षि विभाण्डक मुनि शान्त हो गयें ।

महर्षि लोमश का आर्शीवाद

महाराजा दशरथ ने पुनः यह अभिलाषा व्यक्त की कि– हम पूज्य महर्षि लोमश जी के विचारो को भीसूनना चाहते है । बहुत समय हो गया है महर्षि लोमश जी के विचारो को श्रवण किए हुए। इनका विचार ऐसी वृतियो में रहता है , जो सदैव आत्म–चिन्तन में लगे रहते है , जो आयु में भी दीर्घ है । महर्षि लोमश मुनि महाराज यह वाक्य रवण करके वहां उपस्थित हुए। महर्षि लोमश मुनि महाराज ने अपना व्यक्तव्य देते हुए कहा कि–जब हमारा संसार में आगमन हुआ था, यदि मै आवागमनवाद पर चर्चा करने लगूं , तो यह जो आवागमनवाद हे , यही तो महान हे । यह आत्मा वायुमण्डल में भ्रमण करता हुआ, अपने चित में मण्डलो में भ्रमण करता हुआ,इन्द्र नाम की जो वायु है,उसमे भ्रमण करता हुआ , आत्मा जब गर्भ में प्रवेश करता है तब यह संसार में आता है संसार में आने के पश्चात , जब जाता हे तो आता भी हे जिसे हम आवागमन कहते है । क्योकि जो जाता है उसी का आवागमन होता है , जो जाता ही नही उसका आवागमन किस प्रकार का, जो गया है उसी को आना हे यही आवागमन कहलाता है । संसारो की जो उयाढ़ी लगी हहुई है , संसारो का जो सूत्र बना हुआ है , उसी सूत्र में सम्बद्ध हो करके यह आना और जाना लगा रहता है । संसार में जब संस्कार नही रह जाते, तो आवागमन नही होता , इस सन्म्बन्ध में भिन्न ऋषियो ने भिन्न–भिन्न कल्पनाए की है , उनका बड़ा ही विचित्र दृष्टिकोण रहा है । उन्होने तो कहा है कि यह संसार लेन–देन का वयापार बना हुआ है । आत्मा आया हे इस संसार में आवागमन करके तो वह लेने आया हे और देने के लिए भी आया है । किसी से लेता है , किसी को देता है , इस पकार से महर्षि लोमश मुनि का यह विचार है कि यह जो संसार हे यह तो लेन–देन का एक सूत्र बना हुआ है इसमे आन्तरिक और बाह्य दोनो ही रूप में चित–मण्डल विद्यमान रहता है । मानव के शरीर में आन्तरिक रूप मे भी चित है और बाह्य–जगत में भी चित है ।

चित की विवेचना करते हुए ऋषि ने कहा–जहाँ जन्म–जन्मान्तरो के संस्कार विद्यमान रहते है , इस चित के मण्डल में , जन्म–जन्मान्तरो की प्रतिभा इसमे समाहित रहती है , उसी से तो संसार में आगमन होता है । इसिलिए आगमन न होने के लिए ऋषि–मुनि तपस्या करते है । ऋषि–मुनि अपने में प्रतिभाषित रहते है । वह अपने ऊपर विचारता रहता है , अनुसंधान करता रहता है और अपनी आभा में निहित रहता है । महर्षि लोमश जी ने कहा कि –मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न है । मानव समाज भी ऊंचा होना चाहिये, राष्ट्र की पद्धतियो में रूढ़ि नही होनी चाहिये,सामान्य ज्ञान और विवक होना चाहिये, वही मेरा प्रार्थना है । हे शिशुओ! ब्रह्म का चिनतन करते रहना । तुम ब्रह्म–आत्मा हो ब्रह्मात्माओ का जब संसार में आगमन होता है तो कुछ न कुछ क्रियाक्लाप करते है । देवताओ की आज्ञा का पालन करते है ,बुरी आत्माओ का हनन करते रहते है । हे शिशुओ! तुम्हारे ह्रदय में ऐसे संस्कारो की उद्धबंद्धता होनी चाहिये, जिससे वह संस्कार तुम्हारी महानता में परिणीत हो करके ,अपने में महान बन करके उज्ज्वलता का एक सूत्र तुम्हारे ह्रदय में होना चाहिये। इस सन्म्बन्ध में माताओ का बड़ा सहयोग रहा है । माताओ ने ही हमें निर्माणीत किया है ' जब माता बाल्यकाल में हमारी प्यारी माता सुगन्धिनी, जब हमें लोरियो का पान कराती थी, उस समय उसने सखा रूप मे हमें यह उपदेश दिया कि हे बाल्य! तुम्हे ब्रह्मवेता बनना है , आयु को दीर्घ बनाना है । आयु जब दीर्घ बनती है , जब प्राण और मन का समावेश हो जाता है । प्राण मन को अपने में समाहित कर लेता है ।प्राण और मन दोनो एक सूत्र में पिरो करके आत्मा के सानिध्य में उनका ज्ञान ऊर्ध्वा में परिणीत होता रहता है । इसिलिए माताओ का बड़ा उज्ज्वल सेहयोग रहा है । इसके साथ ही मै अपने वाक्य को यहीं समाप्त करने जा रहा हूंकि बाल्य अपने जीवन में कर्तव्य की वेदी को पा करके अपने को उज्ज्वलता को प्राप्त हो ! इतना कहकर महर्षि लोमश मुनि अपने स्थान पर विद्यमान हो गये।

महाराज शिव की अमृत–वर्षा

महाराजा दशरथ ने उस समय कहा–हमारे मध्य मे इस समय महाराजा शिव , जो हिमालय में राजा होते हुए भी जो महान तपस्वी है , इस समय विद्यमान है , उनको भी चरणामृत हमें प्राप्त होना चाहिये । वे हमें एंसा मार्गदर्शन देंगे, जिस मार्ग पर गति करते हुए मेरा राष्ट्र उन्नति की और बढ़ता चला जाये। इस पर महाराजा शिव ने तपस्वियो को नमस्कार करते हुए कहा कि–अयोध्या से मेरा बड़ परस्पर समन्वय रहा है । हिमालय में होते हुए भी पूर्व काल से हमारे यहाँ जो वंशावली रही है ,वह अयोध्या का उदगीत गाते हुए कि हमारे यहाँ शिव राजा भी होना चाहिये तो में अपने यहाँ से कृतियो में गमन करता हुआ सभा–मण्डल में पधारा , मेरा सौभाग्य है । क्योकि वास्तव मे यह राष्ट्र नही है , यह कर्तव्यवादियो का एक क्षेत्र है , कर्तव्यवादियो का यह एक वास है । यहाँ जो भी राजा हुआ है , उसने अपने अपने कर्तव्य का पालन किया हे । जहाँ भी कर्तव्यवाद से विहीनता आयी है , वहीं राष्ट्रवाद विनाश की और चला गया है। कर्तव्यवाद की चर्चा में मै भी एक राजा हूं। जो हिमालय में वास करता हूं। अपने में मर्यादा की धर्म की, प्रतिभा में और विज्ञान की महानता में जाता हुआ राष्ट्र ऊंचा उठाना हमारा कर्तव्य है यह मेरा बड़ा सौभाग्य है जो इस नामकरण की आभा में इस यज्ञ मण्डप में मेरा आगमन हुआ। मै बड़ा ही आनन्दित होता हुआ अपनी अन्तरात्मा से हर्ष ध्वनि करता रहता हूं कि मेरा । मै उच्चारण करने के लिए आया हूं कि माताओ ने त्याग और तपस्या से इन इन बाल्यो को जन्म दिया है , यह हम सभी का बड़ा सौभाग्य रहा है । तीनो राज्य–लक्ष्मियो के जब तक गर्भ में बालक पनपते रहे है , इन्होने राष्ट्र को कोई अन्न ग्रहण नही किया है । उस अन्न को ग्रहण करते के लिए तप करती रही है ,जिससे मन की उत्पति बाल्यो के ह्रदयो में जो मन व्याप रहा है , वह पवित्रवत बने, क्योंकि अन्नादं भूतं ब्रह्मः, वेद के महता कहती है कि मन की जो उत्पति होती है , वह अन्न के द्वारा होती है तो इनका अन्न इतना पवित्र रहा है । आगे चल करके ये राष्ट्र त्याग और तपसया में परिणीत होते रहेंगे। माताओ का जो सहयोग रहा है , माताओ का जा त्याग तप रहा है , वह कितना विचित्र रहा है । समय समय मै कैकेयी के द्वार पर आता रहा हूं। कैकेयी ने अपने में निश्चय किया था कि मै उस अन्नादि का पान कर रही हूं जिस अन्न के द्वारा मेरा यह मन और यह बाल्य जो शिशु के रूप मे पनप रहा है वह मनोवृतियो में रत्त होता रहे। इस प्रकार उनका अप्रतिम ब्रह्मे बड़ा सहयोग रहा है देखे इसी प्रकार का कौशल्या , सुमित्रा इत्यादि की वृतियो में रत्त रहा है । कैकेयी कौशल्या , सुमित्रा तीनो राजलक्ष्मियों अपने में रत्त रहीं है । राजा का भी इस सन्म्बन्ध मे बड़ा तप रहा है जब इनका पुत्रेष्टि यज्ञ हुआ था, उस समय भी मेरा यहाँ आगमन हुआ था। मैने भी महर्षि शृंगी जी से तप को ग्रहण किया था । और इन राजलक्ष्मियो ने भी उन्ही से ग्रहण किया था । पुरोहितो का मन्तव्य बड़ी महानता में रहा है । तो मेरे विचार में यह है कि इस राजाके राष्ट्र में, इस अयोध्या में , पुष्पांजलियां पवित्र होती रहे और पृथ्वी पर जितनी भी कुरुतियां हे उन कुरुतियो का नाश करने वाले बाल्य होने चाहिये। माता की ऐसी शिक्षा हो पिता की ऐसी शिक्षा हो आचार्य कुल में जाएं तो वहा भी ऐसी ही शिक्षा हो। कुरुतिया नष्ट हो और वैदिकता एक दार्शनिक रूप मे रत्त होती रहे। सूर्य जब प्रातः काल उदय होता हे तो शिव कहलाता है इसी प्रकार ये राजा भी शिव के समान कहलाने वाले हो और सबको महानता में रत्त करने वाले हो। त्याग और तपस्या में मेरा बड़ा विश्वनीय जीवन रहा है । मै विचराता रहता हू कि कोई भी राष्ट्र हो समाज हो, मानव उससे तब तक नही बनते जब तक त्यो, तपस्या ,प्रदर्शित नही होती । त्याग और तपस्या में मानव जीवन संलग्न हो जाता है तो सब गृह पवित्रवाद की वेदी पर निहित हो जाते हे । मेरे राष्ट्र में भी माताओ के प्रति मेरी बड़ी आस्था रहती है । मै विचारता रहता हूं कि सबको संसार की लोलुपता में न आ करके अपने अपने कर्तव्य का पालन करना हे। कर्तव्यवाद यही होता है कि माता अपने गर्भस्थल से ले करके , लोरियो और नामकरण तक बाल्यो का महानता के उपदेश और संस्कार से संस्कारित कर दें संस्कार जब बाह्य जगत में प्रस्तुत होते है तो कर्तव्यवाद , राष्ट्रवाद के रूप मे उभर कर आते है । मानव अपने में अपनेपन की प्रतिभा का गान गाता रहे, मेरी तो यह कामना हे । इस वायुमण्डल में मुझे ये विचार देने हे , क्योंकि आगे चल कर ये बाल्य इस वायुमण्डल को स्पर्श करने वाले बनेंगें यह उपदेश दे करके महाराजा शिव अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये।

महर्षि वैश्मपायन के उदगार

राजा दशरथ अपने में हर्ष ध्वनि करने लगे और कहने लगे कि – यह मेरा सौभग्य हे जो ज्ञान और विज्ञान की चर्चाए और नामकरण की चर्चाए तथा विभिन्न प्रकार का हमें उपदेश मिल रहा है । इनही उपदेशो के आधार पर राष्ट्र की परम्परा बनी रहे । यह उच्चारण करते हुए महाराजा दशरथ ने कहा कि – हमारे मध्य महर्षि वैश्मपायन विद्यमान हे और उनके साथि अनेको ब्रह्मवेता है जो ब्रह्म की ऊंची–ऊंची उड़ान उड़ते है । अब मै महर्षि वैष्मपायन से चाहता हू कि आप भी अपने कुद उपदेश प्रकट करे।

महर्षि वैश्मपायन उपस्थित हो करके बोले–यह हमारा बड़ा ही सौभाग्य हे कि हम इस आभा में अपने ह्रदय के कुछ वाकय प्रकट कर सकें। मेरा विचार यह कहता हे कि यह जो परमात्मा है, यह शिशु के रूप मे रहता हे । परमात्मा ही संसार को इस रूप मे कटिबद्ध करने वाला है । माता के मध्य में , पिता के मध्य में ए बाल्य रहता है ,शिशु रूप मे रहता है । माता–पिता की जो हर्षध्वनियां है, जो हर्ष विचित्रताए है । वे उससे संलग्न रहते है । जब माता–पिता का ह्रदय से ह्रदयग्रही समन्वय होता है , उसी के द्वारा यह बाल्य माता–पिता के चरणो में आज्ञाकारी बरन करके संसार को और राष्ट्र को ऊंचा बना सकता है । मेरा अन्तरात्मा तो यह सदैव कहता रहता है । विज्ञान का दुरूपयोग न हो । विज्ञान तो सदैव अपने अपने आसन पर अनूठा रहा है । विज्ञान का विषय तो इतना महान है जिस पर अनेको महर्षियो ने अनेको विद्वानो ने अभी अपना अपना मन्तव्य दिया हे ' मै भी उस सन्म्बन्ध में एक यही वाक्य उच्चारण करने वाला हूं। इसी उपलक्ष्य में मै आपके समीप आ करके एक यही वाक्य उच्चारण करने आया हूं। कि विज्ञान इस राष्ट्र में अनूठा बन करके रहें वैज्ञानिक बन करके ये ब्रह्मचारी, विज्ञान में रत्त रहे। जैसे परमपिता परमात्मा ने संसार रूपी जगत को एक विज्ञान शाला में रख दिया है , इस पकार यह भी एक विज्ञान है , एक घारा है , जिसको ला करके यह समाज ऊंचा बनता है । जीवन को के रूपो में रत्त रहते हुए आन्तरिक विज्ञान जब बाह्य जगत में आता है तो विज्ञान का दुरूपयोग नही होता । वह विज्ञान समाज व विशुद्ध में सर्वत्रता में रत्त रहता है । विशेष विवेचना देते हुए केवल यह कि राजा के राष्ट्र मे चिशेष विज्ञान का अनुसन्धान होना चाहिये। विज्ञान , मानव–दर्शन को ऊंचा बनाता है मानव–दर्शन जब विद्यालय में मानव–दर्शन को ऊंचा बनाता है । मानव–दर्शन जब विद्यालय में मानव–दर्शन जब गृह में जब मानव के क्रियाक्लापो में रहता हे तो यही मानव–दर्शन समाज को ऊंचा बनाता है ।

दशरथ का आभार

महर्षि वैश्मपायन यह उपदेश दे करके अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये, तो महाराजा दशरथ न यज्ञ मण्डप का व्याख्यान करते हुए कहा कि–मेरा यह सौभाग्य हे कि मेरे यहाँ ऋषि–मुनियो का आगमन रहा, राष्ट्र वेताओ का आगमन रहा, मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न है । मेरे चारो राजकुमारो को नामकरण , राम , लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुआ है। यह उचचारण करके सभा में उन्होने वेद–मन्त्रो का उदगीत गाया, साम गान गाया। गान गा करके ऋषि–मुनियो की वह सभा विसर्जित हो गयी। (08 मई 1987 ,विक्रम विहार, नयी दिल्ली)

७. सप्तम अध्याय–शिक्षा काल

राम की प्रथम शिक्षक माता कौशल्या

जब मझे वह काल स्मरण आता है तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात आता है जैसे कोई सन्यासी यज्ञशाला में विद्यमान है । वह माता प्रातः कालीन अग्नयाधान करती । सूर्य की किरणो के साथ अपने नेत्रो में ज्योति का प्रकाश ग्रहण करती थी। जब बाल्य गर्भ से पृथक हो गया तो माता कौशल्या प्रातःकाल याग करने लगी। बालक को लोरिया देती रहती थी और उनका वर्चोसी का पठन–पाठन चलता रहता । आत्मा वर्चोसी है ।,अग्नेय है , मानो अग्नयाधान हो रहा है समिधा के द्वारा अग्नि का चयन कर रहे है । उस अग्नि के चयन को कौन कर रहा है अग्नि का चयन माता कर रही है , बालक दृष्टिपात कररहा है । हम मेरी मा ! तू कितनी भोली है , तू अपने जीवन को कितना कर्मठ बना सकती है कितना प्रतिष्ठित बना सकती है , तेरे जीवन की धारा महान बन सकती हे ! माता कौशल्या ने तीन वर्ष के बाल्य राम को याग की सर्वत्र भूमिका वर्णित करा दी थी और वह तीन वर्ष का बालक वेदो की ध्वनि गा रहा है , अर्थात याग कर रहा है , समिधा के शरा अग्न्याधान कर रहा है । (नवम्बर 1976 ,लाक्षा गृह बरनावा)

भगवान राम आठ वर्ष की अवस्था से याग करते थे और वह वेदो को ध्वनि रूपो में गाते थे। एकान्त स्थली पर विद्यमान है , वशिष्ठ के चरणो में है और वेद का गायन चल रहा है ' रात्रि समय जब भी राम को दृष्टिपात करते ह गान ही गाते दुष्टिपात होते थे। माता कौशल्या का जीवन भी सफल हुआ।

एक समय भगवान राम से महर्षि वर्तेन्तु ने कहा था–हे राम ! तुम हर समय गाते रहते हो । इसका कारण क्या है ? यह विद्या तुमने कहां से प्राप्त की, भगवान राम कहते है कि–माता ने मुझे ने इस योग्य बनाया है । ऋषियो की कृपा से मेरी माता ने मुझे पाया है , मै सदैव उस महान देव का गायन गाता रहता हू जिसने वेद जैसी पवित्र विद्या इस संसार में प्रकाशित की है , उसको पान करता रहता हू आभा में रमण करता रहता हू उसी में मेरी प्रतिष्ठा बनी रहती है , क्योंकि माता ने मरा निर्माण किया है मझे आभा से युक्त बनाया हे , इसिलिए में सदैव उसको जानने के लिए तत्पर रहता हू। ऋषि वर्तेन्तु मौन हो गये और उन्होने कहा–धन्य है, भगवान राम का जीवन आठ वर्ष से यागिक बना और जब भगवान राम वन चले गये तो वहां भी याग चलता था। समिधाओ के द्वारा अगिन प्रदीप्त हो रही है । परमाणुवाद को शुद्ध किया जा रहा है । (28 सितम्बर 1981 ,घनौरा)

गुरू वशिष्ठ–आश्रम में शिक्षा

त्रेता के काल में जब भगवान राम वशिष्ठ के द्वार पंहुचे । विद्यालय में जब प्रवेश कराये गये तो भगवान राम को प्रथम वशिष्ठ ने याग की प्रक्रिया वर्णित कराई । राम ने उसी प्रक्रिया को ले करके , उसी याग को ले करके अपने जीवन में षोडश कलाए , जो मानव में सुषुप्ति में रहती है उनको जागरूक करने को प्रयास किया। भगवान राम बारह कलाओ के जानने वाले कहलाते थे और वे बारह कलाए,जिनको धारण करने वाले भगवान राम ने राष्ट्र , समाज और अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास किया।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ राम जिस काल में अध्ययन करते रहते थे, नाना ब्रह्मचारी भोज के समय ऋषि के आश्रम में एक पंक्ति में विद्यमान होकर भोज का पान कर रहे है । एक समय महर्षि श्वेतकेतु महाराज के पुत्र शोभनी ब्रह्मचारी को शंका उत्पन्न हुई। प्रातः काल का समय था, याग के पश्चात उन्होने एक प्रश्न किया–महाराज ! हमस बाल्य एक पंक्ति में विद्यमान होकर भोज का पान करते है । राम का जीवन राष्ट्रीयता में पनपा और हमारा जीवन ऋषि–मुनियो के आगन में भयंकर वनो में पनपा है ' वनो में हमारी वृतिया निहित रही है । हम यह जानना चाहते है कि प्रभु ! इन दोनो का समावेश कैसे हो सकता है , एक राष्ट्रीयता है और एक वनचर हे , दोनो को समावेश कैसे हो सकता है ?

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा–हे ब्रह्मचारी ! राष्ट्रवाद और वनचर , यह दोनो एक ही तुल्य है, क्योंकि राष्ट्रवादी भी यह चाहता है कि मेरे राष्ट्र में अनुशासन हो जाये और वनो में रहने वाला ऋषि–मुनि भी यही चाहता हे कि साम्राज्य पवित्र हो जायें दोनो का मन्तव्य एक ही रहता है कि वह अपने मानवीय जीवन पर, मानवीय इन्द्रियों पर जय चाहता है । **ब्रह्माण्ड रूपी जो राष्ट्र हे , इसमे में अपना अनुशासन तभी कर सकता हू, जब मेरी प्रत्येक इन्द्रिया अनुशासित हो जाएं।** और राजा भी यह चाहता हे कि मरा राष्ट्र पवित्र बनें यदि वह अपने पर अनुशासन कने लगता हे और चाहता कि मेरा इन्द्रियों वर अनुशासन हो और इस प्रजा को कुछ दे संकू, प्रजा को शान्ति की धारा प्रदान का सकूं। दोनो का मन्तव्य एक हे और तब इन दोनो का एकोकीकरण हो जाता है।

वशिष्ठ मुनि ने जब ऐसा कहा तो बाल्य ने कहा कि–प्रभु ! क्या इसका कोई प्रमाण है? उन्होने कहा–अनुशासन तो अपने में स्वतः ही प्रमाण कहा जाता है । ब्रह्मचारी कहते ही उसे है जो अनुशासन में रहता है । ब्रह्मचारी मृत्यु से पार हो जाता है, वह मृत्युंजय बन जाता है । ब्रह्मचारी और आचार्य दोनो का एक ही मन्तव्य रहता है । आचार्य चाहता कि मेरा ब्रह्मचारी संसार मे ऊर्ध्वा को प्राप्त होता रहे। आचार्य और ब्रह्मचारी दोनो एक दूसरे में पूरक कहलाते है । आचार्य और ब्रह्मचारी दोनो एक स्थली में पर विद्यमान है । , एक का स्थान ऊर्ध्वा में है और एक का ध्रुवा में चरणो में है , क्योंकि ध्रुवा वाले को ऊर्ध्वा में जाना है , इसीलिए ब्रह्मचारी आचार्य के चरणो में विद्यमान होता है । जब आचार्य शिक्षा देना प्रारम्भ करता हे तो वह कहता है कि तुम अनुशासित हरो।

विष्णु स्वरूप की व्याख्या

एक समय शोभनी और भगवान राम को प्रातः कालीन एक वेद–मन्त्र का अध्ययन करायां वेद–मन्त्र था विष्णु व्रतं देवं ब्रह्मा: विष्णु रेवकृतं ब्रह्माः वाचः सर्वं व्रवहः अन्तरिक्षम लोकां वाचचो समीवा, इस वेद मन्त्र का उन्हाने उच्चारण किया और कहा कि –जाओ इसका अध्ययन करो, इसको कंठस्थ करो और कंठस्थ करके इसके भावार्थ रूप को जानने का प्रयास करो। शोभनी ब्रह्मचारी और भगवान राम दोनो एक स्थली पर विद्यमान होकर इसका इध्ययन करने लगें कही विष्णु का अर्थ ध्रुवा था , कही आत्मावासी कहा जा रहा था, कही वह विष्णु राष्ट्रीयता में राजा बन रहा था, कही ऊर्ध्वा में जाने वाले लोक–लोकान्तरो में विष्णु की विवेचना हो रही थी, कहीं ध्रुवा म विष्णु की विवेचना आ रही थी। वह विचार–विनिमय करते रहे, दिवस–समय समाप्त हो गया , परन्तु वह अपने में निपटारा नही कर सके तो मध्यरात्रि में दोनो ब्रह्मचारी आचार्य के चरणो में विद्यमान हो गये। ऋषिवर निद्रा में तल्लीन थे। दोनो उसी वेदमन्त्र के ऊपर चिन्तन–मनन करते रहे।

कुछ समय के पश्चात महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज जागरूक हो गये। महर्षि वशिष्ठ मनि ने कहा कि –हे ब्रह्मचारियो ! मध्य रात्रि में तुम्हारा मेरे कक्ष में आने का मन्तव्य कया है , उन्होने कहा कि –प्रभु! हम इसलिए आये है कि यह जो अपने हमें वेद मन्त्र वर्णन कराया है इसके पठन–पाठन की शैली भी बड़ी विचित्र है । हम इसके अंतिम छोर पर नही पंहुच सके है , क्योंकि की तो यह वेद मन्त्र राजा का वाची विष्णु उच्चारण कर रहा है , कही पालन करने वाला ही यह विष्णु कहलाता है ,कहीं विष्णु सूर्य को कहा जा रहा है , कहीं आत्मा का वाची विष्णु कहलाता है । हमें प्रभु! कहीं राष्ट्रवाद ही विष्णु है , कहीं यज्ञोमयी विष्णु हे , कही यही विष्णु हमें विज्ञान मे ले जाता है । इसके ऊर्ध्वा स्वरूप को हम अच्छी प्रकार नही जान पाये हैं। इसका हमें वर्णन कराईये।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने राम और शोभनी ब्रह्मचारी से यह वाक्य श्रवण करके कहा कि –यह विष्णु शब्द जब अनुशासन का वाची बनता है तो इस शरीर में विद्यमान होने वाली जो एक चेतना है , एक आत्मा है यह आत्मा ही विष्णु कहलाता है ं यह आत्मा विष्णु के रूप मे विद्यमान है । **विष्णु नाम आत्मा का इसलिए वाची हे क्योंकि वेदो का अध्ययन करता हंआ यह मानव विष्णु रूप को जान जेता है । वेद में एक और मन्त्र आता है विष्णु ब्रह्मवचाः ब्रह्मं वर्चं ब्रह्मे कमल कृत्यं ब्रही अतम लोकाम कि यह आत्मा अनुशासन में होता हुआ , वेद का अध्ययन करते हुए ब्रह्म की उपाधि को प्राप्त कर लेता है ।** जब याग होते है तो वेद का पठन–पाठन करने वाले को ब्रह्मा की उपाधि प्रदान की जाती हे । वह वेद के मर्म को जानने वाला ब्रह्मवर्चोसी कहलाता है ।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने एक वाक्य और कहा कि–वही आत्मा जब विष्णु पद को प्राप्त करना चाहता है। तो योगाभ्यास करता है । यह कुम्भक में ब्रवुतं देवाः जब अपनी वृतियो को जागरूक बनाना चाहता है तो यह प्राण को मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र मेनले जाता है । नाभि चक्र में जब यह विद्यमान होता हे तो नाभि का ऐसा स्वरूप बन जाताा है जैसा कमलसयं ब्रह्मास कमलं वृहे वृतं देवां वेद की आख्यिका यह कहती हे कि जैसे कमल का पुष्प होता है , उसी की भांति उसका स्वरूप बनता है ं मनस्तव , प्राणत्व और आत्ममनस्तव जब इसके ऊपर व्रत्यो मे परिणीत होते है । तो वहां एक गति उत्पन्न होती है । तो यह कहते हे कि उस कमम मे ब्रह्मा या वेद की जो धाराए है , उनका जन्म हो जाता हे उनका जन्म हो करके ब्रह्मणं ब्रहे वृतम वह विष्णु बन करके , ब्रह्मा बन करके वही आत्मा अपने में ब्रह्म पद को प्राप्त करके , वेदो के मर्म को और नाभ्याम–योग के कर्म को जानने लगता है ।

यह वाक्य जब उन्होने वर्णन किया तो भगवान राम ने उपस्थित होकर कहा कि– हे प्रभु ! क्या नाभि केन्द्र में कमल–डंड उत्पन्न हो जाता है ? वशिष्ठ मुनि ने कहा– हां ऐसा वेद की कुछ आख्यिका स्वीकार करती है । राम बोले कि–प्रभु ! नाभि में कमल को होना किस लिए अनिवार्य है ? उन्होने कहा कि यह नाभि हमारे इस शरीर का मध्य भाग कहलाता है कमल डंडी के मध्य में ही नाना पंखुड़िया अपनी अपनी स्थलियो पर ऐसे वृतित हो जाती हे जैसे नाभि में प्राण का स्थिर रहना और मन की पुट लगाना , यह दोनो एक ही तुल्य कहलाती हे । योगाभ्यास सम्वृहे यही पराकाष्ठा वाला अनुशासन है , जिनको करने से मानव आत्मपद प्राप्त होता है , आत्मा को साक्षात्कार कर लेता है और अपने में अपनी ही प्रतिभा का दर्शन कर लेता है ।

विष्णु राष्ट्र–राम बोले कि–हे भगवन! दूसरा विष्णु का वाची जो राष्ट्र है , मुझे इसका कुछ वर्णन कराईये। महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि –राजा जब अपने राष्ट्र में स्थिर होता है तो नाना ऋषि मुनि , ब्राह्माणजन ,ब्रह्मवेता उसको राजा की चुनौती प्रदान करते है ं जिस समय बुद्धिमानो के द्वारा , बुद्धिजीवी योगियो के द्वारा , निष्पक्ष प्राणियो के द्वारा राष्ट्र का निर्माण होता हे तो वह राजा महान और पवित्र कहलाता है । वह राजा चार प्राकर के नियम , प्रजा के सुख आगर आनन्द के लिए निर्माण करता है । **चार प्रकार की नियमावली स्वतः राजा रूपी विष्ण्ु के चार भुज कहलाते है** । जब राजा दशरथ का निर्वाचन हुआ था तो उसमे महर्षे वशिष्ठ , महर्षि कपिल , महर्षि वैश्मपायन और महाराजा शिव , श्वेती,देवर्षि नारद और महर्षि श्रृंगी आदि ऋषियो ने राजा का निर्वाचन किया था। वह सप्तहोता कहलाते है । यह सात ऋषि जो वास्तव में राजा का निर्माण करते है , वे ब्रह्मवेता होते है और यह जानते है कि ब्रह्मवेता ही राजा की प्रतिभा को जन्म देते है । वह कहते है कि हे राजा ! तुझे ब्रह्मवेता बनना है , क्योकि ब्रह्मवेता ही राष्ट्र का पालन कर सकता है राष्ट्र को ऊंचा बना सकता हे , प्रजा को ज्ञान दे सकता है । और अपने में अपने पन को प्राप्त होता हुआ वह ओजस्वी बन करके राष्ट्रीयता में ओज और तेज स्थापना करता है ।

महर्षि वशिष्ठ ने कहा–हे राम! प्रथम वाची विष्णु आत्मा को कहा जाता है और दूसरा वाची विष्णु राजा को कहा जाता है राजा की चार प्रकार की नियमावली होती है । इन नियमावलियो के नाम विष्णु के चार भुज कहलाते है । पदम राजा का सबसे पथम नियम हे , द्वितीय नियम गदा है , चक्र है और चतुर्थ शंख कहा जाता है। यह चार भुजो वाला विष्णु कहलाता है ।

पदम–महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्मचारियो को एक पंक्ति में विद्यमान करके विष्णु के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा कि –पदम अकृतं ब्रह्मः हमारे यहाँ चरित्र और मानवीयता को पदम कहते है । राजा के राष्ट्र में इतना भव्य चरित्र होना चाहिये जिससे मेरी पुत्री राष्ट्र के एक छोर से द्वितीय छोर तक चली जाये, सर्वत्र राष्ट्र में भ्रमण करे तो उसे माता , पुत्री और भौजाई की दृष्टि से अवगत कराने वाला समाज होना चाहिये। इसी प्रकार वह कन्या भी राष्ट्र में माता बन कर ही भ्रमण करे। इस प्रकार का ज्ञान–विवके राजा के राष्ट्र में होना चाहिये। **हे ब्रह्मचारियो! सबसे प्रथम राजा के यहाँ पदम होना चाहिये,पदम कहते हैं, जहाँ प्रत्येक मानव दर्शन की चर्चा करने वाला हो । विचारो की पंखुड़ियां बना करके नाना प्रकार की ऊंची–ऊंची उड़ान उड़ने वाला समाज होना चाहिये।** राजा के राष्ट्र में इसी पदम के आधार पर विज्ञान होना चाहिये। भोतिक विज्ञान बड़ा अनूठा है , कयोंकि पृथ्वी के गर्भ को जानना ,अन्ततिरक्ष में गर्भ को जानना दिशाओ के सर्वत्र रूप को जानने का नाम विज्ञान कहा जाता है ं यह विज्ञान केवल पदम–वृतियो में आता है ।

गदा–वशिष्ठ मुनि महाराज नेकहा कि–विष्णू के राजा, के ,द्वितीय थुज में गदा होनी चाहिये। **गदा का अभिप्रायः हे कि राजा में दंड व्यवस्था बड़ी विचित्र होनी चाहिये। उसे प्रथम ज्ञान के द्वारा शिक्षा देनी चाहिये। यदि वह ज्ञान से भी उपराम होता हे और उसको स्वीकार नही कर रहा है तो राजा के यहाँ दंड–व्यवस्था रूपी गदा से उसे दंडित करना चाहिये। वह दंडित करना मानो ,प्रजा को अनुशासन में लाना है ।** वेद का आचार्य कहता है धर्मज्ञ गतं ब्रहे राष्ट्र दा मंगल वृति वृतः देवाः कि समाज में एक दूसरे को भय की प्रतीती नही होनी चाहिये। उनमे सदैव निर्भयता रहनी चाहिये। निर्भयता तब रहती है , जब मानव ईश्वरवादी होता है , परमपिता परमात्मा को अपना साक्षी बनाता है , वही संसार में निर्भयता की आभा में रत्त रहता है । वह निस्संकोच भ्रमण करता है पापाचार नही करता है , वह अपने शरीर रूपी राष्ट्र का निर्माण करता है और बाह्य–जगत में दोनो का समन्वय जो करना जानता है , वह गदा का अधिकारी है । पापाचारियो को दंड देनो वाला हो, यही गदा का अभिप्रायः है ।

चक्र–वेद के ऋषि ने कहा कि–तृतीय भुज में चक्र आता है । मानवीयता अथवा असकी वाणी में जो तेजस्व है , उसको हमारे यहाँ चक्र कहा जाता है । जब हमारा चरित्र कमल की प्रतिभा के समान अपने में परिणीत रहेगा तो उसके पश्चात मानव चक्र को अपनाता है।**संस्कृति के प्रसार करने को चक्र कहते है । संस्कृति मे विज्ञान हो,मानव–दर्शन हो गयो की प्रतिभा हो , वही राष्ट्र का उत्थान कर देती है । वह संस्कृति जिसमे मानवता हो, चरित्र हो जिसमे अश्लीलता न हो , उसके नाम हमारे यहाँ चक्र कहा जाता है।**

चक्र कई प्रकार के होते है । एक सुदर्शन–चक्र भी होता है । वह द्वापर के काल में भी था, राम के काल में भी था। यह एक यन्त्र बन कर रहा ,वैज्ञानिको के कुल में उसकी प्रतिष्ठा रही है । विष्णु–चक्र का अभिप्रायः केवल राजा की संस्कृति का चयन है । आत्म–तत्व से समन्वय होना चाहिये, जिससे द्वितीय राष्ट्र उसको अपनाता हुआ निस्संकोच अपने में अपनेपन को प्राप्त करता चला जाये। संसार में राजा के राष्ट्र में चरित्र हो,क्योंकि राजा विष्णु है और विष्णु उसे कहते है। , जिस राजा के राष्ट्र में चरित्र या पदम ,गदा और चक्र होता है । संस्कृति का प्रभाव अपने में विचित्र माना गया है ।

शंख–महर्षि वशिष्ठ ने कहा , हमारे यहाँ विष्णु के चतुर्थ भुज में शंख माना गया है । वेद–ध्वनि करने वाले बुद्धिजीवी पुरूष राज्य में होने चाहिये। विद्यालयो में आचार्यजन द्वारा ब्रह्मचारीजन को अध्ययन कराने की विचित्र शैली रहनी चाहिये। उनकी शैली मे एक महानता का दर्शन होना चाहिये। मानो उस शंख को अपनाता है।, ध्वनि को अपनाता है । नाद को शंख कहते है। । शंख जब अपने मे ध्वनित होता हे ता वह नाना प्रकार के दूषित वायुमंडल को समाप्त करना प्रारम्भ कर देता है । महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने एक वेद–मन्त्र का उदघोष करते हुए कहा कि–राजा के राष्ट्र मे शंख–ध्वनि होनी चाहिये। शंख–ध्वनि का अभिप्रायः यह कि यहाँ ऐसा–ऐसा पांडित्व होना चाहिये जो नाना प्रकार का गान गाने वालो हो । जैसे जटा–पाठ है , धन–वाठ है , माला–पाठ है,विसर्ग–पाठ है,उदात और अनुदात है । नाना प्रकार की वेद–मन्त्रो की ध्वानियो में ध्वनित होता हुआ मानव स्वर संगम में प्रवेश कर जाता है ।

वेद–गान–वेद के ऋषि ने कहा वेद का पठन–पाठन करने वाला बुद्धिजीवी प्राणी जब एकान्त स्थली पर विद्यमान होकर गान गाता हे तो उदान से प्राण को समान में लाता है और उसी प्राण का अपान से समन्वय करता है , अपान का जब व्यान से समन्वय करता है , और हृदय से गाता है तो हिंसक प्राणी भी अहिंसा में परिवर्तित हो जाता है । जब राजा यह विचाराता है कि मेरे राष्ट्र में बुद्धिजीवी पुरूष होने चाहिये, बुद्धिमान होने चाहिये जिससे मेरा राष्ट्र

ध्वनित हो जाये वेद मन्त्रो की ध्वनि में ध्वनित होता हुआ, वेद–मन्त्रो का गान गाने वाला समाज हो और ध्वनि में ध्वनित होता हुआ,वेद मन्त्रो को गान गाने वाला समाज हो और ध्वनि अग्नि की धाराओ पर विद्यमान होकर अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो जाती हे ँ आगे महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा हे – राजा के राष्ट्र में जितना बुद्धिजीवी प्राणी होगा उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा, जितने राजा के राष्ट्र में तपस्वी प्राणी होंगे,वेद का गान गाने वाले तपस्वी प्राणी होंगे,योगेश्वर होंगे,उतना हीराष्ट्र पवित्र होगा। मेरी पुत्रियां, मेरी माताए विदुषी बनकर उनके गर्भ से ऊर्ध्वा में सनतान का जन्म होगा।

गान और राग–वशिष्ठ मुनि महाराजा अपना वाक प्रकट करके जब मौन होने लगे तो शोभनी ब्रह्मचारी ने कहा कि –प्रभु ! मै ये जानना चाहता हूं कि शंख–ध्वनि का केवल आपका यही मन्तव्य है कि राजा के राष्ट्र में गान गाने वाले हों, गान कितने प्रकार के होते है, ऋषि ने वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए वर्णन किया कि गनधर्वगानं ब्रहे वाचं ब्रह्मः दीवस्ततं ब्रह्मे वाचः जल। वृतां देवं ब्रह्मः ऋषि ने कहा कि – गान गाने वाले कई प्रकार के होते है । एक गान गाने वाला जब उदान में प्राण को वृत करके गान गाता है तो वह दीपावली गान में परिवर्तित हो जता है ।वही जब शीतली प्राणयाम करके प्राण , अपान और उदान तीनो का समन्वय करके गान गाता है तो वह मल्हार–वृति राग बन जाता हे ँ रागो की बड़ी–बड़ी प्रतिभाए मानी गयी है। एक गान वह होता है , जो यज्ञशाला में विद्यमान है अपनी स्वर–ुतियां और नाभि का स्वर , इन दोनो का मिलान करता हुआ मानव स्वरो में गाता है तो गान की प्रतिभा विचित्र बन जाती है ।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि –राजा के राष्ट्र में जब इस प्रकार के विचारक पुरूष होते है, इस प्रकार के गान गाने वाले होते हैं। तो शंख–ध्वनि पवित्र बन जाती है और ध्वनित होता हुआ प्राणी उसमे लय हो जाता है । उन्होने कहा कि हमारे यहाँ बहुत से ऐसे राजा हुए है जिनके राष्ट्र में गान–विद्याा बड़ी विचित्र रही है । शोभनी ब्रह्मचारी ने कहा कि हे प्रभु मै जानना चाहता हूं कौन सा ऐसा राजा हुआ है जिसके यहाँ गान और राग की प्रतिभा रही है । उन्होने कहा कि पुष्कर के राज्य में प्रायः मल्हार राग और दीपावली गान गाने की बड़ी विचित्रता रही है । उस विचित्रता में प्राणो को ब्रह्मरन्ध्र में लाकर जब गान गाया जाता हे तो दोनो एक–दूसरे के पूरक बन करके निल्हाद मस्तिष्क में अग्नि का जब संचार होता है तो दीपक अपने में प्रकाशित हो जाते है ँ जैसे विज्ञानवेता अन्तरिक्ष में से अग्नि और जल के परमाणुओ का निमाल लेता है और उन दोनो प्रकार के परमाणुआ से भिन्न–भिन्न प्रकार के यन्त्रो का निर्माण कर लेता है , इसी प्रकार मानव भी इस प्राण के द्वारा नाना प्राकर की गान–विद्या की वृतियो का अपने में प्राप्त कर लेता है । जब ऋषि ने यह वर्णन कराया तो राम और शोभनी ब्रह्मचारी बड़े प्रसन्न हुए। (01 अगस्त 1987 ,अमृतसर)

माता का वैष्णवी रूप

जिस राजा के राष्ट्र में ज्ञान , विज्ञान विवके जब चरित्र के शरा सािपित हो जाता है ता वह राष्ट्र अपनी पराकाष्ठा पर चला जाता है । ऋषि ने जब यह वर्णन कराया तो उन्होने एक प्रश्न यह किया कि–महाराज! यहाँ वेद का वाक्य कहता है कि मातृ ब्रह्मः वृतं देवः । हे प्रभु ! आपने जो हमें वेद का पठन–पाठन कराया हे यह भी इसमे आया हे कि माता का नाम विष्णु है तो माता विष्णु कैसे कहलाती है ? ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा कि–**वह माता विष्णु कहलाती है , जो अपने कर्तव्य का पालन कीती है ँ यहाँ कर्तव्य किसे कहते है। , माता को ममता, मोह में परिणीत न रहना , अपने कर्तव्य का पालन करना है।** जैसे माता के गर्भस्थल में एक शिशु पनप रहा है , हम जैसे शिशु पनप रहे है , यह उस माता का मातृत्व महालाया जाता है । माता अपने कर्तवय को अपनी मानवीयता में ग्रहण करना प्रारमी करती है, माता वेद मन्त्रो का उदगीत गाना प्रारम्भ करती है । कि मुझे वेद ने विष्णु कहा है । मै विष्णु कैसे हू? क्योंकि विष्णु तो पालन करने वाले का नाम कहा जाता है । मै विष्णु कैसे बन सकती हू? वह अपने गर्भस्थ शिशु को शिक्षा देना प्रारम्भ करती है ।

शोभनी ब्रह्मचारी और राम ने कहा कि –प्रभु! यह तो हमने जान लिया है कि माता का नाम भी विष्णु है , परन्तु वेद का मन्त्र कहता है कि विष्णुमयं वुतं सूर्याणी गच्छतम हे पभु ! यह जो सूर्य है , यह वेद की आख्यिका में विष्णु के रूप को धारण कर रहा है । सूर्य को विष्णु क्यो कहा जाता है , उस समय महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि– हम राम! हे ऋषि कुमार! हे ब्रह्मव्रचाः! सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है तो यह अपने प्रकाश को लेकर संसार को प्रकाशित करता हैं द्यौ से ऊर्ज्वा लेता है और उसी ऊर्ज्वा को बिखेर देता हे । यह संसार इसे अपने में ग्रहण करता है । सूर्य महान है , वह पालन करता है । तेजोमयी को अपने में धारण करके संसार को प्रकाशमयी बना देता हे , ऊर्ज्वा को प्रकृति–तत्वो में रत्त कर देता है । विष्णु का अभिप्रायः है जो पालन करता है । तो सूर्य हमारा विष्णु है । विष्णू अपने में महान बना हुआ । महर्षि। वशिष्ठ ने कहा कि– हे राम यह सूर्य जो विष्णु है , यह प्रकाश को देने वाला है, उत्पादन करने वाला है, यही मानव को कन्या याग में, देवीयाग में प्रेरित कराता है तो यह सूर्य विष्णु कहलाता है ।

अन्तरिक्ष भी विष्णु है–जब ऋषि ने इस प्रकार विवेचना की तो वेद का अध्ययन करने वाले दोनो ब्रह्मचारियो ने कहा कि '' आपने जो वेद–मन्त्र अध्ययन के लिये दिया था उसमे एक और वाक्य आया हे कि अनतक्षिं ब्रह्मे वृते देवं वाचं लांकां वायु सम्भाविति वेद का मन्त्र यह कहता है कि विष्णु लोंको का अधिपति कहलाता है । विष्णु इन लोंक–लोकान्तरो की प्रतिभा में रहता है , तो प्रभु इसे हम कैसे जाने? महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि–अन्तरिक्ष को विष्णु कहते है । क्योंकि यह नाना प्रकार के लोको का अधिपति कहलाता है ँ यहाँ लोक–लोकान्तरो में गति करने वाला एक विष्णु–लोक भी होता है । जैसे इन्द्र लोक हे ऐसे ही एक विष्णु–मण्डल है जो नाना लोको मो अपने में धारण किये रहता हे । लोक–लोकान्तरो में विष्णु एक मण्डल हे जो गनधर्व और स्वाति के मध्य में स्थिर रहता है , अरून्धती के अग्रणीय भाग में विद्यमान है। विष्णु–मण्डल में नाना प्रकार का विज्ञान भी पनपता रहता है । विज्ञान अपनी आभाओ में रत्त रहता है । ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो राम और शोभनी दोनो मौन हो गये। (02 अगस्त 1987 ,अमृतसर)

विष्णु का वाहन गरूड़–महाराज विष्णु का वाहन गरूड़ माना गया हैं गरूड़ की कल्पना करना हमारे लिए असम्भव हो जाता है , परन्तु जब उसका वास्तविक स्वरूप हमारे समक्ष आना प्रारम्भ हो जाता है तो हम यह कहा करते हे कि वास्तव में उनके विज्ञान की उड़ान कितनी विशाल रही है । भगवान विष्णु महान और पवित्र कहलाये गये है । हमारे यहा विष्णु नाम परमात्मा का भी कहा गया हे । परन्तु सतयुग में विष्णु नाम एक उपाधि को प्रदान किया जाता थां। गरूड़ उसका वाहन रहता था । जैसे परमपिता परमात्मा को, एक चेतना को, एक सर्वव्यापक को विष्णु कहा जाता है। परन्तु जहाँ में यह कल्पना करने लगता हू कि ऐसे विष्णु का वाहन क्या है तो उनका ज्ञान स्वरूप होना ही है । क्योंकि गरूड़ नाम ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा को कहा जाता है । गरूड़ का अभिप्रायः क्या है हमारे यहाँ दर्शनो और वेद मन्त्रो मे गरूड़ की बड़ी मीमांसा आती है । उनकी माता उदीची प्रधाकृतम मानी जाती है । गरूड़ , विष्णु के यहाँ बड़े वैज्ञानिक को कहा जाता है । गरूड़ की उड़ान ध्रुव–मण्डल से लेकर जेठाय–नक्षत्र और आकाश गंगा तक रही है ।(28 अकतूबर 1970 ,गोहावटी)

ब्रह्मवेता

भगवान राम जब विद्यालय में अध्ययन कररहे थे तो वह प्रातःकालीन याग करते थे । याग करने के पश्चात विज्ञान की तरंगो को जानने लगते थे, क्योंकि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज महान वैज्ञानिक और ब्रह्मवेत्ता थे। ब्रह्मवेत्ता वही होता है जो आध्यात्मिक–विज्ञान के मार्ग से हो करके ब्रह्म में प्रवेश करता है, ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाता है, वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है। हमारे यहाँ ब्रह्मवेत्ता भी दो प्रकार के होते हैं : एक ब्रह्मवेत्ता वह जो जनता जनार्दन में ब्रह्म को, स्वीकार कर रहा है, एक वह ब्रह्मवेत्ता जो एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके समाधिष्ठ हो रहा है अथवा वह प्राण और मन को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है।

(1 अक्टूबर 1981, ग्राम नांगोला)

राष्ट्र की एक संस्कृति

भगवान् राम ने महाराजा वशिष्ठ मुनि से एक ही वाक्य कहा था कि प्रभु! मैं अपने राष्ट्र को किस प्रकार पवित्र बना सकता हूँ। उस समय महर्षि ने एक वाक्य कहा था कि जिस राजा के राष्ट्र में राजा की अपनी संस्कृति होती है, उस राजा का राष्ट्र पवित्र कहलाता है, यदि तुम अपने राष्ट्र को पवित्र बनाना चहते हो तो तुम्हारे राष्ट्र में एक संस्कृति होनी चाहिये।

संस्कृति उसको कहते हैं जिस वाणी में, जिस भाषा में यौगिकता हो, जो सदाचार को देने वाली हो, ऊँचे विचार देने वाली हो और जिसमें सब सम्पन्न विधाएँ हों, उसको संस्कृति कहते हैं। संस्कृति किसी व्यक्तिगत भाषा का नाम नहीं। **संस्कृति उसको कहते हैं, जिसमें मानव का चरित्र बनता है, जिसमें मानव के दुर्गुण शान्त हों, जिसमें राष्ट्र पवित्र बनता हो, सदाचार की भावनाएँ आती हों, उसको राष्ट्र–संस्कृति कहते हैं, उसमें संसार का ज्ञान–विज्ञान भी हो। ऐसी संस्कृति वह कहलाती है जो हमारे ऋषियों की परम्परा है जिसमें ऋषियों का योगत्त्व भरा हुआ है। सबसे उत्तम संस्कृति वह है जो वेदों में हैं। वेदों से अनुकरण की हुई, मन्थन की हुई जो भाषा है, उसको भी संस्कृत कहते हैं।**

इन्द्र

जो राजा अपनी राष्ट्र संस्कृति से संसार को विजय कर लेता है वह एक सौ अश्वमेध यज्ञ करता है और यज्ञ करने के पश्चात् उसको इन्द्र की उपाधि प्रदान की जाती है। मुझे पूर्व काल में ऐसे राजा इन्द्रों को देखने का सौभाग्य मिला जिन्होंने एक सौ एक अश्वमेध यज्ञ किये। महाराजा शिव ने भी अश्वमेध यज्ञ किया। शिवपुरी में शिव राजा कहलाये इसी प्रकार इन्द्र ने यज्ञ किये।

हमारे यहाँ आत्मा को भी इन्द्र कहा गया है, क्योंकि यह नाना प्रकार के स्वरूप को धारण करती है, आत्मा में ज्ञान भी है विज्ञान भी। जब यह आत्मा इन्द्र को जान जाता है, तो इन्द्र बन जाता है आत्मा ही एक समय इन्द्र कहलाता है(19 अक्टूबर 1964, मोगा पंजाब)

वाजपेयी याग की विवेचना

भगवान् राम की वह विशेषताएँ जो प्रायः उनके बाल्यकाल में मनोनीतता में प्रगट होती रहती थीं। विद्यालय में माता ब्रह्मचारी को महान् बनाने का उपदेश दे रही है, आचार्यजन नाना प्रकार का जो क्रियाकलाप है, उस क्रिया–कलाप में उसको परिणित कर रहे हैं। भगवान् राम, लक्ष्मण, गार्हपथ्य ब्रह्मचारी और भी अनेक नाना ब्रह्मचारी उनके संग थे, वे सर्वत्र ऋषि–मुनियों का भ्रमण करके माता अरुन्धती के समीप आ पहुँचे। माता अरुन्धती ने कहा ''ब्रह्मवाचो देवाः ब्रह्म वरूणाः' हे ब्रह्मचारी! तुमने कहाँ–कहाँ भ्रमण किया। तो एक ही कंठ से उन चारों ब्रह्मचारियों ने कहा कि हम राजाओं के यहाँ भी पहुँचे और ऋषि–मुनियों के समीप भी, हम विज्ञान की धाराओं में भी प्रायः रमण करते रहते हैं। देखो हमें बहुत सा अनुभव हुआ है। जीवन की धाराओं का अनुभव होना ही हमारे जीवन की एक सार्थकता कहलाती है।''

वह सायंकाल का समय था, रात्रि के काल में न्योदा में से कुछ मन्त्रों पर उच्चारण कराते हुए माता अरून्धती अपने कक्ष में और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने कक्ष में विद्यमान हो गये। परन्तु देखो अगला जो दिवस प्रातःकाल का आया, अपनी क्रियाओं से ब्रह्मचारी निवृत्त हो करके विद्यमान हो गये माता अरुन्धती और वशिष्ठ और महर्षि विश्वामित्र विद्यालय में विद्यमान हैं। माता अरुन्धती ने ब्रह्मचारियों की पंक्ति लगाई। 'यागाम् ब्रह्मवाचो देवाः' वह याग करने के लिए तत्पर हुए, परन्तु उन्होंने सन्धि के काल में जैसे प्रातःकाल और रात्रि की दोनों की सन्धि होती है। ऐसे ही ब्रह्मचारियों ने अपने कक्ष में वह सन्धि और सन्ध्या–उपासना करने के पश्चात् अग्नि के समीप जा करके अग्निहोत्र करने लगे। एक ब्रह्मचारी यजमान बन गया अन्य होता, उद्गाता और अध्वर्यु बन गये, याग प्रारम्भ होने लगा। महर्षि विश्वामित्र भी उस पंक्ति में विद्यमान हैं।

विचार चल रहा है, याग के पश्चात् ब्रह्मचारियों का कुछ विचार–विनियम होता है। हमारे यहाँ एक परम्परा मानी गयी है कि जब अग्नि का चयन करता है ब्रह्मचारी तो प्रातः कालीन अग्नि का चयन करके आचार्य से कुछ प्रश्न करता है और प्रश्नों का उत्तर आचार्यजन देते हैं। जैसे माता अपने पुत्र को लोरियों का पान कराती हुई उसके श्रोत्रों में कुछ न कुछ उच्चारण करती रहती है, अपने उद्गार देती रहती है, जिससे बालक का अन्तःकरण पवित्र बनता रहता है, माता के उन उद्गारों से बाल्य की प्रतिभा का जन्म होता है। परन्तु वही विद्यालय में क्रियात्मकता में परिणित हो जाता है। तो विचार क्या? वहाँ राम, लक्ष्मण, गार्हपथ्य, सुकेता, श्वेतकेतु, ब्रह्मचारी कबन्धी भी शिक्षा–अध्ययन कर रहे थे। ब्रह्मचारी कवन्धी, भगवान् राम, लक्ष्मण और भरत इन चारों ब्रह्मचारियों ने उपस्थित हो करके कहा कि ''भगवन्! यह वाजपेयी याग किसे कहते हैं? क्योंकि जहाँ नाना प्रकार के यागों का वर्णन आता है, वहाँ वैदिक–साहित्य में वाजपेयी याग का भी वर्णन आता है।'' तो भगवान् राम के इन शब्दों को पान करने वाले ऋषिवर वशिष्ठ ने कहा, ''हे राम! तुम वाजपेयी याग को क्यों जानना चाहते हो?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! हम इससे पूर्व जब यह रात्रि समाप्त हुई तो न्योदा में से कुछ मंत्रों का अध्ययन कर रहे थे और वह मन्त्र कह रहे थे 'वाचन्नमः वाचो वृत्तं यागः यागां भविते देवाः' यह न्योदा में से एक मन्त्र है और यह मन्त्र कहता है कि राजा और ब्रह्मचारियों को वाजपेयी याग करना चाहिये। तो भगवन्! यह वाजपेयी याग क्या है?'' तो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि ''याग तो हम कहते हैं अग्निहोत्र को, याग कहते हैं शुभकर्म को; परन्तु रहा वाजपेयी याग, प्रजा के सुखार्थ, उनके सुख के लिए, सुखद अनुभव करने के लिए सुखी और आनन्दवत बनाने के लिए हम याग करते रहते हैं। इसीलिए वाजपेयी याग का अभिप्रायः 'वाचा वाचा वाचन्नमः वाचन्ब्रह्मवाचा' **जिससे वाणी पवित्र हो जाये, उसको हमारे यहाँ वाजपेयी याग कहते हैं, इससे हमारे समय का उपयोग हो जाये और उसमें हम देखो याग करते हुए अग्नि का चयन करते रहें और अपनी वाणी को पवित्र बनाते रहें।** क्योंकि वाणी को पवित्र बनाना राष्ट्र और समाज के लिए बड़ा महान् महत्व का कार्य माना गया है।''

मेरी प्यारी माता को प्रायः वाजपेयी याग करना चाहिये। जब वह अपने बालक को लोरियों का पान कराती है तब भी, अपने बालक को सत्यवादी ब्रह्मचारी माता को बनाना है। यदि माता सत्यवादी पुत्र को नहीं बना सकती तो यह माता के पद की सूक्ष्मता होगी, यह उसकी धृष्टता का द्योतक है। महर्षि वशिष्ठ ने कहा, ''राम! मेरे विचार में तो एक पक्ष वाजपेयी याग का यह है द्वितीय जो वाजपेयी याग का पक्ष है, वह कहता है कि जब हम याग करते हैं तो याग को हिरण्याक्ष ले जाता है और हिरण्याक्ष उस याग को मेंघमंडल को परिणित करा देता है, या वृत्रासुर को उच्चारण कर दीजिये, वह वृत्रासुर में चला जाता है और वृत्रासुर उस याग की धीमी–धीमी वृष्टि कर सोम की वृष्टि कर देता है और वह जो सोम की वृष्टि है। उसके पश्चात वहाँ गऊ के बछड़े और बैल की बलि का वर्णन आता है। यह वर्णन शैली हमारे यहाँ परम्परागतों से चलती आयी है परन्तु जहाँ बलि का वर्णन है वहाँ बलि के बहुत से अभिप्रायः माने गये हैं। मैंने तुम्हें बहुत पुरातनकाल में बलि के नाना रूप, नाना गुरुत्त्व प्रगट किये थे। परन्तु बलि का अभिप्रायः यही है कि जो सोम की वृष्टि हुई है, उस सोम का हम परिश्रम से अपने पुरुषार्थ से सदुपयोग करें और जब उस सोम का सदुपयोग हो जायेगा तो यही बलि का वर्णन है। बलि का अभिप्रायः केवल इतना है कि पुरुषार्थ करना है, पुरुषार्थ का नामकरण बलि कहा जाता है।

त्रेता के काल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती प्रायः यह विवेचना करते रहते थे और विवेचना का अभिप्रायः केवल यह बना कि **सोम कहते हैं वृष्टि को, याग कहते हैं प्रतिका को जब याग करते हैं, उसका सुगन्ध रूप बन जाता है। और, जब उससे वृष्टि होती है, वह वृष्टि ही नाना प्रकार के व्यन्जनों को जन्म देती है, नाना वनस्पतियाँ उसी से पनप रही हैं।**

ब्रह्मचारियों की चर्चा

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज इस प्रकार की विवेचना करते रहते थे, यह विवेचना भी समाप्त हो गयी और देखो ब्रह्मचारी अपने–अपने कक्ष में जा पहुँचे। ब्रह्मचारी जब अपने–अपने कक्ष में जा पहुँचे तो सायंकाल के समय ब्रह्मचारियों का समूह विद्यमान हुआ। ब्रह्मचारियों में यज्ञदत्त ने कहा कि ''हे साधो! हे भरत! ये आज आचार्य ने हमें जो विवेचनाएँ प्रगट की थीं, इन गतियों की मैंने कई काल में योगियों से चर्चाएं की थीं। मेरे पिता योगेश्वर थे और वह यही गति धीमी धाराओं को वह बुद्धमंडल स्थली में ले जाते थे और सभी प्राणियों का वह यज्ञ के द्वारा दर्शन करते थे। गार्हपथ्य ने कहा कि जब मैं माता की लोरियों का पान करता तो मेरे जो पिता थे, नितांग संग रहते और वह शिक्षा देते रहते। तब मेरे जो पिता थे वह अपने पूर्वजों के जो शब्दों के साथ जो चित्र वायुमण्डल में गतियाँ कर रहे थे, उनका दिग्दर्शन करते रहते थे। बड़ा विचित्र ब्रह्मचारियों का समूह था, जो अपने–अपने अनुभव की और श्रवण की हुई चर्चा थीं, उनको वह चर्चा में ला रहे थे।'' भगवान् राम ने कहा कि ''मैंने एक समय अपने महापिता महाराजा दिलीप जी की गाथा को श्रवण किया। मेरे महापिता का नाम दिलीप था, जब वशिष्ठ और ऋषि–मुनियों के कथनानुसार वह राज्य को त्याग करके और नन्दिनी की सेवा करने लगे तो नन्दिनी के विचार और अपने विचारों का तारतम्य मिलाते थे। सिंहराज आता तो उसके विचारों में अपने विचारों की झड़ी लगाते रहते थे। तो हमारे पूर्वज हमारे

महापिता कितने वैज्ञानिक और कितने आत्मीयता में रत्त रहे हैं। महाराजा दिलीप के जीवन में यह गाथा आती है,'' भगवान् राम ने कहा, ''यह गाथा आयी कब? जब नन्दिनी हिमालय की कन्दराओं में पहुँची तो वहाँ झरना झर रहा था, जल का स्रोत्र बह रहा था। वहाँ नन्दिनी जल का पान करने लगी। हमारे महापिता उस झरती हुई जलधारा को दृष्टिपात् करने लगे, इतने में सिंहराज ने आ करके नन्दिनी पर आक्रमण किया और नन्दिनी पर जैसे ही आक्रमण हुआ, महाराजा दिलीप ने यह दृष्टिपात किया, कि यह क्या हो रहा है? पूर्वज ने कहा, हे सिंहराज! यह नन्दिनी मेरी पूज्य है। इसके पूर्व तू मेरे प्राणों को हनन कर सकता है, नन्दिनी के प्राण उसके पश्चात् हनन हो सकते हैं। वह सिंहराज चिन्तन में लग गया, ऐसा लेखनीबद्ध कहती है। दिलीप जी के विचार कहते हैं कि उन्होंने 'लेखनं ब्रह्म वाचाः' वह (सिंहराज) चिन्तन में लग गये और विचार आया कि दिलीप जी को मैंने आहार कर लिया तो राष्ट्र का और हमारा कौन रक्षक रहेगा। ओहो! 'रक्षां भविते देवाः' पहले परम्परा के काल में सिंहराज की रक्षा करने वाला कौन है ? प्राणीमात्र की रक्षा करने वाला राजा है, सिंहराज नन्दिनी को त्याग दिया और नन्दिनी को त्याग करके उसके भाव को महाराजा दिलीप जानते थे। बारह वर्ष तक उन्होंने तप किया। उनकी जब तपस्या पूर्ण हो गयी, वशिष्ठ ने याग किया, श्रृंगी के द्वारा याग कराया तब देखो यहाँ रघु का जन्म हुआ।'' राम ब्रह्मचारियों में विद्यमान हो कर अपने पूर्वजों की गाथा का वर्णन कर रहे थे। इसको हम धेनुयाग कहते हैं, धेनुयाग राजा को करना चाहिये। धेनुयाग से समाज ऊँचा बनता है। ब्रह्मचारियों की सभा विसर्जित हुई। (25 मई 1984, ग्राम धनौरा)

वास्तविक यज्ञ वेदी

एक समय भगवान् राम ने महर्षि वशिष्ठ से कहा, ''महाराज, संसार में वास्तविक यज्ञ वेदी क्या है?'' उन्होंने कहा कि ''संसार में वास्तविक यज्ञ वेदी तो यज्ञ करना है। भौतिक यज्ञ करना है उसके पश्चात् आत्मिक यज्ञ करना है। यज्ञ वेदी को अपनाना हमारा कर्त्तव्य है। हे राम। आज तुम्हें यज्ञ वेदी को अपना कर चलना है। तुम्हें अपने में सदाचार को अपनाना है और संसार को सदाचारी बना देना है। 'अहिंसा परमो धर्मः' की वेदी पर आ जाना है। जहाँ हिंसक व्यक्ति कोई न हो। इससे तुम्हारे राष्ट्र का कल्याण होगा, तुम्हारी यज्ञ वेदी की रक्षा होगी, तुम्हारी माता की रक्षा होगी, तुम्हारी संस्कृति की रक्षा होगी।'' (8 नवम्बर 1963, सरोजनी नगर, नयी दिल्ली)

कर्मों की गति

जब भगवान् राम महर्षि वशिष्ठ के चरणों में ओतप्रोत होते थे तो वे ब्रह्मज्ञान की चर्चा करते थे, राष्ट्र को ऊँचा बनाने की चर्चा करते थे। वे यह कहा करते थे कि ''प्रभु! संसार ऊँचा बनना चाहिये मानव का व्यापक कर्म मानव को धर्म में ले जाना है और सक्रीर्ण कर्म मानव को पाप में ले जाता है।'' एक समय कर्मों के ऊपर विचार–विनिमय हो रहा था। भगवान् राम कहते हैं कि ''प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव जड़वत स्थिति को भी प्राप्त रहता है अथवा नहीं?'' ऋषि वशिष्ठ कहते हैं, ''हे राम! मानव तो जड़वत स्थिति को सदैव प्राप्त होता रहता है, क्योंकि जितने प्रकृति के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं, उतना मानव जड़ता को प्राप्त होता रहता है, जड़ता आती रहती है, जितने चैतन्य के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं, परमात्मा के गुण प्रवेश कर जाते हैं, उतनी ही चैतन्यता प्राप्त होती रहती है,वह मोक्ष के मार्ग को जाता रहता है।'' यह विचार–विनिमय हो रहा था इतने में ही उनके आश्रम में एक कीड़ा क्रीडा करने लगा तो ऋषि से भगवान् राम कहते हैं कि ''भगवन्! हे ऋषिवर! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं यह जानना चाहता हूँ, यह जो कीड़ा आश्रम में क्रीड़ा कर रहा है, इसने कौन सा ऐसा कर्म किया है?'' उन्होंने कहा, ''हे राम! जब से सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है, सृष्टि का निर्माण हुआ है यह कीड़ा तीन समय इन्द्र की उपाधि को प्राप्त कर चुका है, परन्तु उसके पश्चात् भी यह आज कीड़ा है। कर्म का जो चक्र है वह इतना विचित्र है।'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! इसने कौन सा ऐसा कर्म किया?'' उन्होंने बताया ''101 अश्वमेध याग करने वाला इन्द्र बनता है। वह राजाओं का अधिराज बनता है। परन्तु राजा बन जाने के पश्चात् उसके अपने जीवन की जो धाराएं हैं, तरंगे हैं, उन तरंगों को जो महान् नहीं बना पाते। राष्ट्रीय क्षेत्र में संलग्न हो करके वह निम्न श्रेणी को प्राप्त होते हैं। जब यह उदान अपनी आत्मा को, कर्म के क्षेत्र को ले करके चलता है तो उस समय वह जो सक्रीर्णता है, वे अव्यापक जो कर्म हैं उसके साथ रहते हैं। उनके आधार पर निम्नता को प्राप्त होता हुआ वह आगे चल करके और भी निम्न बन जाते हैं। परिणाम यह होता है कि वे कीड़े बन जाते हैं, दो मुखी बन जाते हैं और अपने–अपने आंगन में क्रीडा करते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि इन्द्र की उपाधि इनकी समाप्त हो जाती है। यदि वे इन्द्र के जीवन में अपने जीवन को यागमय बनाते रहे, याग करते रहे, तो उनकी इन्द्र की उपाधि निम्नता को न प्राप्त होकर ऊर्ध्वागति को प्राप्त हो जाती है, क्योंकि यागमय हमारा जीवन होना चाहिए।'' जब उन्होंने ऐसा कहा तो राम मौन हो गये। (18 अप्रैल 1977, अमृतसर)

जिज्ञासाओं का समाधान

बाल्यकाल में जब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा भगवान् राम अध्ययन कर रहे थे तो दोनों का अध्ययन, दोनों की प्रतिक्रियाएँ, दोनों का विचार–विनिमय होता रहता था। भगवान् राम एक समय एक वेद–मन्त्र का अध्ययन कर रहे थे। भगवान् राम सायंकाल में अध्ययन कर रहे थे और अध्ययन करते–करते वह महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वार पहुँचे। वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि ''यह वेद–मन्त्र क्या कहता है? मैं इस अग्नि स्वरूप वाणी को जानना चाहता हूँ।'' महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, ''वत्स राम! विराजो, प्रायः वैसे तो मध्यरात्रि में तुम्हारा आना अशोभनीय है, परन्तु जब तुम जिज्ञासु हो तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर मैं अवश्य दूंगा।'' क्योंकि महर्षि वशिष्ठ महाराज ब्रह्मवेता थे, ब्रह्मनिष्ठ थे, मृत्यु को लांघ गये थे। भगवान् राम विराजमान् हो गये।

वशिष्ठ कहते हैं, ''हे राम। यह जो वाणी है, यह अग्नि है और वह कैसी अग्नि है? यह मानव को दाह कर देती है। मानव को चिन्तित कर देती है। अन्तःकरण को भस्मीभूत कर देती है। शक्ति के जो ज्ञान तन्तु हैं उनको भी यह शोकातुर हो करके भस्म कर देती है। परन्तु इस अग्नि का जो द्वितीय स्वरूप है, वह मानव को प्रदीप्त बना देता है। यह मानव को पुरोहित बना देती है, मानव को योगेश्वर बना देती है और मानव को व्याख्याता बना देती है। हे राम! यही जो वाणी है जिससे पुरोहित गान गा रहा है। राष्ट्र का पुरोहित बना हुआ है और पराविद्या को अपनाता हुआ अपने को महान् बनाना चाहता है। यही वाणी है जो मधुर बन जाती है और मधुर बन करके 'अहिंसा परमोधर्मः' की प्रतिभा को मानव के जीवन में धारण करा देती है। हे राम! तुम्हें यह प्रतीत है कि जब गान गाते रहते हैं तो हमारे दोनों के गान में सिंह राज हमारी वैदिक ध्वनि को श्रवण करता रहता है। वह श्रवण क्यों कर रहा है क्योंकि हमारी वाणी में मधुरता आ गयी है, हमारी वाणी में 'अहिंसा परमोधर्म' आ गया है। हिंसक प्राणी भी हमारे इन शब्दों को पान कर रहा है, क्योंकि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वाणी का उद्गान ब्रह्मा की गाथा गाने से है। दोनों का जब समन्वय हो जाता है उसी काल में सिंहराज अपनी हिंसा को त्याग देता है क्योंकि हिंसा आत्मा का लक्षण नहीं है। हिंसा मानव की आभा की कृति कहलाती है। परन्तु जब हम विचारते हैं कि 'अहिंसा परमोधर्म' मानव का स्वभाविक गुण है, प्रतिभा है, उस काल में हमें प्रतीत होने लगता है कि यह वाणी वास्तव में विशाल अग्नि है, यह दूसरों की सूक्ष्म अग्नि को अपने में धारण कर लेती है।'' (30 अप्रैल 1980, अमृतसर)

एक समय जब भगवान् राम ने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से प्रश्न किया कि यह ''प्रभु की महिमा कैसी है? तो उस समय महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि प्रभु की महिमा को वही आत्मा जान सकता है, जो प्रभु की गोद में विराजमान हो जाये अन्यथा साधारण व्यक्ति का प्रभु की महिमा जानना असम्भव है।''

(30 सितम्बर 1964, जम्मू)

त्रेता के काल में भगवान् राम का इन प्राणों के ऊपर बड़ा आधिपत्य था। वशिष्ठ और माता अरुन्धती के चरणों में विद्यमान हो करके राम प्राणों का अध्ययन किया करते थे वह प्राणों में पार्थिव आभा वाला जो प्राणायाम है, उसे किया करते थे इसीलिए पृथ्वी के परमाणुओं का उन्हें बोध था और जहाँ पृथ्वी मानो उष्ण है, अन्नाद्य उत्पन्न करने वाली है, उस पृथ्वी में वह अन्नाद्य की उत्पत्ति के लिए प्रयास करते रहते थे। (12 मार्च 1986, बरनावा)

एक समय महर्षि वशिष्ठ और अरुन्धती दोनों विराजमान् थे और उनके मध्य में भगवान् राम आ गये। वह भगवान् राम को शिक्षा देने लगे। राम ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि ''प्रभु! मैं धर्म और अधर्म को जानना चाहता हूँ। उस समय उन्होंने एक वाक्य कहा कि **मानव के द्वारा इन्द्रियों से जितनी कम तरंगें उत्पन्न होंगी उतना उसमें धर्म होगा।''** उन्होंने अनुसंधान करने के पश्चात् वर्णन कराया कि ''हे राम! जैसे एक मानव का संस्कार होता है, संस्कार

होने के पश्चात् पति–पत्नी की एक इच्छा होती है कि हम एक पुत्र उत्पन्न करें। दोनों की एक कामना होती है। जो पति और पत्नी होते हैं, उनसे एक पल में लगभग एक सहस्त्र तरंगे उत्पन्न होती हैं। परन्तु जब कोई ब्रह्मचारी का मेरी एक ब्रह्मचारिणी से नेत्रों का विवाद होता है, तो इतने समय में बिना पत्नी के दूसरी देवी और पुरुष के मन की प्रवृत्तियाँ चलायमान होती हैं, तो उसी कार्य के करने में उतने समय में ही एक सहस्त्र अधिक तरंगें उत्पन्न होती हैं और जिस काल में भोग होता है उस काल में तीन सहस्त्र तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं और यदि उस काल में उसे कोई दृष्टिपात कर लेता है तो इतने समय में चार हजार तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं।'' ऋषि ने कहा कि इसका नाम 'अधर्म' कहा जाता है। मानव का जितना शुभ कार्य होता है, सुदृष्टि होती है उतनी ही सूक्ष्म तरंगें होती हैं। जहाँ सूक्ष्म तरंगें होंगी और शुभ कर्मों में प्रवृत्ति होगी उतना ही 'धर्म' और जहाँ अधिक तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं वहाँ पाप है। बिना पाप के अधिक तरंगें उत्पन्न नहीं हो सकेंगी। जब मानव शान्त प्रभु का चिन्तन कर रहा है तो मानव के शरीर में जो आत्मा का मण्डल है, वह एक भोजन प्राप्त कर रहा है और जब प्राणी किसी दुर्गुण के लिये चलता है तो मानव के हृदय की गति प्रबल हो जाती है, जिसका कारण है कि वह 'अधर्म' के मार्ग पर चल दिया है। (26 जुलाई 1967, जोरबाग, नयी दिल्ली)

वशिष्ठ मुनि आश्रम में श्वेतकेतु मुनि

एक समय भगवान् राम ने वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में श्वेतकेतु महाराज के दर्शन किये। उन्होंने राम को पाते ही वशिष्ठ मुनि से कहा, ''महाराज! राम की बुद्धि तीव्र क्यों है? इसका मूल कारण क्या है? क्योंकि राष्ट्रीयता में इतनी तीव्रता प्राप्त नहीं होती।'' राम बोले कि ''यह मेरी माता की देन है। माता ने मुझे प्रकाश दिया है।'' माता क्या प्रकाश देती थी? विचारने से भगवान् राम ने जब यह निर्णीत किया कि माता के गर्भ में जब वह विद्यमान थे तो माता एक महान प्रकाश देती थी और वह प्रकाश क्या था ? स्वयं परिश्रम करके अन्न को प्राप्त करती थी और वह उस अन्न का पान करती थी जिससे माता के गर्भस्थल में जो बालक (राम) था, उसका निर्माण हो रहा था। क्योंकि मन की जो उत्पत्ति है, मन का जो निर्माण होता है, वह अन्न से होता है। 'अन्नादं भूतं ब्रह्मणे लोकः' क्योंकि प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में सात प्रकार के अन्न को उत्पन्न किया। माता कौशल्या अपने बालक के मन का निर्माण कर रही है, स्वयं कला कौशल कर रही है; उसके बदले जो अन्न आ रहा है उसे पान कर रही है। बालक का निर्माण हो रहा है, बालक पनप रहा है। माता के गर्भस्थल में बालक का निर्माण हो जाता है, माता का गर्भाशय विश्वविद्यालय कहलाता है। उस विश्वविद्यालय में जो ब्रह्मचारी अध्ययन कर लेता है वह अध्ययन की शैली संसार के प्राणियों से प्राप्त नहीं होती।

महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि ''यह इसकी माता की देन है। जब वे संसार में आये और माता के गर्भ से पृथक् हुए, तो माता लोरियों का पान करा रही है। त्याग और तपस्या का उपदेश दे रही है। हे बालक! तुझे महान् बनना है! हे बालक! तुझे राष्ट्र का नायक बनना है और उसमें भी तुझे ब्रह्मवेत्ता बनना है। ब्रह्मवेत्ता ऐसा कि यहाँ ऋषि–मुनि तेरे से शिक्षा लेने वाले बनें। माता की उपदेश–मंजरी चल रही है, इसी उपदेश के द्वारा ब्रह्मचारी माता की लोरियों में पनप रहा है। अपने जीवन को प्राप्त कर रहा है। माता कौशल्या यही चाहती थी कि मैं स्वयं परिश्रम करती हुई श्रम से इस बालक को अन्नाद्य प्राप्त कराऊँ। जिससे मेरा गर्भाशय पवित्र हो जाये।''

भगवान् राम ने ऋषि से कहा कि ''यह माता की देन है, जो माता ब्रह्म को जानने वाली ब्रह्मनिष्ठ कहलाने वाली है। षोडश कलाओं का ज्ञान मुझे माता ने गर्भाशय में परिणित करा दिया था।'' वे षोडश कलाएँ, जिनमें सबसे प्रथम यह छः दिशाओं की कलाएँ हैं, इसके पश्चात चार कलाएँ एक मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला, घ्राण कला है और एक वाणी 'अत्रि स्तन कला' यह भी कला कहलाती है। इसके पश्चात् हमारे यहाँ एक अग्नि कला कहलाती है, एक ऊर्ध्वा में द्यौ कला, अन्तरिक्ष कला और समद्र कला, पृथ्वी कला यह षोडश कलाएँ हमारे यहाँ विशेष कहलाती हैं। इनका माता कौशल्या ने अपने बालक को ऊर्ध्वा में पहुँचाने के लिए ज्ञान दिया था।(29 सितम्बर 1981, ग्राम धनौरा)

वशिष्ठ आश्रम की आचार–संहिता

त्रेता के काल में एक समय पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि ''जाओ, तुम वशिष्ठ मुनि महाराज की आचार–संहिता को दृष्टिपात् करके आओ।'' तो पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पा करके आचार–संहिता को दृष्टिपात् करने के लिए हम ऋषि के आश्रम में पहुँचे और देखा वहाँ ऋषि और माता अरून्धती एक आसन पर विद्यमान हैं ब्रह्मचारियों को उपदेश दे रहे हैं? उनकी प्रातःकाल की जो आचार–संहिता है, वहाँ बाल्य प्रातःकालीन सूर्य उदय होने से पूर्व अपने जीवन की आचार–संहिता को बनाना प्रारम्भ करते। ब्रह्मचारियों का जब भोज्य हुआ तो जिस पंक्ति में राजा दशरथ के राजकुमार हैं, उसी पंक्ति में द्रव्यहीन प्राणियों के बाल्य भी हैं। एक पंक्ति में एक ही प्रकार का भोज्य है, उसे आनन्द से प्राप्त कर रहे हैं। तो यह आचार–संहिता आहारों की और वह कैसा आहार था कि राजा दशरथ के यहाँ देखो जो कृषकों का अन्न था, कृषक जो भूमि में उद्योग कर रहा है, वह ब्रह्मचारियों के लिए प्रसन्नता से लिया जा रहा है। वह विद्यालय में भी अपनी आचार–क्रिया–कलापों में अपने अन्न को उत्पन्न करते रहते थे। उस अन्न को पान करके जब आचार्य और ब्रह्मचारी अपने में कहता 'चक्षु में शुन्धामि, प्राणोमे शुन्धामि' सब प्राण और हृदय–इन्द्रियाँ, सब पवित्र बनती चली जाती हैं। यह राष्ट्र का क्रिया–कलाप है। मुझे तो ऐसा स्मरण है कि ऋषि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मचारी थे, ओजस्वी और ब्रह्मवेत्ता थे उनकी पत्नी अरुन्धती ब्रह्मचारिणी, ब्रह्म का उद्घोष करने वाली थीं।

अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आदेशानुसार जब मैंने आचार–संहिता को दृष्टिपात किया तो रात्रिकाल में वहीं वाटिका में विद्यमान हो करके दृष्टिपात किया कि ब्रह्मचारी अपने कक्ष में विद्यमान हो गये हैं। अध्ययन करने के पश्चात् निद्रा की गोद में चले गये और माता अरुन्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में ब्रह्म की चर्चा करने लगे। वह ब्रह्म का उद्गीत गा रहे हैं। माता अरुन्धती कहती हैं, ''भगवन्! इन ब्रह्मचारियों को हम सुयोग्य कैसे बना सकते हैं?'' वशिष्ठ कहते हैं, ''देवी! हमारा सुयोग्य बन जाना ही, ब्रह्मचारियों का सुयोग्य बन जाना है। यदि हमारा जीवन सुयोग्य नहीं बनेगा तो हम ब्रह्मचारियों को सुयोग्य नहीं बना सकते। हम ब्रह्मचारियों को महान् नहीं बना सकते। इसी प्रकार की चर्चा करते–करते वह लोक–लोकान्तरों की उड़ानें उड़ने लगे और दोनों की प्रतियोगिता होने लगी।'' अरुन्धती कहती कि ''महाराज यह वशिष्ठमंडल क्या है?'' उन्होंने कहा, ''वशिष्ठमंडल अपने लोकों में अपनी माला में वशिष्ठ है, जैसे माला में सुमेरू होता है। इसी प्रकार यह सुमेरू कहलाता है,'' ''और महाराज अरुन्धतीमंडल क्या है?'' उन्होंने कहा, ''अरुन्धतीमंडल का उस वशिष्ठ–मंडल से समन्वय होता है और दोनों की छाया का, जब बालक माता के गर्भ में होता है तो देखो नाभि केन्द्र से उसका समन्वय होता है और ब्रह्मरन्ध्र में उसकी छाया आती है, तरंगें आती रहती हैं, जैसे सूर्य की किरणे होती हैं।'' इस प्रकार मैंने दोनों का सम्वाद दृष्टिपात किया। उन्होंने कहा, ''प्रभु! लोक–लोकान्तरों की माला कैसे बनाई जाती है?'' उन्होंने कहा, ''देवी! जैसे आचार्य ब्रह्मचारियों की माला बना लेता है और ब्रह्मचारियों के क्रिया–कलापों की माला बना करके एक सूत्र में पिरो देता है, ज्ञान के सूत्र में, इसी प्रकार लोक–लोकान्तरों की माला बनी हुई होती है।'' यह वाक् शान्त करके दोनों अपने–अपने कक्ष में जा करके विद्यमान हो गये। तब मैं भी अपने आश्रम को चला आया।(13 मार्च 1986, लाक्षागृह बरनावा)

वशिष्ठ द्वारा मनसा पाप का प्रायश्चित

एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यमान थे। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, राम, शोभनी ब्रह्मचारी, सुकेता, जो विज्ञान में भारद्वाज के शिष्य कहलाते थे, ब्रह्मचारी कबन्धी, रोहणीकेतु और स्वाति, सब एक पंकित में विद्यमान होकर अपने में अध्ययन कर रहे थे तो वशिष्ठ जी ने लक्ष्मण को अनायास ही दंडित किया। दंडित इसलिये किया कि ऋषि के हृदय में एक मनसा पाप की प्रवृति उत्पन्न हुई जिसके प्रभाव से लक्ष्मण ने वेद के अध्ययन में स्वर और व्यंजन का प्रतिपादन नहीं किया। उनसे मनसा पाप हुआ, परन्तु लक्ष्मण ने उसे क्रियात्मक रूप में, साकार रूप में प्रकट किया। कई दिवस हो गये, वह पाठ उन्होंने लक्ष्मण से पुनः उच्चारण करवाया और उससे पूर्व यह कहा कि ''तुमने इसका अध्ययन नहीं किया। लक्ष्मण ने कहा कि नहीं, भगवन् ! मैंने किया है।'' जब वह अध्ययन करवाने लगे तो वेद का पाठ व्यंजनों के सहित था।

रात्रि के काल में वशिष्ठ मुनि महाराज अपनी पत्नी से बोले कि ''देवी ! आज मेरे हृदय में मनसा पाप आया, इसका क्या कारण है? क्या तुमने मुझे कोई अन्नादि ऐसा तो नहीं दिया, जिससे मेरे हृदय में मनसा पाप आ जाये?'' अरुन्धती ने कहा कि ''नहीं, प्रभु ! ऐसा नहीं है। आपके हृदय में कुवृत्ति,

आपके तप में सूक्ष्मता आने से आयी है।'' आचार्यों की वृत्तियों में तपश्चर्या होनी चाहिये। ब्रह्मचारियों के मध्य में मनसा पाठ कराया जाना चाहिये। महर्षि ने छः माह तक मौन रहकर, ब्रह्म का चिन्तन करते हुए उसका प्रायश्चित किया। देखो, **मौन रह करके, वाणी से अन्तर्मुखी हो करके प्रभु का चिन्तन करने से प्रायश्चित होता है।** महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने छः माह तक तप किया। एक वेद–मन्त्र होता है, जिसको ऋणीता मन्त्र कहते हैं। उस ऋणीता मन्त्र के द्वारा हम प्रभु के प्रति अपनी अन्तरात्मा की वार्ता को अपनी ध्वनियों से ध्वनित करते रहें। उस वेद–मन्त्र का पठन–पाठन करने के पश्चात् उन्होंने अपने को तपोमय बनाया। उसके पश्चात् ब्रह्मचारियों की पंक्ति में विद्यमान हो करके पुनः से वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन कराया।(2 अगस्त 1987, अमृतसर)

ऋषि वशिष्ठ मुनि महाराज एक वर्ष में छः माह तो वनस्पतियों का, पत्तों का आहार करते। महर्षि उन्हीं, वशिष्ठ महाराज ने भगवान् राम को अपने चरणों में विराजमान् कराकर विश्व का अधिपति बनाया और संसार में शान्ति को स्थापित किया।(24 अप्रैल 1965, रामकृष्ण पुरम्)

वशिष्ठ आश्रम में भारद्वाज ऋषि

राम का प्रातःकाल का क्रियाकलाप बड़ा विचित्र था। प्रातःकालीन अपनी सारी शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त होकर, अन्तर्मुखी होकर प्रभु में ध्यानावस्थित होना उनका नित्यप्रति का क्रियाकलाप था। शोभनी ब्रह्मचारी भी विष्णु की याचना करते हुए वेद का प्रातःकालीन अध्ययन करते थे। सभी ब्रह्मचारी विद्यालय में इसी प्रकार रत्त रहते थे। उनके यहाँ एक समय महर्षि भारद्वाज, महर्षि श्वेतकेतु और महर्षि पनपेतु मुनि महाराज का आगमन हुआ। ऋषियों एवं ब्रह्मचारियों ने उनका स्वागत किया। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि ''तुम्हारे विद्यालय में जहाँ विद्या में गति है, संलग्नता है, ब्रह्मवर्चोसी है, यह सब तो होना चाहिये परन्तु विज्ञान भी होना चाहिये, क्योंकि विज्ञान अपने में अनूठा है।'' उन्होंने कहा, ''बहुत प्रिय!'' महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने क्रियात्मक वेद–मन्त्रों के आधार पर यह सिद्ध किया कि तुम अहिल्या को जानो। हमारे वैदिक साहित्य में अहिल्या नाम रात्रि का है, अहिल्या नाम पृथ्वी का भी है। अहिल्या चन्द्रमा की कान्ति को भी कहते हैं। परन्तु अहिल्या का अभिप्रायः केवल इतना है कि 'अहिल्यां ब्रहे वृत्तम् प्रवाहः आहिल्यं ब्रह्मस्ताहः', अहिल्या ज्ञान–विज्ञान की प्रतीक है। जिससे ज्ञान–विज्ञान उपलब्ध होता है, उसी का नाम अहिल्या है।

भगवान् राम का घ्राण–इन्द्रिय पर बड़ा आधिपत्य रहता था। जब इन्द्रियों का एक–दूसरे पर आधिपत्य हो जाता है तो घ्राण–इन्द्रियों से पृथ्वी के परमाणुओं की सुगन्धि का मिलान करते हुए, उसके खनिज पदार्थों को अथवा उनमें कौन सा तत्त्व विद्यमान है, वह उसको जान लेता है। **भगवान् राम में यह विशेषता थी कि वह पृथ्वी के रजों की सुगन्ध से ही यह निर्णय ले लेते थे कि पृथ्वी के गर्भ में में इतनी दूरी पर इतना खनिज है और इस भूमि पर इतना अन्न उत्पन्न हो सकता है।**

भगवान् राम ने इस विद्या का अध्ययन बाल्यकाल में ही किया था। एक समय ब्रह्मचारी यज्ञदत्त, ब्रह्मचारी व्रेतकेतु, शोभनी और राम, यह चारों एकान्त स्थली में एक वेद–मन्त्र के ऊपर विचार कर रहे थे और वेद–मन्त्र कह रहा था कि 'अहिल्यं वृहे वरणाः सम्भवः वृत्ते घ्राणाः इन्द्रश्चं प्रवाह अश्चं देवः अश्वश्वति दिव्यः' इस वेद–मन्त्र का अध्ययन करते हुए यह विचार लिया कि अहिल्या पृथ्वी को कहते हैं और अहिल्या का समन्वय घ्राण–इन्द्रियों से रहता है। उन्होंने साधना की। ब्रह्मचर्य काल में उन्होंने इस प्रकार का अध्ययन किया और प्रत्येक इन्द्रियों पर जय करते हुए, विजय को प्राप्त होते हुए उन्होंने अपनी घ्राण–इन्द्रियों के ऊपर बल दिया।

प्राण–शक्ति ऐसी एक सत्ता है, जब घ्राण–इन्द्रियों में प्राण और अपान दोनों का योगी मिलान करता है तो उसे पृथ्वी की गन्ध से यह प्रतीत हो जाता है कि इस गन्ध में कौन सा खनिज अपनी पुकार कर रहा है, अपनी ध्वनि में ध्वनित हो रहा है। सब ब्रह्मचारी अपने में इस प्रकार अनुसन्धान करते रहते। ब्रह्मचारियों के मध्य में यह विषय उसी का होता है, जिसमें उसके संस्कार और उसकी प्रबलता का एक विशेष बल होता है।

मुझे ऐसा स्मरण आता है कि वह प्राणायाम भी करते थे। जिसके अन्तःकरण के चित्त में जो भी संस्कार होते थे उसके आधार पर वह विद्या को अपनाने के लिये तत्पर हो जाते थे। आचार्य ब्रह्मचारी को जब यह शिक्षा देता है तो दीक्षा में यह निर्णय करा देता है कि यह ब्रह्मचारी किस विद्या का अधिकारी है। यह ब्राह्मण है या क्षत्रिय है या वैश्य प्रवृत्ति का है। चारों वर्णों का निर्माण आचार्य किया करता है। त्रेता के काल में विद्यालयों में आचार्य वेद के आधार पर यह निर्णय दिया करते थे। (2 अगस्त 1987, अमृतसर)

महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज अपने शिष्यों को अपने अनुभव के वाक्य प्रकट करते थे, उद्गार देते थे। इन्होंने भगवान् राम जैसे शिक्षार्थी को संसार में बनाया। (8अगस्त 1970, जोरबाग, नयी दिल्ली)

वशिष्ठ की शिक्षा प्रणाली

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ प्रातःकालीन ब्रह्मविद्या का प्रसार होता, वेद–मन्त्रों के ऊपर अध्ययन होता। मध्य दिवस में विज्ञानवेत्ता विज्ञानशाला में विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करते थे। वह क्रियात्मक शिक्षा थी। राम के काल में ऐसे–ऐसे यन्त्र विद्यमान थे जिनसे वह विज्ञानशाला में अनुसंधान करते थे। महर्षि भारद्वाज और ब्रह्मचारी कबन्धी के सहयोग से उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था, जिसे 'अहिल्या प्रतिभा वृत्त यन्त्र' कहते थे। पृथ्वी को अहिल्या कहते हैं। उस यन्त्र में यह विषेशता थी कि पृथ्वी के गर्भ में दो–दो, तीन–तीन योजन के निचले भाग से उसमें चित्र दृष्टिपात आने लगते थे। उन चित्रों को प्रायः क्रिया में लाना, खनिजों को जानना, कितनी दूरी पर कौन सा खनिज है, कौन सी सूर्य की किरण कहाँ प्रवेश करके जल को किस प्रकार तपायमान कर रही है? उसी जल को जब वह अपने में ग्रहण करती है तो वाहनों में किस प्रकार का जल नृत्य करता रहता है?

(1 अगस्त 1987, अमृतसर)

भगवान् राम महर्षि वशिष्ठ मुनि के यहाँ विद्याध्ययन करते थे। वहाँ उन्होंने तीस वर्षों तक अध्ययन किया। महर्षि वशिष्ठ ने भगवान् राम के जीवन के, ब्रह्मचारियों के जीवन के, तीन भाग बनाये थे। सबसे प्रथम दस वर्षों के समय पर्यन्त उन्हें वचन, प्रतिज्ञाओं और शिष्टाचार में परिणित कराया। उन्होंने दस वर्षों तक धनुर्विद्या तथा दस वर्षों तक विज्ञान की शिक्षा का अध्ययन किया था और उसको क्रियात्मक रूप में लाये।

त्रेता के काल में वशिष्ठ मुनि के आश्रम में विज्ञानशाला थी, जिसमें माता अरून्धती और महर्षि वशिष्ठ दोनों अध्ययन कराते थे। लोक–लोकान्तरों के ऊपर उनका विशेष अध्ययन रहता था। वे पृथ्वी के ऊपर भी अनुसंधान करते थे। वे पृथ्वी के कणों को घ्राण के द्वारा, सुगन्ध के द्वारा भगवान् राम को यह निर्णय कराते कि अमुक स्थल पर भूमि के रज का स्वादन तीखा होता है, अग्रे होता है, किरकिरा होता है। नाना प्रकार के जो इस पृथ्वी के कणों का रसास्वादन होता है, उसको रसना के अग्र भाग पर निर्णय करा देते थे। उनका अध्ययन चलता रहता था कि मैं पृथ्वी को जानूँ।

(18 नवम्बर 1973, खेतडी राजस्थान)

भगवान् राम जब वशिष्ठ के द्वारा अध्ययन करते थे तो प्रायः माता अरून्धती उन्हें नैतिक शिक्षा दिया करती थी और वह याग इत्यादियों में परिणित रहती, क्योंकि माता अरून्धती का जीवन भी बड़ा अद्वितीय रहा है। उनका जीवन ब्रह्मवादिनी का रहा है और वे लोक–लोकान्तरों की प्रायः चर्चा करती रही हैं और धनुर्याग में उनका बड़ा सहयोग रहा है। तो मेरे प्यारे ! मुझे स्मरण है कि उनका जीवन कितना महान् और पवित्रता में परिणित रहा है। तो देखो, वह 'अमृतम्' देखो, एक समय प्रातःकाल भगवान् राम, माता अरून्धती और वशिष्ठ, और भी ब्रह्मचारी, भ्रमण करते हुए, बेटा ! भंयकर वनों में पर्वतों की छाया में पहुँचे। देखो गन्ध को ही धारण करते हुए भगवान् राम ने कहा कि यह जो पर्वतों की अनुद्यति है, अथवा इसकी तलहटी है, इसमें अमुक खनिज विद्यमान है। उन्होंने पृथ्वी के कणों की सुगन्ध से घ्राण के द्वारा उसको जाना। तो मेरे प्यारे ! देखो, मुझे स्मरण है, उन्होंने, पृथ्वी के गर्भ में जाने का प्रयास किया। उन्होंने, बेटा ! उस खनिज को जानने का प्रयास किया। तो मुनिवरो ! वह खनिज, मानो कुछ दूरी पर जाकरके उन्हें प्राप्त हो गया। मेरे प्यारे ! घ्राणेन्द्रियाँ अपने में बड़ी अद्वितीय क्रियाकलाप करती रहती हैं। माता अरून्धती ने कहा, ''राम ! तुम बडे प्यारे सखा हो, मानो यह उत्तर दो कि तुमने यह कैसे जाना है?'' उन्होंने कहा, ''मातेश्वरी ! 'घ्राणां भवे वृतप्रहिकृतिः' तुम्हें यह वेद–मन्त्र की आख्यिका स्मरण होगी और वेद–मन्त्र यह कहता है कि देखो, 'अमृतं ब्रहेजब्रहे' यह घ्राणेन्द्रियों का विषय है और घ्राण का समन्वय पृथ्वी से है और पृथ्वी में सर्वत्र खनिज विद्यमान रहते हैं। यह पंचमहाभौतिक जो गमन

करने वाला अमृत है, वह उसमें नृत्य करता रहता है और वही हमारी घ्राण–इन्द्रियों में गमन करता रहता है। तो उसको हम इस प्राण के माध्यम से घ्राणेन्द्रियों से जानने का प्रयास करें।'' भगवान् राम के इन वाक्यों को श्रवण करके माता अरुन्धती बड़ी प्रसन्न हुई और उन्होंने कहा, ''धन्य है!'' उनके विद्यालय का यह प्रमुख छात्र अपने में अनुसंधान करता रहता था।(3 अक्टूबर 1992, रामप्रस्थ, गाजियाबाद)

त्रेता के काल में जब भगवान् राम वशिष्ठ के द्वार पहुँचे। विद्यालय में जब प्रवेश कराये गये तो भगवान् राम को वशिष्ठ ने प्रथम याग की प्रक्रिया वर्णित कराई। राम ने उस प्रक्रिया को ले करके, उसी याग को ले करके उन्होंने षोडश कलाएं जो मानव में, सुषुप्ति में रहती हैं उनको अपने जीवन में जागरूक करने का प्रयास किया। भगवान् राम बेटा! बारह कलाओं के जानने वाले कहलाते थे और वह बारह कलाएं, जिनको धारण करने वाले भगवान् राम ने राष्ट्र, समाज और अपने जीवन को महान् बनाने का प्रयास किया। (20 सितम्बर 1989, ग्राम धनौरा)

आज मुझे वह दृश्य स्मरण है, जब भगवान् राम गुरु के चरणों में ओतप्रोत होकरके उनके चरणों को छुआ करते थे और गुरु आशीर्वाद देता था ''आयुष्मान् भव! हे पुत्र! तुम आयुष्मान रहो! तुम्हारी आयु दीर्घ हो!'' जब यह सुन्दर आशीर्वाद दिया जाता है तो उस शिष्य की आयु दीर्घ होती है, गुरु शिष्य में विवेक होता है, दोनों में प्रीति होती है। बेटा! जब इस प्रकार की प्रीति होती है तो क्यों न यह समाज ऊँचा बनेगा। क्यों न यहाँ ब्रह्म–विद्या आयेगी। ब्रह्म–विद्या तब नहीं आती जब यहाँ अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया जाता। मेरे प्यारे महानन्द जी ने आधुनिक काल की चर्चा करते हुए कहा कि आज यहाँ गुरुओं का अपमान किया जाता है। जब गुरु अपने शिष्य का अपमान करता है या शिष्य गुरु का अपमान करता है तो यही अपमान वाले संस्कार अन्तरिक्ष में विराजमान हो जाते हैं और संसार में अपवित्रता आ जाती है। (19 अक्टूबर 1968, मोगामण्डी)

दीक्षान्त उपदेश

जिस समय भगवान् राम अपने विद्यालय को त्यागने लगे, तो वहाँ दीक्षान्त उपदेश महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का हुआ। मैं आज वह विचार देने के लिए आया हूँ कि हमारे यहाँ दीक्षान्त में विचार देता हुआ ऋषि क्या कहता है। भगवान् राम जब अपनी विद्याओं से उपरामता को प्राप्त हो गये तो उपरामता को प्राप्त होने के पश्चात् ऋषि ने कहा, ''हे राम ! तुम्हारा विद्यालय का काल समाप्त हो गया है।'' उन्होंने कहा, ''प्रियतम! आओ, मैं अब तुम्हें दीक्षान्त उपदेश देना प्रारम्भ करूँगा। तुम्हें दीक्षान्त उपदेश को अपने में श्रवण करते हुए अपने क्रियाकलाप में वह लाना है। राम और श्वेताम् ऋषि महाराज 'श्वेताम् भावुस्तेः' '' मेरे पुत्रो! देखो कुछ ब्रह्मचारी और भी उनके साथ थे जिन्हें विद्यालय उस दिवस त्यागना था। वे सब ऋषि–चरणों में ओत–प्रोत हो गये। चरणों की वन्दना करते हुए, उन्होंने कहा, ''प्रभु! आज हम इस विद्यालय को त्याग रहे हैं। हमारा विद्या का काल उपरामता को प्राप्त हो गया है। तो हे प्रभु ! हमें आज्ञा दीजिये कि हम क्या करें?'' माता अरून्धती भी विद्यमान हैं, महर्षि वशिष्ठ भी विद्यमान हैं और एक आसन पर महर्षि विश्वामित्र भी विद्यमान है। कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि लोमश और काकभुषुण्ड जी भी उनके आश्रम में आ पहुँचे। पाँचों ऋषि 'ब्रह्मवाचं ब्रह्मलोकां ह्रण्यवृताः' अपने में आसन लगा करके विद्यमान हो गये।

माता अरुन्धती का उपदेश

सबसे प्रथम दीक्षान्त में जो उपदेश हुआ उसमें माता अरुन्धती ने कहा, ''हे ब्रह्मचारियो! आज तुम अपने इस विद्यालय को त्याग रहे हो। परन्तु इस विद्यालय में तुम्हें यह प्रतीत है कि तुमने कौन–कौन सी विद्या का अध्ययन किया है? संसार में तीन ही प्रकार की विद्या कहलाती हैं, ज्ञान, कर्म और उपासना। तीन ही विद्याएं हैं। इन तीनों प्रकार की विद्या में संसार बिन्दु से विकास में परिणित होता रहता है। यह तुम्हें प्रतीत है। ब्रह्मवेत्ताओं ने इसके ऊपर विचार–विनिमय किया है अन्वेषण किया है। ये जो वेद में **त्रयी विद्या** का वर्णन आता है। **त्रयी विद्या** कौन सी है जो मानव के अन्तःकरण को प्रकाशित करती है, जो मानव को मानवीयता से चिन्तन में लगा देती है? आज वही **त्रयी विद्या** कहलाती है। इस **त्रयी विद्या** का अध्ययन प्रायः तुमने किया है, परन्तु देखो इन **त्रयी विद्याओं** में ज्ञान, कर्म और उपासना का वर्णन आता है।''

माता अरुन्धती ने कहा कि ''ज्ञान किसे कहते हैं। यह तुमने विचार लिया होगा कि जो तुम संसार में दृष्टिपात करते हो अथवा अपने नेत्रों से जो तुमने दृष्टिपात किया है, उसको जानने का नाम ही ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान की विवेचना करते हुए ऋषि कहता है कि मानव जो वाणी से उद्घोष करता रहता है और वाणी से सदैव सत्य का आश्रय ले करके, वह उद्घोष करता रहता है। वाणी की प्रतिभा में एक स्रोत्र बहता रहता है, इसको हम सत्य कहते हैं। वह आनन्द के मार्ग पर हमें ले जाता है। उसे हमारे यहाँ ज्ञान कहते हैं। जैसे एक मानव ने एक प्राणी को दृष्टिपात किया है। प्राणी को दृष्टिपात करके सोचा कि उसमें प्राण है और प्राण के ऊपर जब अन्वेषण करता है तो विचार आता है प्राण के साथ अग्नि विद्यमान है विचार करता है कि अग्नि के पश्चात् जल विद्यमान रहता है। जल के ऊपर जब अन्वेषण करता है तो पृथ्वी के कण उसे दृष्टिपात आने लगते हैं। जब वह दृष्टिपात करने लगता है पृथ्वी के कणों को तो उन कणों में इस ब्रह्माण्ड की रचना का विधान में निहित रहता है। तो जब ये इतनी वस्तुओं को दृष्टिपात कर लेता है, तो वह ज्ञान के सागर में चला जाता है। तो ज्ञान मानोविज्ञान ही कहलाता है।'' वो जब ज्ञान में चला जाता है तो माता अरुन्धती कहती हैं, उसे हम ज्ञान कहते हैं, ''उसे हम ज्ञान की प्रतिभा में परिणित करते हुए, हमारे यहाँ अध्ययन की परम्परा में सबसे प्रथम ज्ञान आता है। ज्ञान को जब हम अपने में धारण करते हैं, तो हमारे हृदय में एक अनुभूति होने लगती है। एक प्रकाश की अनुभूति हो करके हम अपने में यह स्वीकार करलें की ज्ञान तो बड़ा अनन्तमयी है। प्रत्येक वस्तु को दृष्टिपात करके उसके गर्भ में जाना ही ज्ञान है; परन्तु यह बड़ा आश्चर्य भरा विचित्रत्त्व माना गया है।''

माता अरुन्धती ने कहा कि ''मैं सदैव अध्ययन करती रही हूँ और इसके ऊपर हम गमन करते हैं, सबसे प्रथम ज्ञान और ज्ञान के पश्चात् क्रिया–कलाप अथवा कर्म आता है। हम कर्म किसे कहते हैं। हम दृष्टिपात करते हैं, जिनको हमने ज्ञानयुक्त हो करके जान लिया है, उसको क्रिया में लाना चाहते हैं। जैसे हमने सूर्यलोक को दृष्टिपात किया है, अब सूर्य को हम क्रिया में लाना चाहते हैं, अपने में धारण करना चाहते हैं, सूर्य कहाँ–कहाँ, क्या–क्या क्रिया–कलाप कर रहा है? परन्तु वह सूर्य कैसा है, कैसी उसकी नाना प्रकार की किरणें हमारे समीप आ करके हमें क्रियात्मक बना देती हैं? प्रातःकाल सूर्य उदय हुआ है, उदय होकरके वह प्रकाश देता है और अपनी, क्रियाओं में रत्त होने लगता है। नाना प्रकार के कर्मों में प्रवृत्त हो करके उसी में सायंकाल तक रत्त रहता है। सूर्य का जो अनुपम प्रकाश है वही तो हमें कर्मों में लाता है। उस सूर्य की किरणें चन्द्रमा को अमृत देती हैं, शीतलता देती हैं। वे ही सूर्य और चन्द्रमा दोनों की किरणें बन करके समुद्रों में प्रवेश करती हैं। समुद्रों में जब प्रवेश किया, तो वहाँ से जलों का उत्थान हो गया; वही सूर्य की किरणें द्यौलोक में पहुँचीं और द्यौ–मण्डल से प्रकाश ले करके मेंघों का उत्थान किया जिससे नाना प्रकार की वृष्टि हुई और पृथ्वी पर नाना प्रकार के व्यंजनों का जन्म हो गया। परन्तु उसको हम क्रिया में लाना चाहते हैं। उन्हें हम क्रिया में कैसे लाएं? अनुसन्धान करते हैं, विचार करते हैं कि हमें ज्ञान तो हो गया है, परन्तु ज्ञान के पश्चात् जब हम क्रियात्मक में उसको लाना प्रारम्भ करते हैं कि जैसे मेंघों का उत्थान हुआ। समुद्रों में बड़वानल नाम की अग्नि का प्रवेश हो गया है।''

मुझे स्मरण आता रहता है, भगवान् राम और गोस्वानभानुऋषि महाराज के पुत्र वाचकेतु दोनों को एक समय आचार्य ने समुद्र के तट पर प्रस्थान कराया और कहा, ''तुम अपने वाहन में विद्यमान हो करके समुद्र के तट पर चले जाओ।'' वेद का अध्ययन करने से यह प्रतीत हुआ कि समुद्र बड़वानल नाम की अग्नि हमें प्रतीत होती रहती है। उस बड़वानल नाम की अग्नि को क्रिया में लाने का प्रयास करो। भगवान् राम और ऋषि कुमार दोनों ने समुद्र के तट पर छः माह तक अध्ययन किया। अध्ययन करके पुनः अपने आश्रम में पहुँचे। वहाँ ऋषि ने जब यह प्रश्न किया कि ''क्या तुम उसको क्रियात्मक करके लाये?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! बड़वानल नाम की अग्नि जैसे मानव के शरीर में क्रोध से अग्नि का चलन आ जाता है, क्रोधाग्नि ज्ञान की प्रतिभा को नष्ट कर देती है, इसी प्रकार जब समुद्रों में बड़वानल नाम की अग्नि का प्रहार होता है, बड़वानल नाम की अग्नि का चयन होने लगता है। वह देखो समुद्रों की शान्तता को और देखो समाज की स्थिरता को, वायुमंडल के वैभव को अपने में धारण कर लेती है। इसी प्रकार भगवन् ! हमें तो कुछ ऐसा प्रतीत हुआ है।'' जब मुनिवरो ! देखो राम और ऋषि कुमार ने ये वाक्य प्रकट किये तो ऋषि प्रसन्न हो गये।

माता अरुन्धती ने कहा, ''हे ब्रह्मचारियो ! यह वाक्य तुम्हें स्मरण होगा; इसीलिए मानव को अपने जीवन को क्रियात्मक में लाने के लिये अनुसन्धान करना है, विचार करना है कि जो हमने ज्ञान पाया है, उस ज्ञान को हम क्रिया में लाना चाहते हैं, क्रिया में कैसे आता है ? एक मानव ने यह दृष्टिपात किया कि हमने देखो योग को दृष्टिपात किया। योग है, अब योग को क्रियात्मक में लाना चाहते हैं। योग दो प्रकार के रूपों में विभक्त हो जाता है एक हठ के प्रति, हठ में योग विभक्त हो गया है; एक राज–योग में विभक्त हो गया। देखो साधना के क्षेत्र में प्रवेश मानव जब अपने को क्रिया में लाना प्रारम्भ करता है, तो दो विभागों में वे ही योग परिणित हो गया है, और विभक्त प्रतिक्रियाओं में हमारे यहाँ ध्यान–योग में इसे राज–योग कहते हैं, एक हठ योग में जैसे हठ–योग प्राणायाम का है। प्राण को कैसे हम सुसज्जित करना चाहते हैं और साधना में हम कैसे प्राण को लाना चाहते हैं। हम अपान और उदान का दोनों का समावेश करना चाहते हैं तो कैसे हो सकता है? तो ये सब हठ योग प्रदीपन का हठ योग में परिणित होना कहा जाता है। परन्तु एक वह योग जिसमें शान्त मुद्रा में विद्यमान हैं, जो स्वाभाविक क्रिया–कलाप हो रहा है प्रकृति का, प्रकृति अपने में ध्रुवा–ऊर्ध्वा में गति कर रही है; कहीं ध्रुवा में है, कहीं ऊर्ध्वा में है, जो स्वतः गति कर रही है। प्राण की इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को अपने में ध्यानावस्थित करने का नाम ध्यानयोग कहते है, तो मेरे पुत्रो ! जब इसको मानव करता है तो इससे विवेक की प्रतिभा का जन्म होता है, विवेक जागरूक हो जाता है। जब मानव क्रियात्मक में अपने जीवन को ले जाता है।''

माता अरून्धती दीक्षान्त में अपने उपदेश दे रही थीं उच्चारण कर रही थीं, ''मानव को क्रिया में प्रवेश करना है। क्रिया में 'ब्रह्मवाचप्रवेलोकाम्' '' वेद की विदुषी कहती हैं, ''हे ब्रह्मचारियो ! ब्रह्मवेत्ताओं ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं दीक्षान्त के ऊपर अपना उपदेश दूँ। परन्तु देखो द्वितीय हमारे यहाँ ज्ञान, कर्म और उपासना कहे जाते। उपासना का अभिप्रायः क्या है ? उपासना हम किसे कहते हैं ? परमात्मा की उपासना करना ही हमारे लिये सर्वोपरि कहा जाता है। उस उपासना का अभिप्रायः क्या है। हमें प्रत्येक वस्तु की उपासना करनी है। उपासना का अभिप्रायः यह है कि जैसी वस्तु है वैसा ही उच्चारण करना, यह उसकी उपासना कही जाती है। यदि जैसे कोई वस्तु है नहीं यदि हम अपनी विडम्बना से उसकी ऊँची–ऊँची कल्पना करते हैं, तो यह उसकी पूजा नहीं कहलाती। **पूजा का अभिप्रायः यह है कि जैसी कोई वस्तु है, उसको उसी रूप में स्वीकार करना वह उसकी पूजा का एक अप्रेत कहा जाता है।''**

उपासना में गान–विद्या

मुनिवरो, देखो मानव अग्नि की पूजा करना चाहता है, अग्नि को अपने में धारण करना चाहता है। अग्नि के तेजोमयी जीवन को अपने में ला करके वह गान गाना चाहता है। गान गाता रहता है, उपासना के द्वार पर पहुँचा, तो गान गाने लगा। अग्नि का गान गाता है प्राण के स्वरूप में, प्राण और अग्नि का, वायु और अग्नि का दोनों का परस्पर सम्बन्ध रहता है। जब वह गान गाने लगता है, गान गाता हुआ वाणी भी अग्नि का स्वरूप बन करके रहती है। अग्नि का जब हम सम्मिलान 'व्रतीलोकाम्' समन्वय करते हैं, तो दोनों का सूत्र बन करके गान रूप में सफलता को प्राप्त हो गया। गान भी कई प्रकार के होते हैं, उपासना काण्ड में हम जब गान गाते हैं तो गान में कहीं दीपावली–गान कहा जाता है, कहीं रूद्र–गान कहा जाता है, कहीं खेंचरी गान कहा जाता है। इसके भिन्न–भिन्न प्रकार माने गये हैं। जैसे गान के रूप में हमारे यहाँ माला पाठ का गान कहलाता है, जटा–पाठ, घन–पाठ ये सब गान कहलाते हैं। परन्तु जब गान के क्षेत्र में मानव प्रवेश करता है तो वह उपासना करता है। उपासना किसकी कर रहा है ? जैसी जो वस्तु है, उसको वैसा ही स्वीकार करना, यह उसका गान कहा जाता है, यह उसकी उपासना कही जाती है। जैसे हम अग्नि की पूजा करना चाहते हैं तो हम अग्नि को अपने में धारण करना चाहते हैं, हम तेजोमयी बनना चाहते हैं। तो अग्नि के रूपों में हमें वो अग्नि स्वीकार करनी होगी।

अग्नि को जब हम ब्रह्म–अग्नि बना करके उसकी पूजा करते हैं, तो ब्रह्म के समीप जाते हैं, वेद के गान गाने लगते हैं, परमात्मा के समीप जा करके अपने को हम धन्य स्वीकार करते हैं। वही गान जब हम 'रूद्रो भागं ब्रह्मवाचहो देवम्' उस अग्नि को हम वैश्वानर नाम की अग्नि स्वीकार करते हैं, तो वैश्वानर नाम की अग्नि बन करके हम विश्व को अपना मित्र बना लेते हैं। जब, मुनिवरो! देखो गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करते हैं,तो गृह को अपने वशीभूत करके हम गृह का शोधन कर देते हैं। वहीं गार्हपथ्य नाम की अग्नि का जब हम पूजन करना प्रारम्भ करते हैं, तो विद्यालयों को पवित्र बना देते हैं।

ब्रह्मचारी अपने में गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करके आचार्य के चरणों में विद्यमान हो करके उसकी पूजा करता है और पूजा के उपरान्त आचार्य उसे निगली हुई विद्या को प्रदान कर देता है। ये सब अग्नि की पूजा कही जाती हैं। परन्तु अग्नि का अभिप्रायः यह है जो काष्ठों में रहने वाली अग्नि है, उस अग्नि से हम याग करते हैं। इसी अग्नि के द्वारा हम अपने को महान् बना करके पवित्र बना लेते हैं। उस अग्नि को हम जैसी अग्नि है हम उसी प्रकार से भिन्न–भिन्न प्रकार की अग्नियों को स्वीकार करने का नाम उसकी पूजा कही जाती है। इसलिये पूजा का अभिप्रायः यह है कि जैसी जो वस्तु है उसको वैसा ही स्वीकार करना है। जैसे एक मानव देखो जल की पूजा करना चाहता है, जल की पूजा करने का अभिप्रायः क्या है ? वह प्राण वर्धक है, वह प्राणों को देने वाला है। रुग्ण हो रहा है, कंठ में जल नहीं रहा है, तो वो जल को अपने में पान करना चाहता है अपने में धारण करता है, जब वह पान करता है तो देखो उसके कंठ में माधुर्य–पान आ जाता है, उसके कंठ में एक शीतलता आ जाती है। वह अपने को स्वीकार करता है कि मैं शीतल बन गया हूँ। पवित्रता में अपने को पनपा रहा हूँ। अब जल को उसी रूप में स्वीकार करके उसे हम अपने प्रयोग में लाये, तो यह उसकी पूजा कही जाती है।

पूजा का अभिप्रायः मैंने तुम्हें कई काल में निर्णय किया था। परन्तु आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है जो सर्वत्र पूजाओं का वर्णन करूँ। परन्तु देखो अभिप्राय यह है कि हम प्रत्येक मानव अपने माता–पिता की पूजा करना चाहते हैं तो माता–पिता अमरनाथ में परिणित करें उसको नाना प्रकार का सुख देने का प्रयास करें तो यह उसकी पूजा कही जाती है। पूजा का अभिप्रायः क्या है ? सुख को देना ही उसकी पूजा है।

मुनिवरो! देखो परमात्मा की हम पूजा करना चाहते हैं, परमात्मा के हम समीप जाना चाहते हैं तो प्राण का हमें निरोध करना होगा। प्राण का निरोध करते–करते वह हमें ब्रह्म के समीप ले जाता है वह प्राणत्त्व, क्योंकि 'प्राणां भविते वहो स्वन्धना वाचान्नां सूत्रो भवितेस्वतो रूद्राः' क्योंकि प्राण एक सूत्र है संसार का, ब्रह्माण्ड का सूत्र बना हुआ है। हम उस सूत्र को अपने में सूत्रित करें तो वह, परमात्मा से हमारा मिलान करा सकता है।

माता अरून्धती ने कहा, ''हे ब्रह्मचारियो ! मैंने यह सूक्ष्म सा उपदेश तुम्हें दिया, यह दीक्षान्त है कि तुम ज्ञान, कर्म और उपासना में रत्त हो करके अपने में आचार्य की पूजा करो। **आचार्य की पूजा का अभिप्रायः क्या है, जो आचार्य ने निगली हुई विद्या प्रदान की है अथवा तुम्हारे में भरण कर दी उस विद्या को अपने में स्वीकार करके और उस विद्या से अपने आचरणों, अपनी मानवीयता को ऊँचा बनाना ही देखो आचार्य की पूजा कही जाती है।** पूजा का अभिप्रायः यही है।'' माता अरून्धती यह उच्चारण करके मौन हो गयी। जब मौन हो गयी तो ब्रह्मचारी भी अपने में आश्चर्यचकित हो गये कि हमें तो मातेश्वरी ने ज्ञान देकर उपासना के ब्रह्माण्ड का स्पष्टीकरण कराया है। यह तो विशाल वन है जिस विशाल वन में हमें मातेश्वरी ने पहुँचाया है। हमें मातेश्वरी की पूजा करनी होगी। सबसे प्रथम उसी की पूजा में हमें रत्त रहना है, क्योंकि उसी के वाक्यों का पान करके हमें तपस्वी बनना है, अपने को तपस्या में परिणित कर देना है। क्योंकि संसार का इतना वैभव है संसार की इतनी सक्रीर्णताएं हैं, उन्होंने सक्रीर्णता के ऊपर कोई अपना प्रकाश नहीं दिया है। उन्होंने ऊर्ध्वा में व्यापकता का एक उपदेश दिया है। ब्रह्मचारी मौन हो गये और मातेश्वरी माता अरून्धती भी मौन हो गयी।

तो मुनिवरो! अब दीक्षान्त देने के लिए महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज उपस्थित हुए और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपने विचारों की भूमिका बनाई और भूमिका रख करके कहा कि ''हे ब्रह्मचारियो ! आज तुम्हें देवी अरून्धती ने दीक्षान्त दिया। जब से तुम विद्यालय में प्रवेश हुए हो, वह यागों का चयन कराती रही हैं। ब्रह्म–याग, विष्णु–याग, रुद्र–याग देखो और भी नाना प्रकार के याग जैसे अश्वमेधयाग है, वाजपेयी याग और देखो महा–अग्निष्टोम यागों के वर्णन में देवी लगी रहती थीं। जिस काल से तुमने विद्यालय को अपनाया है, विद्यालय की भूमि में तुमने अपने ज्ञान को उपार्जन करने का प्रयास किया है। माता अरून्धती यागों का चयन कराती रही हैं। परन्तु देखो आज मैं इसलिये उपस्थित होकर अपने विचार देने के लिए तत्पर हूँ, क्योंकि तुम इस विद्यालय को त्याग रहे हो और विद्यालय को जब ब्रह्मचारी त्यागता है तो ब्रह्मचारी को दीक्षान्त उपदेश दिया जाता है और जिसमें आचार्य अपना मन्तव्य प्रकट करा देता है। ब्रह्मचारी उसको अपने में धारण करके ब्रह्मवर्चोसी का पठन–पाठन करने लगता है। मुझे स्मरण आता रहता है। ब्रह्मचारियो ! एक समय मैं भ्रमण करता हुआ सोमकेतु राजा के राष्ट्र में पहुँचा। वहाँ देखो केवल मुनि भारद्वाज अपने विद्यालय में दीक्षान्त उपदेश दे रहे थे। जब मैं राजा के द्वार पर पहुँचा,

तो राजा ने कहा कि ''महाराज! भारद्वाज गोत्र में आज दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा है, और विद्यालय में मुझे निमन्त्रित किया है। हे प्रभु ! आप भी मेरे साथ गमन कीजिये।'' तो जब मेरा विद्यालय में, कजली वनों में प्रवेश हुआ तो वहाँ दीक्षान्त उपदेश चल रहा था। महर्षि सोमकेतु महाराज के पश्चात 'मगलम् प्रवहे लोकाम् वृभीव्रताम्' वशिष्ठ मुनि जब आसन पर उपस्थित हुए तो ऋषि–मुनियों ने उनका स्वागत किया। वशिष्ठ कहते हैं ''जब मेरा स्वागत हुआ तो मैं मौन हो गया। देखो मैं बिना निमन्त्रण के जा पहुँचा। उसमें मेरे स्वागत का महत्त्व नहीं था, परन्तु जब दीक्षान्त उपदेश प्रारम्भ हुआ, तो भारद्वाज मुनि ने मेरा नामकरण उदित किया कि प्रभु! आप दीक्षान्त उपदेश प्रारम्भ कीजिये। तो वहाँ विज्ञान के ऊपर दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा था, दीक्षा दी जा रही थी। तब मैंने एक उपदेश दिया था उस काल में और यह कहा था कि हे ब्रह्मचारियो! तुम ब्रह्मचरिष्यामी बनो। जब आचार्य ने, मेरे से पूर्व उच्चारण करने वालों ने देखो, ब्रह्मचरिष्यामी का उपदेश दिया तो मुझे उसके ऊपर अपना कुछ वाक्य उच्चारण करना था। मैंने कहा, हे ब्रह्मचारियो ! एक शब्द संसार में है जिसको कहते है 'ब्रह्मचरिष्यामी'। देखो 'ब्रह्म' और 'चरि' क्योंकि 'ब्रह्म' नाम परमपिता परमात्मा का, जो सर्वत्र सबका नियन्ता, निर्माण करने वाला है और 'चरि' 'ब्रह्मवाचे', देखो चरि से निर्माण करता है। निर्माण करने वाला ब्रह्म, हृदय को चरि से सर्वत्रता का निर्माण करता है। जितना यह ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है, वो चाहे सूर्य–मण्डल है, चाहे द्यौ है, चाहे नाना प्रकार की आकाश गंगाएं हैं, आकाश गंगाओं में जितना भी लोक–लोकान्तरवाद है, जितना भी सूर्य, चन्द्र आदि लोक–लोकान्तर उनका जो निर्माण है, उसके निर्माण का यदि कोई स्रोत है तो वो चरि है परन्तु देखो उनको जो भिन्न–भिन्न रूपों में परिणित कर रहा है वो प्राण सूत्र कहलाता है, वो मनस्तत्त्व है, प्राण–सूत्र है और प्राण–सूत्र भिन्न–भिन्न रूपों में उसको गति करा रहा है। परन्तु देखो जब मुझे यह भान हुआ जब मैंने अपने योगावस्थित हो करके इसको दृष्टिपात किया, तो मुझे दीक्षान्त उपदेश देने में बल प्राप्त हुआ और मैंने बलपूर्वक कहा हे ब्रह्मचारियो ! तुम्हें दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा है कि तुम ब्रह्मचरिष्यामी बनो। ब्रह्म की पूजा करने वाला अथवा ब्रह्म को क्रियात्मकता में लाने वाला हो जाता है। परन्तु जब तक ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, ब्रह्मचरिष्यामी नहीं बन पाता और तब तक पूर्णता को प्राप्त नहीं होता है। ब्रह्मवचोसी, ब्रह्मचरिष्यामी वेद का ऋषि कहता है तो मैंने कहा, हे ब्रह्मचारियो ! तुम्हें इस ब्रह्मचरिष्यामी को अपना करके विज्ञान के क्षेत्र में रमण करना है, क्योंकि विज्ञान का क्षेत्र भी ब्रह्मचरिष्यामी है। जितना भी अणुवाद, परमाणुवाद, जितना भी तरंगवाद को जानना है, उसको जानना सब चरि का सूत्र कहलाता है, वो चरि का रूप कहलाया जाता है। परन्तु वो जो परमाणु में गति दी जा रही है, वह जो गतिमान हो रहा है, वही प्राण–सूत्र उसमें पिरोया हुआ है। इसीलिए 'प्राणतम् ब्रह्मवाचे' इसी को तुम्हें जानना है कि यह प्राण भिन्न–भिन्न रूपों में दृष्टिपात आता रहता है। कहीं यही प्राण ऊर्ध्व के रूप में कहीं ध्रुवा के रूप में, कहीं यही प्राण अक्षरों में है, जैसा वेद का सूत्र कहता है कि यही प्राण कहीं अपान में दृष्टिपात हो रहा है, कहीं उदान में दृष्टिपात हो रहा है, कहीं समान में, कहीं देखो नाग, देवदत्त, कूर्म, कृकल और धनंजय में दृष्टिपात आता रहता है। यह दस रूपों वाला जो प्राण है, यही प्रकृति के कणों को विभक्त कर देता है और विभक्त करके इसको तुम्हें जानना ही विज्ञान में प्रवेश करना है। जिसने दसों रूपों के प्राणों को जान लिया है वह ब्रहवर्चोसी कहलाता है। प्रकृति के चरि के कणों को विभाजन करने वाला 'प्रतो ब्रह्मवाचाह' मनस्तत्व माना गया है, परन्तु दोनों का समन्वय होते ही वह उसकी (प्राण) विभक्तता में परिणित हो जाता है, तो वही विज्ञान नाना प्रकार के विज्ञान के रूपों में ब्रह्माण्ड अणुओं में दृष्टिपात आने लगता है।''

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपना उपदेश देकर यह कहा कि ''तुम्हें वैज्ञानिक बनना है, प्रत्येक वस्तु को विज्ञान में लाना है जैसे आपो जल है, आपो ही माता के गर्भ में प्रवेश होते ही एक बिन्दु में एक शिशु प्रवेश होता है, देवताजन सर्वत्र शिशु को अपनाकर ही उसका निर्माण करते हैं और वह एक मनुष्य के रूप में परिणित हो जाता है, वही नाना प्रकार की योनियों के रूपों में योनित हो जाता है। वही भिन्न–भिन्न रूप में दृष्टिपात आता रहता है।'' वशिष्ठ मुनि बोले कि ''तब मैंने यह उपदेश दिया और यही दीक्षान्त उपदेश मैं तुम्हें दे रहा हूँ कि तुम्हें वैज्ञानिक बनना है, तुम्हें विज्ञान के रूप में प्रवेश करना है, तो तुम्हें पृथ्वी से ऊपर उत्थान करते हुए चन्द्रलोक में, चन्द्रलोक से उत्थान करते हुए देखो बुध में, बुध से उत्थान करते हुए तुम मंगल में, मंगल से उत्थान करते हुए स्वाति में, स्वाति लोकों से उत्थान करते हुए तुम कृमित लोकों में, कृमित से उत्थान करते हुए महतिलोकों में, महतिलोकों से उत्थान करते हुए ब्रेतकेतु लोकों में, ब्रेतकेतु लोकों से उत्थान करते हुए सूर्य–लोकों में, और सूर्य–लोक से उत्थान करते हुए ध्रुव–लोक में तुम्हें गति करनी है।''

यह उपदेश दे करके महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में मौन हो गये और मौन होने से पूर्व पुनः एक वाक्य कहा ''तुम्हें अपने में ब्रह्मचरिष्यामी बन करके राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना है, क्योंकि यह उपदेश जो मैंने विज्ञान का दिया है, इस विज्ञान के साथ–साथ यदि तुम्हारा राष्ट्रीयकरण प्रजा का सुन्दर नहीं होगा, तो यह विज्ञान, यह लोकों में यातायात तुम्हारा निष्फल हो जायेगा, क्योंकि यह यातायात उस काल में प्रिय लगेगा जब तुम्हारे राष्ट्र में शान्तता का, चरित्रता का जन्म हो जाएगा और यदि राष्ट्र में तथा समाज में चरित्रवाद और प्रतिभा की महानता का जन्म नहीं होता तो इस विज्ञान को देखो ऊर्ध्वा में जाने से राष्ट्र–समाज को लाभप्रदता प्राप्त नहीं होगी। यह केवल विज्ञान का दुरुपयोग हो करके तुम्हारे यहाँ रक्त भरी क्रांति का अवशेष बन करके तुम्हारा समाज अग्नि के मुख में परिणित होता चला जायेगा।''

वशिष्ठ जी यह उच्चारण करके मौन हो गये और मौन हो करके माता अरून्धती ने कहा ''ब्रह्मचारियो ! आज तुम्हें यह दीक्षान्त उपदेश दिया है इसके ऊपर तुम्हें विचार करना है। अपने जीवन के क्रिया–कलाप, जो तुमने विद्यालय में अपने में धारण किये हैं, उन्हें क्रिया में लाने के लिए तुम्हें आगे प्रयास करना है। देखो प्रातःकाल याग करना है, अपने राष्ट्र की प्रतिभा में याग को लाना है, परन्तु याग के पश्चात् वाजपेयी याग को यागों में परिणित करके तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाओ, जिससे याग की उत्पत्ति हो करके नाना प्रकार के खनिज पदार्थों को जान करके तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाते रहो, ऐसी मेरी सदैव कामना रहती है। हमारी यह कामना है। अब तुम्हारा विद्यालय का पाठ समाप्त हो गया।''

जब भगवान् राम ने इन वाक्यों को श्रवण किया तो राम ने एक प्रश्न किया कि ''हे भगवन् ! क्या हम वैज्ञानिक बनें या हम राष्ट्रीयवेत्ता बनें। हम कौन सी प्रतिभा को अपनाने के लिए तत्पर हों।'' महर्षि वशिष्ठ मुनि ने कहा कि ''तुम्हें सर्वत्र रूपों में अपने को ले जाना है, क्योंकि यदि योग नहीं होगा तो तुम्हारा जीवन महान् नहीं बनेगा। यदि तुम्हारे में ब्रह्मचर्य नहीं होगा तो राष्ट्र को ऊँचा नहीं बना सकते। यदि तुम्हारे में विज्ञान नहीं होगा तो राष्ट्र में तुम गति नहीं कर सकोगे और यदि तुम्हारे यहाँ ज्ञान, कर्म और उपासना नहीं होगी तो विद्वत् समाज को जन्म नहीं दे सकोगे।''

महर्षि वशिष्ठ यह वाक्य उच्चारण करके पुनः मौन हो गये। परन्तु राम ने पुनः यह प्रश्न किया कि ''भगवन् ! क्या राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी होना अनिवार्य है?'' महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, ''हे राम ! यदि राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी नहीं रहेगा तो राजा का राष्ट्र आज नहीं तो कल विडम्बनामयी, अज्ञानमयी समाज बन करके अग्नि के मुख में चला जाएगा। परन्तु देखो बुद्धिजीवी प्राणी ही समाज को ऊँचा बनाते हैं, समय–समय पर राष्ट्र को ऊँची दिशा प्रदान कर देते हैं, और राष्ट्र में राजा और प्रजा दोनों मिल करके अश्वमेध याग में परिणित हो करके राष्ट्र को ऊँचा बनाते हैं।'' भगवान् राम ने कहा कि ''हे प्रभु ! योग से राष्ट्र का क्या सम्बन्ध है?'' उन्होंने कहा, ''योग से तुम अपने में क्या अनुभव करते हो?'' उन्होंने कहा, ''हम योग से योगाभ्यास 'याम्भविते देवाः'।'' तो वशिष्ठ मुनि बोले कि ''योग से राष्ट्र का यह सम्बन्ध है कि जितने योगाचार्य होंगे, उतना ही राजा का राष्ट्र, स्वस्थ प्रिय और महान् बनेगा। यदि स्वास्थ्य ऊँचा नहीं रहेगा रुग्ण–समाज रहेगा, तो राजा के राष्ट्र में सदैव चिन्ता बनी रहेगी। राम! देखो, राजा के राष्ट्र में इसीलिये योगाभ्यासी प्राणी होने चाहियें, जो योगाभ्यासी प्राणी होते हैं, उनके द्वारा विद्यालय में ब्रह्मचारियों को प्राण की क्रियाओं में रत्त कराया जाता हैं, जिससे वह ब्रह्मचारी अपने में चरि का पालन कर सके, परमात्मा का चिन्तन कर सके। परन्तु देखो वह सुखद को अनुभव करता है और **जब तक मानव का शरीर स्वस्थ रहता है, तब तक देखो वह अपने में आनन्द का भोग करता है।''** राम ने कहा, ''हे प्रभु ! जैसा हमने बाल्यकाल से विद्यालय में युवाकाल तक याग किया है। आगे हमारे याग का क्या तात्पर्य बन जाता है?'' उन्होंने कहा, ''हे राम ! देखो याग की जो प्रक्रियाएँ हैं, गृह में प्रवेश हो करके उन्हें क्रिया में लाना बहुत अनिवार्य है। जब पति–पत्नी गृह में याग करते हैं, वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा कही जाती है, उस याग के करने से तुम्हारे हृदय में पवित्रता आ जाती है। राजा के राष्ट्र में प्रजा में महानता आती है, अग्नि के मुख में जब हम आहुति प्रदान करते हैं, तो वह अग्नि उसे निगल कर देवताओं को प्रदान कर देती है और देवता समय–समय पर वृष्टि करते हैं तो नाना प्रकार का अन्न, खाद्य और खनिज पदार्थों का जन्म हो जाता है। इसीलिए देखो राजा को, प्रजा को,

सभी को याग करना चाहिये। क्योंकि संसार में जब माता के गर्भस्थल में शिशु प्रवेश होता है तो माता याग करती है, पिता याग करता हैं जब दोनों याग करते हैं 'स्वाहा' करते है, वही स्वाहा शिशु के रूप में बाल्य के रूप में आता है, वही बाल्य जब स्वाहा की प्रतिभा का गान गाता हुआ वैज्ञानिक बन करके पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करता है, नाना प्रकार के खनिजों को जान करके, धातु पिपाद को जान करके, वैज्ञानिक विज्ञान राष्ट्र का प्राण कहलाता है, राष्ट्र को, प्रजा को, ऊँचा बनाने वाला वह विज्ञानमयी स्वतः क्रिया—कलाप कहलाया जाता है।''

जब वशिष्ठ ने इस प्रकार का उपदेश दिया तो राम मौन हो करके पुनः बोले कि ''प्रभु! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु देखो विज्ञान और लोकों में जाने का हमारा क्या तात्पर्य है ? यदि हम समाज को ऊँचा बना लें, राष्ट्र को चरित्रवान् बना लें, महान् बना लें , तो अणु और परमाणुओं के मिलान की हमें क्या आवश्कता है?'' तब उन्होंने कहा कि ''हम अपनी मानवीयता को ऊँचा बनाने के लिए, राष्ट्र को विकासदायक बनाने के लिए नाना प्रकार के अणु और परमाणुओं का निर्माण करते हैं, यन्त्रों का निर्माण करते हैं, संग्राम होने लगें, या देखो एक राजा दूसरे पर आक्रमण करने लगे, या यदि आक्रमण भी न करे तो मानव का स्वभाव है ऊँची—ऊँची उड़ान उड़ना और उस ज्ञान—विज्ञान को अपने में क्रियात्मकता में लाने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है। उसकी प्रक्रिया में लगा रहता है, क्योंकि मानव सदैव नई नवीनता जो एक ज्ञान है, विज्ञान है, जो एक—रस रहने वाला है, उसको अपने में लाना चाहता है, अपने में समेटना चाहता है। समेट करके प्रभु के विज्ञान में रत्त रह करके प्रभु को प्राप्त होना चाहता है।'' वशिष्ठ मुनि महाराज के इस प्रकार का उपदेश देने पर दीक्षित ब्रह्मचारी मौन हो गये। (15 सितम्बर 1984, आकलपुर)

गुरू भी संसार में वह होता है जो सदाचारी बन करके अपने शिष्यों को सदाचारी बनाने का आदेश देता है। वह गुरू देखो वशिष्ठ कहलाता है और वह शिष्य राम कहलाता है जो गुरू के नियन्त्रण में रह कर उसके आदेशों का पालन करता है। मुनिवरो ! मैं तो कहा करता हूँ कि हे भगवान्! तू राम जैसी आत्मा को उत्पन्न कर, जब राम जैसी आत्मा उत्पन्न हो जाएगी, तो वशिष्ठ मुनि भी कोई न कोई अवश्य उत्पन्न हो जाएगा। हे प्रभु! यदि तू संसार का कल्याण चाहता है, राष्ट्र का कल्याण चाहता है, प्रजा में शान्ति स्थापित करना चाहता है तो प्रभु! यहाँ राम जैसी आत्मा को उत्पन्न कर। जो अपने राष्ट्र के ऐश्वर्य को त्याग कर के हे प्रभु ! ऋषियों के आपके बताए हुए आदेशों में संलग्न रहे। (17 अप्रैल 1964, जम्मू)

वशिष्ठ द्वारा दशरथ का मार्ग—दर्शन

एक समय राजा दशरथ ने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से प्रश्न किया कि मैं राष्ट्र का पालन करूँ तो कैसे करूँ ? उस समय उन्होंने कहा था कि कोई भी राष्ट्र का या किसी का पालन तब कर सकता है जब उसके द्वारा त्याग होगा और आत्मिक ज्ञान होगा।(15 मई 1962, मालवीय नगर, नयी दिल्ली)

राष्ट्रीय चिन्तन

त्रेता काल में जब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में एक सभा हुई। सभा में नाना ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्म जिज्ञासु राष्ट्र के राजर्षि भी विद्यमान थे। उसमें यह विचारा गया कि समाज में रूढ़ि आ गयी है। समाज में रूढ़ि नहीं आनी चाहिये, रूढ़ियों से एक मानव विलासिता का जीवन बना लेता है। विलासिता का जीवन मानव का नहीं बनना चाहिये, क्योंकि विलासिता के जीवन में रूढ़ियाँ बढ़ जाती हैं, अग्नि प्रचण्ड हो जाती है। यह अग्नि प्रचण्ड नही करनी चाहिये। सभा में ऋषि विचारों का याग और अग्निहोत्र का याग करने लगे। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का जब याग समाप्त हो गया तो उनसे यह कहा कि समाज में विलासिता की रूढ़ि बन रही है और यह रूढ़ि नहीं रहनी चाहिये। इस रूढ़ि की समाप्ति के लिए प्रयत्न होना चाहिये, जिससे मानव भयक्रर अग्नि से शान्ति को प्राप्त हो जाए। विश्वामित्र को यह परामर्श दिया कि तुम अयोध्या में प्रवेश करो और रघुवंश के राजकुमारों को ऊँचा बनाओ, जिससे उनमें विलासिता की रूढ़ि नहीं रहनी चाहिये, क्योंकि अयोध्या में भी विलासिता की रूढ़ि आ गयी थी। विलासिता की रूढ़ि को समाप्त करने के लिए, आत्मा की रूढ़ि को समाप्त करने के लिए, जीवन की रूढ़ि को समाप्त करने के लिए उन्होंने भगवान् राम को ऊँचा बनाने के लिए, अग्रसर करने के लिए विचार बनाया। महर्षि विश्वामित्र ने वन में याग की रचना की और याग से रूढ़िवाद को समाप्त करने लगे। (7 मार्च 1979, बरनावा)

विश्वामित्र द्वारा दशरथ—पुत्रों को शिक्षा

त्रेता के काल में वशिष्ठ मुनि महाराज ने और भी नाना ऋषि—मुनियों ने महर्षि विश्वामित्र को यह आज्ञा दी कि राजकुमारों को धनुर्विद्या प्रदान करायें। तो दंडक वन में जाकर उन्होंने लगभग चार वर्ष तक उन्हें धनुर्याग का अध्ययन कराया, परीक्षा कराई। उसके पश्चात् ब्रह्मचारियों ने अपने गृह को प्रस्थान किया। महाराज विश्वामित्र, वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में प्रविष्ठ हुए। वशिष्ठ मुनि को उन्होंने बताया कि ''अपने विद्यालय के 71 ब्रह्मचारियों को मैंने धनुर्विद्या प्रदान की है।'' महात्मा वशिष्ठ ने कहा कि ''हे विश्वामित्र ! तुम्हें कुछ काल में इनकी परीक्षा लेनी है, मैं तुमसे एक बात जानना चहता हूँ कि अयोध्या नरेश के चारों पुत्रों ने कौन—कौन सी विद्या अध्ययन की है, उसे मुझे निर्णय कराइये।''

महर्षि विश्वामित्र ने बताया कि ''चारों राजकुमारों में राम और लक्ष्मण धनुर्विद्या में पारायण हैं परन्तु भरत और शत्रुघ्न दूसरों की आज्ञा पालन करने में तथा ब्रह्म—विद्या में विशेष हैं। भरत जी में एक विषेशता है कि वह राष्ट्र का पालन करने में तथा त्याग में बड़े पारायण हैं। उनकी त्याग—प्रवृत्ति रहती है, मैंने उनके मस्तिष्क का अध्ययन किया है कि वह संग्राम के योग्य नहीं है। शत्रुघ्न पृथ्वी के मापदण्ड में विशेष माने गये हैं।'' वशिष्ठ जी ने कहा, ''बहुत प्रियतम! क्या आपने उनके मस्तिष्कों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया है?'' उन्होंने कहा ''वेद का ऋषि ऐसा कहते हैं कि जिस विद्यालय में जो आचार्य हो उसे आयुर्वेद का ज्ञान होना चाहिये। आयुर्वेद में इस प्रकार की विद्या आती रहती है कि जो मस्तिष्क को दृष्टिपात करते हुए यह निर्णय दे देते हैं कि यह बाल्य इस योग्य है, इनका यह विषय बन सकता है।''

महर्षि विश्वामित्र राष्ट्रीय, धनुर्वेद और आयुर्वेद के क्रियाकलापों में बड़े पारायण थे। महर्षि वशिष्ठ का सबसे प्रथम विषय ब्रह्म का रहा है और त्याग पूर्वक, नम्रतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर अध्यापन का क्रियाकलाप करते हुए वह ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे। **ब्रह्मवेत्ता वह होता है, जिसकी प्रवृत्ति ब्रह्म में स्थिर रहती है और वह ब्रह्म में अपने को स्वीकार करता है तथा उसे अभिमान नहीं रहता।** उसे द्रव्यपति भी नहीं बनना है, क्योंकि द्रव्यों का स्वामी उसका सखा है। वह उस परमपिता परमात्मा के ही आश्रित बन जाता है। वह क्रोध से भी दूर रहते थे क्योंकि क्रोधाग्नि को जन्म देने वाला, उग्र—चित्त के मंडल का निर्माण करने वाला यह प्रभु है तो उसे क्रोध की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह तो स्वयं तेजोमयी है, उग्रक्रिया वाला है। इस उग्रक्रिया ने ही तो संसार को जन्म दिया है, इसी से इस सृष्टि का निर्माण हुआ है तो उग्रता की अब आवश्यकता नहीं है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का मार्ग श्रेष्ठ मार्ग था। वह ज्ञान और प्रयत्न में रत्त रहते थे। विश्वामित्र अपने में महान् थे और महर्षि वशिष्ठ अपने में महान्। माता अरुन्धती ऋषि की रक्षा करने वाली थी। वह वेदों का अध्ययन करती, तपस्या करती, स्वतः ब्रह्मवेत्ता बन करके लोक—लोकान्तरों को निहारती रहती थी, उनमें गमन करती थी। यह उनका क्रिया कलाप था।

यहाँ विद्यालय का अभिप्रायः यह होता है कि आचार्यों के संरक्षण में रहना, जहाँ शारीरिक और बौद्धिक, दोनों प्रकार की शिक्षाओं का प्रावधान होता है। शारीरिक और बौद्धिक दोनों को ले करके आध्यात्मिक उन्नति करना, यह ब्रह्मचर्य आश्रम में ही अपने में अपनेपन को अवधान करता रहा है। मुझे वह काल स्मरण है जब महर्षि विश्वामित्र के यहाँ राम, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण इन सब विद्याओं का अध्ययन करते थे। उन विद्याओं का अध्ययन करते हुए वह कहीं परमाणुवाद में चले जाते थे, कहीं अणुवाद में रत्त रहते थे, सर्वत्र विज्ञान की शिक्षा को प्रायः वह प्राप्त करते रहते। मुझे वह सब देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महर्षि विश्वामित्र के यहाँ ब्रह्मचारियों का एक वर्ष के पश्चात् परीक्षा, उनका एक 'व्रत्तम्' और दीक्षान्त विचार—विनिमय होता। अभिप्रायः यह है कि प्रत्येक वर्ष की दीक्षा ब्रह्मचारी को आचार्यों के मध्य में प्राप्त होती रही। उनके क्रियाकलाप उनकी धाराएं बड़ी विचित्रता में सदैव रत्त रही हैं। (20 फरवरी 1992, लाक्षागृह, बरनावा)

महात्मा विश्वामित्र चारों राजकुमारों सहित ब्रह्मचारियों को धनुर्याग का अभ्यास कराते रहते थे। अस्त्रों—शस्त्रों में अभ्यस्त होना, अस्त्रों—शस्त्रों का निर्माण करना और उनका प्रहार करना। अस्त्रों—शस्त्रों का जब अभ्यास कराया जाता है, तो देखो, वो महानता में परिणित होता है। विचार आता रहता है, उनके यहाँ ब्रह्मचारी प्रातःकालीन याग करते थे और याग करने के पश्चात् उनकी शिक्षा प्रारम्भ होती थी। वे शिक्षा क्या देते कि परमाणुओं का मिलान

करना और अग्नि–तत्त्व को जानना और गुरुत्त्व को उसमें मिश्रण करना और तरल–तत्त्व की उसमें पुट लगाना। ये तीन परमाणु कहलाते हैं और उनकी देखो वायु में गति देना और आकाश में भ्रमण कराना, इस प्रकार की शिक्षा वे प्रायः प्रदान करते रहते। महात्मा विश्वामित्र राजकुमारों और ब्रह्मचारियों के सहित देखो, शिक्षा देना प्रारम्भ कर रहे थे और वे महात्मा वशिष्ट मुनि महाराज की आज्ञा से शिक्षापान कर रह थे। 'अमृतां भूः वर्णा ब्रह्मः' विद्यालय में जब भी धनुर्याग का अभ्यास कराया जाता है तो वहाँ ब्रह्मचारी होता है और, मुनिवरो ! अस्त्रों–शस्त्रों का अभ्यास होता है और धर्मज्ञता धर्म और कर्त्तव्यवाद की देखो उन्हें दीक्षा प्रदान की जाती है।

विजय–दशमी को वार्षिक दीक्षान्त–उपदेश

मुझे वो काल स्मरण आता रहता है कि महात्मा विश्वामित्र ब्रह्मचारियों का जब आश्रम में एक वर्ष सम्पन्न होता तो 'यशो सम्भवः' इस दिवस में, देखो उनका दीक्षांत उपदेश होता रहता। दीक्षा का अभिप्रायः यह है कि उन ब्रह्मचारियों को, मुनिवरो ! उनके अस्त्रों–शस्त्रों का जो क्रियाकलाप था, उनका जो कौतुक था, उसे वे दृष्टिपात कराते रहते।

एक दिवस 'अमृताम्' माता अरून्धती और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, महर्षि भारद्वाज, महर्षि कादेप्त ऋषि महाराज आदि ऋषि–मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ और विश्वामित्र जी ने यह कहा कि ''भगवन् ! मेरे ब्रह्मचारियों को अपना दीक्षांत उपदेश दीजिये।'' मेरे प्यारे ! देखो वह 'ब्रह्मणावृत्तं देवत्वाम्' तो वे जब एकत्रित हुए तो, मुनिवरो! सबसे प्रथम माता अरुन्धती से कहा, ''हे माते ! तुम इन ब्रह्मचारियों को अपना दीक्षांत–उपदेश दीजिये जो आपके 'मनं वृत्तम्' जो 'प्राणं भूः वर्त्तसः' ।''

माता अरुन्धती उपस्थित हुई तो उन्होंने कहा, ''हे ब्रह्मचारियो! जो तुमने अब तक प्राप्त किया है, उसको तो हमने दृष्टिपात किया है। तुम अस्त्रों–शस्त्रों की विद्या का अभ्यास कर रहे हो और तुम अभ्यस्त हो रहे हो। मानो यह हमारे राष्ट्र का बड़ा सौभाग्य है और यह राष्ट्र का गौरव कहलाता है। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में ब्रह्मवेत्ता और विज्ञानवेत्ता विज्ञान के ब्रह्मचारियों को जो दीक्षा देता है, शिक्षा देता है उस राजा का और राष्ट्र का बड़ा सौभाग्य माना गया है। अपने में राष्ट्र का सौभाग्य स्वीकार करते हुए, मैं तुम्हें उपदेश क्या, मैं अपने उद्गार देना चाहती हूँ और उद्गार केवल यह है कि तुम्हारा जो मानवीय चिन्तन है, वो पवित्र होना चाहिये। जब ब्रह्मचारी का अथवा ब्रह्मछात्र का चिन्तन महान् बन जाता है तो उसकी आत्मा से उद्गारों की झड़ियाँ लग जाती हैं और आत्मा से जो उद्गारों का जन्म होता है, वही उद्गार देखो महान् बन करके और वही उद्गार, मुनिवरो ! देखो, उसके जीवन की आगे भूमिका का निर्माण करते रहते हैं, क्योंकि वे उसकी भूमिका बनाते रहते हैं। इसी प्रकार, तुमने जो महर्षि विश्वामित्र से अस्त्रों–शस्त्रों को जाना है और भारद्वाज मुनि की कुछ सहायता भी तुमने ली है। महर्षि विश्वामित्र, क्योंकि ये पुरातन काल में राजा भी रहे, तपस्वी भी रहे, और ये अभिमानी भी रहे हैं और अब ब्रह्मवेत्ता भी बन गये, मानो यह हमारा सौभाग्य है, ऐसे महापुरुष जो देखो अपने में बड़े विचित्र रहे हैं, जिन्होंने बाल्यकाल में आचार्यों से शिक्षा प्राप्त की है और वे तुम्हें शिक्षा दे रहे हैं, यह बड़ा सौभाग्य है।''

मानो देखो, इस प्रकार, ऋषि की आभा को प्रकट करते हुए माता अरुन्धती ने कहा कि ''मेरा तो एक ही मन्तव्य रहा है कि मैं ब्रह्मचारियों को यही कहती रही हूँ विद्यालयों में भी और आज भी मेरा यही विचार है कि हम अपने मानवीयत्त्व को ऊँचा बनायें और अपने मानसिक जो विचार हैं, वो महान् पवित्र बन जायें, मानो देखो, उन पर हमारी विजय होनी चाहिये। जब हमारी विचारों पर विजय हो जाती है, तो मानो हम तपस्वी बन जाते हैं और बिना तपस्या के मानो देखो छात्र कदापि ऊँचा नहीं बनता। जब माता को माता की दृष्टि से पात किया जाता है। उसे नेत्रों में, मानो 'माता' को समाहित कर लेते हैं तो वह नेत्रों में सदैव माता ही माता दृष्टिपात आने लगती है और वह माता प्रकृति के रूप में विद्यमान हो जाती है। मानो वही प्रकृति है, जो चरी कहलाती है, जिसके गर्भ में नाना प्रकार का विज्ञान विद्यमान होता है। मानो खाद्यान्न भी हैं, खनिज भी हैं और भी नाना प्रकार की धाराओं की उपलब्धियाँ होती रहती हैं जो प्रायः तुम्हें क्रिया में लाने के लिये सदैव तत्पर रहती हैं। क्योंकि वह अमृतां 'भूः वर्णस्वाहा' मानो जो यह विज्ञानमयी यंत्र, तुमने एक 'अहिल्या–कृतिभा–यंत्र' का निर्माण किया है, जो निर्माण तुमने याग के माध्यम से किया है, याग के परमाणुओं के ऊपर तुम्हारा अध्ययन हुआ है और उस परमाणुवाद में तुमने यह सत्ता प्राप्त की होगी कि पृथ्वी के गर्भस्थल में कितनी दूरी पर कौन–सा खनिज है, कौन–सा खनिज गमन कर रहा है, जल को शक्तिशाली बनाने वाली जो ऊर्जा–शक्ति है, जो सूर्य से प्राप्त होती है, अमृत को देने वाली मानो देखो चन्द्रमा से ऊर्जा प्राप्त हो रही है, तो वह सर्वत्र एक आभा में रमण कर रही है।''

विचार आता रहता है, माता अरुन्धती ने कहा ''हे ब्रह्मचारियो ! यह तुम्हारा सौभाग्य है जो तुम इस आश्रम में ब्रह्मवेत्ता के समक्ष तुम अपनी विद्या का अध्ययन कर रहे हो, मानो यह 'अमृताम्' अहिल्या यन्त्रों का निर्माण किया है। इस निर्माण में वही है। मानो पृथ्वी के गर्भ को जानना है, और पृथ्वी के गर्भ को जो जानने वाला है, वह विज्ञानवेत्ता कहलाता है। हे ब्रह्मचारियो! दूसरा तुम्हारा जो कौतुक है, वह अस्त्रों–शस्त्रों का निर्माण है। कुछ इस प्रकार के अस्त्र–शस्त्र हैं, जो तुम्हें इस पृथ्वी–मण्डल पर अभ्यस्त के लिये नहीं प्राप्त होंगे। उसमें तुम्हें दूसरे मण्डलों में भी जाने की आवश्यकता होगी। वहाँ भी तुम्हें अपनी उड़ानें उड़नी हैं और वहाँ से भी विज्ञान को और यन्त्रों को जानने के पश्चात् तुम्हें पृथ्वी–मंडल पर आना है। ऐसा मेरा मंतव्य रहता है, मानो देखो तुम्हारा यह जीवन, इसी प्रकार तपोमय क्रियाकलापों में लगा रहेगा तो इसी का नाम तप कहा जाता है। इह तपस्या में तुम परिणित हो जाओ। तुम्हें यह प्रतीत है कि हमारे यहाँ जब देखो विष्णु–राष्ट्र की स्थापना हुई तो विष्णु महाराज अपने गरूड़ रूपी वाहन पर विद्यमान होकर लोक–लोकांतरों की यात्रा करते रहे हैं। लोक–लोकांतरों में जाना और वहाँ जो भी यन्त्र, विज्ञान प्राप्त होता मानो विज्ञान की धाराओं को अपने मस्तिष्क में वृत्त करते हुए वहाँ से यन्त्रों को इस पृथ्वी–मण्डल पर लाना, यह प्रायः राष्ट्र का एक कर्त्तव्य बन जाता था। राष्ट्र में इतना ऊँचा विज्ञान होना चाहिये, हमारे विद्यालय का विज्ञान इतना ऊँचा होना चाहिये, जिससे हमारे राष्ट्र का वैज्ञानिक, मानो देखो, वह नाना लोक–लोकांतरों की यात्रा में सफलता को प्राप्त कर सके। मेरा यह उपदेश है और मेरी यही कामना रहती है 'मानव ब्रह्मणे वृत्तं देवत्वां ब्रह्माः।'' माता अरुन्धती ने कहा '' मानो देखो, अरुन्धती मण्डल के उपर मेरा अध्ययन रहा है। जब वशिष्ठ मुनि महाराज के चरणों में विद्यमान रहती, तो मुझे यह सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। इसीलिये मेरा नामोकरण भी अरुन्धती कहलाता है। मेरा अरुन्धती जो मण्डल है, वह और वशिष्ठ–मण्डल दोनों साथ–साथ गमन करते रहते हैं और मेरा उन दोनों के ऊपर अध्ययन रहा है। मैंने विशेषकर अरुन्धती–मण्डल के ऊपर अध्ययन किया है। अरुन्धती–मण्डल की धाराएँ आती रहती हैं और वे धाराएँ, मानो देखो, इस पृथ्वीमण्डल पर आती हैं और पृथ्वी–मण्डल पर आ करके, वे पृथ्वी के गर्भ में मानो देखो स्वर्ण का जो परमाणुवाद गमन कर रहा है उस पर उनकी छाया जब आवृत्त होती हैं तो उसमें एक वृत्तियों की धाराओं को प्रदान किया जाता है। तो यह अरुन्धती–मण्डल जब इसकी छाया चन्द्र–मण्डल पर जाती है, तो चन्द्रमा की कान्ति में मानो स्वर्णमयी धाराओं का जन्म हो जाता है। जब मानो अरुन्धती–मण्डल की जो कान्तियाँ हैं, जब यही कान्तियाँ, मंगल पर जाती हैं, तो वहाँ वैज्ञानिक, विज्ञान के परमाणुओं की उपलब्धि करता रहता है। यह अरुन्धती–मण्डल इतना विचित्र है कि जब माता के गर्भस्थल में इसकी छाया जाती है, तो वहाँ बाल्य में बुद्धि की स्थापना कर देता है। बाल्य को बुद्धि आती है क्योंकि माँ देखो बालक के 'अंताम्' देखो लघु–मस्तिष्क में एक वृत्तिका–अरुणकेतु नाम की नाड़ी होती है उस नाड़ी का समन्वय, अरुन्धती–मंडल में जो धाराएं होती हैं, मानो उससे उसका समन्वय हो जाता है, तो विशेष बुद्धि उसे प्राप्त हो जाती है।''

विचार आता रहता है, माता अरुन्धती ने अपना दीक्षांत–उपदेश देते हुए कहा ''एक वर्ष के पश्चात मानो देखो, तुमने इस विजय की, अपनी प्रतीक तुमने अपने आश्रम में वर्णित की है। मेरा यह बड़ा सौभाग्य रहा है, मानो जो मैं तुम्हें दृष्टिपात कर रही हूँ, और तुम्हारा 'विजयं ब्रह्मः वृत्तं देवाः' तुम दसों इन्द्रियों के ऊपर संयम करो और विज्ञानवेत्ता बन करके अस्त्रों–शस्त्रों का निर्माण करो, निर्माण करके उनका अभ्यास करो, जिससे अयोध्या राष्ट्र ऊँचा बने और अयोध्या राष्ट्र के ऊँचे बनते ही सर्वत्र, पृथ्वी–मंडल एक पवित्रता की लहरों में परिणित हो जायेगा। इन तरंगों में, 'तरंगां भूः वर्णस्त्वाः' वह तरंगित हो करके अपने में अपनेपन को प्राप्त करता रहेगा।''

माता अरुन्धती ने अपना उपदेश दे करके, महात्मा महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए, माता अरुन्धती ने यह कहा कि ''गृह और विद्यालय तब तपोमय बनते हैं, जब माता–पिता देखो, जैसे मैं और महात्मा वशिष्ठ, हम दोनों, जब भी विद्यमान होते हैं तो विज्ञान की चर्चाएं करते रहते हैं, परमात्मा की सृष्टि को निहारते रहते हैं और परमात्मा की सृष्टि को निहारना 'देवत्वां ब्रह्मः' इस प्रकार माता–पिता एक–दूसरे में देवत्त्व की भावनाओं को लेकरके अपने गृह को पवित्र बनाते रहते हैं।'' तो माता अरून्धती ने कहा कि ''तुम्हारे विचार भी, जब तुम एकत्रित होकर विद्यमान हो जाओ तो आत्मा–परमात्मा को निहारते रहो और देखो परमात्मा के विज्ञान में चले जाओ और प्रकृतिवाद में रमण करते हुए तुम मनस्त्व की धारा को जान करके प्राण में समाहित हो जाओ और प्राण में समाहित हो करके तुम हृदय में ग्राही हो करके और हृदय से हृदय को मिलान करते हुए परमात्मा के हृदय में समाहित होना, मानो जानने के लिये तुम तत्पर हो जाओ।'' ऐसा, माता अरुन्धती ने अपना लघु विचार देते हुए कहा कि ''तुम 'तथास्तु अमृतम्'!''

मैं, धनुर्याग में चला गया। धनुर्याग का तो, बेटा, वन है, यहाँ तो प्रत्येक ऋषि का अपना–अपना मन्तव्य बड़ा विचित्रता में रहा है। परन्तु माता अरून्धति ने अपना दीक्षांत उपदेश दे करके और दीक्षा के लिये यह कहा। उन्होंने कहा '' 'दीक्षान्त ब्रह्रे', दीक्षा देने वाला तो आचार्य होता है, परन्तु जब वह ब्रह्मचारी विद्यालय से अवकाश लेता है, उस समय पूर्ण दीक्षांत–उपदेश दिया जाता है। यह प्रत्येक वर्ष में एक दीक्षा का उपदेश दिया जाता है कि तुम दीक्षित बनो और दीक्षित बन करके तुम अपने में छात्रत्त्व को धारण करो।'' यह दिवस है अथवा यह जो माह है, यह प्रायः परमपिता परमात्मा ने इसलिये बनाया है कि बल का उपार्जन करना और विज्ञान की धाराओं का जानना, मानो देखो, 'अन्नां भूः वरणं ब्रह्मेः' इससे प्रत्येक मानव अपने–अपने उद्देश्य में रत्त होता है। कृषक, मुनिवरो ! देखो, अपने में ही मानो देखो, लक्ष्मी का उपार्जन करता है, अन्न इत्यादि नवीन आता है, इसलिये यह 'दिवसं ब्रह्मा' यह बड़ा पवित्रतम् में वर्णित किया गया है। (26 सितम्बर 1990, रामप्रस्थ)

दीक्षान्त उपदेश के समय ब्रह्मचारी कबन्धी ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारी रोहणीकेतु के सहित जब महर्षि भारद्वाज जी विश्वामित्र के आश्रम में पधारे तो उन्होंने उन्हें आसन दिया उनका आतिथ्य किया। आतिथ्य करने के पश्चात् नाना वृत्ति के ब्रह्मचारी नतमस्तक हो उनके चरणों को स्पर्श करने लगे तो महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि ''आपके उपदेश और क्रियाकलाप के लिए हम सदैव उत्सुक बने रहते हैं।'' महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ विशाल से विशाल यन्त्र थे और वह विशाल से विशाल ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ते रहते थे। उन्होंने कहा कि ''हे ब्रह्मचारियो ! तुम्हारा तो अन्तिम चरण है, वह आध्यात्मिकवाद है। देखो, भौतिक विज्ञान तो तुम्हारा महान् है और यह विज्ञान आध्यात्मिकवाद की एक भूमिका कहलाती है। सबसे प्रथम तुम अपने में विज्ञानवेत्ता बनो और अणु–परमाणु के ऊपर अन्वेषण करो।'' विश्वामित्र के आश्रम में नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण भी होता रहा और उन वैज्ञानिक यन्त्रों में विद्यमान हो करके वह अपने में उड़ानें भी उड़ते रहते थे।(21 फरवरी 1991, लाक्षागृह बरनावा)

विश्वामित्र आश्रम में भारद्वाज ऋषि

एक समय महर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि भारद्वाज अपने शिष्यों सहित उनके आश्रम में आ पहुँचे। महर्षि भारद्वाज ने महर्षि विश्वामित्र तथा वशिष्ठ जी से कहा कि ''आपने अस्त्रों–शस्त्रों की विद्या राम–लक्ष्मण तथा अन्य ब्रह्मचारियों को प्रदान की है, राम का इसमें कैसा क्रियाकलाप रहा है?'' उन्होंने कहा, ''राम तो पारायण हैं। लक्ष्मण भी पारायण हैं, क्योंकि वह अस्त्रों–शस्त्रों की प्रतिभा को जानते हैं। मैंने उन्हें एक सोमतिती नाम की रेखा का वर्णन कराया है, जो वेद के एक मन्त्र में आती है। 'सोमंब्रही वृतं रत्तः स्वाहा वेतु सम्भव ब्रहे वाचं प्रवाणम् अग्नं ब्रहे रेतः अस्वति।' '' महाराज वशिष्ठ ने कहा कि ''मैंने इस वेद–मन्त्र का अध्ययन कराया है। राम–लक्ष्मण ने उसको अच्छी प्रकार समझा है। इसका अध्ययन आपके विद्यालय में भी रहा है। किसी काल में उद्दालक गोत्र के शिकामकेतु मुनि के यहाँ भी इस रेखा का अध्ययन हुआ था। इस रेखा में यह विशेषता है कि एक परिक्रमा रूप में यह रेखा बद्ध हो जाये तो (इस परिक्रमा के) आन्तरिक जगत् में रहने वाला मानव तो सुरक्षित रहता है और बाह्य से जो दुरिता भाव से आता है, उसका विनाश हो जाता है, वह इस रेखा के पास आते ही भस्म हो जाता है। ऐसी सोमतिती रेखा का मैंने वर्णन कराया है। उसको लक्ष्मण बड़ी पारायणता से जान गया है। शत्रुघ्न ने उसके ऊपर कोई विचार नहीं किया, उसका मन ही स्थिर नहीं रहा। भरत ने उस रेखा को कठिन जान कर त्याग दिया और भी ब्रह्मचारियों ने इसे अवेहलना युक्त कहा है। एक वर्णित नाम के ब्रह्मचारी ने इस रेखा को जानने का प्रयास किया है। वरुणास्त्र, अग्न्यास्त्र और ब्रह्मास्त्र में राम बड़े पारायण हो गये हैं।''

भारद्वाज जी ने कहा ''बहुत प्रिय। अब समय हो गया है देखो चार वर्षो तक राम और लक्ष्मण को ले जाओ, और इस रघुवंश का जहाँ तक राज्य हो, इसकी परिक्रमा को दृष्टिपात करो। कोई ऐसा प्राणी तो नहीं है जो राजा के राष्ट्र को घात पहुँचा रहा हो। तुम गुरु बनो, वे दोनों शिष्य की परम्परा से भ्रमण करें।'' विश्वामित्र जी ने कहा कि ''प्रभु ! जब मैं धनुर्याग के लिये राजा दशरथ के यहाँ पहुँचा तो उन्होंने अपने में मोह प्रकट किया था राजा मोह करते हैं और इसका कारण कि बड़े प्रयत्न से इन शिशुओं का जन्म हुआ है। उन्हें मोह आता है, यह मोह राष्ट्र के लिये प्रिय नहीं है।'' महर्षि वशिष्ठ जी बोले कि ''वह तुम्हारी वार्ता स्वीकार तो कर लेते हैं।'' विश्वामित्र जी ने कहा कि ''प्रभु! राजा मोह करते हैं, राजलक्ष्मियाँ भी मोह करती हैं परन्तु राजा का मोह अधिक है। राजा के हृदय से कुछ ऐसा आभास मुझे प्रतीत हुआ है।'' उन्होंने कहा, ''कोई बात नहीं। एक स्थलि पर राष्ट्र है और एक स्थलि पर राजा का मोह है। राष्ट्र के प्राणी की रक्षा करने के लिये, उसमें अताताई न रहना, राजा के मोह के समक्ष सर्वोपरि है। राजा का मोह कोई विशेष नहीं होता है।'' वशिष्ठ जी ने कहा, ''जाओ, तुम उन दोनों राजकुमारों को ले आओ।''

भारद्वाज मुनि बोले कि ''मैं भी गमन करता हूँ। मैं भी विज्ञानशाला में रत्त रहता हूँ। मैंने भी श्रवण किया है कि इस समय राजा रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद छा गया है। जिस राजा के राष्ट्र में रूढ़िवाद आ जाता है, उसमें स्वार्थपरता आ जाती है और स्वार्थ होने पर वह आक्रमण कर सकता है। कुछ समय हुआ मैंने श्रवण किया है कि महाराजा सम्पाती के राष्ट्र को रावण ने अपना लिया है तथा सम्पाती और उनके विधाता गरुड को उन्होंने यन्त्रों के द्वारा अन्तरिक्ष में प्रवाहित कर दिया है। मैंने श्रवण किया है कि गरुड जी तो एक स्थान पर अपना निवास करने लगे हैं और सम्पाती समुद्र तट पर शान्त मुद्रा में विद्यमान हो गये हैं। उसके राष्ट्र का पालन अक्षय कुमार करते हैं। इस अयोध्या राष्ट्र पर उसका आक्रमण न हो जाये।'' भारद्वाज जी ने यह कहा कि ''राजा रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद है, क्योंकि जब राष्ट्र में शासक प्रिय नहीं होता तो वहाँ रूढ़िवाद पनपा करता है। वह रूढ़िवाद समाज का, मानव का ह्रास कर देता है, रक्तभरी क्रान्ति को ला देता है। वह स्वार्थपरता में आ कर प्रियता–अप्रियता को नहीं विचारता है।'' महर्षि विश्वमित्र जी ने भी इस वाक्य को स्वीकार कर लिया।

८. अष्टम अध्याय–रावण

रावण का जन्म

महात्मा पुलस्त्य मुनि महाराज के पुत्र मणिचन्दकेतु के यहाँ चार सन्तानों का जन्म हुआ। पहली सन्तान वरुणकेतु, द्वितीय सन्तान विभीषण, तीसरी सन्तान कुम्भकरण और चतुर्थ में एक पुत्री का जन्म हुआ था। उन बालकों का नामोकरण और नाना प्रकार के संस्कार उनके माता–पिता और पुलस्त्य ऋषि ने उन बालकों में देने का प्रयास किया। जिस समय विभीषण माता के गर्भ–स्थल में थे तो माता बहुत ही कर्मकाण्ड में लिप्त रहती और गायत्री छन्दों का पठन–पाठन करती। जिस समय माता के गर्भ–स्थल में कुम्भकर्ण थे तो माता एक समय एक ऋषि के दर्शन करने के लिये जा पहुँची, वह ऋषि आसन पर विद्यमान हो करके लोकों की उड़ान उड़ रहा था कि यह लोक क्या है ? निद्रा क्या है ? वह माता भी वहीं विद्यमान हुई तो ऋषि उन्हें अध्ययन कराने लगे। क्योंकि बुद्धिमान तो वह स्वतः थी जैसे ऋषि कर रहा था वैसे ही वह देवी करने लगी।(रावण–इतिहास)

रावण की शिक्षा

मणिचन्द्रकेतु के तीनों पुत्रों को लेकर महात्मा पुलस्त्य मुनि शुकदेशवन्त ऋषि के आश्रम पर पहुँचे। ऋषि शुकदेशवन्त ने तीनों ब्रह्मचारियों के मस्तिष्क का अध्ययन किया और पुलस्त्य ऋषि को एकान्त स्थली पर ले जाकर वार्ता प्रकट करने लगे कि ''हे पुलस्त्य मुनि! मैंने आपके इन तीनों पौत्रों के मस्तिष्क

का अध्ययन किया है, क्योंकि गुरु कृपा से मुझे आयुर्वेद का मन्थन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिससे मैंने इन बालकों को देखा है। प्रथम पुत्र जो बड़ा है, वह राजा बनेगा परन्तु इसके चरित्र में सूक्ष्मता रहेगी। द्वितीय साधारण कर्मकाण्डी रहेगा, यह महानता वाला होगा, अन्त में राजा बनेगा। तृतीय पुत्र जो है, वह विज्ञान में रमण करने वाला होगा बहुत बड़ा वैज्ञानिक होगा।'' तीनों ब्रह्मचारी शुकदेशवन्त ऋषि के आश्रम में शिक्षा–दीक्षा लेने में लग गये।

वरुण से दशानन

राजा रावण को बाल्य काल में ब्रह्मा जी ने भी शिक्षा दी थी। ब्रह्मा ने ब्रह्मचारी वरुण को दसों दिशाओं का ज्ञान दिया और वह बालक ज्ञान को अच्छी प्रकार जानने लगा। बहुत समय तक इन दिशाओं पर एकान्त स्थली में विद्यमान होकर अनुसंधान करने लगा और पूर्ण–रूपेण इन दिशाओं को जान गया। तब ब्रह्मा ने उसे दशानन कहना प्रारम्भ कर दिया। ऋषि कहता है कि ''हे दशानन्! अब तुम पूर्णरूपेण दिशाओं के जानने वाले हो गये हो। इसके विज्ञान को पूरी तरह तुमने जान लिया है। आज से तुम्हारा दशानन नामोकरण कर रहा हूँ।'' (रावण–इतिहास)

आधुनिक जगत् में ऐसा कहा जाता है कि रावण के दस शीश थे, राम जब उन्हें नष्ट करते तो वे द्वितीय शीश उमड़ आते थे। यह तो केवल उपहास है। रावण को दशानन क्यों कहते हैं। ? आनन नाम दिशाओं का है और यह पूर्व, पश्चिम उत्तरायण और दक्षिणायन और इनकी चारों अस्थेति, पृथ्वी और अंतरिक्ष यह दस दिशाएं कहलाती हैं, इनके पूर्ण विज्ञान को राजा रावण जानते थे। वे ब्राह्मण व महान् प्रकांड बुद्धिमान थे। (22–10–1964, मोगा)

नाभि में अमृत–कुण्ड

ब्रह्मचारी वरुण सुशील था, वेदपाठी था, महान् वैज्ञानिक था और महान् बुद्धिमान था। उसकी आत्मा पवित्र थी, हृदय निर्मल हो गया था। आयुर्वेद के सिद्धान्त से इस वरुण ने जितना भी आयुर्वेद का नाड़ी विज्ञान था, वह जाना। मनुष्य के शरीर में जो **नाभि–चक्र** है, इसमें **लगभग दो करोड नाड़ियों का समूह है।** एक सुषुम्ना नाम की नाड़ी होती है, जो मस्तिष्क से चलती है और उसका सम्बन्ध नाभिचक्र के अग्रभाग में होता है। जो मनुष्य अच्छे विचारों वाला होता है, परमपिता परमात्मा का चिंतन करने वाला होता है और नाभि को जानने वाला होता है तो वह नाड़ी के विज्ञान से नाना विज्ञान को जानता है। सुधित नाम की नाड़ी, उसको बोधित नाम की नाड़ी भी कहते हैं, जो ब्रह्मरन्ध्र से चलती है और उसका सम्बन्ध नाभि से रहता है। जब चंद्रमा सम्पूर्ण कलाओं से पूर्णिमा के दिन परिपक्व होता है तो वह जो सुधित नाम की नाड़ी है, उसका सम्बन्ध मस्तिष्क से होता हुआ सीधा चन्द्रमा से हो जाता है। चन्द्रमा से जो कान्ति मिलती है, उसे वह नाड़ी पान करती है। जो नाड़ी विज्ञान को जानने वाले होते हैं, वह जानते हैं कि योग के द्वारा किस प्रकार चन्द्रमा से अमृत की प्राप्ति होती है, किस प्रकार वह अमृत पकता है। और जो नाड़ियों के मध्य स्थान होता है, उस स्थान में यह अमृत एकत्रित होता रहता है? तो इसमें क्या विशेषता है? इससे मानव का जीवन बलिष्ठ होता है और मृत्यु से भी विजयी बन जाता है। उसे यह ज्ञात हो जाता है कि तेरी मृत्यु अधिक काल में आयेगी उसकी आयु अधिक हो जाती है, क्योंकि वह आनंद रूपी अमृत नाभिस्थल में होता है। तो इसी को उसके नाभिस्थल में अमृत–कुंड कहते हैं।(22–10–1964, मोगा)

रावण का विवाह

राजा महिदन्त चक्रवर्ती राजा थे। पातालपुरी, रोहिणी, गान्धार इत्यादि राज्य महिदन्त के अधीन थे। इनका जो राजकोष था, वह लंका में था और महाराज शिव उनके सहायक रहते थे। एक समय पुलस्त्य ऋषि ने महाराजा शिव से निवेदन करके लंका में एक स्थान नियुक्त किया, वह स्वर्ण का गृह था जिसमें पुलस्त्य ऋषि विश्राम किया करते थे। कुछ समय के पश्चात् ऐसा हुआ कि लंका का स्वामी कुबेर बन गया और भी सब राजाओं ने अपने–अपने राष्ट्र को अपना लिया। पातालपुरी को कुधित रूष्ठित नाम के राजा ने अपना लिया और भार्तिक नाम के राजा ने सोमधित राज्य को अपना लिया। राजा महिदन्त का सूक्ष्म सा राष्ट्र रह गया। (22–10–1964, मोगा)

राजा महिदन्त के न कोई पुत्र था, न कन्या थी। कुछ समय के पश्चात् ऐसा सुना गया कि राजा महिदन्त के एक कन्या उत्पन्न हुई तो राजा ने बड़ा ही आनन्द मनाया, नाना वेदों के पाठ कराये, जन्म–संस्कार बड़े उत्सव से कराया। उसके पश्चात् कन्या जब कुछ प्रबल हुई तो महाराजा की धर्मपत्नी सुरेखा ने कहा कि ''हे भगवन् ! इस कन्या को तो गुरूकुल में जाना चाहिये, जिससे यह विद्या पाकर परिपक्व हो जाये।'' उस समय महाराजा महिदन्त अपनी धर्मपत्नी की याचना को पाकर उस कन्या को लेकर कुल–पुरोहित महर्षि तत्त्वमुनि महाराज के समक्ष पहुँचे उस समय ऐसा सुना गया है कि वह 284 वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारी थे। वहाँ पहुँचकर राजा और कन्या ने महर्षि के चरणों को स्पर्श किया और राजा ने कहा कि ''भगवन् ! मेरी कन्या को यथार्थ विद्या दीजिये जिससे यह हर प्रकार की विद्या में सफल होवे।''

महर्षि बाल्मीकि ने इस सम्बन्ध में ऐसा वर्णन किया है कि राजा महिदन्त तो अपने स्थान पर चले गये और ऋषि ने उस कन्या को शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। शिक्षा पाते–पाते कन्या बड़ी महान् बनी और विद्या में बहुत ऊँची सफलता प्राप्त की। वह भौतिक–यज्ञ और कर्मकाण्ड में प्रकांड हो गयी। वह वेदों का हर समय स्वाध्याय करती थी। उस समय ऋषि ने अपने मन में सोचा कि ''यह कन्या तो क्षत्रिय की है परन्तु इसके गुणों को देखते हैं तो ब्राह्मण कुल में जाने योग्य है। अब क्या करना चाहिये?'' ऋषिवर यही नित्यप्रति विचारा करते थे। कुछ काल के पश्चात् वह कन्या युवा हो गयी जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा परिपक्व होता है, वह कन्या अपने ब्रह्मचर्य से परिपक्व थी। राजा ने अपनी धर्मपत्नी के कथनानुसार ऋषि से जाकर प्रार्थना की कि ''भगवन् ! अब कन्या को गृह में ले जाना चाहते हैं। अब इसका संस्कार भी करना चाहिये। मुझे नियुक्त कीजिये कि मेरी कन्या कौन से गुण वाली है, किस वर्ण में इसका संस्कार होना चाहिये?'' उस समय ऋषि ने कहा, ''तुम्हारी कन्या तो ऋषिकुल में जाने योग्य है, आगे तुम किसी के द्वारा इसका संस्कार करो, हमें कोई आपत्ति नहीं।'' राजा वहाँ से उस ब्रह्मचारिणी को लेकर राजगृह आ पहुँचे।

हमारे यहाँ यह परिपाटी है कि जब ब्रह्मचारिणी या ब्रह्मचारी गुरुकुल से आये तो माता–पिता यजन और ब्रह्मभोज कर उनका स्वागत करें। उसी प्रकार माता–पिता ने उस कन्या का यथाशक्ति स्वागत किया। स्वागत करने के पश्चात् पत्नी ने अपने पति से कहा कि ''महाराज ! अब तो हमारी कन्या युवा हो गयी है, इसके संस्कार का कोई कार्य करो।'' महाराज नित्यप्रति भ्रमण करने लगे। भ्रमण करते–करते पुलस्त्य ऋषि के पुत्र मणिचन्द्र के द्वार जा पहुँचे। मणिचन्द्र के एक पुत्र था जो 48 वर्ष का आदित्य ब्रह्मचारी था। वह वेदों का महान् प्रकांड विद्वान था। महाराज ने मणिचन्द्र से निवेदन किया कि महाराज ! मेरी कन्या को स्वीकार कीजिये, मैं तुम्हारे पुत्र से अपनी कन्या का संस्कार करना चाहता हूँ।'' उस समय मणिचन्द्र ने कहा कि ''महरज! हमारे ऐसे सौभाग्य कहाँ हैं जो इतनी तेजस्वी कन्या हमारे कुल में आये।'' बालक वरुण ने और उसके माता–पिता ने उसके सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया। राजा मग्न होते हुए अपने घर आ पहुँचे।

नक्षत्रों के अनुकूल समय नियुक्त किया गया। कुछ समय के पश्चात् वह दिवस आ गया। मणिचन्द्र अपने पुत्र से बोले कि ''हे पुत्र ! आदि ब्राह्मणजनों का समाज होना चाहिये। जिस कन्या का, जिस पुत्री का, जिस पुत्र का, वेद के विद्वानों में विद्वत्–मण्डल में संस्कार होता है, उसका कार्य हमेशा पूर्ण हुआ है।'' उस समय नाना ऋषियों को निमंत्रण दिया गया। निमंत्रण के पश्चात् विद्वत् समाज वहाँ से नियुक्त हो राजा महिदन्त के समक्ष आ पहुँचा राजा महिदन्त ने देखा कि बड़ा विद्वत् मण्डल है। राजा ने यथाशक्ति स्वागत किया। ऋषियों की परिपाटी के अनुकूल ब्रह्मचारिणी अपने पति का स्वयं सत्कार करने जा पहुँची। नाना मणियों से गुथी हुई पुष्प मालाएं तथा नाना प्रकार की मेवा, उस कन्या ने उनके समक्ष नियुक्त कीं, उन्होंने, वह स्वीकार कर लीं। इस प्रकार राजा ने अपने सम्बन्धियों का यथा शक्ति स्वागत किया, स्वागत के पश्चात् यथा स्थान पर विराजमान किया गया। सांयकाल कन्या के संस्कार का समय हो गया। बड़े आनन्द के साथ वहाँ संस्कार होने लगा, बुद्धिमानों के द्वारा वेदमंत्र होने लगे। ब्रह्मचारी अपने वेदमंत्रों का गान गा रहा था, ब्रह्मचारिणी अपने वेदमंत्र गा रही थी। भिन्न–भिन्न स्थानों पर वेदों के गान गाए जा रहे थे। बड़ी आशानन्दी से वह संस्कार समाप्त हो गया।

अगला दिवस आया उस समय शरद् वायु चल रही थी। उसके कारण बालक के सम्बन्धी स्नान नहीं कर रहे थे। उस बालक ने कहा, ''अरे ! तुम स्नान क्यों नहीं कर रहे हो?'' उन्होंने कहा, ''स्नान क्या करें शरद् वायु चल रही है।'' उस समय उस बाल ब्रह्मचारी ने जो वेदों का ज्ञाता था जो विज्ञान

की मर्यादा को जानता था, उसने प्रणाम किया और कहा कि "हे वायुदेव ! तुम हमारे कार्य में विघ्न डाल रहे हो कुछ समय के लिये शांत हो जाओ।" उस समय उस ब्रह्मचारी के सक्रल्पों द्वारा वायु कुछ धीमी हो गयी सभी सम्बन्धियों ने स्नान किया। नाना सम्बन्धी स्नान कर अपने–अपने स्थानों पर नियुक्त हो गये।

इसके पश्चात् द्वितीय समय आया और वहाँ से सब अपने–अपने गृह को जाने लगे तो उस समय राजा महिदन्त ने यथाशक्ति सभी का स्वागत किया। जब कन्या जाने लगी तो एक ने कहा कि "अरे भाई! यह पुत्र इतना योग्य था परन्तु राजा महिदन्त ने अच्छी प्रकार स्वागत नहीं किया।" उस समय राजा महिदन्त व्याकुल होने लगे उन्होंने व्याकुल होकर कहा कि "हे सम्बन्धियो! मैं क्या करूँ? मेरा तो यह काल ही ऐसा है। कोई समय ऐसा था जब मेरा चक्रवर्ती राज्य था। अब तो जितना द्रव्य था सब लंका चला गया, महाराज कुबेर उसका स्वामी बन गया है।" उस समय इन वार्ताओं को स्वीकार कर सबने अपने–अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया।

उस बालक ने अपने गृह पहुँच कर सोचा कि "मेरे सम्बन्धी ने जो यह कहा है कि मेरी लंका को कुबेर ने विजय कर लिया है तो मुझे कुबेर से लंका को विजय करना है।" बुद्धिमान सर्वत्र पूज्य होता है। पुलस्त्य ऋषि महाराज का पौत्र था इसलिये वह जिस राष्ट्र में जाता था वहाँ उसका स्वागत होता था। जो स्वागत में कुछ देता तो ब्रह्मचारी उससे मांगते "दस हजार सेना मुझे दो कि जिससे मेरा काम बने।" इस प्रकार प्रत्येक राज्य से दस–दस हजार सेना एकत्र करके उसने लंका पर हमला किया और राजा कुबेर को जीत लिया। उस समय राजा कुबेर ने कहा था कि "अरे भाई! तुम मुझे क्यों विजय कर रहे हो? उस समय उस महान् ब्रह्मचारी ने कहा था कि कुबेर ! मैं तेरे राष्ट्र में शान्ति नहीं देख रहा हूँ। जिस काल में जिस राजा की प्रजा शान्त न हो, उस समय उस राजा को पद से गिरा देना धर्म है और उसके स्थान पर शान्तिदायक, आत्मज्ञानी को जो प्रजा को यथार्थ सुख–शान्ति देने वाला हो, राजा बनना चाहिये।"

राजा कुबेर को लंका से पृथक कर वह बालक वरुण राजा महिदन्त के सम्मुख आ पहुँचा और उनसे बोला कि "महाराज ! मैंने लंका को विजय कर लिया है, आप अपनी लंका को स्वीकार कीजिये।" उस समय राजा महिदन्त ने कहा, "हे ब्रह्मचारी! लंका को तुमने विजय किया है, मुझे स्वीकार है, परन्तु स्वीकार करके मैंने यह लंका तुम्हें अर्पण कर दी।" (7–3–1962, विनयनगर, नयी दिल्ली)

मन्दोदरी का जन्म मेंढ़की से नहीं

मुनिवरो ! राजा महिदन्त की कन्या जिसका संस्कार रावण के द्वारा हुआ, उसका नाम मन्दोदरी था।

पूज्य महानन्द जी:– गुरू देव! मुझे बारम्बार का वह प्रश्न फिर स्मरण हो आया है कहते हैं वह तो ऋषि कन्या थी। भगवन्। ऐसा कहते हैं कि चार ऋषि तपस्या करते थे और रावण ने ऋषियों पर कर लगा दिया और उनसे कर लेने लगा। कहते है ऋषियों के द्वारा कर था नहीं, ऋषियों ने अपना माँस दे दिया और राजा रावण ने ले जाकर इस माँस को राजा जनक के यहाँ प्रस्तुत कर दिया। अब देखो वहाँ जब राजा जनक ने हल चलाया तो सीता का जन्म हुआ और यहाँ उन ऋषियों ने एक समय खीर का सुन्दर भोजन बनाया और भोजन बनाकर स्नान करने चले गये और खीर के पात्र में सर्प जा पहुँचा, उन ऋषियों के आश्रम में एक मेंढ़की रहती थी। उस मेंढ़की ने सोचा कि चारों ऋषि खीर खायेंगे और समाप्त हो जायेंगे। इसलिये जब ऋषिजन स्नान–ध्यान करने के पश्चात् भोजन पाने के लिये खीर के समीप पहुँचे तो वह मेंढ़की उस खीर में पहुँच गयी। ऋषियों ने कहा कि भोजन अपवित्र हो गया है। उन्होंने भोजन को पात्र से पृथक् किया तो उसमें सर्प था। ऋषियों को ज्ञान हुआ कि मेंढ़की ने हमारे प्राणों की रक्षा की है। तो गुरुदेव ऐसा सुना है कि उस मेंढ़की को ऋषियों ने कन्या रूप में परिवर्तित कर दिया और उस कन्या का नाम मन्दोदरी रखा। ऐसा सुना है कि उसके पश्चात् वह रावण को अर्पित कर दी।"

पूज्यपाद गुरुदेवः–बेटा! तुम ऐसी चर्चायें क्यों किया करते हो? यह न मानने वाला वाक्य है, यह कैसे हो सकता है कि बिना माता के गर्भ–स्थल के कन्या का जन्म हो जाये? यह तो मान सकते हैं कि मेंढ़की में वह भाव आ गये हों और उनके प्राणों की रक्षा भी हुई हो परन्तु यह कैसे स्वीकार करें कि बिना माता के गर्भ–स्थल के उस कन्या का जन्म हुआ। यह परमात्मा का नियम नहीं कहता, वैदिक सिद्धान्त नहीं कहता।

पूज्य महानन्द जी:– गुरू जी! ऐसा कहते हैं कि ऋषियों की इच्छा है, जब ऋषि परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं तो वह जो चाहें सो करें।"

पूज्यपाद गुरुदेवः–हाँ, यह वाक्य तो तुम्हारा यथार्थ है परन्तु मैं तुमसे एक वाक्य जानना चाहता हूँ कि जो ऋषि हो जाते हैं, वे परमात्मा के नियम से चलते हैं या नियम के विरुद्ध?

पूज्य महानन्द जी:– "भगवन् ! वह नियम के अनुकूल चलते हैं।"

बेटा! जब नियम के विपरीत नहीं चलते तो यह ऋषि नियम के विपरीत कैसे चले कि बिना गर्भ–स्थल के कन्या का जन्म हुआ ? यह कैसे माना जाये ? इसलिये यह वाक्य न मानने वाला है। ऋषिजन अपने जीवन का मन्थन करते हैं और मन्थन करते–करते परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं परन्तु परमात्मा के नियम के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं करते। यह नियम कहलाता है। (22 अक्टूबर 1964, मोगा मण्डी पंजाब)

वरुण से रावण

महाराज महिदन्त की कन्या मन्दोदरी का संस्कार महाराजा रावण के साथ सम्पन्न हुआ। रावण का बाल्यकाल का नाम ब्रह्मचारी वरुण था। ब्राह्मण और वेदों का पण्डित होने के कारण रावण को राजाओं ने सहायता प्रदान की और कुबेर को लंका से पृथक् कर उन्हें लंका का स्वामी बना दिया गया। जब वरुण का लंका के लिये चुनाव हुआ तो सब विद्वानों ने मिलकर इसका नाम रावण नियुक्त कर दिया। **'रावण' महादानी को कहा जाता है। व्याकरण व मीमांसा की दृष्टि से 'रावण' बुद्धिमान व विज्ञानवेत्ता को कहते हैं। यह कोई अपशब्द नहीं है।** (दिसम्बर 1966, ग्राम–माजरा डबास)

कुक्कुट मुनि की रावण राज्याभिषेक के लिए नाकार–उक्ति

ब्रह्मवेत्ता कुक्कुट मुनि महाराज से महात्मा पुलस्त्य ने कहा कि "भगवन्,! आप इनका राज्याभिषेक कीजिये।" उन्होंने कहा, "प्रभु! मैं इनका राज्याभिषेक नहीं कर पाऊँगा।" उन्होंने कहा, "प्रभु! क्यों?" उन्होंने कहा, "इसलिये नहीं कर पाऊँगा, क्योंकि इसे राष्ट्र का अधिकार नहीं है। क्योंकि राष्ट्र का जो अधिकारी होता है, उसमें अपनी–अपनी प्रबलताएं होती हैं। मानो देखो एक मानव योग करना चाहता है योग में प्रवेश करना चाहता है तो जब वह किसी योगी के समीप जाता है, जिज्ञासु बन करके तो उसकी जिज्ञासा से यह ज्ञान हो जाता है योगी को कि यह महान् जिज्ञासु नहीं है। यह केवल अपना नामोकरण चाहता है। जिसे नामोकरण की इच्छा होती है उसे अभिमान आ जाता है और उससे धर्म और मानवता की मर्यादा नष्ट हो जाती है।" महात्मा कुक्कुट ने आगे कहा "ऋषिवर! आप मेरी मानो, आप बड़े तपस्वी हैं, जिज्ञासु हैं और आप इसमें 'वृथं ब्रहे' आप व्यर्थ ही अपने जीवन को समाप्त कर रहे हैं क्योंकि आपको तो तपस्या करनी चाहिये। आप अपने इस कुटुम्ब के मोह में मत आईये। क्योंकि जो महात्माजन हो करके विवेकी नहीं बनते हैं और केवल एक कुटुम्ब और कुवृत्तियों को ले करके अपने को मोह–ममता में परिणित कर लेते हैं तो उनकी तपस्या अतपस्या में परिवर्तित हो जाती है। हे ऋषिवर! आप तो पुलस्त्य हैं और आपका ऋषि–मुनियों में बड़ा नामोकरण है, आप उज्ज्वलता में हैं। परन्तु इस राष्ट्रीय मोह में न आइये क्योंकि राष्ट्रीय मोह तो उन्हें होता है, जो नामोकरण की इच्छा में लगे रहते हैं। आप नामोकरण की इच्छा में मत आइये।" परन्तु महात्मा पुलस्त्य मौन रहे। महात्मा कुक्कुट ने यह कहा कि "प्रभु! मैं इसका राज्याभिषेक नहीं कर सकूँगा क्योंकि इसकी एक नाड़ी कहती है कि इसको अधिकार नहीं है। दूसरी नाड़ी कहती है कि यह विज्ञानवेत्ता है और तीसरी नाड़ी यह कहती है कि यह आगे चल कर अभिमान में परिणित हो जायेगा। हे प्रभु! मैं ऐसे राजा का राज्याभिषेक नहीं कर पाऊँगा।"

महात्मा भुंजु द्वारा रावण का राज्याभिषेक

महात्मा पुलस्त्य ने विचारा कि "महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज से तो योग्य और विवेकी महात्मा पुरुष नहीं है तो राज्याभिषेक कौन कर सकता है?" महात्मा भुंजु, जो तपस्वी थे, वह भी आसन पर विद्यमान थे, उन्होंने उनका आह्वान करके कहा कि "ऋषिवर! आप राज्याभिषेक कीजिये।" उन्होंने कहा, "प्रभु!

जब महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज ही पिछले भाग में विद्यमान हो गये। अब आप मेरा आह्वान करना चाहते हैं, आप मुझे सभापति बनाना चाहते हैं और मैं इनका राज्याभिषेक करूँ और यह मेरे नामों का यशो अवृत गान गाते रहेंगे।'' जब उन्होंने यह कहा तो उन्होंने कहा, ''नहीं, तुम राज्याभिषेक करो।'' मेरे प्यारे! देखो महात्मा भुंजु विद्यमान हो गये और उन्होंने सभापतित्व ग्रहण कर लिया और कहा कि ''क्या सब महापुरुषों की इच्छा है कि मैं इनका राज्याभिषेक करूँ?'' सबने एक–स्वर होकर कहा कि ''जब महात्मा पुलस्त्य की इच्छा इन्हें राजा बनाने की है तो राज्याभिषेक किया जावे।'' महात्मा भुंजु ने कहा कि '' 'समाजं ब्रव्हे कृतम्', वेद का मन्त्र उद्‌गीत गा करके 'मंगलं ब्रव्हा वारूणस्वते, देवतम् ब्रह्मा वरुण सुतं, वाच सुतं देवत्वाहम्।'' मेरे प्यारे! उन्होंने यह उद्‌गीत गाते हुये वेद–मन्त्रों से उनका राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेक करके वह अपने में विद्यमान हो गये और उन्होंने अपना उपदेश दिया और कहा कि ''मैंने आज राज्याभिषेक किया है। मेरी इच्छा यह है कि राष्ट्र अपनी आभा में गमन करता रहे और राजा अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहे। यह हमारी सर्वत्रता की एक कामना है। हमारी इच्छा है।'' (30 मार्च 1992, नयी दिल्ली)

लंका की राज्य–प्रणाली

राजा रावण से पूर्व लंका के महाराजा कुबेर थे, महाराजा कुबेर से पूर्व महाराजा महिदन्त थे, महिदन्त से पूर्व महाराजा शिव थे। लंका की राज्य प्रणाली बहुत पूर्व से चली आ रही थी। जब रावण राजा बने तब महाराजा रघु का जितना राज्य था, उस पर रावण ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और राजा दशरथ के पास सूक्ष्म सा अयोध्या का राष्ट्र रह गया था।(9–11–1968, आगरा)

९. नवम अध्याय–रावण–समाप्ति की ऋषि–योजना

राजा रावण और भगवान राम, दोनों की विवेचना आती रहती है और उन दोनों के एक राशि के नामोकरण कहलाते थे। जब राजा रावण का राष्ट्र विशाल बना तो वह धन से हीन भी नहीं था परन्तु राजा रावण के यहाँ आततायीपन आ गया। उस काल में ऋषि–मुनियों ने विचारा कि राजा रावण का जो यह आतक्र है अथवा जो आततायीपन है, यह मानव को त्रास दिये जा रहा है, इसको कैसे समाप्त किया जाये? राजा रावण के राष्ट्र में न सूर्य अस्त होता था, न उदय होता था इतना विशाल उनका राष्ट्र था।

ऋषियों की महासभा

अयोध्या के भयक्रर वन में एक सभा हुई। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज का आश्रम था, जिसमें सभा हुई थी। यह सभा महाराज शिव और महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज की अध्यक्षता में हुई थी। देवर्षि नारद, महर्षि वशिष्ट, महर्षि विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, ब्रह्मचारी कबन्धी, ब्रह्मचारी गार्गेपथ्य, चाक्राणी गार्गी, महाराज अश्वल और याज्ञवल्क्य मुनि महाराज, महाराजा दिग्ध और कौशल गौत्र में जन्म लेने वाले महर्षि गार्गीपथ्य, उद्दालक गोत्रीय ऋषि श्वेताश्वेतर, सम्भूति ऋषि महाराज, महर्षि सोमकृतिभानु और महर्षि कुक्कुट और भी नाना ऋषि विद्यमान थे। उस सभा में यह विचार–विनिमय होने वाला था कि, ''हम समाज से इस रावण के आततायीपन को कैसे समाप्त कर सकते हैं?'' राजा रावण का राष्ट्र इतना विशाल बन गया था कि उन्होंने इन्द्र जैसे राजा को विजय कर लिया था और त्रिपुरी में भी उनका राष्ट्र था, जहाँ उनके पुत्र नरायन्तक राजा थे। पातालपुरी में अहिरावण राज्य करते थे और भी नाना राष्ट्र उन्होंने अपना लिये थे इसलिये रावण के राष्ट्र में न सूर्य अस्त होता था, न उदय होता था। जब यह वाक्य उनके समीप आया तो ऋषि–मुनियों ने विचार–विनिमय किया कि ''हमें क्या करना चाहिये?'' मुझे स्मरण आता रहता है, महाराजा शिव से प्रश्न किया कि ''महाराज ! आप उनके वंश के पूज्य गुरु हैं क्योंकि उन्हें आपने अस्त्र–शस्त्रों की शिक्षाएं भी प्रदान की हैं।'' महाराजा शिव ने कहा कि ''हाँ ऐसा तो हुआ है।'' भारद्वाज मुनि से भी यही कहा गया ''तुम क्या सहयोग दे सकते हो?'' उन्होंने कहा ''जो भी हमसे सहयोग प्राप्त करोगे, वही प्रदान करेंगे परन्तु आततायीपन को समाज से समाप्त किया जाना चाहिये।''

जब वहाँ विचार–विनिमय होने लगा तो सब ऋषि–मुनियों ने महर्षि विश्वामित्र से यह कहा कि ''तुम धनुर्याग करो और अयोध्या में राम और लक्ष्मण जो राजकुमार हैं, इन दोनों को धनुर्याग से महान् बनाओ। उनको बलिष्ठ बनाया जाये, उन्हें वैज्ञानिकता से, अस्त्रों–शस्त्रों से युक्त किया जाये।'' जब यह विचार चला तो महर्षि भारद्वाज मुनि ने कहा कि ''रावण का जितना भी वंश है, मैं प्रायः उनको शिक्षा देता रहा हूँ, उनके विधाता जो कुम्भकरण हैं वह मेरे यहाँ बारह–बारह वर्षों तक विज्ञान की शिक्षा ले करके गये हैं। उनका विज्ञान इतना विशाल है, वह इतने अनुसंधानवेत्ता हैं कि वह छः मास तक हिमालय में अनुसंधान करते रहते हैं और छः मास तक लंका में, विद्यालयों में वैज्ञानिकों को शिक्षा देते रहते हैं।''

भारद्वाज मुनि महाराज ने कहा कि ''अगर तुम रावण के दुश्चरित्रवाद को समाप्त करना चाहते हो तो विवेकी पुरुषों का जन्म होना चाहिये। विवेकी पुरुष होने चाहिये क्योंकि समाज में तब तक विवेक नहीं बनता, जब तक विवेकी पुरुष नहीं होते, वेद के पठन–पाठन करने वाले पुरुष नहीं होते और उनमें विवेक न हो तब तक राष्ट्र ऊँचा नहीं बन सकता।'' यह वाक्य प्रकट कर भारद्वाज मुनि ने कहा कि ''मेरी विज्ञानशाला में जितने भी वरुणास्त्र हैं, ब्रह्मास्त्र हैं, मेरे यहाँ नाना अस्त्रों का निर्माण किया गया, कोई भी परिस्थिति जान करके मैं इस कोष को राम को प्रदान कर सकता हूँ।'' भारद्वाज मुनि का सब ऋषि–मुनियों ने स्वागत किया और उनके वाक्यों को अपने हृदय में ग्राही बनाया।

महाराज शिव से यह प्रार्थना की गयी कि ''महाराज! आपने एक यन्त्र का निर्माण किया है, उसका भी हमें प्रतीत है, क्या आप इसमें भी अपना सहयोग प्रदान करेंगे।'' तो राजा शिव ने कहा कि ''मैंने राजा रावण को राष्ट्रपिता बनाया, उसको भिन्न–भिन्न प्रकार की विज्ञान की शिक्षाएं दीं और उनके शिक्षालयों में सदैव शिक्षा भी देता रहा हूँ। परन्तु कोई भी मानव जब अपनी अन्तरात्मा के अनुसार, उसकी आत्मा की जो प्रेरणाएं हैं, उनके अनुसार कर्म नहीं करता, तो वैदिक साहित्य कहता है कि उस मानव को अपने स्थान में ग्राही न बनाओ तो आज मेरा यह मन्तव्य बन गया है कि मैं रावण को कोई सहायता प्रदान नहीं करूँगा, क्योंकि उसका जो जीवन है, वह आततायी बन गया है। उसके जीवन में राष्ट्रवाद के प्रति जो विचार होने चाहिये उसके राष्ट्र में चरित्र होना चाहिये, मानवता होनी चाहिये, सुगन्धि होनी चाहिये, वहाँ दुर्गन्धि उत्पन्न होती रहती है तो ऐसे राष्ट्र के प्रति मेरी कोई सहानुभूति नहीं है।''

महाराज शिव के यह वाक्य प्रकट करते ही सब ऋषियों ने उनके चरणों को स्पर्श किया, वह अध्यक्ष भी थे, सभापति बने हुये थे। सब ऋषियों ने उनका धन्यवाद किया और कहा कि ''राजा रावण को यन्त्रों का एक कोष आपने प्रदान किया है।'' महाराजा शिव ने कहा कि ''हे मुनिवरो! मेरे द्वारा एक और यन्त्र रावण को प्रदान किया गया है। राजा रावण, मेरे पुत्र गणेश और पार्वती की सहकारिता में एक यन्त्र का निर्माण हुआ है जो रावण को, महारानी मंदोदरी, गणेश और पार्वती को प्रतीत है। यह यन्त्र कैसा है ? वह ऐसा यन्त्र है, जब रावण शत्रु से संग्राम करता है, तो वह यन्त्र उसे शक्ति प्रदान करता रहता है, उसी नामोकरण से शक्ति प्रदान कर रहा है। शत्रु से वह विजय होने वाला नहीं, परन्तु जब कोई ऐसा मूलक बनेगा तो मैं उसके कारण को निश्चित प्रकट कर सकता हूँ। इतना मैं त्याग कर सकता हूँ।''

राजा शिव के इन वाक्यों को जान करके महाराज विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हुए। विचार–विनिमय होते हुए सब ऋषियों ने महाराज विश्वामित्र से यह प्रार्थना की कि ''तुम धनुर्याग करो।'' ऋषि ने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। वह सभा इन विचारों को लेकर समाप्त हो गयी और यह विचार–विनिमय निश्चित हो गया कि यह जो राजा रावण आततायी बन रहा है, वैज्ञानिक बन करके साधारण मानव को जो त्रास दिया जा रहा है, वह समाप्त होना चाहिये। यह निश्चय हो करके सभा विसर्जित हुई। अपने–अपने आश्रमों को ऋषि–मुनि जा पहुँचे।

राजा रावण को भी सभा का कुछ प्रतीत हुआ। उन्हें यह प्रतीत हो गया था कि महाराज शिव की अध्यक्षता में सभा हुई है। राजा रावण महाराज शिव के द्वार हिमालय में पहुँचे और उनके चरणों में ओतप्रोत हो कर कहा कि–''महाराज! आपकी कोई सभा हुई है। उस सभा की वार्ता श्रवण करने के लिये मैं आपके समीप पहुँचा हूँ।'' राजा शिव ने कहा कि ''वह जो सभा हुई है, इसकी वार्ता, उसके विचारों को मैं तुम्हें अवगत नहीं कराऊँगा, क्योंकि वह सभा आततायी को समाप्त करने के लिये है। यदि तुम सुचरित्र हो तो तुम्हें किस प्रकार का सन्देह हुआ है? यह सन्देह तुम्हें नहीं होना चाहिये और यदि तुम

आततायी हो तो तुम्हारा संहार किया जायेगा, तुम्हारा विनाश होगा।'' महाराजा शिव यह वाक्य प्रकट करके मौन हो गये। अब राजा रावण ने यह विचारा कि धनुर्याग को समाप्त करना चाहिये। (9 अक्टुबर, 1981)

१०. दशम अध्याय–धनुर्याग

धनुर्याग के लिए विश्वामित्र द्वारा राम–लक्ष्मण को मांगना

यहाँ से विश्वामित्र जी भ्रमण करते हुये अयोध्या जा पहुँचे। अयोध्या में यह चर्चाएं हो रही थीं कि आज महर्षि विश्वामित्र का आगमन हो रहा है, वह बड़े महान् प्रियतम हैं। वह महाराजा दशरथ के द्वार पर पहुँचे। राजा दशरथ ने उन्हें आसन दिया और स्वयं राजस्थली त्याग दी और कहा ''आइये, भगवन्! विराजिये।'' क्योंकि राजा से ऊर्ध्व में आध्यात्मिक और जो समाज का निःस्वार्थ क्रियाकलाप करने वाला होता है, उसका स्थान होता है। वह राजा से प्रबल होता है, उसकी भावना राजा से अधिक प्रिय होती है। महर्षि विश्वामित्र तपस्वी थे, आत्मवेत्ता थे। वह राष्ट्र के महापुरोहित थे जो राष्ट्र में सदैव सुखद कामना करते रहते थे कि सब राष्ट्रों को प्रियता ग्रहण करनी चाहिये। राजा ने नतमस्तक होकर कहा कि ''प्रभु ! राष्ट्र में आप बिना सूचना के पधारें हैं, यह हमारा कितना दुर्भाग्य है। प्रभु ! ऋषि का आगमन हो और उसे वाहनों द्वारा न लाया जाये तो यह राष्ट्र के ऊपर एक प्रकार का भार होता है।'' महर्षि विश्वामित्र बोले कि ''कोई बात नहीं, राजन्! यह तो हमारा कर्त्तव्य है। हमने तो अपने जीवन को इस प्रकार निर्माणित किया है कि जिस प्रकार प्रभु का राष्ट्र है। प्रभु का राष्ट्र ऐसा है, जिसमें प्रभु विद्यमान हैं परन्तु वह उससे पृथक हैं। हमने अपनी स्थली को त्याग दिया है, राष्ट्रीयता को त्याग दिया है, हमने तप करके ब्रह्मवेत्ता की उपाधि को प्राप्त किया है। उस ब्रह्मवेत्ता की उपाधि से भी पूर्व हमारे बाल्यकाल के संस्कार अस्त्रों–शस्त्रों के निर्माण में थे, वे हमारे समीप हमारे अन्तःकरण में विद्यमान रहते हैं। तो प्रभु! मेरा तो यह क्रियाकलाप चलता ही रहता है। मेरी इच्छा तो यह है कि इसके ऊपर आप पश्चाताप न कीजिये।'' राजा ने कहा कि ''प्रभु! क्या पान करोगे?'' उन्होंने कहा कि ''जो इच्छा हो।'' वह उन्हें अपने राष्ट्रगृह में ले गये। सर्वत्र देवियाँ विद्यमान हो गयीं और नाना प्रकार के पदार्थों को पान कराया गया और वह वाक्य तो उन्होंने पूर्व ही उच्चारण कर दिया था कि ''मैं राम–लक्ष्मण को लेने आया हूँ और राष्ट्र में भ्रमण करने के लिये और दैत्य–प्रवृत्ति समाप्त करने के लिये मैं पुनः धनुर्याग कर रहा हूँ।''

माता कौशल्या ने कहा कि ''कहो राजन्! आप दोनों में क्या–क्या चर्चाएं हो रही हैं, क्या विवाद हो रहा है?'' उन्होंने कहा कि ''हे देवी! हे पुत्री, मैं राम–लक्ष्मण दोनों को अपने साथ ले जाना चाहता हूँ क्योंकि मैं पुनः से धनुर्याग कर रहा हूँ। एक धनुर्याग तो मैंने उनके बाल्यकाल में किया था जो महर्षि वशिष्ठ और ऋषि–मुनियों की आज्ञा से किया था। अब मैं एक याग और करना चाहता हूँ जो सम्पन्नता को प्राप्त करके राष्ट्र को अपने में सम्पन्न बना सके।'' माता कौशल्या और सब देवियों ने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि ''हे प्रभु! आप मोह क्यों करते हैं?'' उन्होंने कहा कि ''देवी! मैं इसलिये मोह करता हूँ कि वे बालक हैं, किशोर हैं। किशोर वन में जायेंगे, उन्हें नाना प्रकार का कष्ट होगा क्योंकि ऋषि तो त्यागी पुरुष होते हैं।'' देवी ने कहा कि ''हे राजन्! तुम्हें प्रतीत है कि राजकुमारों का मोह होना तो यह जानो कि राष्ट्र की मृत्यु हो जाना है, क्योंकि जब राजा मोह में, ममता में, सहवास में परिणित होने लगता है तो जानो कि उस राजा का विनाश और राष्ट्र का दुर्भाग्य बन जाता है। इसे राष्ट्र का दुर्भाग्य न बनाइये। जैसे ऋषि इन्द्रियों को जय करके अपने जीवन को तपों में व्यतीत कर रहे हैं इसी प्रकार राजकुमारों को भी इन्द्रियों से जय होना चाहिये। हे राजन्! दोनों किशोरों को ऋषि को प्रदान कर कीजिये।'' (4 अगस्त 1987, अमृतसर)

तुम्हें स्मरण होगा जब महाराजा विश्वामित्र भगवान् राम और लक्ष्मण को यज्ञ को पूर्ण कराने के लिये ले जाने लगे उस समय राजा दशरथ को मोह आ गया और कहा कि ''हे ऋषिवर ! मैंने इस चौथेपन में इन पुत्रों को प्राप्त किया है, मैं इन पुत्रों को त्यागना नहीं चाहता हूँ।'' उस समय माता कौशल्या ने क्या कहा था ''भगवन्! यह क्या कर रहे हो, तुम्हें इस प्रकार का मोह क्यों हैं ? मैने तो आज के दिवस के लिये अपने पुत्र को जन्म दिया था। यदि आज भी राम यज्ञों की परम्परा को ऊँचा नहीं बना सकता ऋषि के याग को पूर्ण नहीं करा सकता तो मेरे गर्भाशय को धिक्कार है!'' मेरे प्यारे! एक माता वह कहलाती है, जो अपने प्यारे पुत्र को तपस्वी के साथ में रमण कराती है, उसे सक्रोच नहीं हो रहा है। यह एक आदर्श हमारे समीप है। **हे मानव! तुम तपस्वी बनो। बिना तप के यह राष्ट्र, यह समाज, यह मानवता कदापि भी ऊँचा नहीं बना करती।**(27 अक्टूबर 1973, लाजपत नगर नयी दिल्ली)

लंगोट–धारी ब्राह्मण ही राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है और राष्ट्र की परम्परा को ला सकता है। महर्षि विश्वामित्र लंगोट धारी थे। और राम कैसे सुन्दर थे! लंगोट–धारी विश्वामित्र उन्हें चेतावनी देते थे और वह किसी प्रकार भयभीत नहीं होते थे। जब विश्वामित्र राजा दशरथ के यहाँ यज्ञ की रक्षा के लिये पहुँचे तो महाराजा दशरथ आशा से निराशा में परिणित होने लगे और यह कहा कि ''महाराज! मैंने तो वृद्धपन में यह चारों पुत्र दृष्टिपात किये है और राम–लक्ष्मण मुझे अति प्यारे हैं, आप इनको ले जा रहें है, परन्तु मेरा अन्तरात्मा नहीं कहता कि ये जायें। उस समय विश्वामित्र ने कहा, ''अरे! तू क्षत्रीय है, क्या तुझे लज्जा नहीं आती इन वाक्यों को उच्चारण करते हुये? तू इस राष्ट्र की रक्षा क्या करेगा, जब तू इन पुत्रों को किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दिला सकता।'' जब ऋषि ने इस प्रकार का नाद किया तो उसी समय राजा दशरथ नतमस्तक हो गये और यह कहा कि ''भगवन्। आप ले जाईये, आपके ही ये पुत्र हैं।'' (23 अगस्त 1969, जोर बाग नयी दिल्ली)

राम और लक्ष्मण दोनों को माता कौशल्या ने कहा कि ''हे पुत्रवत्! जाओ, ऋषि की सेवा करो; क्योंकि ऋषियों की सेवा करना ही ब्रह्मचर्य–व्रत का पालन करना है। जो ऋषि की तपस्या में सहायक नहीं बनता, ऋषि की आज्ञा का पालन नहीं करता, वह संसार में अपने ब्रह्मचर्य–व्रत का पालन नहीं कर सकेगा। जाओ ब्रह्मचारियो! धर्म की, मानवता की रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।'' **ऋषि के मुखारविन्दु से जो यथार्थ धर्म और मानवता से गुथा हुआ शब्द हो उस शब्द को स्वीकार करना ही इनकी आज्ञा का पालन करना है और वही इनकी सेवा कहलाती है!** राम–लक्ष्मण दोनों ने माता–पिता के चरणों को स्पर्श करके कहा कि ''धन्य है। हमारी परम्परा तो यही रही है! माता! महापिता महाराज दिलीप जी के विचार हमने लेखनियों में बद्ध स्वीकार किये हैं। वह भी महान् तपस्वी थे तथा भयक्रर वनों में नन्दिनी की रक्षा करते थे। हम ऋषि के साथ तपश्चर बन करके अवश्य उनकी आज्ञा का पालन करेंगे।''

दण्डक वन में धनुर्याग

महर्षि विश्वामित्र पुनः दंडक वन में उन्हें उसी आश्रम में ले गये जहाँ उन्होंने अस्त्रों–शस्त्रों का अध्ययन किया था। अब राजा रावण ने भी यह विचारा कि धनुर्याग को समाप्त करना चाहिये। धनुर्याग करने के लिये राम–लक्ष्मण को विश्वामित्र दण्डक वन में वहाँ ले गये, जहाँ धनुर्याग की यज्ञशाला थी। महर्षियों ने, विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को धनुर्याग की रक्षा करने के लिये नियुक्त कराया तो वह रक्षा करते रहे। धनुर्याग चलता रहा, छः मास तक वह याग चला।

महर्षि भारद्वाज आश्रम में धनुर्याग

छः मास के पश्चात् महर्षि विश्वामित्र ने उस याग को पूर्ण करने के पश्चात् भारद्वाज मुनि के आश्रम को प्रस्थान किया और महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ पहुँचे। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने महर्षि विश्वामित्र का स्वागत किया। भगवान राम और लक्ष्मण ने महर्षि भारद्वाज, सुकेता और कबन्धी तीनों से मिलन करने को आश्रम में प्रवेश किया और वेद की आख्यिकाएं प्रकट कीं। महर्षि भारद्वाज बोले कि ''हे राम–लक्ष्मण! तुम धनुर्वेद में इतने पारायण हो जाओ, जिससे तुम रूढ़िवाद को समाप्त करके एकोकीवाद का प्रसार कर सको।'' उन्होंने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। महर्षि भारद्वाज आश्रम में छः महीने तक वे रहे। उन्होंने वरुणास्त्र का निर्माण कराया और एक ऐसे यन्त्र का निर्माण कराया कि जिसमें विद्यमान हो करके यह जाना जाता कि पृथ्वी के गर्भ में कितनी दूरी पर कौन सा परमाणु है, कौन सा खनिज तप रहा है, कौन सा खनिज तप करके क्या–क्या कर रहा है। उन्होंने कहा कि ''हे राम! मुझे बाल्यकाल में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस प्रकार का अध्ययन कराते रहे हैं। एक मेरा यन्त्र है, जिसमें विद्यमान हो करके हम लोक–लोकान्तरों की यात्रा करते हैं।''

भारद्वाज मुनि बोले कि ''तब मैं तत्व मुनि महाराज के द्वारा अध्ययन करता था तो ब्रह्मचर्य काल में ही विज्ञान के वांगमय में प्रवेश हो गया था। लोक–लोकान्तर में मैंने अपने यन्त्रों के द्वारा उड़ान उड़ी है। इन यन्त्रों का निर्णय कराने के लिये मैं तुम्हारे समीप आया हूँ। देखो, यह यान जब पृथ्वी से

उड़ान उड़ता है तो यह सबसे प्रथम चन्द्रमा में जाता है, चन्द्रमा से उड़ान उड़ कर बुध में जाता है, बुध से उड़ान उड़ कर शुक्र में चला जाता है, शुक्र से उड़ान उड़ कर मंगल में चला जाता है, मंगल से उड़ान उड़ कर रोहिणी मंडल में प्रवेश कर जाता है, रोहिणी मंडल से उड़ान उड़ कर मृचिका–मंडल में प्रवेश कर जाता है। मृचिका–मंडल से उड़ान उड़ कर वशिष्ठ–मंडल में प्रवेश कर जाता है, वशिष्ठ–मंडल से उड़ान उड़ कर अरुन्धती–मंडल में चला जाता है, अरुन्धती से उड़ान उड़ कर कृतिका–मंडल में चला जाता है, कृतिका मंडल से उड़ान उड़ कर पुष्य नक्षत्र में चला जाता है, पुष्य नक्षत्र से उड़ान उड़ कर स्वाति–वाचकेतु–मंडल में प्रवेश हो जाता है, वाचकेतु मंडल से उड़ान उड़ कर सौर–मंडल में प्रवेश कर जाता है, सौर–मंडल से उड़ान उड़ कर यह मूल की आभा में प्रवेश कर जाता है। जब मूल–कृतिका मंडल से उड़ान उड़ता है तो यह रोहिणी में प्रवेश हो करके भू–लोकों का भ्रमण करके यह यान पुनः जहाँ से उड़ान उड़ता है और वहीं स्थिर हो जाता है एक यन्त्र हमारे यहाँ इन्द्रेश्वर यन्त्र कहलाता है, जिसमें विद्यमान हो करके संग्राम भी करते रहते हैं, वह अन्तरिक्ष में भी उड़ान उड़ता रहता है।'' जब भारद्वाज ने यह वर्णन कराया तो राम–लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुये और अपने में ज्ञान का, विज्ञान का अध्ययन करने लगे। येगिकवाद का अध्ययन उन्होंने बाल्यकाल से ही किया था। (9 अकटुवर, 1981)

भारद्वाज–आश्रम में रावण–आगमन

महर्षि विश्वामित्र जब भारद्वाज मुनि के यहाँ पहुँचे तो महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने महर्षि विश्वामित्र का स्वागत किया। वहाँ बेटा! राजा रावण भी आ पहुँचे। उन्होंने कहा, ''प्रभु! यहाँ क्या रचना रची जा रही है ?'' भारद्वाज मुनि महाराज ने कहा ''यहाँ तो कोई रचना नहीं है। यह तो विज्ञान की उड़ान है। कोई भी विज्ञान की उड़ान उड़ सकता है। धनुर्याग भी विज्ञान की उड़ान है और तुम्हारे यहाँ जो विज्ञान की उड़ान लंका में उड़ी जा रही है, वह भी विशाल उड़ान है। विज्ञान किसी की सम्पदा नहीं है। वैज्ञानिक किसी राष्ट्र की सम्पदा नहीं। वह निष्पक्ष हो करके किसी वस्तु के ऊपर चिन्तन और मनन करता है और उसको साकार रूप देता रहता है। इसीलिये राम और लक्ष्मण दोनों यहाँ विश्वामित्र के सहित आये हैं। वे धनुर्याग के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।''

उन्होंने विचार–विनिमय प्रारम्भ किया तो भगवान राम ने, ब्रह्मचारी सुकेता ने, ब्रह्मचारिणी शबरी ने, गार्गेपथ्य ने एक यन्त्र का निर्माण किया उसी काल में और वह यन्त्र था, जिसको 'अहिल्या कृतिभा यन्त्र' कहते हैं। 'अहिल्या–कृतिभा यन्त्र' उसे कहा जाता है जो अहिल्या के गर्भ को जानता है। **अहिल्या यहाँ वैदिक साहित्य में पृथ्वी का नाम है।** अहिल्या के दस–दस योजन नीचे कैसा खनिज विद्यमान है, उस खनिज को वह दृष्टिपात कराता रहता है। भगवान राम ने उस यन्त्र को जानने का प्रयास किया। उस यन्त्र को जाना और जानने के पश्चात् वह अहिल्या का उद्धार करने वाले बने। (1 अक्तूबर 1981)

अहिल्या कृतिभा यन्त्र

हमारे यहाँ ऐसा माना गया है कि अहिल्या नाम पृथ्वी को कहा जाता है। भगवान राम का जीवन सदैव विज्ञान में विचरण करता रहता था। जहाँ वे महापुरुष थे वहाँ उनका विज्ञान भी नितान्त रहा। जहाँ वे सदैव परमात्मा के क्षेत्र में रमण करते रहते थे, वहाँ वे परमाणुवाद में भी रमण करते रहते थे। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब एक समय महर्षि भारद्वाज, महर्षि वशिष्ठ और महर्षि अतुरत महाराज इत्यादि का समाज एकत्रित हुआ था। उस सभा में यह निर्णय हुआ कि हम राम को महावैज्ञानिक बनाना चाहते हैं। क्योंकि राजा रावण का जो राष्ट्र है वह इतना विशाल है और उसके राष्ट्र में चरित्र की आभा न रहने से हमारा हृदय दुःखित हो रहा है। इसलिये हम चाहते हैं कि ऐसा कोई महापुरुष बने। महर्षि विश्वामित्र ने सभा में यह प्रतिज्ञा की कि मैं उनको धनुर्विद्या प्रदान करूँगा। महर्षि भारद्वाज ने यह कहा था कि मेरे द्वारा जितना भी राष्ट्र का द्रव्य है, जितना भी वैज्ञानिक यन्त्र है उनको अर्पित कर सकता हूँ जिससे वे रावण से संग्राम कर सकें उस सभा में यह निर्णय हुआ और विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण दोनों राजकुमारों को लाये। याग किया और याग द्वारा उन्हें धनुर्विद्या प्रदान की। जब उन्हें धनुर्विद्या प्रदान करने लगे तो छः माह तक राम महर्षि भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला में रहे और उनकी विज्ञानशाला में उन्होंने नाना प्रकार के जहाँ यन्त्रों को जाना। वहाँ एक यन्त्र का निर्माण किया गया जो महर्षि भारद्वाज के शिष्य सुकेता नाम के ब्रह्मचारी के सहयोग से बनाया जो उस अनुसन्धानशाला में विराजमान थे। उस यन्त्र का नाम ''अहिल्या कृतिभा स्वातन यन्त्र'' कहा जाता था। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि पृथ्वी का जो दस–दस योजन गर्भ है उस गर्भ में वह यन्त्र यह निर्णय करा देता था कि अमुक धातु इतनी दूरी पर है, नाना प्रकार की धातु का निर्माण कितनी दूरी पर हो रहा है, ऐसा उन्हें वह यन्त्र दिग्दर्शन कराता रहता था। भगवान राम को जब यह विद्या पान करायी गयी अहिल्या नाम की विद्या का अनुमोदन कराया गया। अहिल्या नाम पृथ्वी का है, नाना प्रकार के खनिज–खाद्य जिसके गर्भ में विराजमान हैं, अग्नि का जो स्रोत चल रहा है, यह पृथ्वी में नाना धातुओं का निर्माण करती चली जा रही है। मानो पात बनता है, पात बन करके उसको शुष्क बनाया जाता है, उसी से उनका निर्माण होता चला जा रहा है। भगवान राम ने उस यन्त्र का निर्माण कराया।

अहिल्या के पर्यायवाची

पर्यायवाची शब्दों में यहाँ गौतम नाम चन्द्रमा का भी है और गौतम परमपिता परमात्मा को भी कहा जाता है। जहाँ अहिल्या पृथ्वी को कहा गया है वहाँ अहिल्या नाम रात्रि को कहा गया है। यहाँ दर्शन यह कह रहा है कि अहिल्या यहाँ रात्रि को कहा जाता है। जब रात्रि रूपी अहिल्या इस चन्द्रमा को अपने शृंगार रूपी अन्धकार को समर्पित कर देती है, उस काल में चन्द्रमा को गौतम कहा जाता है। मानो रात्रि को अपने में समेट करके अमृत की वृष्टि करता है। चन्द्रमा को सोम कहते हैं क्योंकि वह मन का विषय है। मन जब यह नाना प्रकार के शुद्ध–अशुद्ध विचारों से युक्त होता है तो यह मन ही चन्द्रमा का स्वरूप धारण कर लेता है। जैसे चन्द्रमा अमृतमयी वृष्टि कर रहा है, कृषि की भूमि में अन्न की स्थापना करने वाला कृषक प्रसन्न हो रहा है, चन्द्रमा अपनी कलाओं से युक्त होता हुआ इसमें अमृत को भरण कर देता है। यही चन्द्रमा है, जो पूर्णिमा के दिवस समुद्र की नाना प्रकार की आभाओं को ले करके यह अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत कर देता है। चन्द्रमा को हमारे यहाँ गौतम कहा गया है। यह गौतम बन करके अमृत की वृष्टि कर रहा है, रात्रि को अपने गर्भ–स्थल में धारण कर रहा है। ऐसा कहा जाता है कि इतने में इन्द्र को प्रतीत होता है और वे आते हैं और अहिल्या पर आक्रमण करते हैं और अहिल्या को अपने में धारण कर लेते हैं और धारण करके मानो चन्द्रमा चिह्नवादी बन जाता है। यहाँ अहिल्या नाम रात्रि का है और इन्द्र सूर्य को माना है यह नाना भगों (किरणों) वाला सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है और अन्धकार को अपने में धारण कर लेता है। मुनिवरो! अन्धकार कहाँ रहता है? यह जो नाना प्रकार की भगों (किरणों) वाला इन्द्र है, भग नाम किरणों को कहा गया है। नाना प्रकार की किरणों को ले करके अन्धकार को नष्ट कर देता है और अन्धाकार इसके समीप नहीं रह पाता। इसी प्रकार गौतम नाम परमात्मा को कहा गया है। परमपिता परमात्मा जब सृष्टि का प्रारम्भ करता है तो उस समय यह जो अहिल्या नाम की प्रकृति है जो शून्यवत है, इसको क्रियाशील बनाता है और इसकी स्थली में विराजमान हो करके उसकी चेतना प्रकृति में कार्य कर रही है इसलिये परमात्मा को गौतम और प्रकृति को अहिल्या कहा जाता है। (24 जुलाई 1974, शुक्रताल)

महर्षि भारद्वाज जैसा वैज्ञानिक उस काल में कहीं दूसरा नहीं था। जिनकी निष्ठा केवल अनुसन्धान करने में ही थी। नित्य ही वह योगाभ्यास करते। उनका एक ही जीवन का कर्म था, सर्वप्रथम वह प्रातःकाल में अपने आसन को त्यागते। रात्रि काल में जब भी निद्रा से जाग जाते थे, उसी समय गायत्री छन्दों का पठन–पाठन करते थे, चिन्तन करते थे। प्रातः काल अपने कार्यों से निवृत्त हो करके ब्रह्मयज्ञ करते। उसके पश्चात् देवयज्ञ करते थे, उसके पश्चात् भोजन का पान करने के पश्चात् उनकी एक अनुसंधानशाला थी, विचारशाला थी, उसमें परमाणुवाद का निरीक्षण करते थे। यन्त्र बनाते, यन्त्रों का निर्माण चलता रहता था वह सब यन्त्र भगवान् राम को रावण से संग्राम करते समय भारद्वाज ऋषि ने प्रदान कर दिये थे। (13 अगस्त 1970)

भारद्वाज मुनि विज्ञान में पारायण थे। ऊँची उड़ानें उड़ते थे। यन्त्रों का निर्माण करते थे। उनके यहाँ यज्ञशालाएं भी थीं, जो नाना प्रकार के कोणों वाली थीं। उन यज्ञशालाओं में यज्ञ होते और उनमें से जो सप्त–जिह्वा वाली अग्नि की तरंगें उद्बुध्द होतीं उनमें जो परमाणु होते, तरंगे होतीं, उनको ऋषि एकत्रित करते रहते थे। उनके यहाँ नाना शिक्षा लेने वाले बह्मचारी थे। उस शिक्षालय में एक समय महाराजा कुम्भकरण जी भी विज्ञान की शिक्षा लेने पहुँचे। वहाँ वह ब्रह्मचारियों के साथ ऊँची उड़ान उड़ते रहते थे। (रावण इतिहास)

महर्षि भारद्वाज आश्रम में पाँच प्रकार की यज्ञशालाएं रहती थीं। उनके यहाँ देवयज्ञ को 'विष्णु यज्ञ' कहते थे। विष्णु नाम सूर्य का है। गौमेधयाग, अश्वमेध–याग आदि के लिये नाना प्रकार की यज्ञशाला महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ प्राप्त होती थीं। मुझे स्मरण है, महर्षि भारद्वाज के यहाँ जो पन्द्रह कोण की यज्ञशाला थी, उसमें वे आहुति देते थे। उससे जो तंगगें उत्पन्न होती थीं, उसके साथ में वैज्ञानिक अपनी उड़ान उड़ना प्रारम्भ कर देते थे। जिस प्रकार योगीजन सूर्य की किरणों के आश्रित हो जाता है, किरणों को ही ले करके वह अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ने लगता है। इसी प्रकार **हमारे यहाँ, देव यज्ञ के सम्बन्ध में भी कहा गया है, यह जो भौतिक यज्ञ है। जैसा महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ नाना प्रकार की यज्ञशालाएं रहती थीं और उन यज्ञशालाओं में वे आहुति देते तो तरंगे उत्पन्न होतीं, सुगन्धि आती तो उसके ऊपर अनुसन्धान चलता। उन परमाणुओं को एकत्रित किया जाता। वे ही परमाणु इस वायुमण्डल को ऊँचा बनाते हैं, प्रकृति को ऊँचा बनाते हैं। क्योंकि प्रकृति को देवी कहा है, वेदों ने इसको देवी कहा है, दुर्गेवेती कहा है, सोमधर्मा केतु कहा है, इसी को वैष्णवी कहा है।**

भारद्वाज की विज्ञानशाला में भगवान् राम विद्यमान हैं, लक्ष्मण विद्यमान हैं और ब्रह्मचारी सुकेता, देवर्षि नारद मुनि महाराज विद्यमान हैं, चारों ने भारद्वाज की अध्यक्षता में एक गोष्ठी की और विचारा कि क्या अन्तरिक्ष में ऊर्ध्वागति वाले यान का निर्माण कर सकते हैं? तो ब्रह्मचारी सुकेता ब्रह्मचारी कजलीवेश और ब्रह्मचारी रोहणीकेतु तीनों यान में विद्यमान हो करके उन्होंने पृथ्वी से उड़ान उड़ी और लगभग ढ़ाई घड़ी में चन्द्रमा में चले गये और ढ़ाई घड़ी में चन्द्रमा में जाने के पश्चात् वही यान ढ़ाई घड़ी के पश्चात् मंगल में चला गया। परिणाम यह कि वह यान 72 लोकों का भ्रमण करके भारद्वाज की विज्ञानशाला में पुनः आ गया। यह विज्ञान हमारे ऋषि–मुनियों के मस्तिष्क में ही नहीं उनकी क्रिया में भी रहता था। यह राष्ट्र की सम्पदा बन करके रहता था। क्योंकि विज्ञान राष्ट्र की एक सम्पदा है। राष्ट्र विज्ञान के ऊपर स्थिर रहता है।

महर्षि भारद्वाज भौतिक विज्ञान में इतने प्रकाण्ड थे, इतने महान् थे कि नाना परमाणुओं का मिलान करना जानते थे। वे कभी चन्द्रमण्ड़ल में, कभी मंगल–मण्डल में, कभी शुक्र में, नाना लोक–लोकान्तरों में जा कर उनके भौतिक परमाणुओं को जानते थे। वहीं आत्मा की विवेचना, आत्मा का दर्शन भी उनके यहाँ एक विशालता को प्राप्त होता रहता था। (12 अप्रैल 1971, मोग निकेतन ऋषिकेश)

ब्रह्मचारी सुकेता ने भगवान राम से कहा कि ''प्रभु! हमारी विज्ञानशाला में ऐसे–ऐसे यन्त्र हैं कि यदि एक सहस्त्र वर्षों पूर्व भी किसी मानव का निधन हो चुका है, परन्तु उस मानव का एक रक्त का बिन्दु आ जाये तो उस यन्त्र में उस रक्त के बिन्दु से मानव का चित्र भी साक्षात्कार हो जाता है।'' महर्षि भारद्वाज ने भी जब यह निर्णय कराया और कहा कि ''एक रक्त के बिन्दु में इतने परमाणु होते हैं कि उनसे माता के गर्भस्थल में एक बालक का निर्माण हो जाता है।'' **वेद का आचार्य कहता है, वेद–मंत्र कहता है कि नाना चित्र अन्तरिक्ष में रमण कर रहे हैं। ऋषि–मुनियों की जो उड़ान है,वह विज्ञान की बहुत ऊँची उड़ान है, परमाणुवाद की उड़ान है। एक–एक शब्द को चित्र में लाया जाता है, उन शब्दों के साथ में जब चित्रावलियों में चित्र दृष्टिपात होने लगते हैं तो मानव का जीवन सतोगुणी होता चला जाता है और मानव का राष्ट्र पुष्ट हो जाता है। यदि उसी विज्ञान में इन चित्रावलियों में अश्लीलता आ जाये तो राजा का राष्ट्र नारकिक बन जाता है।**

विचार–विनिमय यह कि भारद्वाज ने भगवान राम को यज्ञशाला के सर्वस्व रूप को वर्णित किया और दृष्टिपात कराया। मुझे ऐसा स्मरण है कि वह याग छः माह तक चलता रहा, छः माह के पश्चात् उसकी पूर्णाहुति हुई क्योंकि वह राष्ट्रीय याग था; भगवान राम ने संसार को विजय करने के लिए यह याग किया था। उसका समापन हो गया, ऋषि–मुनियों का हृदय प्रसन्नचित हो गया। विचार–विनिमय क्या कि राष्ट्र को सुगन्धित बनाना है देव–पूजा के द्वारा, यागों के द्वारा, साकल्य के द्वारा अपने कर्त्तव्य का पालन करना है।

भारद्वाज मुनि के यहाँ एक यन्त्र इस प्रकार का था जिसमें प्रत्येक मण्डल का परमाणु सूर्य की किरणों के साथ में तरंगों में तरंगित होता हुआ दृष्टिपात होता हुआ, उनके यन्त्रों में वह सङ्घर्ष होता हुआ दृष्टिपात होता रहता था।(6–5–1976, अमृतसर)

ऋषि–मुनि एक–एक वेद–मन्त्र को लेकर अनुसंधान करते रहते थे अथवा ब्रह्माण्ड को मापते रहते थे। एक–एक वाक्य में ब्रह्माण्ड की प्रतीति होती है। इसी वाक्य को लेकर एक वेद का मन्त्र है, 'यज्ञं भवितां ब्रह्मे। मनस्त ब्रहे आत्मा रथं वृही वृणः वस्तति,' यही वेद–मन्त्र जब आध्यात्मिक और विज्ञानवेत्ताओं के पास पहुँचा, महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ जब इस वेद–मन्त्र के ऊपर अनुसंधान होने लगा तो बाह्य–जगत् वालों ने विज्ञान को जानने का प्रयास किया। उन्होंने इसी वाक्य को जाना महर्षि वैशम्पायन के मस्तिष्क में जब इस मन्त्र की प्रतिभा ओतप्रोत होने लगी तो वह इस पर मनन–चिन्तन करने लगे कि यज्ञशाला का रथ बना करके अन्तरिक्ष में द्यौ–लोक में प्रवेश करता है, उसी रथ के ऊपर विचार–विमर्श करते हुए वह महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने इस वेद–मन्त्र के ऊपर अनुसंधान किया। ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी कबन्धी ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु, महर्षि पणपेतु महाराज और ब्रह्मचारी शबरी ने इस वाक्य के उपर बड़ा अनुसंधान किया। इसी वेद–मन्त्र को लेकर अनुसंधान करते हुए उन्होंने अपनी विज्ञानशाला में एक यन्त्र का निर्माण किया। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि जैसे ही मानव 'स्वाहा' उच्चारण कर रहे हैं, जैसे ही मानव का शब्द अग्नि के उपर धारयामि बन रहा है तो यन्त्र में उस यज्ञशाला का रथ बनकर के अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह द्यौ लोक में प्रवेश करता हुआ दृष्टिपात आ रहा है। इस विषय पर भौतिकविज्ञान के वैज्ञानिकों ने बड़ा अनुसंधान किया।(31 जुलाई 1987, अमृतसर)

महर्षि भारद्वाज आश्रम में ऐसे यन्त्र बनाते रहे, जिन यन्त्रों के द्वारा मानव लाखों वर्षों के शब्द जो द्यौ–लोक में रमण करते हैं उन शब्दों को ग्रहण किया जाता है, उन शब्दों को आकर्षित किया जाता है। क्योंकि वह शब्द द्यौ–लोक में रमण करता रहता है। उस यन्त्र को 'शब्दावली केतु भूमक' नाम का यन्त्र कहते हैं। इस यन्त्र में ऐसी विशेषता, ऐसे यन्त्र होते हैं, जैसे मानव के शरीर में मेरे प्यारे प्रभु ने करोड़ों जन्मों के संस्कार को स्मरण करने के लिये यन्त्रों का निर्माण किया है। उन यन्त्रों में केवल वायु की तन्मान्त्राओं से उसमें विशेषता ला करके उन शब्दों को वास्तव में यन्त्रों में ग्रहण करने लगता है। जिस प्रकार हमें प्रायः यौगिक साहित्य में प्राप्त होता है, जिस प्रकार यौगिक वाक्यों को, वेद ध्वनि को, मस्तिष्क में अध्ययन करते हैं। मस्तिष्क में उसको अनहद रूपों में उन ध्वनियों को, उन स्वरों को अपने में लाने का प्रयास करते हैं तो करोड़ों जन्मों के संस्कार, वह जो किया हुआ कृत्य है, अनहद ध्वनि में उसका साक्षात्कार हो जाता है। आत्मा का वहाँ चित्रण होता है। आत्मा के प्रकाश में उसके चित्त में दिग्दर्शन कर लेते हैं। इसी के तुल्य हम भौतिक यन्त्र बनाते हैं, तन्मत्राओं के द्वारा। (24 अगस्त 1971, जोरबाग, नयी दिल्ली)

इस संसार में किस–किस प्रकार का वैज्ञानिक किस–किस काल में हुआ। भारद्वाज मुनि के यहाँ नाना प्रकार की विज्ञानशालाएं थीं। उन विज्ञान शालाओं में ऐसे वैज्ञानिक थे, जिन वैज्ञानिकों की उड़ान लोक–लोकान्तरों में रहती थी। जहाँ भी छाया–प्रवाह होता था आधुनिक–काल में उसको 'ग्रहण' के रूप में प्रकट किया जाता है। उसे अपने यन्त्रों में दृष्टिपात किया जाता था। मुझे स्मरण आता रहता है, जिस त्रेता के काल में महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु और कबन्धी थे। वे सब अपने पूज्य गुरु की विज्ञानशाला में विद्यमान होते थे। राजा रावण का जितना वंश था, कुम्भकरण, रावण, मेंघनाद इत्यादि सर्व महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में विज्ञान की शिक्षा का अध्ययन करते रहे। परन्तु जब भी इस प्रकार का कोई अवसर आता तो अपनी–अपनी विज्ञानशाला में वैज्ञानिकों की सभाएं होतीं और सभाएं हो करके यह निर्णय किया जाता कि ग्रहण क्यों होता है, इस ग्रहण का मूल क्या है? (22 फरवरी 1980, बरनावा,)

राम कैसा विचित्र महापुरुष था! जिसके द्वारा एक महान् क्रान्ति उसके मस्तिष्क में आती रहती थी। देखो उन्होंने महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज से यही कहा कि ''महाराज! मैं विजय कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? महर्षि भारद्वाज बोले कि ''हे राम ! आज तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो तो विष्णु बनो। जय और विजय दोनों को अपनाने का प्रयत्न करो। मानो देखो नीतिज्ञ बनो जिससे तुम्हारी विजय हो जाये। आततायी जो अक्रमणकारी है, वह नष्ट हो जाना चाहिये।'' भारद्वाज के इस विचार ने भगवान् राम के आँगन में ऐसा स्थान ग्रहण कर लिया कि उसी वाक्य को उन्होंने अपने में धारण करने के पश्चात् दोनों का मिलान किया और मिलान करके विष्णु रूप धारण करके आततायी को नष्ट किया। (24 जुलाई 1971, जोरबाग, नयी दिल्ली)

जब रावण के आततायी विचार ऋषि–मुनियों को अपमानित करते रहे, तब महर्षि भारद्वाज ने भगवान राम को कहा कि ''हे राम जितना मेरे द्वारा शस्त्र इसे तुम ग्रहण कर सकते हो, इससे राजा रावण के आततायी राष्ट्र को तुम्हें नष्ट करना है।'' महर्षि भारद्वाज ने भगवान् राम को अपने अस्त्रों–शस्त्रों को प्रदान किया। महर्षि भारद्वाज ने नारायणतक को चन्द्रमा तक की यात्रा कराने का प्रयास किया और उनके विधाता कुम्भकरण को ऊँचा वैज्ञानिक बनाया।

(23 फरवरी 1971, लाक्षागृह, बरनावा)

भारद्वाज, विश्वामित्र, वशिष्ठ जो ब्रह्मवेत्ता भी थे, विज्ञान में रमण करने वाले, राष्ट्रों का उत्थान करते रहते थे। क्योंकि राष्ट्र वैसे ही ऊँचा नहीं बनता। राष्ट्र चरित्रवानों से महापुरुषों से ऊँचा बना करते हैं। जो विवेकी पुरुष होते हैं, वे वेद की ध्वनि को ले करके राष्ट्र में जो प्रसार करते हैं, राष्ट्र उसके आधार पर रमण करता है, तो राष्ट्र महान् और पवित्र बन जाता है। भगवान राम, विश्वामित्र और लक्ष्मण ने भारद्वाज मुनि महाराज के यहाँ लगभग छः माह रह करके नाना प्रकार के यन्त्रों को जानने का प्रयास किया। नाना यन्त्रों का निर्माण भी किया। धनुर्याग का अभिप्रायः क्या है, जो विश्वामित्र ने किया था। उस याग की रक्षा करने वाले राम और लक्ष्मण दोनों बनाये। क्योंकि रक्षा वही कर सकता है, जो निष्पक्ष और श्रद्वामय बन करके समाज को उन्नत बनाने के लिये अपने जीवन की आहुति दे देता है। (9 अक्टूबर, 1981)

ऋषियों का रूढ़ि नष्ट करने में योगदान

मुझे स्मरण है राष्ट्र को बनाने के लिये महापुरुषों ने कितना यत्न किया। रूढ़ि वैसे ही समाप्त नहीं होती। रूढ़ि उस काल में समाप्त होती है, जब मानव त्याग और तपस्या में परिणित होता है। त्याग और तपस्या की वेदी पर आ करके अपने को ऊँचा बनाते हैं। राम और लक्ष्मण दोनों राजकुमारों ने रघुवंश को ऊँचा बनाने के लिये भारद्वाज के यहाँ शिक्षा पा करके गमन किया। याग से निर्मित अस्त्रों में गमन करना, अन्तरिक्ष में यानों के द्वारा भ्रमण करना, चित्रावलियों के विज्ञान को जानना आदि उनके यहाँ सर्व विद्याएं थीं। मुझे स्मरण आता रहता है कि उन्हें भारद्वाज मुनि से ऊँची शिक्षा प्राप्त हुई थी।

(6 मार्च, 1961, हैदराबाद)

राम–लक्ष्मण को विज्ञान की विद्या और शिक्षा देने का श्रेय विश्वामित्र को रहा है। रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद आ गया था। ऋषियों ने भी यह वर्णन कराया कि रावण दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर रूढ़िवाद में प्रवेश कर सकता है। इसलिये ऋषियों ने राम–लक्ष्मण को धनुर्याग में परिणित कराया। उनको अध्ययन कराया। राम–लक्ष्मण उसी दंडक वन में गोमेध याग में पुनः परिणित हो गये और सर्वत्र राष्ट्र का भ्रमण करते और देखते थे कि हमारे राष्ट्र में कोई कुचरित्र तो नहीं है, उसको शिक्षा देते। विश्वामित्र ने उन्हें अस्त्रों–शस्त्रों की शिक्षा दी, धनुर्वेद की शिक्षा दी और पांडित्य उन्हें दिया। नाना प्रकार की विद्याओं का प्रसारण कराया और जब वह पारंगत हो गये तो विश्वामित्र जी ने यह कहा कि ''हे बेटा! अब तुम जाओ और अपनी अस्त्र–शस्त्र विद्या का प्रसार करो।'' शिक्षा देने का परिणाम यह हुआ कि रावण जैसे साम्राज्य को नष्ट कर सके, जिसका राष्ट्र सर्वत्र पृथ्वी मण्डल पर छाने वाला था। रावण के पुत्र जिन्हें मेंघनाद कहते थे, वह त्रिपुरी के राजा थे। उन्होंने इन्द्र के राज्य को नष्ट किया था। राजा रावण के पुत्र नारायन्तक सौन्धुक में राज्य किया करते थे, जिसको आधुनिक काल में रूस कहा जाता है। पाताल पुरी में अहिरावण राज्य करता था जिसको आधुनिक काल में अमेरिका कहा जाता है। इसी प्रकार सर्वशः उन्हीं का साम्राज्य था। राम जैसे त्यागी महापुरुषों ने उनके साम्राज्य को आकुंचित कर दिया और अपनी संस्कृति का प्रसार किया। राष्ट्र के ब्राह्मणों का यही कर्त्तव्य हुआ करता है। (6 मार्च 1969, हैदराबाद)

११. एकादश–जनकपुत्री सीता

जनक का वृष्टि–यज्ञ

जब महाराज जनक के यहाँ अकाल पड़ गया और वृंष्टि नहीं हो रही थी, उस समय राजा जनक ने ऋषि–मुनियों की सभा एकत्रित की जिसमें सोमपान ऋषि, शाण्डिल्य जी, मुदगल ऋषि, शौनक जी, आमान्तरि ऋषि आदि नाना ऋषि आये थे। महर्षि वशिष्ठ मुनि भी उस समाज में आ पहुँचे थे। उस सभा में नाना विचार–विनिमय करते हुए राजा जनक ने उनसे कहा था कि ''महाराज! मेरे राष्ट्र में वृष्टि नहीं हो रही है इसका मूल कारण क्या है?'' उन्होंने कहा कि ''तुम्हारे विचारों में अशुद्धवाद आ गया है। जब राजा के विचारों में अशुद्धवाद आ जाता है, घृणावाद आ जाता है, प्रजा के प्रति स्वार्थवाद आ जाता है तो उस राजा के राष्ट्र में अतिवृष्टि या अनावृष्टि हुआ करती है।'' जब ऋषियों ने ऐसा कहा तो राजा जनक नमस्कार करके बोले कि ''प्रभु! मेरी जो प्रजा है, इसमें 'त्राहिमाम्' हो रही है, वृष्टि नहीं हो रही है, इसका मूल कारण क्या है ?'' उन्होंने कहा ''तुम्हारे ही विचार हैं!'' राजा जनक ने कहा कि ''अब मुझे क्या करना है ?'' उन्होंने कहा कि ''वृष्टि–यज्ञ करो और स्वर्ण का हल बनवा करके गौ के बछड़ों को ले करके भूमि में हल चलाओ।''

सीता का जन्म

राजा जनक ने सबसे प्रथम वृष्टि यज्ञ किया। राजा का जो संकल्प था, वह प्रत्येक आहुति के साथ था। उनकी पत्नी गर्भिणी थी। वह भी संकल्प के द्वारा आहुति देती थी। उस संकल्प का परिणाम हुआ कि राजा जनक स्वयं गौ के बछड़ों को लेकर स्वर्ण का हल बना करके हल चलाने लगे। जिस समय राजा जनक के द्वारा हल चल रहा था, उसी समय राष्ट्र–गृह में कन्या का जन्म हुआ और उसी समय वृष्टि प्रारम्भ होने लगी। उस समय ऋषि आनन्द को प्राप्त होने लगे। उन्होंने राजा से कहा कि ''हे राजन्! तुम्हारा जो संकल्प है, वह पूर्ण हो गया है।'' **प्रत्येक आहुति के द्वारा जब होता का संकल्प होता है, यजमान का संकल्प होता है, ब्रह्मा का संकल्प होता है, तो वह यज्ञ–कार्य शृद्धामय देवताओं को प्राप्त हो जाता है और देवता धीमी–धीमी वृष्टि प्रारम्भ कर देते हैं। मानव को हूत करना चाहिये। हूत कहते हैं, आहुति देने को। देवताओं को अन्न प्रदान करने को हूत कहा जाता है।** (23–8–70, फीरोजपुर, पंजाब)

सीता राजा जनक की कन्या थी। एक समय जनक के राष्ट्र में अकाल पड़ गया। नाना ऋषियों को निमन्त्रण दिया गया। याज्ञवल्क्य, माता गार्गी, महर्षि लोमश आदि और भी अन्य ऋषि उनके आंगन में आये। राजा जनक ने कहा ''कि मेरी प्रजा अन्नाभाव से दुखी है, कुछ ऐसा यत्न करो कि अकाल समाप्त हो जाये।'' उन्होंने देखा और गणित के अनुकूल दृष्टि का ज्ञान करके कहा कि ''भगवन्! आप दो गौ के बछड़े लीजिये और अपनी वाटिका में जाकर स्वर्ण का हल चलाइये ताकि वृष्टि–याग हेतु स्थान सुरम्य बने।'' राजा जनक ने ऐसा ही किया। वृष्टि होनी ही थी। संयोगवश, जैसे ही राजा ने हल चलाया वृष्टि हुई, उधर राजा जनक के घर कन्या का जन्म हुआ।

नामकरण

जब राजा को कन्या उत्पन्न होने का समाचार मिला तो वह प्रसन्न हुए। उन्होंने ऋषि–मुनियों से नामकरण संस्कार का आग्रह किया। ऋषि–मुनियों ने कहा कि ''इसका 'सीता' नाम नियुक्त कर दो, क्योंकि व्याकरण की दृष्टि में 'सी' नाम हल की फाली का व 'ता' नाम वृष्टि का है। हल चलाने के साथ ही वृष्टि हुई है व वृष्टि के होते ही पुत्री उत्पन्न हुई है, दोनों के मिलान से इसका जन्म हुआ है।'' तो उस समय उसका नाम सीता नियुक्त कर दिया गया।

(22–10–1964, मोगा)

राजा जनक के राष्ट्र में जब कृषकों को आलस्य और प्रमाद आ गया था तो राजा जनक ने स्वयं दो वृषभों को ले कर इस माता वसुन्धरा के गर्भ में स्वर्ण के हल से अन्न उत्पन्न किया था और राजा का अनुकरण समाज कर रहा था। आलस्य समाप्त हो गया। देखो, वैश्यों ने उनका अनुकरण किया।

शिक्षा–दीक्षा

जनक कन्या सीता, राज पुरोहित स्वरति मुनि महाराज के द्वारा वेदों व धनुर्विद्या का अध्ययन करती थीं। (3–12–1973, ग्राम कुसारी)

विवाह

पैंतीस वर्ष की आयु में भगवान राम का राजा जनक के यहाँ सीता से संस्कार हुआ (18–11–1973, खेतडी, राजस्थान)

१२. द्वादस अध्याय—वनवास

राज्याभिषेक की घोषणा

राजा दशरथ एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वार पर पहुँचे। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा"कहो, राजन् ! तुम्हारा आगमन क्यों हुआ ?" राजा ने कहा "प्रभु! मैं इसलिये आया हूँ कि मेरा चौथापन आ गया है, मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को यह राष्ट्र अर्पित करना चाहता हूँ। इसका विचार और चिन्तन करने के पश्चात् कोई निर्णय दीजिये।" उससे पूर्व अयोध्या में एक सभा हो गयी थी उस सभा में यह निर्णय हो गया था कि राम को वनों में जाना है और आततायियों को नष्ट करना है, ऋषि—मुनियों का यह चिन्तन हो गया था, उनकी सभाओं में यह निर्णय हो गया था। परन्तु जब राजा दशरथ ने ऐसा कहा तो ऋषि कहते हैं "हम इसके ऊपर विचार—विनिमय करेंगे और कल तुम्हें इसका उत्तर दे सकेंगे।" राजा अपने राष्ट्र में पहुँचे। ऋषि ने अपने कुछ ब्रह्मचारियों और माता अरुन्धती को एकत्रित किया। माता अरुन्धती के साथ और भी नाना विदुषी देवियाँ थीं। ऋषि ने कहा "देवियो! मेरी इच्छा ऐसी है कि राम का राजतिलक होना चाहिये, क्योंकि राजा दशरथ की यह कामना बन गयी है।" उन्होंने कहा, "भगवन्! यह वाक्य तो प्रिय है, परन्तु यह तो विचारो कि राज्य—सभाएं तो एक स्थल में हैं और ब्रह्मसभा एक स्थल में है। ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ऊँचा है या राजसभाओं का निर्णय ऊँचा है ?" उन्होंने कहा कि "मेरे विचार में तो ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ऊँचा रहता है, क्योंकि उनके तपे हुए विचार होते हैं, अनुभव किया हुआ होता है। वे विचार—तरंगों को अच्छी प्रकार जानते हैं, समाज की प्रतिभा को जानते हैं, समाज को वह ऊँचा बनाना चाहते हैं। इसलिये ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय जब ऐसा है तो राम को वन में ही जाना चाहिये।" ऋषि ने कहा "अब कोई युक्ति तुम्हें ही विचारनी है।"

कैकेयी की राम—वनवास—कामना

वशिष्ठ ऋषि ने अपने ब्रह्मचारियों की और विदुषियों की सभा में, विचारशाला में अपना मन्तव्य प्रकट किया कि राम को राजतिलक हो जाना चाहिये। परन्तु इसके उत्तर में जब नाना ऋषियों को यह प्रतीत हुआ तो उन्होंने अपनी, कुछ सभाएं गुप्तचर रूपों से कीं। वशिष्ठ मुनि ने अगले दिवस ही यह घोषणा राजस्थली में कर दी कि राम को राजतिलक होना चाहिये। अगला दिवस हुआ राजतिलक होने ही वाला था, अयोध्या में नाना प्रकार के आनन्द आ रहे थे, मग्नता हो रही है। राजगृहों में गान गाये जा रहे हैं। याग हो रहे हैं, सर्वत्र राष्ट्र में नाना प्रकार के आनन्द हो रहे हैं। देखो, उसी रात्रि में अभ्रेतु ऋषि महाराज जो वशिष्ठ मुनि महाराज के शिष्य कहलाते थे, मन्थरा के द्वार पर पहुँचे और मन्थरा से कहा "हे मन्थरा! ऋषि ने कुछ कहा है, यह पत्र लीजिए।" उन्होंने लेखनी उनको (मन्थरा) अर्पित की और वहाँ से अपना गमन किया। मन्थरा ने वही पत्रिका कैकेयी को प्रेषित कर दी। कैकेयी ने जब उस लेखनी को अपने में श्रवण किया तो वह राम के राजतिलक का विरोध करने लगी। मध्यरात्रि का समय था, महर्षि बाल्मीकि का कथन है कि मध्यरात्रि के काल में कैकेयी कोप—भवन में विद्यमान हो गयी। जब राजा को यह प्रतीत हुआ कि कैकेयी तो कोप—भवन में जा पहुँची है तो उस समय वह अपने आसन को त्याग करके कोप—भवन में पहुँचे। मध्यरात्रि थी, उन्होंने कहा "देवी! तुम्हारी क्या इच्छा है ?" उन्होंने कहा "प्रभु! मेरी इच्छा यह है कि राम को वन जाना चाहिये।" उन्होंने कहा "देवी! तुम्हें यह क्या हो गया है ? तुम राम से इतना स्नेह करती थी। राम से तुम्हारी इतनी प्रीति थी। आज तुम राम को वन भेज देना चाहती हो, तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गयी?" उन्होंने कहा कि "नहीं, भगवन् ! मेरी ऐसी ही इच्छा है, यह मेरी आन्तरिक कामना है।" उन्होंने कहा कि "ऐसा उच्चारण करना तुम्हारे लिये शोभनीय नहीं है, क्योंकि तुम राम की ममतायी माता हो।" उन्होंने कहा कि "जहाँ कर्त्तव्य की भावना आती है, वहाँ ममता समाप्त हो जाती है। मेरी अन्तर्भावना यह है कि राम को वन में जाना चाहिये और मेरे पुत्र को व्रती होना चाहिये।"

यह वाक्य क्यों कहा गया ? क्योंकि राजा तथा ऋषि यह जानते थे कि बिना घोषणा के राजतिलक होने जा रहा है। भरत को यह प्रतीत नहीं था कि राम का राजतिलक होने वाला है, न शत्रुघ्न को यह प्रतीत था, लक्ष्मण को भी इतना विदित नहीं था, क्योंकि वह महर्षि सुधन्वाकेतु के यहाँ धनुर्विद्या को प्राप्त करने गये थे। दोनों हिमालय की कन्दारओं में भरत और शत्रुघ्न दर्शनों का अध्ययन कुछ विज्ञान का अध्ययन और कुछ अस्त्रों—शस्त्रों की विद्या का अध्ययन कर रहे थे। क्योंकि जब कोई इस प्रकार का कार्य होता है तो अपने कुटुम्ब, अपने सहपाठी मानो अपना जो भी सम्बन्ध होता है, उसको यह प्रतीत होता है कि हमारे गृह में राज्य में राज्याभिषेक होने वाला है। तो भरत और शत्रुघ्न को कोई प्रतीत नहीं था। दशरथ से कैकेयी ने कहा कि "महाराज! बिना सूचना के आप राम को राज्यस्थली प्रदान कर रहे हैं तो मेरी इच्छा यह है कि आप राम को वन दे दीजिये।" दशरथ व्याकुल होने लगे। पुत्र का ममत्व उनके हृदय में एक स्थली बन गया था। उन्होंने कहा "देवी! तुम ऐसा न करो। वेद का ऋषि कहता है, मन्त्र कहता है कि नीति में अनीति नहीं करनी चाहिये। देखों आनन्द में शोकातुर नहीं होना चाहिये। भाव से अभाव को न उत्पन्न करो।" जब उन्होंने ऐसा कहा तो कैकेयी ने कहा "कदापि नहीं, भगवन्! राज्याभिषेक नहीं होगा, वन होगा और चौदह वर्ष का वन होगा।" जब उन्होंने (दशरथ से) यह कहा तो वह बोले कि "आप ऐसा क्यों उच्चारण कर रही हैं ?" उन्होंने कहा कि "मेरे दो वचन हैं। जिस समय कृष्णादित राजा के यहाँ तुम्हारा संग्राम हुआ था और कुबेर के यहाँ भी तुमने संग्राम के लिये अपनी घोषणा की थी उस समय रथ की धुरी ध्वस्त हो गयी भी, उसके दो भाग हो गये थे तो मैंने उपनी भुजाओं की अनिमा धुरी में परिणित कर दी थी। क्योंकि मेरा रक्त क्षत्रिय था और क्षत्रियाणी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने पति के साथ युद्ध में, संग्राम में जाती है तब आपने दो वचन देने को कहे थे। मेरे वे दो वचन हैं, उन्हें प्रदान कीजिये। राजा रावण ने घ्राती में (अर्थात् नाक के नीचे) समुद्र के मध्य में पृथ्वी का एक भाग ओत—प्रोत करा दिया था। तुम्हें यह प्रतीत है कि मैं और आप दोनों वाहन को ले करके उस कृतिभा में पहुँचे और वहाँ से हम उस यन्त्र को लाये, जिसमें राजा कौशल की कन्या कौशल्या ओत—प्रोत कर दी थी। उस समय तुम्हारा संस्कार कौशल्या से हुआ था, यह तुम्हें प्रतीत होगा। आज मेरे दो वचन हैं, जो मुझे आपको देने है। आज मुझे राम को वन देना है, राम को मुझे ऐश्वर्य नहीं देना है।" जब इस प्रकार उन्होंने मध्यरात्रि में यह घोषणा की तो राजा मौन हो गये और मौन हो करके एकान्त स्थली पर विद्यमान हो गये।

यह सर्व वार्ता राम को प्रतीत हो गयी थी कि मेरी माता कैकेयी मुझे वन के लिये विवश कर रही है और मुझे वन जाना है। राम तपे हुए थे। कुछ तो माता के गर्भस्थल में तपे, कुछ माता की लोरियों में तपे, कुछ आचार्य के गृह में तपे, कुछ विश्वामित्र के आश्रम में तपे, कुछ भारद्वाज मुनि के द्वारा तपे थे। वशिष्ठ के द्वारा ऋषि भारद्वाज मुनि के आश्रम में जब वह अहिल्या कृतिभा यन्त्रों का निरीक्षण कर रहे थे अथवा निर्माण कर रहे थे, वह पृथ्वी के गर्भ में यातायात बना रहे थे, उस समय यह उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मुझे महापुरुषों की अस्त्रों—शस्त्रों से रक्षा करनी है, मुझे महापुरुषों की सेवा में रहना है। ऐसा उनका वचन था, ऐसा मन्तव्य था। माता कौशल्या जी जब राम को लोरियों का पान कराती रहतीं तो यह कहती रहती थी कि "हे बालक! हे राम ! तूने मेरे गर्भस्थल से जन्म पाया है, तेरा कर्त्तव्य है कि तू महापुरुष बन, तू महादेवत्व बन, देवत्व को तुझे प्राप्त करना है, दैवी सम्पदा में जाना है, दैत्यों का हनन करना है। तुझे महापुरुषों की सेवा करनी है।" माता के हृदय के उद्‌गार बालक के अन्तःकरण में ओत—प्रोत हो जाते थे।

राम ने जब यह श्रवण किया कि माता कैकेयी की यह कामना है कि मुझे वन जाना है तो मुनिवरो ! देखो, मध्यरात्रि में वह भी कोप—भवन में जा पहुँचे। शोक—भवन में कैकेयी विद्यमान है। राम ने कैकेयी के चरणों को स्पर्श किया। कैकेयी ने कहा "धन्य हो! पुत्र ! आज तुम मेरे द्वार पर आये हो, मेरी इच्छा है कि तुम चौदह वर्ष के लिये वन चले जाओ।" राम ने कहा "मेरी तो यह कामना रहती है, मातेश्वरी! कि मुझे माताओं की आज्ञा का पालन करना है। जिन माताओं के गर्भस्थल में मेरा जीवन पनपा है, यदि मैं उन माताओं की आज्ञा का पालन नहीं करूँगा तो मेरे पुत्र होने का अस्तित्व ही क्या है?" राम कहते हैं "मातेश्वरी ! तुम्हारा जो अन्तःकरण है, उसमें कुछ और भावना है, बाह्य—जगत् में कुछ और भावना है! मैं वन अवश्य जाऊँगा। मातेश्वरी! तुम्हारे हृदय में जितनी प्रीति है, उस प्रीति को मैं जानता हूँ परन्तु तुम्हारे समीप कोई ऐसी विवशता आ गयी है, जिससे तुम मुझे यह उच्चारण कर रही हो कि तुम वन चले जाओ। मैं वन जा रहा हूँ।" माता के चरणों को स्पर्श किया और राजसी वस्त्रों को उन्होंने अपने से दूर कर दिया। (23 अप्रैल 1977, अमृतसर)

माता कैकेयी के समीप भारद्वाज का पत्र था और भारद्वाज मुनि ने यह कहा था कि इस राष्ट्र के चरित्र की रक्षा करनी है, विज्ञान की रक्षा करनी है और वेद की रक्षा करनी है, समाज को पवित्रता में लाना है तो राम को यहाँ राष्ट्रीय परम्परा की स्थापना (राजा के रूप) में नहीं होना चाहिये।

माता कैकेयी चारों वेदों का अध्ययन करने वाली विदुषी थी। कौशल्या भी चारों वेदों का अध्ययन करने वाली विदुषी थी। ऋषि–मुनियों ने शिक्षा दे करके राम जैसे महापुरुषों का निर्माण किया। माता कैकेयी ने अपने पुत्र राम को जान करके भयक्रार वनों को जाने की आज्ञा दी और कहा कि "तुम भयक्रर वनों में जाओ। पिता की मृत्यु तो आज नहीं तो कल होनी है। परन्तु यह जो अयोध्या के लाखों प्राणी 'त्राही–त्राही' करेंगे इनकी सुरक्षा होनी चाहिये। इनके प्राणों की रक्षा होनी चाहिये।" ऐसा उन्होंने कहा। (पुष्प 34)

महर्षि वाल्मीकि ने अपनी लेखिनीबद्ध करते हुए कहा कि "भगवान राम को जब वन प्राप्त हुआ तो इसमें माता कैकेयी का दोष नहीं था, यह राजा दशरथ की आज्ञा नहीं थी, यह ऋषि–मुनियों की आज्ञा थी।" बाल्यकाल में वशिष्ठ मुनि ने राम से कहा था कि "हे राम! यह जो रावण आतताई हो रहा है, जिसने अराजकता उत्पन्न कर दी है, उसको तुम्हें विजय करना है और अपनी संस्कृति का प्रचार करना हैं।" भगवान राम ने भील और द्रविड़ जो भयक्रर वनों में रहते थे, उन्हें अपनाया और अपनाने के पश्चात् एक सुंदर मार्ग लेकर चले। क्योंकि माता कैकेयी ने यह कहा था कि "राष्ट्र की उन्नति होनी चाहिये।" राम के वनवास में माता कैकेयी का कोई दोष नहीं था, वशिष्ठ, विश्वामित्र, देवर्षि नारद, सोम और लोमश इत्यादि ऋषियों ने ऐसा निर्णय कराया था। यह एक प्रकार की ऋषि–मुनियों की ब्राह्मणों की विचारधारा थी।(6–3–1969, हैदराबाद)

वनवास से पहले दशरथ और कौशल्या से आज्ञा

अब राम पिता के द्वार पर पहुँचे। पिता से कहते हैं "हे पिता! माता की आज्ञा का पालन करना तो पुत्र का कर्त्तव्य होता है, आप मुझे कर्त्तव्य से दूर क्यों ले जा रहे हैं। आप शोकाकुल क्यों हो रहे हैं, ममत्व में क्यों आ रहें हैं ? माता का हृदय तो और भी नम्र होता है। हे पिता! आपका हृदय इतना नम्र बन गया है, यह मेरे विचार में नहीं आ पा रहा। आप अपने मन में यह स्वीकर न करें कि राम कौशल्या का है। मानो मैं कैकेयी का ही पुत्र हूँ। यदि कैकेयी के गर्भ से मेरा जन्म होता तो भी माता कैकेयी वन जाने के लिये विवश कर देती। वह ऋषि–मुनियों की भुजाओं में मुझे त्याग देती कि यह राम है। आज भी मेरी प्रिय वही माता है। उनके लिये मेरे हृदय में द्वितीय भाव नहीं है।"

राजा दशरथ इन वाक्यों को पान कर रहे थे तो उनका अन्तःकरण व्याकुल हो रहा था। वह ममत्व में परिणित हो रहे थे। पुत्र का मोह उन्हें विवश कर रहा था। राम कहते हैं "आप मोह के वशीभूत न हो जाओ। मेरे वन जाने से कितना ही संसार मेरे से प्रसन्न होगा! कितना संसार मेरे से अप्रसन्न होगा ? यदि मैं महापुरुषों की आज्ञा का पालन करता रहूँ तो मेरे जीवन का कुछ उपयोग है और यदि मैं महापुरुषों की आज्ञा का पालन नहीं करूँगा तो मेरे जीवन का कोई उपयोग नहीं है। सबसे प्रथम तो मेरे लिये माता ही महान् है, उसके पश्चात् आप और नाना ऋषि हैं।" राम इन उदारतामयी शब्दों को उच्चारण कर रहे थे। परन्तु राजा मोहवश हो करके व्याकुल हो रहे थे। राम को अपने हृदय से आलिंगन करते हुए बोले "हे पुत्र! मेरा हृदय नहीं चाहता। मेरे हृदय में यह नहीं है कि तुम वन चले जाओ। मेरे हृदय में तो यह है कि तुम राष्ट्र का पालन करो, राज को भोगो। राज के भोगने में ही मानो सर्वत्रता है।" राजा के वाक्य पान करके भी राम का हृदय मोहवश नहीं हुआ। राम **एकरस रहने वाली महान् आत्मा थी, इसीलिये मानव को तप में रहना चाहिये, जिससे कठोरता आ जाये। आपत्तिकाल आ जाये उस को, जो आपत्ति स्वीकार नहीं करता और मग्नता आ जाये तो उसमें वह मन में अति हर्ष नहीं लाता, वह मानव वास्तव में महापुरुष कहलाता है। राम कैसे प्रिय महापुरुष कहलाये गये। वे सदैव दैवी सम्पदा में विचरते रहते थे।**

देखो, कौशल्या जी को महर्षि वशिष्ठ कुछ उच्चारण करके अपने आश्रम चले गये। अब जब दिवस आया, सूर्य उदय होने के पश्चात् कैकेयी इत्यादि माताओं को प्रणाम करके राम माता कौशल्या के द्वार पर पहुँचे। माता कौशल्या के चरणों को स्पर्श किया। कौशल्या अति हर्षित हो रही थीं, क्योंकि कौशल्या नहीं चाहती थी कि "मेरा राम राजसी विचारों में पनपता रहे।" क्योंकि वह राज–सभाओं को जानती थीं, राजनीतिज्ञता उसके हृदय में थी। वह सदैव यह जानती थी कि "राजा दशरथ ने अपने स्वार्थ के लिये वेद की परम्परा को नष्ट कर दिया। पुरुष और देवी दोनों ही वेदों में सार्थक माने जाते हैं जैसे प्रकृति और ब्रह्म का मिलान होने से सृष्टि का प्रादुर्भाव हो जाता है, इसी प्रकार पति–पत्नि दोनों एक ही रूपों में रहते हैं और एक ही रूपों में रह करके उनके जीवन की सार्थकता कहलाती है। परन्तु मेरे पतिदेव ने यह बड़ा असत्य किया है कि अपने स्वार्थ के लिये तीन संस्कार कराये हैं, यह वैदिक परम्परा के अनुरूप नहीं है।" कौशल्या बड़ी हर्षित हो रही थी और वह कह रही थी "राम तुम वन जा रहे हो।" उन्होंने कहा, "हाँ, माता! मुझे आज्ञा दीजिये!" कौशल्या कहती है "धन्य है, पुत्र ! जाओ, तुम चौदह वर्ष माता की आज्ञा का पालन करो। आज के दिवस के लिये मैंने तुम्हें अपनी लोरियों का पान कराया था। तुम्हें प्रतीत है, राम ! जिस समय तुम मेरे गर्भस्थल में पनप रहे थे, महर्षि श्रृंगी ने यह कहा था तुम राजसी अन्न को ग्रहण नहीं करना। मैंने कला–कौशल करके अपने उदर की पूर्ति का प्रयास किया था। अन्न तपोमय होना चहिये। उस उन्न के द्वारा मैंने तुम्हें पनपाया अपनी लोरियों का पान कराया। आज का दिवस मेंरे लिये शोभनीय है। आज मेरा पुत्र शोक से रहित है, मग्न हो रहा है, एक ही रस में हो रहा है!" माता उन्हें आज्ञा देती है। (23 अप्रैल 1977, अमृतसर)

राम वन को जा रहे हैं और माता कौशल्या प्रसन्न होकर कह रही है, "जाओ वन चले जाओ।" माता रुदन नहीं कर रही है, मोह नहीं कर रही है, क्योंकि वह यह जानती थी की तूने तपस्वी बालक को जन्म दिया है। माता रुदन नहीं कर रही है वह कहती है कि "राजा को मोह है और राजा की मृत्यु होने वाली है और मुझे मोह नहीं है, तुम वन चले जाओ।" "राजा की मृत्यु होने वाली है", माता यह कह रही है, क्योंकि वह यह जानती थी कि राजा की मृत्यु हो जायेगी। माता प्रसन्न हो रही है और कहती है कि "भयक्रर वन में जा करके इस समाज को तुम्हें ऊँचा बनाना है, इसीलिये मैंने तुम्हें जन्म दिया है।" यह कह कर उसने राम को आज्ञा दी। **देखो कैकेई की आज्ञा द्वेषपूर्ण नहीं थी, कौशल्या की भी भावना पवित्र थी। जब माता के इस प्रकार के विचार होते हैं तो उन विचारों में स्वर्ग आ गया है, और वही विचार जब ऊर्ध्व गति में चले जाते हैं, वही विचार उड़ान के साथ में चित्त के मण्डल से पार हो करके मोक्ष की पगडन्डी को प्राप्त करा सकते हैं।**

कौशल्या जी से बहुत ऋषि–मुनियों ने कहा, आचार्यों ने कहा कि "तुम राम को क्यों आज्ञा दे रही हो ?" उन्होंने कहा "मैने तो इसे जन्म दिया है, मेरे जन्म देने का अभिप्रायः यह नहीं है, वास्तव में इसका जन्मदाता तो प्रभु है और मैंने इसको विचार दिया है, इन विचारों से मैं अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहती हूँ।"(25 मार्च 1986, लाक्षागृह बरनावा)

सीता और लक्ष्मण की इच्छा

इतने में आ करके सीता ने कहा, "हे मातेश्वरी ! मुझे भी आज्ञा दो। मैं राम के साथ ही उनकी सेवा में परिणित रहना चाहती हूँ। पत्नी अपने पति से होती है या प्रभु से होती है? जैसे आत्मा की चेतनता प्रभु से होती है, ऐसे ही पत्नी को कार्य करने की कुशलता पति के द्वार से प्राप्त होती है।" सीता के इन शब्दों को पान करते ही कौशल्या बोली "पुत्री! मैं तुम्हारे लिये कोई भार नहीं बनना चाहती हूँ। मैं तुम्हें विडम्बना में नहीं ले जाना चाहती हूँ। तुम्हारी इच्छा है, तुम वन में अपने जीवन को व्यतीत कर सकती हो तो तुम जाओ और वन में रहो, पति के साथ रहो। उसकी सेवा करो; पति की आज्ञा का पालन करो। तुम भी वीर्यत्त्व (ब्रह्मचर्य) को प्राप्त होना।" अब लक्ष्मण भी यही उच्चारण करने लगा। (23 अप्रैल 1977, अमृतसर)

उर्मिला का संकल्प

जब भगवान राम, लक्ष्मण और सीता वन को जाने लगे तो लक्ष्मण ने अपनी पत्नी उर्मिला से कहा था कि "तुम भी वन को चलो। मैं राम की सेवा करूँगा तुम सीता की सेवा करना।" उस समय आत्म–विश्वासी उर्मिला ने कहा था कि "हे पतिदेव! जब तक आप आओगे मैं निर्मल दूध की भाँति संसार में रहूँगी। यदि मैं आपके साथ चली गयी तो आपका सेवा–भाव नष्ट हो जायेगा। सेवा भाव नहीं रह सकता, क्योंकि जब मैं आपकी पत्नी बनकर चलूँगी तो आप सेवक नहीं हो सकते इसलिये प्रभु! आप जाइये। राम और माता सीता की सेवा करना। मुझ में आत्म–विश्वास है, मैं आपको 14 वर्ष पश्चात् ऐसी ही प्राप्त होऊंगी, जैसे आज आप मुझे त्यागकर जा रहे हैं।" लक्ष्मण चले गये।(1–8–1968, जोरवाग, नयी दिल्ली)

राम–लक्ष्मण–सीता का वन गमन

तीनों प्राणी जहाँ वह राजसी वस्त्रों को धारण करते थे, वहाँ भगवा वस्त्रों को धारण कर अयोध्या को त्याग देते हैं। परिणाम तुम्हें यह प्रतीत होगा कि 14 वर्ष का उनका वन का संकल्प था। वन का अभिप्रायः तुम जानते हो? **वन कहते हैं, जहाँ किसी प्रकार की उन्हें सहायता प्राप्त न हो। जहाँ उनके जीवन का जो हृदय रूपी वन है, वह इतना विशाल बन जाये कि प्रत्येक प्राणी उनका मित्र बन जाये। ऐसा जो वन होता है, वही तो राम जैसे सखा को ऊँचा बनाता है। नाना प्रकार की आपत्तियों का पान करते हुए, भयक्रर वनों में वह पर्वतों की शैय्या बनाने वाले बने।** (23–4–1977, अमृतसर)

मर्यादा–प्रदर्शन का संकल्प

जिस समय भगवान राम वन को चले जा रहे थे, उस समय मन्त्री ने कहा था कि ''हे राम! तुम अयोध्या को चलो। मैं तो तुम्हें मार्ग दिखाने को आया था, तुम वन को न जाओ।'' उस समय भगवान राम ने कहा था कि ''मैं संसार में मर्यादा बाँधने के लिये आया हूँ। मैं बहुत ही जन्मों से चलता हुआ आया हूँ, परन्तु आज मेरे लिये कोई कर्म शेष नहीं रहा है। केवल मर्यादा बाँधने के लिये संसार में आया हूँ और मुझे मर्यादा–प्रदर्शन करना है। आज मुझे यह निर्णय कर देना है कि माता–पिता की आज्ञा पालन करने में मुझे सक्रोच नहीं और न ही मुझे कोई कष्ट है।'' उस मर्यादा पुरुषोत्तम ने यह किया कि उसी सुबह को अयोध्या को त्याग करके वन को चल दिये।(6–11–1962, महरौली, दिल्ली)

वशिष्ठ मुनि महाराज की शिक्षा से मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने क्या किया? माता की आज्ञा पा करके वन चले गये। उनकी भुजाओं की कोमलता उनके शरीर की कोमलता ऐसी विलक्षण थी कि देखकर मानव चकित हो जाता था। राज्य–स्थानों में विश्राम करने वाले थे परन्तु पर्वतों की शय्या स्वीकार कर ली। केवल उस मर्यादा को बाँधने के लिये, माता की आज्ञा का पालन करने के लिये वनों में चले गये। आधुनिक काल तो ऐसा है जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक काल में कहा कि यदि द्रव्य मिल रहा है और माता कहे कि द्रव्य को न प्राप्त करो, तो माता को ही नष्ट कर देवें और कहे कि यह मुझे राज्य नहीं भोगने देती वन दे रही है।'' मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने माता की आज्ञा पा कर के मर्यादा बाँधी और राज्य से वन को चले गये।

भगवान राम ने कितनी सुन्दर आज्ञा का पालन किया, वह कितने ऊँचे योगी और महान् आत्मा वाले थे, जिन्होंने संसार को पुनः मर्यादा में विकसित कर दिया! आज हम उन महान् आत्माओं के आभारी बन रहे हैं। मुनिवरो! कहाँ एक स्थान में राम का राज्यतिलक हो रहा था और कहाँ दूसरे स्थान में माता अपनी महान् वाणी से उच्चारण कर रही थी कि राम को वन ही जाना चाहिये, उस मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने जान लिया कि मैं संसार में आया हूँ केवल माता–पिता की आज्ञा पालन के लिये और अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के लिये। उसी समय राम वन के लिये नियुक्त हो गये और कहा ''हे माता! मुझे आज्ञा दो, मैं अवश्य वन जा रहा हूँ।'' उसी समय कौशल्या माता ने आज्ञा दी ''हे पुत्र ! तुम अवश्य वन चले जाओ।'' माता की आज्ञा पा करके राम ने पिता का वियोग नहीं माना, केवल कर्त्तव्य जानकर वन चले गये। मुनिवरो! आज का मानव कहाँ जा रहा है ? महानन्द जी के कथनानुसार आज मानव को सूक्ष्म सी माया प्राप्त हो जाये तो नाना पापाचार करने को उद्यत है, नाना प्रकार के पापाचार करके द्रव्य को एकत्रित करने की इच्छा कर रहा है। अरे, आज हमें राम बनना है, उस मर्यादा में बँधना है कि इधर राज्य मिल रहा है, उसकी कोई मग्नता नहीं; वन मिल रहा है उसका कोई शोक नहीं। आज हमें मर्यादा को बाँधकर इस संसार–सागर से पार होना है।(18 अगस्त 1962, विनय नगर, नयी दिल्ली)

राम कैसा था ? मेरा राम ऐसा था कि अयोध्या को त्याग करके जब वन प्राप्त होने लगा, वन की प्रतिभा आने लगी तो माता कैकेयी आज्ञा दे रही है कि ''राम तुम वन चले जाओ।'' वे मग्न हो कर के वन को जा रहे हैं। अहा, अपनी संस्कृति का प्रसार करने के लिये मानो आततायियों को नष्ट करने के लिये।(28 अक्टूबर 1972, रोहय, मेरठ)

राम का निषाद को वन आने का कारण बताना

मुनिवरो! महाराज राम में ऐसी नम्रता ने स्थान बनाया कि वे माता–पिता के आदेश को पाकर वन को गये। उनमें धर्म की आस्था थी। धर्म के मर्म को वे जानते थे। एक समय, जब वे लक्ष्मण के साथ विचर रहे थे, तब निषाद उनसे मिलने आये। निषाद ने रामचन्द्र जी से प्रश्न किया कि ''महाराज! आपका तो राजतिलक होने जा रहा था, आपने वन में जाना क्यों स्वीकार किया?'' उस समय महान योगी महाराजा राम ने कहा था कि ''हे निषाद! यह मेरा धर्म है, यह मेरा कर्त्तव्य है कि मेरे माता–पिता ने मुझको जो आज्ञा दी है उसका पालन करुं। आज भी उन माता–पिता के आदेशों का पालन कर रहाँ हूँ।'' मुनिवरो ! ऐसी अवस्था तब ही आती है कि जब मानव में ज्ञान, नम्रता और धर्म में आस्था होती है। धर्म में आस्था न होने पर मानव कभी भी मानवता पर नहीं पहुँच सकता। मानवता के न होने पर जीवन अधूरा ही रहेगा।(3 अप्रैल 1962, लाजपत नगर)

जब भगवान राम को वन मिला तो निषाद ने कहा था कि ''महाराज! आप राज्य को त्यागकर वन को क्यों जा रहे हो ?'' उस समय राम ने कहा कि ''हे निषाद! सूक्ष्म सा जीवन है और इस जीवन को ऊँचा बनाने को संसार में आये हैं। आज हम राष्ट्र में चले जायेंगे तो प्रतीत नहीं कि हमारी राजसी बुद्धि बन जाये; हम नाना प्रकार के पाप करने लगें, इसीलिये हम माता–पिता की आज्ञा पाकर वन जा रहे हैं। वन भोगना ही हमारा कर्त्तव्य है। **वन में रहेंगे तो कुछ पायेंगे और राष्ट्र में रहेंगे तो अपनी निजी सम्पत्ति भी खोयेंगे।''** निषाद ने कहा कि ''भगवन्! आपका यह शब्दार्थ ऐसा क्यों ?'' उन्होंने कहा कि ''संसार में जिस मानव ने ख्याति पायी है, जो मानव ऊँचा बना है, दार्शनिक बना है, आत्मिक बना है, वेद पाठी बना है, वह वन में रहने से बना है। आज मैं वन में रहूँगा तो मेरा जीवन महान् बनेगा, यौगिक बनूँगा, संसार से इस जीवन में कुछ कमाकर ले जाऊँगा। आज मैं राजा बन जाता तो मेरी राष्ट्र–बुद्धि हो जाती। न प्रतीत मैं कितने पाप करने लगता। कितने भी नियम से कार्य करता परन्तु तब भी पता नहीं कितनी आत्माओं का ऐसा प्रभाव मेरी आत्मा पर, मेरे अन्तःकरण पर आ पहुँचता जिससे कि अगले जन्मों में पता नहीं कौन सी योनी मुझे प्राप्त करनी पड़ती। इसलिये हे निषाद। मैं इस वन को भोगकर अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करके, मर्यादा को बाँध करके जहाँ से आया हूँ वहीं चला जाऊँगा।'' (28–8–1962, विनयनगर, नयी दिल्ली)

''हे निषाद! यह मेरा धर्म है , यह मेरा कर्त्तव्य है कि मेरे माता–पिता ने जो आज्ञा दी है, मुझको उसका पालन करना चाहिये। आज भी उन माता–पिता के आदेशों का पालन कर रहा हूँ। इस प्रकार की अवस्था मानव में तभी आ सकती है जब कि वह राज्य का त्याग कर दे, जब उसमें ज्ञान, नम्रता, और धर्म में आस्था होती है। धर्म में आस्था न होने पर मानव अधूरा ही रहता है।'' (3–4–1962, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

राम का समाजवाद

भगवान राम के जीवन में जो उदारता और मानवता थी, जब उसको दृष्टिपात करते हैं तो राष्ट्रवाद स्मरण आने लगता है, समाजवाद स्मरण आने लगता है। समाज में जो प्रीति थी, वह स्मरण आने लगती है। पर्वतों में ही रहने वाले राजाओं को, जिन्हें यह कह कर ठुकरा दिया था कि तुम तुच्छ हो, शूद्र हो, भगवान राम ने उनको अपनाया। बिना उनको अपनाये राष्ट्र और समाज ऊँचा नहीं बनता, जिन्हें हम दरिद्री कहते हैं और त्याग देते हैं। उदार राजा जब तक उन्हें नहीं अपनाता, तब तक उसका कल्याण नहीं होता। राष्ट्र और समाज में महान् सम्पदा नहीं आती।

भगवान राम अयोध्या से कोई किसी प्रकार की प्रबलताएं और सम्पदाएं नहीं ले गये थे और इतने बड़े साम्राज्य से संग्राम किया। पर्वतों पर रहने वाले, जिन्हें शूद्र कहा जाता था, उन्हें अपनाया। निषाद जैसों को अपनाया और शूद्र व्यक्तियों को अपने कण्ठ से लगा करके शबरी जैसी को अपना लिया।

(2 अगस्त 1968, जोरबाग, नयी दिल्ली)

भगवान राम का जीवन कलाओं में पूर्ण था। वह इतना महान् था कि उनके लिये राष्ट्र का ऐश्वर्य और पर्वतों की शय्या दोनों समान थी। भगवान राम ने जब राष्ट्र को त्याग दिया और पर्वतों की शय्या को अपना लिया तो उन्होंने बहुत से अपंग व्यक्तियों को अपनाया। राजा ने जिनको दूर कर दिया था, उनको अपनाया तथा द्रविड़ आदि को अपनाकर उन्हीं में अपना जीवन व्यतीत किया। (1–11–1968, आगरा)

माता–पिता की आज्ञा से भगवान राम ने अपने राज्य को त्याग दिया और यह कहा कि इसमें मेरा कोई अधिकार नहीं है, मुझे तो मेरी माता ने केवल तपस्या करने के लिये वन दिया है, मुझे तपस्वी जीवन ही व्यतीत करना है। यह भगवान राम का जीवन है। वे भयक्रर वन में जा रहे हैं।

भरत का त्याग

भरत आते हैं और जब माता ने भरत से यह कहा कि ''हे पुत्र! राष्ट्रीय स्थली पर विराजमान हो जाओ, तो उन्होंने कहा कि ''माता यह तो अधिकार मेरे विधाता राम का है, मेरा कोई अधिकार नहीं है।'' उन्होंने कहा कि ''पुत्र! तुम्हारा अधिकार तो नहीं है परन्तु राष्ट्र को कोई न कोई भोगेगा।'' उन्होंने कहा कि ''इसे वह भोगेगा जिसका अधिकार है और जो इसके लिये योग्य होगा। माता! मैं इसके योग्य नहीं हूँ। भगवान राम ही इसके योग्य हैं।'' भरत, राम से मिलने भयक्रर वन में पहुँचे। विधाता से प्रार्थना की और उनकी चरण पादुका ला करके राष्ट्र का पालन करने लगे।

विधाता हो तो ऐसा हो! यह आदर्श हमारे समीप है। वे एक कन्दरा में रहते थे, विश्राम करते थे। एक समय महर्षि सुषेचा भरत के आश्रम में पहुँचे, वहाँ पादुका विराजमान है! नियम बनाने वाले मन्त्रीगण राष्ट्र के नायक बने हुए हैं। भरत केवल राम की पादुका की पूजा करने के लिये हैं। उस समय ऋषि ने कहा कि ''महाराज! तुम पृथ्वी के गर्भ में क्यों रहते हो ?'' भरत ने कहा कि ''महाराज ! मैं इसलिए रहता हूँ कि यह जो पृथ्वी का आसन है, यह मेरे विधाता राम का है और मैं राम के आसन के निचले भाग में रहना चाहता हूँ। मैं राम के समान आसन नहीं बनाना चाहता।'' (27—10—1973, लाजपत नगर, नयी दिल्ली)

वन में सिंहराज से सीता की प्रार्थना

वन में रात्रि छा गयी। लक्ष्मण की जागरूकता समाप्त हो गयी। दोनों विधाता विश्राम करने लगे। सीता भी विश्राम करने लगी। यह कहा जाता है कि भयक्रर वन में सिंह आ गया। वह तीनों प्राणियों के आंगन (समीप) को आ रहा था। उस समय सीता जागरूक थी। सीता कहती है ''आज में यह कैसा दृष्टिपात कर रही हूँ। यह हिंसक प्राणी आ रहा है, सिंहराज आ रहा है। मैंने इनको (राम को) जागरूक किया तो पाप लगेगा क्योंकि राम की मैं पत्नी हूँ। जागरूक करने का मेरा कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि मेरे स्वामी है, प्रबल है, मेरे पूज्य है। लक्ष्मण को अगर मैंने जागरूक किया तो मानो वह मेरे पुत्र के तुल्य है।'' उपनिषद का नियम कहता है, दर्शनों के ऋषि कहते हैं कि कोई मानव प्रगाढ़ निद्रा में परिणित है, उसको जागरूक करने पर पाप लगेगा। अब मैं पातक बनूं या सिंहराज के मुख में परिणित हो जाऊँ ? क्योंकि वह तीनों प्राणियों को नष्ट न कर जाये। इसका वन है, यहाँ इसका राज है, यह वन का अधिराज है।'' परन्तु सीता अपने प्रभु से याचना करती है और देवत्व की भावना से कहती है ''हे मृगराज ! यह मैं जानती हूँ कि हम तुम्हारे वन में, गृह में विद्यमान हैं। यह जो वन है, यह तेरा गृह है। तू सिंह हैं परन्तु यह भी तेरा कर्त्तव्य नहीं है कि तेरे गृह में कोई अतिथि आ जाये और तू उनका आहार करने लगे तो मानो तेरा सिंहपन नहीं रहेगा। अतिथियों की सेवा करना हमने धर्मज्ञ ऋषि—मुनियों से स्वीकार किया है। हे मृगराज! मैंने तुम्हें कई जन्मों में दृष्टिपात किया है। तुम ऋषि—मुनियों के आश्रमों में दर्शनों का अध्ययन करते रहे हो, वेद—मन्त्रों का अध्ययन करते रहे हो। यह तेरा राष्ट्र है, हम तेरे अतिथि हैं।''

इन्द्रियों और मन के समन्वय के साथ जो सीता के हृदय की तन्मयी प्रार्थना थी वह मृगराज के अन्तःकरण को प्रभावित कर गयी, ऐसा मुझे स्मरण है। ऋषि वाल्मीकि यह कहा करते थे कि सिंहराज ने उस मार्ग को त्याग करके दूसरे मार्ग को प्राप्त कर लिया। वह जो मनोनीत भावना है, वह जो स्वच्छ हृदय की वेदना है, वही तो इस संसार को और दूसरे प्राणियों को ऊँचा बनाती है। सिंहराज ने द्वितीय मार्ग को प्राप्त कर लिया। सीता आनन्द से विश्राम को प्राप्त हो गयी।

प्रातःकाल हुआ, प्रातःकाल में सर्वत्र जागरूक हुए। अपनी नाना क्रियाओं से निवृत्त हो कर के उन्होंने लक्ष्मण को आज्ञा दी ''जाओ, लक्ष्मण! तुम समिधा लाओ।'' वे वट वृक्ष, पीपल वृक्ष की समिधा लाये। कुछ सामग्री वन में से एकत्रित करके उन्होंने अग्न्याधान किया और अग्न्याधान करके उन्होंने यज्ञ किया और यज्ञ करके अर्थात् देवपूजा करके उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया।(23 अप्रैल 1977, अमृतसर)

दूषित अन्न—पान का सीता पर प्रभाव

जब भगवान राम वन को चले गये तो भयक्रर वनों में सीता, राम और लक्ष्मण तीनों समिधा एकत्रित करते थे और नाना प्रकार की सामग्री औषधियाँ एकत्रित करके उनसे यज्ञ करते थे। एक समय भगवान राम से सीता ने प्रमाद में आकर आलस्य में कहा कि ''आज यज्ञ नहीं करेंगे।'' उन्होंने कहा ''सीते ! ये शब्द तुम्हारे मुखारविन्द से मुझे शोभा नहीं दे रहे हैं। क्योंकि यह तुम्हारा मुख है, यह भी तो यज्ञ वेदी है। इनसे अशुद्ध वाक्य उच्चारण करना शोभा नहीं देता। हे देवी। आज हमें यज्ञ करना चाहिये, क्योंकि मानव का तो एक ही कर्म है 'यज्ञ' करना। यज्ञ से ही मानव का मन पवित्र होता है। हम संसार को केवल यज्ञ के द्वारा ही विजय कर सकते हैं।'' ऐसा भगवान् राम ने कहा तो सीता लज्जित हो गयी।

लक्ष्मण ने कहा, ''प्रभु! माता ऐसा शब्द क्यों उच्चारण कर रही हैं, उसका मूल कारण क्या है? मैं इसको नहीं जान पाया। क्योंकि माता का ऐसा विचार किसी काल में बना ही नहीं है।'' उस समय उन्होंने विचार किया कि महाराज निषाद के राजगृह में से उनके लिये एक समय कुछ भोजन आया था। वह भोजन उन व्यक्तियों के गृह का भोजन था, जिनके गृहों में यज्ञ नहीं होता था। वे विचार माता सीता के हृदय में समाहित हो गये। उस अन्न का प्रभाव मन पर इतना प्रबल हो गया कि अशुद्ध विचारों का उद्‌गार उत्पन्न हो गया।। उस समय लक्ष्मण ने कहा कि ''ऐसा अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये।'' उन्होंने निषाद से कहा कि ''हे निषाद! तुम्हारे यहाँ यह अन्न कहाँ से आया था?'' उन्होंने कहा कि ''प्रभु ! यह अन्न मेरे यहाँ स्वर्णकार के गृह से आया था, उस अन्न से मन दूषित हो गया होगा। इसमें मेरा दोष नहीं है। राष्ट्र—गृह में इसी प्रकार का अन्न आया, वह अन्न मैंने प्रदान कर दिया।'' इस प्रकार का विचार जब सीता के समक्ष आया तो सीता ने पाँच दिवस तक अन्न का पान नहीं किया। केवल जल के अधार पर अपने जीवन को व्यतीत करने के पश्चात् छठे दिन मन का शोधन हो गया। इस प्रकार मन को शोधन करने का नाम सबसे महान् यज्ञ कहलाया गया है। (16 अक्टूबर 1971, कृष्णानगर, दिल्ली)

राम—लक्ष्मण यथार्थ आर्य

आर्य किसको कहा जाता है ? **जिसके द्वारा ऋण हो और वह उन ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करता हो, तो उसी को यहाँ आर्य कहा जाता है। आर्य उसको नहीं कहा जाता, जो दूसरों की त्रुटियाँ देखने वाला हो, जो दूसरों की निन्दा करने वाला हो, दूसरों के अवगुणों को देखने वाला हो। आर्य उसको कहते हैं जो शुद्ध और पवित्र होता है, जिसका जीवन वास्तव में सुन्दर होता है, जो अपनी मर्यादा की रक्षा करता है।** भगवान् राम यथार्थ आर्य थे। जिनका आर्यत्व आज संसार में प्रत्यक्ष है। जब तक पृथ्वी अन्तरिक्ष है, जब तक परमात्मा की सृष्टि है, तब तक संसार भगवान् राम के नाम की गाथाएं गाता चला जायेगा, क्योंकि वह यथार्थ में आर्य थे।(26 जुलाई 1962, करोलबाग, नयी दिल्ली)

लक्ष्मण, माता सीता के चरणों को स्पर्श करने वाला यथार्थ आर्य था। उनके जीवन में कितनी महत्ता मिलती है कि उसकी दृष्टि उनके किसी और स्थल पर नहीं जाती थी। राम ने एक समय लक्ष्मण से कहा कि ''तुम परमात्मा को जानने का प्रयत्न करो।'' लक्ष्मण ने कहा कि ''भगवन्! मेरा जो कर्त्तव्य है, मैं अवश्य कर रहा हूँ, परन्तु मेरा महादेव वह मेरी सेवा है, वह परोपकार है। जब मैं परोपकार के शिखर पर पहुँच जाऊँगा तो महादेव की कृपा अवश्य हो जायेगी।''(28—12—1963, लक्ष्मीबाई नगर, दिल्ली)

यज्ञोपवीत के रक्षक राम

भगवान राम ने परम पवित्र यज्ञोपवीत की व्याख्या करते हुए अपने विधाता लक्ष्मण से कहा था कि ''लक्ष्मण ! यह जो हम अपने कण्ठ में धारण कर रहे हैं, यह क्या है? आज तुम्हें यह ज्ञान है कि हमने अपने ऐश्वर्य को क्यों त्यागा है? आज कोई मनुष्य यह कहता है कि माता कैकेयी के आदेश का पालन किया है, कोई कुछ कह रहा है, परन्तु हमने राष्ट्र को इस लिये त्यागा है कि हमें इस परम पवित्र यज्ञोपवीत की रक्षा करके ऋणों से उऋण होना है। हमारे ऋषियों ने कहा है कि मनुष्यों का और यथार्थ आर्यों का कर्त्तव्य है कि अपने ऐश्वर्य को त्याग करके मर्यादा की रक्षा करनी चाहिये। आज हमने राष्ट्र की भूमि को, ऐश्वर्य को त्यागा है, पर्वतों में अपनी शैय्या बनायी है, इसका कारण यज्ञोपवीत की रक्षा करना है। यहाँ रावण जैसे दैत्य बन चुके हैं जो मर्यादा से दूर चले गये हैं। वेदों के पण्डित होते हुये भी दैत्य हैं, हमें उन्हें शिक्षा देनी है तथा इस परम पवित्र यज्ञोपवीत की रक्षा करनी है।''

माता सीता ने कहा कि ''महाराज! यह परम पवित्र तो है परन्तु इसमें क्या विज्ञान है, इसकी रक्षा करना अनिवार्य क्यों है ?'' राम ने कहा ''देखो! यह हमारे आर्यों का भूषण है। यह वह भूषण है जिसके लिये आत्माएं, चन्द्र और सूर्य–मण्डलों से यहाँ आ करके इसको धारण करती हैं। इसकी रक्षा के लिये वे यहाँ आती हैं। हम इसकी रक्षा विज्ञान, त्याग और तपस्या से कर सकते हैं। जब हमारे द्वारा त्याग और तपस्या नहीं, कर्त्तव्य नहीं, तो हम इसकी रक्षा किसी भी प्रकार नहीं कर सकते। जो पवित्र यज्ञोपवीत की रक्षा करता है, वह परम पवित्र बन जाता है।'' (28–12–1963, लक्ष्मीबाई नगर, नयी दिल्ली)

दण्डक वन में ऋषियों का सानिध्य

भगवान राम ने गमन करने वाले (आततायी प्राणियों) को नष्ट करने के लिये अपना क्रम बनाया। जब वे माता सीता के साथ दण्डक वन में रह रहे थे तो महर्षि लोमश मुनि महाराज, महर्षि अत्रि और माता अनुसूया उन्हें कर्त्तव्य की शिक्षा देते थे। जब अत्रि मुनि के आश्रम में भगवान राम पहुँचे तो उन्होंने एक यन्त्र राम को प्रदान किया। वह कैसा यन्त्र था? उन्होंने कहा था कि ''यह यन्त्र मैंने अपनी विज्ञानशाला में निर्माण किया है। इस यन्त्र की यह विशेषता है कि एक लाख बावन हजार भयक्रर सेनाएँ, इस यन्त्र से समाप्त हो जायेंगी।'' यन्त्र को राम ने स्वीकार कर लिया। (23 अप्रैल 1977, अमृतसर)

जब भगवान् राम को वन प्राप्त हो गया तो बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। महर्षि लोमश इत्यादि उनके समीप विद्यमान है। भयक्रर वनों में, दण्डक वन में, प्रातःकालीन यज्ञ करते थे। प्रातःकालीन देव पूजा करते थे। वह याग करते थे तो यागों में सर्वत्र कलाओं को दृष्टिगत करते थे। (4 मई 1980, अमृतसर)

जिस समय राम भयक्रर वन में रमण कर रहे थे तो जब वे अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे तो अत्रि मुनि के आश्रम में उन्हें एक आसन दिया गया और आसन पर जब वे विद्यमान हो गये तो उन्होंने उन परमाणुओं की जानकारी की जो अत्रि मुनि के आश्रम में रमण कर रहे थे। वह हिंसक परमाणु थे। अत्रि मुनि से राम बोले कि ''महाराज, यह क्या है? आप तो महापुरुष हैं, महान् हैं, यह हिंसक परमाणु आपके यहाँ कैसे आदान–प्रदान कर रहे हैं?'' अत्रि मुनि ने कहा ''राम! यह उस समय आये जब मेरे निकटतम् राजा रावण के एक सखा उनके मानो देखो 'कृताम वनसतीहः' रावण के राष्ट्र के मारीच नामक सेनाग्रही और उनकी सेना यहाँ रहती थी। सेना मानो हिंसक थी और उसके हिंसक होने से यह परमाणु यहाँ आदान–प्रदान कर रहे हैं।'' राम ने कहा कि ''इस प्रकार के परमाणु आपके यहाँ हैं तो आपका मन कैसे शोधित होता है ?'' तब महर्षि अत्रि कहते है ''राम! मैं संकल्प प्राणायाम करता हूँ, और संकल्प मात्र से मैं जीवित रहता हूँ।'' राम ने भी वही प्राणायाम प्रारम्भ किया उसके पश्चात् देखो उनके आसन का शोधन हो गया।

मुझे स्मरण है कि महर्षि अत्रि मुनि महाराज और भगवान् राम एक वर्ष तक उस आश्रम में रहे वे प्राणायाम के द्वारा वायुमण्डल से परमाणुओं को अपने में ग्रहण करते, वायुमण्डल में प्राणायाम के द्वारा परमाणुओं को छोड़ते, स्थूल अन्न को वे नहीं पान करते थे। एक वर्ष तक इस प्रकार का उन्होंने तप किया। तप करने से परमाणुओं की ऊर्ध्वगति बन गयी। ऊर्ध्वगति बन करके देवताओं की सभा में वे सुशोभित हो गये। (2 मई 1980, अमृतसर)

मुझे वह समय आज पुनः स्मरण आ रहा है जब ऋषि कन्याएँ एक–चित्त होकर अनुसंधान करती रहती थीं। नाना प्रकार की यौगिक क्रियाओं को अपनाना एक मानवीय कर्त्तव्य कहलाया गया है। मुझे वह समय बारम्बार स्मरण आता है, जब माता अनुसूया और महर्षि अत्रि मुनि महाराज दोनों एकत्रित हो करके अनुसन्धान करते थे। रात्रि हो, दिवस हो, उनका विचारों का यज्ञ प्रारम्भ रहता था। विचारों का यज्ञ कितना विचित्र है, कितना सुगन्धिदायक है! क्योंकि हम होता बन करके जब यज्ञ करते हैं, तो उसकी सुगन्धि विचारों की महत्ता की सुगन्धि के साथ, वह कई गुणी बन करके गृह और वायुमण्डल को पवित्र बनाती चली जाती है। अनुष्ठान की उड़ान कितनी विचित्र है! उस उड़ान के ऊपर मानव को विचार–विनिमय करना चाहिये।

मुझे स्मरण है कि माता अनुसूया अनुष्ठान पूर्वक यज्ञ करती रहती थीं। हमारे यहाँ 15 प्रकार के यज्ञ माने गये हैं, 84 प्रकार की यज्ञशालाएं होती थीं। उनमें लगभग 15 प्रकार की यज्ञशालाएं मुख्य मानी हैं। एक चतुष्कोण यज्ञशाला होती है, एक त्रिकोण होती है, पंचकोण होती है, सप्तकोण होती है, परन्तु जो देवी यज्ञ करने वाले होते हैं, जो देवी के कर्मकाण्ड को जानते हैं, वह सप्तजिह्वा वाली यज्ञशाला का निर्माण करते हैं, क्योंकि अग्नि की सप्त जिह्वाएं हैं। सप्त जिह्वाओं के आधार पर सप्त कोणों वाली यज्ञशाला बनायी जाती है। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक जो परमाणुओं का मिलान करना जानता है वह निर्माणवेत्ता उसी प्रकार का निर्माण करता है। जो वायु विषैली है उसका शमन होना चाहिये और जो सुगन्धि है, उसका संचार वायु–मण्डल में प्रसारित हो जाये ऐसा विचार रहता है, इसी प्रकार यज्ञशाला का निर्माण होता है। (18 मार्च 1972, लोधी रोड, नयी दिल्ली)

वाणी का तप

वेद के आचार्यों ने बहुत सुन्दर मन्थन किया और विचारा कि वाणी के सम्बन्ध में विचार किया जाये। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब महर्षि अत्रि मुनि महाराज माता अनुसूया भयक्रर वनों में तप करते थे। वे क्या तप कर रहे थे ? वाणी से कोई वाक्य कदापि मिथ्या नहीं होना चाहिये। विद्यालय में सात्विक वातावरण छाया हुआ है। विद्यालय में माताएं ब्रह्मचारियों को, ब्रह्मचारिणियों को शिक्षा प्रदान कर रही हैं, तो विचार–विनिमय क्या ? एक समय मध्यरात्रि में अत्रि मुनि ने ऋग्वेद का जो गायन गाया तो उस गान से, मेंघ–मण्डलों से वृष्टि प्रारम्भ होने लगी। माता अनुसूया ऐसी विचित्र विदुषी थी कि उसने जो गान गाया तो दीप–मालिका जागरूक हो गयी। यह वाणी का ही तप है।

वाणी से यह तप कैसे किया जाता है ? यह जो अपान प्राण है, उदान और प्राण इन तीनों की सन्धि करता है। जब सन्धि करता है तो एक स्वर चन्द्र है और एक सूर्य कहलाता है। चन्द्र में शीतलता होती है, और सूर्य में प्रकाश होता है, तेज होता है, ऊष्णता होती है। तो जब वाणी से उच्चारण करता है तो अपान और प्राण दोनों का मिलान करता है और मिलान करके जब गान गाया, तो मस्तिष्क में एक ललाहट उत्पन्न हुआ और ललाहट इसलिए क्योंकि वीर्यत्व था जिसे माता के गर्भस्थल में निर्माण किया जाता है, इस वीर्यत्व की प्रकाशमय ललाहट से अग्नि प्रदीप्त हो गयी। उस अग्नि का परिणाम यह हुआ कि नगर की दीप–मालिका जागरूक हो गयी। ऋषियों के आश्रमों में दीप–मालिका जागरूक हो गयी, तो उस समय ऋषि कहते हैं अनुसूया से, ''अग्नि वृही लोकः।'' परिणाम क्या कि मानव जटापाठ में गान गाता है और गान का जो स्वरूप है, वह बड़ा विचित्र माना गया है।(23 फरवरी 1977, लाक्षागृह, बरनावा,)

गायत्री

माता अनुसूया और अत्रि मुनि दोनों प्रातः काल में विराजमान हो करके गायत्री का अनुकरण किया करते थे। जिस गायत्री से यह संसार रचता है, ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है और जिसमें यह लुप्त हो जाता है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या किसी विशेष मन्त्र को गायत्री कहा जाता है ? नहीं ! जितने वेद मन्त्र 'ओ3म्' की व्याहृतियों से बद्ध हैं उन सब ही का नाम गायत्री है क्योंकि हम गायत्री में रमण करते हैं और गायत्री में यह संसार समाहित हो जाता है। (18 अक्टूबर 1964, मोग, मण्डी)

मस्तक–चुम्बन–विद्या

भ्रमण करते हुए अगले दिवस महर्षि अत्रि के आश्रम में सीता ने प्रवेश किया तो माता अनुसूया ने उन्हें हृदय से आलिंगन किया। हमारे यहाँ वैदिक परम्परा यह कहती है कि यदि कन्या अपने गृह को जाने लगे तो माता–पिता का यह कर्त्तव्य है कि अपने जो चन्द्र और सूर्य स्वर होते हैं उनसे कन्या के मस्तक को चुम्बन करना चाहिये, अपने श्वास की गति देनी चाहिये। इससे भाव यह होता है कि हे पुत्री! जब तक मेरा श्वास गति कर रहा है तब तक मैं अपने श्वासों से तेरे मस्तिष्क को ऊँची दृष्टि से उड़ान उड़ाता रहूँ। मानो अनुसूया ने सर्वत्र तीनों प्राणियों के मस्तिष्क का चुम्बन किया और प्राण के द्वारा उनको दृष्टिपात किया। क्योंकि प्राण ऐसा है हमारे द्वारा, कि नाना प्रकार के हृदय के परमाणु देखो, उसके मस्तक पर त्यागता है। यह भावना, संस्कृति का मनोनीत एक प्रतीक माना गया है। इस प्रतीक के सहित मानव अपनी विचारधारा को कितना महान् उज्ज्वल बनाता है।

माता अनुसूया की सीता को शिक्षा

माता अनुसूया और अत्रि मुनि महाराज, त्रेता के काल में दोनों परमाणु विद्या के विशेषज्ञ कहलाये जाते थे, दोनों अनुसन्धान करते थे। संसार में पति–पत्नी का अभिप्रायः अनुसन्धान करना है, गृह को ऊँचा बनाना है, गृह में स्वर्ग लाना है। दर्शनों के वचनों से गृह ऊँचा बनता है, दार्शनिक विचारों से

ऊँचा बनता है। अनुसूया ने बहुत सा सीता को उपदेश दिया और कहा कि ''हे पुत्री ! तुम आज्ञा का पालन करना अपने मनोनीत को सुदृढ़ बनाना। जब तक वन में रहना है तो वनचरी रहना है, भोगचर में नहीं जाना है, गृहस्थ में नहीं जाना है। तुम वनचर हो और वनचरी का कर्तव्य है कि वन में तो प्रभु ही रहते हैं, और प्रभु से दूर नहीं होना है। प्रभु से दूर होना ही भोगचर में जाना है। वनचर समाप्त करके भोगचर में जा करके मानव का विनाश हो जाता है।'' ऐसा माता अनुसूया अपने वचनामृत का पान करा रही थी।

जब राम प्रस्थान करने लगे, तो तीनों प्राणियों को एक पंक्ति में विद्यमान कराके महर्षि अत्रि ने और माता अनुसूया ने उन्हें एक शस्त्र दिया। उस शस्त्र में यह विशेषता थी कि जब उस शस्त्र का अन्तरिक्ष में प्रहार होता था तो अन्तरिक्ष से जल की वृष्टि होनी प्रारम्भ हो जाती थी। वहाँ कितना भी अग्निकण्ड हो रहा हो, अग्नि–शस्त्रों का प्रहार हो रहा हो, उस यन्त्र में यह विशेषता थी। उसे वरुणास्त्र कहते थे। 'वरुण' जल को कहते हैं। जल की वृष्टि होती है, जल की वृष्टि से सेना की और राज्य की रक्षा हो जाती है।

जब राम और रावण का सङ्ग्राम हुआ था तब मेंघनाद ने एक अस्त्र को त्यागा था तो ऊपर से अग्नि की वृष्टि होने लगी थी। राम की सेना, वानर सेना समाप्त होने लगी थी। उस समय राम ने इस अस्त्र का प्रहार किया था। इस अस्त्र से जल की वृष्टि हुई थी और अग्नि का प्रसार समाप्त हो गया और सेना की रक्षा हो गयी थी। वे ऐसे अस्त्र उन्हें (राम को) दे करके उनके मस्तिष्कों का चुम्बन करके ऋषि और ऋषि–पत्नी ने उन्हें विदा दी और कहा ''धन्य है ! वनचरों को तुम्हें बहुत ऊर्ध्वा गति में ले जाना है!''(23 अप्रैल 1977, अमृतसर)

भारद्वाज ऋषि की शिष्य वैज्ञानिक शबरी

त्रेता–काल में महर्षि कुरतुक ऋषि महाराज की कन्या शबरी थी। वह शबरी भारद्वाज मुनि के यहाँ विज्ञान में पारायण हुई। वह विज्ञानवेत्ता थी। उन्होंने भारद्वाज की विज्ञानशाला में उपकरणों के द्वारा, यन्त्रों के द्वारा, यन्त्रशाला में एक यन्त्र का निर्माण किया। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि एक रक्त का बिन्दु यन्त्र में प्रवेश किया और उस यन्त्र में, जिस मानव के रक्त का वह बिन्दु था उस मानव का स्वरूप दृष्टिपात आने लगा। वह शबरी उपकरणों व यन्त्रों के द्वारा विज्ञानवेत्ता बन गयी। यह वही शबरी थी जिनके द्वारा राम को, जब वह वन को जाकर रावण को विजय करने चले तो भारद्वाज मुनि ने सर्वयन्त्रों को उन्हें प्रदान किया था और यह कहा था कि तुम यह राम को प्रदान कर देना। वह यन्त्रों को लेकर वहाँ पहुँच गयी। (13 दिसम्बर 1986, नागलमूसा, मोदीनगर)

जो शबरी थी भारद्वाज मुनि आश्रम में विज्ञान की शिक्षा लेती थी। यही शबरी कुरतुक ऋषि महाराज की कन्या कहलाती थी और इस कुरतुक ऋषि की कन्या को भारद्वाज मुनि आश्रम में, भयक्रर वनों में उनके द्वारा जितना विज्ञान का कोष था वह उसको ऋषि ने प्रदान किया और यह कहा ''कि जब राम तेरे समीप आयेंगे तो यह कोष राम को प्रदान कर देना।''

गुप्तचर शबरी

शबरी को भीलनी क्यों कहते हैं ? क्योंकि वह भारद्वाज ऋषि के आश्रम से गमन कर राम के राष्ट्र में प्रवेश करके शूद्र का कार्य करती थी और प्रत्येक वस्तु पर दृष्टि रख कर गुप्तचर का कार्य करके अपनी प्रतिभा और कार्यकुशलता का सूचक बनी हुई थी। वह राम की प्रिय भक्त थी। कैसी भक्त ? वह अपने स्पर्श किये फलों को राम को प्रदान करती थी और राम उसे पान करते थे क्योंकि राम श्रद्धा से ओतप्रोत थे। (नवम्बर 1986, लाक्षागृह, बरनावा)

वह विज्ञान में प्रवीण थी और भारद्वाज मुनि के आश्रम में शिक्षा अर्जित करती थी, इसीलिये शबरी को उन्होंने गुप्तचर विभाग में नियुक्त किया था। शबरी ने जितना भी उनके समीप ज्ञानविज्ञान का कोष था और नाना यन्त्र थे, सभी राम को प्रदान कर दिये थे। भारद्वाज के यहाँ ऐसे–ऐसे यन्त्र थे जो कि सूर्य की किरणों को शीतल बना देते थे और ऐसा ही स्वाति नाम का यन्त्र उन किरणों में जो प्राणवर्द्धक तत्व होते थे उनको अपने में स्थापित कर लेता था। अब यदि किसी राष्ट्र को भस्म करना है तो अग्नि वाले परमाणु प्रदीप्त हो जाते थे और जिससे राष्ट्र का राष्ट्र भस्म हो जाता था। ऐसे यन्त्रों का आविष्कार भारद्वाज मुनि की निर्माणशाला में हुआ था। ऐसे अनेकों यन्त्र शबरी ने राम को अर्पित किये थे। राम ने यन्त्रों को लेकर अपने को धन्य स्वीकार किया। (3 अप्रैल 1962, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

भारद्वाज के यहाँ ऐसे–ऐसे यन्त्र थे। एक रेखा जो पृथ्वी के मध्य भाग, एक प्रति के आंगन में होती है, उस रेखा में जब सूर्य की किरणें आती हैं तो वह रेखा सूर्य किरणों को शीतल बना देती है। और देखो भारद्वाज मुनि के यहाँ एक यन्त्र था स्वाति यन्त्र। उस स्वाति–यन्त्र में यह विशेषता थी कि सूर्यकिरण के प्राणवर्धक, जो शीतल बनाने वाले परमाणु थे, वो यन्त्र ग्रहण कर लेता था। अब जिस राष्ट्र को भस्म करना हो वह यन्त्र उन शीतल परमाणुओं को अपने में आकर्षित कर लेता। वह किरण जब नग्न रह जाती थी, तो जिस राष्ट्र पर वह रेखा नग्न रह जाती वह राष्ट्र का राष्ट्र भस्म हो जाता था। तो मेरे प्यारे! भारद्वाज मुनि महाराज के यहाँ इस प्रकार के यन्त्र निश्चित थे। उन्होंने अपनी निर्माणशाला में निर्मित किये थे। वे सब यन्त्र उन्होंने राम को प्रदान कर दिये। (मार्च 1979, बरनावा)

शबरी कैसी थी ? वह महान् दरिद्रता में रहती थी परन्तु प्रभु का चिन्तन करती थी, राम की भी भक्त थी। राम ने उन्हें माता कह करके उनके चरणों को छूआ। महान् व्यक्तियों के लिये उनके मुखारबिन्द का एक कण भी अमृत के तुल्य हुआ करता है। भगवान् राम को माता शबरी से कितनी प्रीति थी कि उसे यह ज्ञान था कि आज राम तेरे आश्रम में आयेंगे, तेरे आश्रम के निकट भ्रमण करेंगे। वह झूठे फलों को लेकर के राम के समीप आयी और कहा ''लीजिये प्रभु!'' राम प्रेम से उसके चरणों को स्पर्श करके आन्नद से भोग लगाने लगे, नम्रता से उन्हें पान करने लगे। ऐसे–ऐसे दरिद्रों को अपनाने वाले राम का जीवन कितना आदर्शवादी माना जाता है। जब हम महानता की वेदी पर राम को लाते हैं तो राम हर प्रकार से ऊँचे प्रतीत होने लगते हैं। त्याग और तपस्या में उनकी उदारता कितनी प्रबलता में थी। राम और लक्ष्मण दोनों इस प्रकार के थे। इसी प्रकार की माता सीता थी।(3 अप्रैल 1962, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

धर्म की महत्ता

एक समय शबरी महान् योगी रामचन्द्र जी से वन में मिलने आयी। शबरी ने प्रश्न किया कि ''हे महाराज! धर्म की क्या महत्ता है और धर्म क्या पदार्थ है?'' राम ने कहा कि ''हे देवी! हमारे अन्तःकरण में पवित्रता हो और वाणी में नम्रता हो, यही धर्म की महत्ता है। अपने कर्त्तव्य का पालन ही धर्म है। मानव चाहे कितना ही विद्वान व वेदों का ज्ञाता हो किन्तु नम्रता के अभाव में सभी व्यर्थ है। इसलिये हे देवी! नम्रता ही मानव को धार्मिक बनने का सबसे बड़ा साधन है।'' महाराज राम ने लक्ष्मण तथा हनुमान जी को भी वैसा उपदेश दिया था। उन्होंने कहा था कि ''भाई! देखो, **जब तक धर्म की आस्था के साथ अंतःकरण को छूने वाले कार्य पूर्ण नम्रता के साथ नहीं करेंगे तब तक हमारे धर्म का कोई महत्व नहीं है। हम धर्म को केवल वाणी से माने, परन्तु हमारा हृदय अधूरा बना बैठा हो हमारे हृदय में वह महत्व न आये तो हमारी मानवता व्यर्थ है, ऐसी मानवता का कोई महत्व नहीं।''** (3 अप्रैल 1962, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

वैज्ञानिक युगों में वैज्ञानिक जन एक–एक अणु से राष्ट्र के राष्ट्र को नष्ट कर देते हैं। मुझे स्मरण आता रहा है कि महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने और शिकामकेतु उद्दालक ने एक यन्त्र का निर्माण किया था। महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला में वह यन्त्र ब्रह्मवृतिकेतु–यन्त्र कहा जाता था जो उन्होंने ब्रह्मचारिणी शबरी के द्वारा राम जब वन में थे और रावण से जब सङ्ग्राम करने जा रहे थे तो वह यन्त्र राम को प्रदान किया गया था। वह 'अकृतम्' भारद्वाज ऋषि की विज्ञानशाला में अग्नि प्रदीप्त होते ही सूर्य की किरणों के साथ उस यन्त्र को अकृत किया जाता था, जब उसमें अग्नि प्रदीप्त होती तो एक–एक राष्ट्र को वह अग्नि नष्ट कर देती। इस प्रकार का परमाणु यन्त्र था।

(23 सितम्बर 1988, रासना, मेरठ)

१३. तेरहवा अध्यायं–पंचवटी–आश्रम

सुदर्शन ऋषि की राम से भेंट

जिस समय भगवान् राम को वन प्राप्त हो गया और जब वह पंचवटी पहुँचे तो उनके द्वार सुदर्शन ऋषि महाराज आ पहुँचे। उन्होंने कहा ''भगवन्! आप ऐसे स्थान में विराजमान हैं, जहाँ रावण आततायी का आप पर आक्रमण हो सकता है। उस आक्रमण के लिये आपके द्वारा कौन सा साधन है, जिससे

आप अपनी रक्षा कर सकते हैं?'' भगवान राम ने कहा कि ''मेरे द्वारा ऐसा साधन है कि मैं उससे अपनी रक्षा कर सकता हूँ।'' उन्होंने कहा कि ''क्या है?'' भगवान् राम ने कहा कि ''हे ऋषिवर! मेरे द्वारा एक चरित्र की प्रतिभा है। सत्यता की प्रतिभा है, मैं अपने सत्य ज्ञान से उससे सङ्ग्राम कर सकता हूँ।''

लक्ष्मण विज्ञान में बड़े पूर्ण थे। निपुण होने के कारण उन्होंने नाना प्रकार के यन्त्रों की प्रतिभा को जानने का प्रयास भयक्रर वन में किया था। एक समय वे (राम–लक्ष्मण) महर्षि भारद्वाज के आश्रम में प्रविष्ट हुए जब भारद्वाज और उनकी पत्नी वहाँ विराजमान थे। भारद्वाज ने कहा कि ''हे राम! आप भयक्रर वन में आ गये हैं। यहाँ कैसे आप सदाचारियों की रक्षा करोगे क्योंकि यहाँ आपको आततायी प्राणी बहुत प्राप्त होंगे।'' महर्षि भारद्वाज ने कहा कि ''मैं अपने जीवन में अनुसंधानवेत्ता रहा हूँ। मेरे द्वारा कुछ अस्त्रों–शस्त्रों का कोष है, इसको तुम स्वीकार कर लो।'' महर्षि भारद्वाज ने जिन यन्त्रों–तन्त्रों को जाना था वे सब भगवान् राम को अर्पित कर दिये। उन यन्त्रों–तन्त्रों को उन्होंने (राम) पंचवटी पर युक्त कर लिया था। यह होती है मानव की साध्य–प्रतिभा, कि ऋषि–महर्षि भी उनके जीवन के साथी बन जाते हैं।(29 जुलाई 1973, जोरबाग, नयी दिल्ली)

राजाओं की राष्ट्रवाद–चर्चा

जिस काल में भगवान राम पंचवटी में अपने समय को व्यतीत कर रहे थे। वह अपने आसन पर विद्यमान रहते। उनके समीप एक समय मगध राष्ट्र के राजा सोमब्राह्म तथा और भी कुछ राजा अपनी–अपनी स्थलियों से एकत्रित हुए। विचारा गया कि ''राम को वन गये हुए बहुत समय हो गया है, चलो उनके दर्शनार्थ के लिये उनसे कुछ वार्ता प्रगट करें।'' सब राजाओं ने इन वाक्यों को स्वीकार कर लिया। अगले दिवस प्रातःकाल ही वे सब राजाधिराज भगवान राम के समीप उस पंचवटी में आ गये जहाँ नाना ऋषिवर पहले ही विद्यमान थे और नाना प्रकार के विचारों के समाधान का वहाँ प्रयास होता रहा। परन्तु जैसे ही राजाओं का आगमन हुआ तो ऋषि ने अपने में हर्षध्वनि की और हर्षध्वनि करके कहा कि ''आइये राजन्!'' और वे विद्यमान हो गये। विराजमान हो गये तो उन्होंने कहा ''कहो भगवन्! कैसे इस आसन को पवित्र किया है?'' तब राजाओं ने कहा ''हे राजम्ब्रह्मः! हम अपने में कुछ शक्रा लेकर के आये हैं।'' राम ने कहा ''बोलो, तुम्हारी क्या शक्रा है ? तुम्हारी शक्राओं का निवारण करने के लिये मैं प्रयत्नशील हूँ।'' और उन्होंने कहा कि ''उच्चारण करो कि तुम क्या चाहते हो?''

राजाओं ने कहा ''प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि, राजा किसे कहते हैं? हम अब तक यह नहीं जान पाये हैं कि राजा कौन होता है? हम स्वयं शासन करते हैं। राजा के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न उड़ान भी उड़ी गयी हैं, परन्तु हमें कुछ प्रतीत नहीं हुआ।'' भगवान राम ने कहा कि ''यह जो राष्ट्र–याग है, यह 'यज्ञ' मानो यह दोनों प्रकार से अपने में प्रतिष्ठित रहता है।'' राम वहाँ ऋषियों के वाक्यों के ऊपर कुछ विचार–विनिमय करने लगे। भगवान राम ने कहा कि ''तुम राष्ट्र को जानना चाहते हो तो सुनो। राष्ट्र दो प्रकार का होता है। एक राष्ट्र वह होता है, जिसमें राजा का जन्म माता के गर्भ से होता है। एक राष्ट्र वह होता है, जिसमें राजा का निर्वाचन प्रजा द्वारा होता है, तो इस प्रकार दोनों प्रकार के राज्यों पर अथवा राजाओं पर मानव को ऊँची कल्पना करनी चाहिये।'' राजा राम ने कहा ''राजाओ! तुम यह जानना चाहते हो कि राजा किसे कहते हैं? राजा उसे कहते हैं, जो प्रातःकालीन् अपनी स्थलियों को त्याग करके अपने जीवन के क्रिया–कलापों में निहित हो जाता है और क्रिया–कलापों में निहित हो करके मानो राष्ट्र में शुद्धिकरण उसके समीप होता है। राजा के राष्ट्र में, धर्म में एकाकी वाद हो और रूढ़ि नहीं रहनी चाहिये।''

राम ने कहा ''राजा वही होता है, जो प्रातःकालीन् अपनी क्रियायों से निवृत्त हो करके प्रभु में ध्यानावस्थित हो करके अपने अन्य क्रिया–कलापों में प्रायःपरिणित हो जाता है। अपने क्रिया–कलापों से निवृत्त होकर उसे राष्ट्र की कृतिमा में उसे संलग्न हो जाना चाहिये। वह प्राणायाम करने वाला होना चाहिये। वह (राजा) यह विचारता रहे कि संसार में प्राण ही निःस्वार्थ है।'' **तो इसीलिये, मुनिवरो! संसार में राजा को प्राण की भाँति निःस्वार्थ हो कर रहना चाहिये। जैसे प्राण निःस्वार्थ है, वह चेतनाबद्ध है तो ऐसे ही राजा अपने में प्रतिपादित हो करके अपने राष्ट्र और समाज में एक महानता की समदर्शिता का अपना निर्णय दे। जब इस प्रकार का राजा होता है तो उस राष्ट्र में कोई त्रुटि नहीं होती। उस राजा के राष्ट्र में धर्म और मानवता का प्रसार होता है और यह मानो कि मानवता ऊँची बन रही है। वह जो महान् वृत्तियाँ 'ब्रह्म लोका समिधा अग्नेः' देखो वही तो समिधा बन करके रहती है, जो राजा के हृदय में प्रजा के मध्य में वह दीपमालिका अकृतियों में रत्त हो जाती है।**

राम ने कहा कि ''राजा वह होता है, जो अपने विचारों को गोपनीय बना लेता है। और, गोपनीय जो विषय होते हैं, वही मानव के जीवन का उद्धार करते हैं। इसलिये हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए राष्ट्र का पालन करते चले जायें। राष्ट्र दूसरों के वैभव को संग्रह करने के लिये नहीं है। राष्ट्र को इसलिये निर्धारित किया जाता है कि उसकी प्रतिभा बनी रहे, उसका मानवत्व उसका ऋषित्व ज्यों का त्यों बना रहे। ऐसी धारणा राजा के हृदय में निहित रहनी चाहिये। राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणियों की रक्षा होनी चाहिये।'' यह वाक्य राजाओं ने श्रवण कर लिया।

जिस राजा के राष्ट्र में विज्ञान पराकाष्ठा पर हो और विज्ञान का सदुपयोग होता हो, उस राजा का राष्ट्र पवित्र होता है। वह राजा पवित्र होता है। मानो देखो जिस राजा के राष्ट्र में विज्ञान अपनी पराकाष्ठा पर निहित रहता है वह विज्ञान के वांगमय में प्रवेश हो जाता है और वह विज्ञान मानव का, राष्ट्र का मौलिक गुण बनकर रहता है। मौलिक गुण क्यों, क्योंकि राष्ट्र को ऊँचा बनाने वाला यह मानो देखो 'स्वीकृत' कहलाता है। राष्ट्र और मानवीयता दोनों ही अपने में तत्पर रहने चाहिये, जिससे समाज में एक महानता की ज्योति उत्पन्न हो जाये।

आओ, मेरे प्यारे! देखो, राजाओं ने कहा ''प्रभु! क्या राजा के राष्ट्र में विज्ञान होना अनिवार्य है?'' भगवान राम ने कहा कि ''अनिवार्य नहीं है, परन्तु होना चाहिये। उसका सदुपयोग होना चाहिये; उससे जीवन में एक महानता की ज्योति होनी चाहिये। देखो विज्ञान अपने में अभिमान नहीं बनना चाहिये, विज्ञान अपने में निकृष्ट बनने से राष्ट्र की प्रतिभा नष्ट हो जाती है।'' ऐसा जब भगवान राम ने वर्णन किया तो इतने में कुछ और जिज्ञासु आ पहुँचे। उन जिज्ञासुओं ने यह प्रश्न किया कि ''महाराज! आप प्राण के सम्बन्ध में तो जानते ही हो।'' राम ने कहा ''मैं प्राण के सम्बन्ध में इतना नहीं जानता।'' वह आसन पर शान्त मुद्रा में विराजमान हो गये और अपने में यह कहा कि ''प्राण के सम्बन्ध में मैं ज्यादा तो नहीं जानता, परन्तु मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि जो गुरूओं के चरणों में विद्यमान होकर मैंने प्राण की कुछ सूक्ष्म सी क्रिया का अध्ययन अवश्य किया है। हमारे इस मानव शरीर में नाना प्रकार के प्राण अपना क्रिया–कलाप कर रहे हैं। यह जो प्राण की प्रतिष्ठा है, उसको जान करके हमें यह निर्णय हो जाता है कि यह प्राणस्वरूप कहाँ चला गया।'' राजा ने कहा ''भगवन्! 'सम्भूति ब्रह्मवाचं ब्रहे लोकाम् हिरणंरथः देवः गतः प्रवाणां ब्रहे वाचं ब्रहेः असवतिः मुद्रां,' आचार्य यह कहते हैं। हम यह और जानना चाहते हैं कि प्राण की प्रतिष्ठा क्या है?'' राम ने कहा ''इसको महर्षि लोमश जी जो भयक्रर वनों में हैं बहुत अच्छी प्रकार जानते हैं। उनके एक सहपाठी कागभुषुण्ड जी हैं, वह भी प्राण के सम्बन्ध में विशेष जानते हैं।''

लोमश–काकभुषुण्ड से प्राण–चर्चा

ऐसा कहा जाता है कि कुछ समय के पश्चात् वे दोनों भी कहीं से विचरण करके राम के आश्रम में आ पहुँचे। उन्होंने उनसे नाना प्रकार की वार्ताओं को उद्दबुद्ध कराया। परन्तु वह (ऋषि) उस वार्ता को हृदय से अच्छी प्रकार से जानते थे। तो देखो प्राण, अपान की वार्ता चल रही थी, प्राण किसे कहते हैं? अपान किसे कहते हैं? **भ्रमण करते हुए कागभुषण्ड ऋषि के द्वार पर पहुँचे।** ऋषि से कहा कि ''महाराज! यह वाक्य हम से दूर जा रहा है, कृपया इस पर अपना निर्णय दीजिये।'' ऋषि ने कहा ''क्या जानना चाहते हो?'' उन्होंने कहा ''प्राण को हम सखा बनाना चाहते हैं, प्राण के ही रूप में हम प्राणत्व को जानना चाहते हैं।'' उन्होंने कहा ''क्या तुम नहीं जानते कि प्राण सखा तो संसार के प्रत्येक आँगन में क्रीड़ा कर रहा है। तुम्हारी वाणी में भी क्रीड़ा कर रहा है। तुम्हारे शब्दों में देखो शुद्ध विज्ञान की प्रतिभा का जन्म हो रहा है।'' तो वहाँ से कुछ ने गमन किया। कागभुषुण्ड जी से नाना प्रकार के गम्भीरता से प्रश्न होने लगे। उन्होंने कहा ''प्रभु क्या जानना चाहते हो?'' उन्होंने कहा, ''सम्भूतिः ब्रह्मे व्रह्म वाचः प्रमाण लोकां वायुः शरणं वृही वृचां देवोः शत्रुतः''।

भगवान राम ने और ऋषियों ने अपना निर्णय लिया कि मानव प्राण को अपान में, अपान को समान में, समान को व्यान में, व्यान को उदान में निहित करता रहता है, इन पाँचों का एक तारतम्य लग जाता है। यह प्राणों का तारतम्य ही मानो यह सिद्ध कर रहा है कि ये अपने स्थान में परिवर्तनशील होने जा

रहे हैं। परन्तु इससे हमें यह सिद्ध हो गया कि यह प्राण जब एक–दूसरे की आभा में निहित हो जाते हैं, तो यह इन्द्रियों का वहाँ वाचक विषय कहलाया जाता है। जितने प्राण को तुम सखा बना करके उस के साथ भ्रमण करोगे तो वहीं अपान प्राण में और प्राण व्यान में और व्यान देवदत्त में निहित हो जाता है। इस प्रकार यह प्राणों की प्रतिभा का प्रायः वर्णन आता रहता है कि, 'मै प्राणायाम् करना चाहता हूँ'।

तो भगवान राम, बेटा! प्रातःकालीन अपने आसन से निवृत्त हो करके प्राणायाम करते थे। वह प्राण के सम्बन्ध में अच्छी प्रकार जानते थे कि जो प्रकृतिवाद को जानने लगता है, वह नाना प्रकार के और भी रूपों में रत्त हो जाता है। भगवान राम प्रातःकालीन पंचवटी पर याग करते थे। नाना प्रकार का साकल्य एकत्रित करना, उस साकल्य में रत्त रहना, उस साकल्य को अपने में अनुवृतियों में रत्त करके, उस आभा में निहित रहना जानते थे।

भगवान राम प्रातःकालीन यह प्रार्थना करते रहते थे, निस्वार्थ होकर के यह विचार करते थे, "हे प्रभु! तू कितना महान् और पवित्रतम कहलाता है। तू कितना ओजस्व और आभा में नियुक्त होने वाला है। परमात्मन्! तू महान् सखा है।" भगवान राम की प्रतिभा में रत्त रहने के लिये नाना राजा उनके समीप आते। उन्होंने राष्ट्र के संविधान की चर्चाएं भी की हैं। उन्होंने कहा है कि "राष्ट्र अपने में जब महान् बन करके रहता है, यदि प्राणीमात्र के हृदय में एक हृदयग्राही अपनी अनुपम ज्योति आभा में जब निहित हो जाती है।" तो देखो, 'आभा ब्रहे वाचनमं ब्रह्मः राजब्रहः' राजा को प्राणायाम करना चाहिये क्योंकि प्राण एक सखा है। प्राण को महर्षि लोमश मुनि जानते थे कि प्राण का कितना महत्त्व है। विद्यालय में, बाल्यकाल में विद्यमान होकर भगवान राम जब अध्ययन करते थे तो, बेटा! प्राण की पवित्र विद्या उनके समीप आती रहती और उसमें वह अपने को प्राप्त करते रहते। **प्राण एक ऐसी विचित्र आभा में नियुक्त रहने वाला एक अनुपम सखा है, जिसको जानकर मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है।** भगवान् राम का जीवन सदैव आज्ञाकारी रहा। उनके जीवन में एक महानता की ज्योति अपने में प्रतिष्ठित हो करके आत्मतत्व की आभा में निहित रही है। भगवान राम रात्रि के समय प्रभु का चिन्तन करते रहते थे, भयक्रर वनों में भी, जहाँ सिंहराज अपनी ध्वनियाँ कर रहा हो, मानो प्रत्येक प्राणी अपनी ध्वनियाँ कर रहा हो और उसमें वह ध्वनित हो रहा हो।

हिंसक प्राणियों से खिलवाड़ करते राम

भगवान राम के जीवन की गाथा मुझे स्मरण आती रहती है। एक समय वह प्रातः कालीन भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण करते–करते कुछ समय व्यतीत हो गया। भ्रमण करते–करते अपने को आभा में नियुक्त करने लगे। वह अपने में अपनी कृतिका को ऊँचा बनाते हुए सिंहराज के आँगन में उससे खिलवाड़ करने लगे जब सिंहराज से खिलवाड़ कर रहे थे। तो कहीं से लक्ष्मण भी भ्रमण करते हुए आ गये। देखा कि राम सिंहराज से खिलवाड़ कर रहे हैं और यह कह रहे हैं "तू अहिंसा में परिणित होने वाला है। तू कितना महान् है।" वह सिंहराज से खिलवाड़ करते रहते थे। वन में उनका समय व्यतीत होता रहता। इसी प्रकार जब मानव प्रत्येक प्राणीमात्र से स्नेह करने लगता है तो देखो वह खिलवाड़ करता रहता है।

सर्पराज से भी खिलवाड़ होता रहता। सर्पराज एक वायु में गुथा हुआ प्राणी है। जब अपने में वह रत्त हो जाता है, अपने में धारयामी बन जाता है, याज्ञिक बन जाता है तो देखो उसके जीवन में 'अहिंसा परमोधर्म' की एक आभा का जन्म हो जाता है और वही जन्म वृतियों में रत्त हो करके वह मानव के जीवन का मानसिक रूप बन करके उनके हृदयों में निहित हो जाता है।

प्रातः कालीन् भगवान राम पंचवटी में याग करते थे। नाना राजा और ऋषिजन उनके दर्शनार्थ को प्रायः आते रहते थे। मानव के जीवन में एक सार्थकता का दिग्दर्शन तभी हो सकता है जब वह मानव अपने में 'अहिंसा परमोधर्मी' बन जाये। भगवान राम जब पंचवटी पर रहते थे तो उनके यहाँ नाना प्राणी क्रीड़ा करते रहते थे। सर्पराज जैसे प्राणी भी क्रीड़ा करते रहते और भी नाना प्राणी क्रीड़ा करते रहते। परन्तु जब वह अपनी भव्यता में आते तो अपने में मृगराज से वार्ता प्रकट करते रहते कि "याग हमें दो ही वस्तुओं का निर्णय दे रहा है हे मानव तू याज्ञिक बन। तू अपने में निर्भय बन और विष्णु बन और ब्रह्म बन करके मानव तू परमपिता परमात्मा की निधि को जान। उसकी प्रतिभा को जान। उसके ज्ञान और विज्ञान को जानने वाला बन।" वह अपने में यह उपदेश देते रहते थे। यह अपने में सार्थक बनाने वाला वाक्य है। हमें अपने जीवन में प्रत्येक समय में 'अहिंसा परमोधर्म' को अपना करके निर्भयता का पठन–पाठन करना है।

जहाँ उनके यहाँ नाना ऋषिवर अपने में अध्ययनशील बने हुए हैं, वेदों का पठन–पाठन चल रहा है, भयक्रर वनों में भगवान राम अपने में प्रतिभाषित हो रहे हैं। नाना ऋषिवर अध्ययन कराने वाले अध्ययन करते रहते, वेदों की प्रतिभा में रत्त रहते। क्योंकि वेदामृत का पान करने वाला प्राणी ही प्राणायाम करता है और प्राणायाम करके अपने सखा के द्वार पर चला जाता है, जहाँ सखा विद्यमान है। भगवान राम पंचवटी पर रह करके नाना प्रकार के प्राणियों के उद्धार करते उनके कर्त्तव्य पारायणता के सम्बन्ध में वह विचारते रहते थे। अपना अन्वेषण करते रहते थे, विचार–विनिमय करते रहते थे। कुछ समय के पश्चात् वहाँ कहीं से प्रातःकालीन एक व्याघ आ गया। व्याघ के आने पर माता सीता ने कहा कि "भगवन्! यह व्याध आ गया है।" उन्होंने कहा, "कोई प्रेमी होगा, कोई प्राणी वन्दना करने के लिये आया होगा।" भगवान राम जब व्याघ के समीप पहुँचे तो व्याघ अपने वाक्यों में, अपनी वाणी में वाक्य उच्चारण करने लगे। बेटा! प्रत्येक मानव के हृदय में यह आशक्रा बनी रहती है कि पशु की वार्ता को राजा कैसे स्वीकार करता है। परन्तु इसके संदर्भ में यह है कि भगवान राम एक याग करा रहे थे और भी याग हो रहे थे। उसकी अवहेलना में प्रतिपादित होने वाला 'अप्रवहः वाचप्रब्रहेः लोकाम्' मेरे प्यारे! देखो उन्होंने अपने में 'धार प्रवहे रघऊ सम्भूति ब्रह्मलोकां वाच प्रह वस्ततु सुप्रजाः वर्णं ब्रह्मे वाच प्रहे वस्तुते।' जब व्याघ वहाँ पहुँचा तो भगवान राम अपने में वेदों का अध्ययन कर रहे थे। उनके अध्ययन से जो स्वरध्वनियाँ हो रही थीं, उसको वह अपने में श्रवण करने लगे। तो राम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने व्याघ से प्रीति की और व्याघ से यह कहा कि "हे व्याघ, तेरा जो यह वन है, यह तेरा राष्ट्र है, तेरी राष्ट्रीयता इसमें रहती है मानो यह हमें बड़ी प्रसन्नता है कि तुम्हारे राष्ट्र में हम भी भ्रमण कर रहे हैं। परन्तु तुम भी प्राणी हो, हम भी प्राणी हैं और प्राणी–प्राणी अपने में प्रीति करने वाला बने।" वेदध्वनि हो रही है, उस ध्वनि को श्रवण करने के लिये हिंसक प्राणी भी आता है अपनी हिंसा को त्याग रहा है। अहिंसा में परिणित हो रहा है। अपने–अपने कर्त्तव्य में निहित हो करके मानो अपने जीवन को ऊँचा बनाता है।

महाराजा अश्वपति का आगमन

एक समय कहीं से भ्रमण करते हुए महाराज अश्वपति राम के समक्ष आ पहुँचे। वे नाना प्रकार के यागों में परिणित रहते थे। उन्होंने राम के समीप पहुँचकर कहा "भगवन् कुशल हो?" उन्होंने कुशलता का उत्तर दिया "सुभूति ब्रहः"। दोनों ने परस्पर अपनी चर्चा प्रारम्भ की। राम ने कहा "कहो, महाराज! मुझ वनचर के समीप तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? यह मुझे नहीं पता, तुम्हारा आगमन क्यों हुआ है।" महाराजा अश्वपति ने कहा "प्रभु! मैं अपने आसन पर विद्यमान था। यह प्रेरणा हुई, चलो राम से अपना मिलन करेंगे, वह वन में कहीं प्राप्त हो जायेंगे। तो हम, भगवन्! आपके समीप आ गये हैं।" उन्होंने कहा "तो तुम क्या चाहते हो?" उन्होंने कहा "प्रभु! मैं कुछ नहीं चाहता। मैं 'इदन्नमम' हूँ। मेरा जो जीवन है, वह आपकी ही भाँति रहता है। मेरी कोई इच्छा नहीं है, परन्तु मैं कुछ वार्ता प्रकट करने के लिये आया हूँ।" उन्होंने कहा "बोलो, क्या वार्ता चाहते हो?" उन्होंने कहा "मुझे अपने राष्ट्र में ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे राष्ट्र में कुछ क्रान्ति के अवशेषों का जन्म होने जा रहा है। अब मैं उसमें क्या करूँ?" भगवान राम ने कहा "उसमें प्रीति की प्रतिभा को लाने का प्रयास करो, क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में, प्रजा में क्रांति आ जाती है, तो वह राजा का ही दोषारोपण होता है, वह राजा दोषी होता है। तो तुम देखो अपने में कहाँ दूषित हो।" तो उन्होंने कहा "मैं तो प्रातःकालीन् कृषि उद्गम करके अपना अन्न ग्रहण करता हूँ और विज्ञान–वेत्ताओं के मध्य में विद्यमान होकर वैज्ञानिक यन्त्रों का निर्माण भी होता रहता है और यज्ञशाला में प्रातःकालीन् याग करता हूँ और यागों में भी मेरी निष्ठा रहती है। परन्तु और भी नाना प्रकार के क्रियाकलाप मेरे समीप होते रहते हैं। परन्तु मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ, भगवन्! यह मेरे साथ क्या खिलवाड़ होने जा रहा है?" तो उस समय उन्होंने कहा "नहीं, कोई बात नहीं, उन प्रजाओं को शिक्षा दो, उन प्रजाओं को अपना महान् उपदेश दो और यह कहो प्रजाओ! मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। मानो स्वामी की सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है, और सेवा का अभिप्रायः यह है कि राष्ट्र के जो क्रियाकलाप हैं, नियमावली है, उसके आधार पर क्रियाकलाप करना है, तो राष्ट्र में एक महानता की ज्योति अपने में प्राप्त हो जाती है।" भगवान राम ने जब यह कहा तो अश्वपति ने कहा "तुम अपने 'मानवं ब्रह्मेःबाचोः'।"

उन्होंने कहा ''यह तो मैंने तुम्हारा वाक्य स्वीकार कर लिया। परन्तु तुम उन प्रजाओं को ब्रह्मज्ञान कितना देते हो?'' अश्वपति ने कहा ''प्रभु! मैं ब्रह्मज्ञान तो नहीं दे पाता हूँ।'' उन्होंने कहा ''नैतिक वाक्य कितने उच्चारण करते हो?'' अश्वपति ने कहा ''प्रभु! यह मैं नहीं करता हूँ।'' तो राम ने कहा कि ''जाओ, तुम प्रजा को नैतिकता की शिक्षा दो। तुम प्रजा को दर्शनों की आभा में रत्त कराओ और उसके पश्चात् मानो निःस्वार्थ हो जाओ।'' तो महाराजा अश्वपति ने भगवान राम के इन वाक्यों को पान तो कर लिया परन्तु उनके विचार में यह आया कि ''यदि वह मेरे विचार को स्वीकार न करें तो मैं उस समय क्या कर सकता हूँ।'' भगवान राम ने अश्वपति से कहा ''हे अश्वपति! जिस समय तुम्हारा पुत्र तुम्हारी अवहेलना करे क्योंकि अवहेलना की कोई सीमा होती है, जब सीमा से वह पार हो जाये तो तुम त्यागने का प्रयास करो। प्रजा में तुम स्वतः अपने राष्ट्र को त्याग करके और ब्रह्मवेत्ता बन करके अग्नि के समान तुम भयक्रर वन में तपस्या करने चले जाओ।''

राजा सुबाहु की राम से भेंट

भगवान राम का जीवन कितना विचित्र रहा है। विभिन्न राजा–महाराजा उनके दर्शनार्थ, विचारार्थ उनके समीप आते रहते। एक समय सुबाहु राजा भगवान राम के दर्शनार्थ पंचवटी में आये और यह विचार–विनिमय करने लगे कि प्रजा में संग्रह की प्रवृत्ति का निराकरण कैसे हो। उन्होंने राम से कहा कि ''मैं कृषि उद्‌गम द्वारा अपने उदर की पूर्ति करता हूँ, गृह स्वामिनी से भी यही कहता हूँ। परन्तु मैं प्रजा की उस सङ्ग्रह प्रवृत्ति को समाप्त नहीं कर सका हूँ। क्योंकि जब मेरे हृदय में सङ्ग्रह की प्रवृत्ति बनी हुई है प्रजा की भी सङ्ग्रह की प्रवृति बनी हुई है। मानो जब सङ्ग्रह की प्रवृत्ति प्रजा में आती जा रही है तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि रक्तभरी क्रान्ति का संचार हो जायेगा। भगवन्! मेरे राष्ट्र में सम्प्रदाओं का एक स्रोत बह रहा है। प्रभु के नाम पर नाना सम्प्रदाय हैं, नाना प्रकार की कृतियाँ बनी हुई हैं।'' भगवान राम ने कहा ''राजन्! तुम चाहते क्या हो?'' उन्होंने कहा ''प्रभु! मैं अपने राष्ट्र को महान् बनाना चाहता हूँ।'' तो उस समय भगवान राम ने यह कहा कि ''तुम्हारे राष्ट्र में वैदिकता होनी चाहिये। सबसे प्रथम तो प्रजा में धर्म के नाम पर, प्रभु के नामों पर नाना प्रकार के स्वादन की स्थलियाँ नहीं रहनी चाहिये। क्योंकि नाना प्राकर के स्वादनों की स्थलियाँ बनी रहेंगी तो उसके बनने का परिणाम यह होगा कि तुम्हारा राष्ट्र रक्तभरी क्राँति की और संचालित हो जायेगा। तुम्हारा एक वैदिक प्रसार होना चाहिये। हमारे ऋषि–मुनियों ने एक पद्धति का निर्माण किया है। उन्होंने कहा है कि, राजा के राष्ट्र में, प्रजा में, समाज में, पाँच प्रकार का पंचीकरण परमात्मा के नामों पर होना चाहिये। वह पंचीकरण कौन सा है? प्रातःकालीन् देखो प्रत्येक गृह में ब्रह्म का चिन्तन होना चाहिये। पति–पत्नी ब्रह्म का चिन्तन करने वाले हों। उसके पश्चात् प्रातःकालीन देवपूजा होनी चाहिये, सुगन्धि होनी चाहिये। प्रत्येक गृह में वेदध्वनि होनी चाहिये और देखो अग्न्याधान करके याग होना चाहिये और तृतीय यह है कि अतिथि सत्कार होना चाहिये। कोई भी अतिथि आये, उसको भोजन कराना और बलिवैश्वयाग करना। भोजनालय में मेरी प्यारी माता प्रत्येक प्राणी का भोग निर्धारित कर देती है। तो मानो यह पंचीकरण कहलाता है। इस पंचीकरण में राजा के राष्ट्र में जो प्रत्येक गृह है, पति–पत्नी हैं, बाल्य हैं, वह सब इस सूत्र में पिरोये हुए होने चाहिये। प्रभु का चिन्तन तो प्रायः करना ही चाहिये। परन्तु जब भी समय मिले तो स्वाध्याय करे, समय मिले ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, समय मिले तो देखो ब्रह्मवर्चोसी बन जाये। ब्राह्मण का क्रियाकलाप होना चाहिये।''

''रही प्रजा के सङ्ग्रह की प्रवृत्ति, इसके लिए राजा को अपने सङ्ग्रह की प्रवृत्ति को त्याग देना चाहिये। जब राजा अपनी सङ्ग्रह प्रवृत्ति को त्याग देता है और वह प्रातःकालीन् ब्रह्म का चिन्तन कर रहा है, प्रातः अग्नि के समीप जा करके अग्न्याधान करके वह अग्नि में अपनी भावनाओं से साकल्य प्रदान करता है। उसके पश्चात् उसी पंचीकरण में कोई अतिथि आ गया है, उसकी सेवा करनी है उसको अन्नादि देना है। कोई पुरोहित आ जाये, तो उससे उपदेश लेना प्रारम्भ करे। मानो सत्संग की प्रतिभा तुम्हारे हृदयों में रहनी चाहिये। इसी प्रकार देखो अतिथि–सेवा पंचीकरणों में मानव का राष्ट्र परिवर्तित होना चाहिये। यह नाना प्रकार की आभा में नियुक्त नहीं रहना चाहिये। सङ्ग्रह की प्रवृत्ति को जब राजा त्याग देता है, राष्ट्र भी त्याग देता है, एक मानव है जो वृक्ष के नीचे अपना स्थान बना लेता है। उसकी छाया में रहता है, मानो वह राजा है। वह अपने में सङ्ग्रह करने की प्रवृत्ति न रखने का प्रयास करता है। एक राजा स्वयं क्रियाकलाप करने वाला, स्वयं कृषि का उद्‌गम करने वाला है, वह उस अन्न को पान करता है, वह जो पवित्र अन्न है, उस अन्न को ग्रहण करता है। जो राजा द्वितीय अन्न को ग्रहण करता है वह अन्न मानो पाप के मूल में ले जाता है। हमें पवित्र अन्न को ग्रहण करना चाहिये। ये जब राजा इस प्रकार का बन जाता है तो प्रजा में सङ्ग्रह की प्रवृत्ति मानो समाप्त हो जाती है। वितरण–प्रणाली पवित्र बन जाती है। जब वितरण–प्रणाली पवित्र बन जाती है तो मानो राजा के राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति कहाँ से आयेगी।''

भगवान राम की यह उपदेश–मंजरी प्रारम्भ रहती थी। तो देखो सुबाहु राजा ने यह वाक्य स्वीकार कर लिया और उन्होंने चरणों की बन्दना की ''प्रभु! यह वाक्य आपने यथार्थ कहा है। परन्तु मैं अब क्या करूँ।'' उन्होंने कहा, ''जाओ तुम सबसे पहले धर्म के नामों पर रूढ़ि समाप्त करो। राजा एकोकी धर्म वाला रहना चाहिये। परमात्मा सर्वज्ञ है, परमात्मा सर्वशक्तिमान है। सबके हृदयों में वास करने वाला है। उस परमपिता को स्वीकार करते हुए नाना रूढ़ियों में समाज नहीं रहना चाहिये। विद्यालयों में तपे हुए आचार्य होने चाहिये। रूढ़ि का निराकरण विद्यालयों में हुआ करता है। तुम्हारे विद्यालयों में जब तपे हुए आचार्य होंगे तो मानो ब्रह्मचारी उसके अनुसार होंगे तो रूढ़ि विद्यालयों में समाप्त होती है और जब रूढ़ि विद्यालयों में नहीं रहेगी तो देखो राजा के राष्ट्र में भी नहीं रहेगी और राजा के राष्ट्र में नहीं रहेगी तो प्रजा में नहीं रहेगी। क्योंकि विद्यालयों में प्रातःकालीन अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके याग करना उसके ऊपर वेद के मन्त्रों का भावार्थ करना मानो देखो उसके अनुकूल हमें अपने विचारों को बनाना है और बना करके अग्रणीय बन करके कार्य करना है तो राष्ट्र की प्रतिभा ऊँची बनेगी।'' राजा ने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। राम को धन्यवाद दे करके उनके चरणों की बन्दना करके उन्होंने वहाँ से गमन किया।(पुष्प 60)

रावण की बहिन का आगमन

भगवान राम, माता सीता और लक्ष्मण जब चौदह वर्ष के वनवास की अवधि बिता रहे थे तो वनवास के अन्तिम वर्ष में एक समय रावण की बहिन जिसका नाम सोमतिती था, जो रावण की गुप्तचर विभाग की मुखिया थी, अति सुन्दर थी। वह पंचवटी वन में भ्रमण करने के लिये आ पहुँची। उसने यह चाहा कि मैं राम को अपना पति चुनूँ। राम ने कहा कि ''मेरा संस्कार तो हो चुका, तुम लक्ष्मण को अपना पति चुन लो।'' यह वाक्य उनका समय के अनुकूल था।

नाक कटने का रहस्य

लक्ष्मण ने उनसे कहा कि ''तुम्हारे माता–पिता, भाई–विधाता हों तो उनसे कहो कि तुम्हारा संस्कार कर दें। हम तो सूक्ष्म क्षत्रिय बालक हैं। तुम हमारे द्वार क्यों आती हो ? हम तुम्हारा संस्कार नहीं कर पायेंगे'' और क्रोध में आकर यह भी कहा कि ''क्या तुम्हारे माता–पिता नष्ट हो गये?'' जब ऐसा कहा तो उसका अपमान हो गया। सोमतिती को अपने विधाता और राष्ट्र पर बड़ा गर्व था। अपमान होने के नाते उसने अपनी नाक स्वयं काट ली। उसने षडयन्त्र रचा और इसलिये रचा कि मेरा कुटुम्ब परिवार मेरे इस अपमान को जान जाये और दोनों को नष्ट–भ्रष्ट कर दे। उसने ऊँचा षडयन्त्र उन दोनों को नष्ट करने के लिये रचा किन्तु परिवार ही नष्ट हो गया।(20 अक्टूबर 1964, मोगा)

पूज्य महानन्द जीः– तो क्या भगवन्! ऐसा हो सकता है कि कोई अपने नाक–कान स्वयं काट ले?''

पूज्यपाद गुरुदेवः–अवश्य ही हो सकता है, बेटा ! इसमें आश्चर्य की क्या बात है? मनु महाराज के अनुकूल और वेदों में भी कुछ मन्त्र आते हैं, उनके अनुकूल तुमने यह जाना होगा कि यह जो देव–कन्या है, इसको जब किसी वस्तु की हठ हो जाती है और वह कार्य इसके लिये असम्भव हो जाता है तो वह स्वतः ऐसे कार्य कर लेती है। ऐसी अनेक चर्चाओं को देखने का सौभाग्य मिला, आधुनिक काल में भी तुम्हें बहुत सी ऐसी चर्चाएं प्राप्त होती होंगी।

पूज्य महानन्द जीः– हाँ, भगवन्! देखी जाती हैं, परन्तु रावण की बहन का तो आप से यह नवीन् वाक्य ही सुना।''

पूज्यपाद गुरुदेवः–हास्य।... यह नवीन वाक्य नहीं। महर्षि बाल्मीकि का कथन है, अब कोई महर्षि के कथन को यह कहे कि यह मिथ्या है और उनके अर्थों का अनर्थ कर दे तो द्वितीय वाक्य है, परन्तु महर्षि बाल्मीकि के जितने अर्थ हैं, वे बड़े सुन्दर और प्रिय हैं। (अक्टूबर 1964, मोगा, पंजाब)

राम कितनी महान् आत्मा, ऋषि–आत्मा, सूर्य मण्डलों की आत्मा थी, जिन्होंने यहाँ आकर पुनः उत्थान कर दिया और रावण के अभिमान को चूर करके मर्यादा को बाँधकर चले गये। उन पर दोष लगाते हैं कि उन्होंने रावण की बहन सोमतिती की नाक काट ली। यह कार्य तो मामूली क्षत्रिय भी नहीं कर सकता। यह तो हो सकता है कि उन्होंने कटुशब्द कह दिये हों और इसको अपमान मानकर नाक काटना कह दिया हो। (19–8–1962, विनयनगर, नयी दिल्ली)

१४. चतुर्दश अध्याय–सीता–हरण

वाणी का वैचित्र्य

यह वाणी ऐसी विचित्र है कि हे मानव! देखो इसकी पूजा, स्वर्ग–स्थली बना देती है। यह वाणी पाण्डित्य बना देती है। यह वाणी ही है, जिसके कारण देखो हमारे यहाँ यह याचना का केन्द्र बना हुआ है। किसी–किसी काल में वाणी के कारण मानव कितनी यातनाओं में प्रवेश हो जाता है! त्रेता के काल में जब प्रवेश करता हूँ तो एक शब्द के कारण कितना विशाल भयङ्कर सङ्ग्राम हो सकता है। त्रेता के काल में सीता ने एक ही शब्द कहा था, जब राम एक मायावी मानव, एक क्रिया–कृतियों में रत्त होने वाले मृगराज के पिछले भाग में चले गये तो उस समय लक्ष्मण को वह सीता की आभा में रत्त कर गये थे और यह कहा कि "तुम रक्षक हो और रक्षा में तुम्हें रहना है।" वह तो चले गये और जब वहाँ से एक शब्द आया और देखो उस शब्द के कारण सीता ने लक्ष्मण से कहा "भगवन्! जाओ, देखो अपने विधाता के लिये जाओ, उनकी पुकार आयी है।" तो उन्होंने (लक्ष्मण ने) देखो स्वीकार नहीं किया। वे (लक्ष्मण) यह चाहते थे कि 'ब्रह्मणे ब्रहे' देखो "मैं तुम्हारी रक्षा, तुम्हारी सेवा करूँ।" उन्होंने (सीता ने) कहा कि "नहीं।" तो उन्होंने एक शब्द अशुद्ध उच्चारण कर दिया। उसके कारण वह यातना में, देखो रावण की बाटिका में यातना सहन करती रही, अपने में यातना ग्रहण करती रही। तो यह जो शब्द है, यह तो अग्नि का स्वरूप बन जाता है और यह शब्द ही मानव को पण्डित बना देता है। (13 अगस्त 1988, रामप्रस्थ, गाजियाबाद)

लक्ष्मण–रेखा–विज्ञान

पंचवटी में रावण आ पहुँचा तो लक्ष्मण ने पंचवटी के अन्तर्गत एक रेखा का निर्माण किया और सीता से यह कहा कि "हे मातेश्वरी! इस रेखा से तुम बाहर नहीं जाना।" कितना विज्ञान था ! उस विज्ञान की हम कल्पना भी नहीं कर पाते! जो आंगन में रहे वह भस्म न होता हो, परन्तु बाहर से आने वाला प्राणी उस रेखा के अन्तर्गत आते ही भस्म हो जाता था, उसमें इतनी विशालता थी।

राजा रावण के यहाँ क्या नहीं था? कितना विज्ञान था! चन्द्रयान थे, मंगलयान थे, शुक्रयान थे, परन्तु चरित्र नहीं था। तुम्हें प्रतीत है कि राम–लक्ष्मण के द्वारा कितना चरित्र था, कितना विज्ञान था? विज्ञान बहुत था, परन्तु चरित्र भी बहुत था। गृह त्यागने के पश्चात् रघुवंश में उत्पन्न होने वाले भगवान राम, उन्होंने संसार से मिलन करने की प्रेरणा की, अपने हृदय में उस शक्ति को धारण किया कि संसार से मिलन किया जाये। यह जो संसार एक–दूसरे की अग्नि में प्रदीप्त होने जा रहा है, इससे मिलान किया जाये। एक–दूसरे के हृदय का हृदय से मिलान होना चाहिये, यह उनके द्वारा सबसे प्रथम पठन–पाठन की प्रक्रिया थी। उसके पश्चात् वह छः माह तक ऋषि भारद्वाज आश्रम में परिणित हुए। उन्हीं के आश्रम में महाराजा लक्ष्मण ने उस रेखा को जानने का प्रयास किया, जो रेखा हमारे यहाँ ऊँचे–ऊँचे महापुरुषों में ही प्राप्त होती है। वह इस प्रकार की रेखा है कि जिस रेखा में यह जो नाना प्रकार का परमाणुवाद है इन परमाणुओं की उन अणुओं की धारा यन्त्र से दूरी न जाये। वह यन्त्र इनकी अग्नि को ऐसे निगल जाता था जैसे वर्षा काल में पृथ्वी जल का अपने में शोषण कर जाती है, इसी प्रकार वह जो भयङ्कर अग्नि यन्त्रों से उगली जाती थी उस विशाल अग्नि को वह अपने में शोषण कर लेता, जिसको सोमतिती नाम की रेखा कहा जाता था। उसको भगवान कृष्ण भी जानते थे और लक्ष्मण भी जानते थे।

वह क्या विज्ञान था? उसको हमें विचारना है उसको अपने क्रियात्मक में लाने का प्रयास करना चाहिये। महर्षि भारद्वाज उस रेखा को जानते थे, महर्षि शाण्डिल्य भी जानते थे, महर्षि दधीचि उस रेखा को जानते थे। हमारा कौन सा ऋषि ऐसा नहीं, जिन्होंने उस रेखा को नहीं जाना परन्तु वह विज्ञानता वहीं तक कृत (सफल) रहती है, जहाँ तक उस रेखा की परिविधि मानवता में परिणित होती रहती है। मैंने कई समय में इन वाक्यों की चर्चाएं की हैं कि हमें वैज्ञानिक बनना चाहिये परन्तु कैसा सुन्दर वैज्ञानिक ! उन जैसा जिन्होंने छः मास में इस रेखा को जाना। वह रेखा उन परमाणुओं की, उस परमाणुवाद की बनी हुई थी जो अग्नि के परमाणुओं को निगल जाये और तब जल की धारओं को भी निगलने की उसमें शक्ति थी।

जैसे पृथ्वी मण्डल में पार्थिव–तत्त्व प्रधान है, उसी प्रकार बृहस्पति मण्डल में जल प्रधान होने के नाते उसकी जो तरंगें हैं, वायुमण्डल में भ्रमण करती रहती हैं, द्यौ–लोक में वे धाराएं रमण करती रहती हैं। वे धाराएं सब एक ही आँगन में विचरण करने वाली होती हैं। सोमना कृतिक–नाम का एक यन्त्र होता है, सोमना कृतिक, नाम के यन्त्र में वायुमण्डल से जल के परमाणुओं को एकत्रित करने की शक्ति होती है और यन्त्र का दूसरा भाग जो होता है, उसमें अग्नि–तत्त्व के परमाणुओं को अपने में धारण करने की शाक्ति होती है और जो तृतीय भाग होता है, उसमें वायु के परमाणु को धारण करने की शक्ति होती है। इसी प्रकार पाँचों परमाणु जब यन्त्रों के द्वारा एकत्रित किये जाते हैं तो विद्युत कृतियों के द्वारा उसमें वह रेखा इस प्रकार बनती है जिसमें अग्नि और वायु तत्त्व अधिक प्रधान होते हैं। वायु और अग्नि–तत्त्व परमाणु अधिक होने के नाते अन्तरिक्ष की उसमें पुट होती है, उन तीनों परमाणुओं का मिश्रण हो करके और पार्थिव तत्त्व और अप्राह वैसी विद्युत लेकर, उसका पात बना करके उस रेखा को अंगीकृत किया जाता है। उस रेखा में यह विशेषता होती है कि यदि आज परमाणु युद्ध प्रारम्भ हो जाता है तो उस रेखा में, उस यन्त्र में इतनी शक्ति होती है कि उन तीक्ष्ण परमाणुओं को ऐसे निगल जाता है, जैसे वर्षाकाल में जल को पृथ्वी निगल जाती है। इसी प्रकार 'अप्रतिं ममवेत्ता ब्रह्म व्यापहि सपत्रका', वेदों में इसका प्रायः विधान भी आता है।(3–8–1971, जोरबाग, नयी दिल्ली)

एक शब्द के कारण ही सीता ने बारह वर्ष वन में बिताये, वह हिंसा का शब्द था। जो माता स्वीकार कर रहा है, जो चरणों की वंदना कर रहा है आज यदि उसके प्रति हमें मनसा पाप है, तो वह हिंसा है। माता सीता ने अपने जीवन को कितनी तपस्या से व्यतीत किया परन्तु उसी हिंसा के एक शब्द ने उनको रावण की कारागार में डाल दिया। हिंसा का एक शब्द मानव को कहाँ से कहाँ ले जाता है ! हिंसा–शब्द का प्रारम्भ मानव के हृदय से होता है इसीलिये मानव का हृदय और मनस्त्व दोनों महान् चिन्तन वाले होने चाहिये।(25 अक्टूबर 1986, जोरबाग, नयी दिल्ली)

सीता को ले जाते हुए रावण से गरुड़ का सङ्ग्राम

पूज्य महानन्द जीः– आधुनिक काल में सम्पाति को एक गिद्ध के रूप में प्रकट करते हैं, जो गिद्ध नाम का पक्षी है। गरूड़ ने रावण से सङ्ग्राम किया था, जब रावण सीता को ले जा रहा था। आधुनिक काल का जो मानव–समाज है, उस गरूड़ को भी एक गिद्ध के रूप में स्वीकार कर रहा है। मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ कि हे भोले सहित्य वालो तुम्हारे चक्षु क्यों नहीं प्रकाश में आ रहे हैं। तुम इस साहित्य को जानने का प्रयास करो। एक राजा को तुम गिद्ध बना रहे हो, एक वैज्ञानिक को, जो सूर्य की किरणों के साथ वायु–मण्डल में गति करने वाला हो, उसे गिद्ध के रूप में परिणित किया जा रहा है। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं किसी काल में इस आधुनिक जगत् के साहित्य के ऊपर दुःखित हो जाता हूँ और यह कहा करता हूँ कि महापुरुषों का, जिन्होंने ऋषि–मुनियों के चरणों में विद्यमान हो करके विद्याओं का अध्ययन किया हो, जो ऋषि–मुनियों के ज्ञान और विज्ञान को निगल करके ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते रहे हों यह उनका अपमान है। मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ कि इस साहित्य के ऊपर मानव क्यों नहीं विचार–विनियम कर रहा है? आधुनिक काल में मानव अपने को यह कहता है कि मैं सनातन से चला आ रहा हूँ। अरे, जब तुम्हारे पूर्वजों को गिद्ध की श्रेणी में परिणित किया गया है, तो तुम सनातन किस प्रकार के हो? कौन सी सनातनता तुम्हारे हृदयों में है? (19 अक्टूबर 1982, मोदीनगर)

महाराजा सम्पाति और गरुड़ दोनों विधाता अनुसंधान करते थे। समुद्र के तट पर उनका सूक्ष्म सा राज्य था राजा रावण ने उनके राष्ट्र को विजय कर लिया था। गरूड़ तो महर्षि लोमश मुनि के आश्रम में प्रवेश कर गये थे और सम्पाति समुद्र के तट पर सम्भुक ऋषि महाराज के आश्रम में चले गये थे। उनका राष्ट्र समाप्त हो गया था, परन्तु वे वैज्ञानिक थे, अपने में अनुसंधान करते रहे थे, विचार–विनियम करते रहते थे। सम्पाती को हमारे यहाँ आकृतियों की संज्ञा प्रदान की जाती है, गरूड़ जिन्होंने रावण इत्यादि से सङ्ग्राम किया, उनको भी पक्षी की संज्ञा प्रदान की जाती है। यह क्यों की जाती है? क्योंकि वह पक्षी की भाँति अपने यन्त्रों में विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष में गति करते रहते थे, वह वैज्ञानिक थे। सम्पाति तो समुद्र के किनारे संयत रहता था। जब सम्पाती को राजा रावण ने विजय कर लिया था तो उसका राष्ट्र जो समुद्र के तट पर था, उस राष्ट्र की सुरसा अधिराज बन करके रही।

(2 मार्च 1983, खतौली)

१५. पन्द्रहवां अध्याय–सीता की खोज

बाली–वध और सुग्रीव को राज्य

जब बाली असंस्कृति में पहुँच गया तो भगवान् राम ने उसे नष्ट किया। संस्कृति का अभिप्रायः यह नहीं कि हम वाणी को संस्कृति कहें। संस्कृति चरित्र को कहते हैं। चरित्र होना चाहिये इतना बलिष्ठ कि राजा उसको स्वतः अपनाये और उससे राष्ट्र उन्नत हो। प्रजा उसके अनुकूल अपना कर्त्तव्य प्रारम्भ करती चली जाये। भगवान् राम जब अपनी संस्कृति के चक्र को लेकर चले और निषाद इत्यादि से मिलते हुए बाली के पास पहुँचे। बाली को नष्ट किया और उससे कहा कि ''हे बाली ! तुमने अराजकता को उत्पन्न किया है। तुमने छोटे भ्राता की पत्नी को अपनाया है, इसीलिये मैंने तुम्हारे ऊपर प्रहार किया है।'' राम ने उस बाली को नष्ट किया जो चारों वेदों का पण्डित था परन्तु संस्कृति को नष्ट कर चुका था। सुग्रीव को वहाँ का राजा बनाकर अपनी संस्कृति का प्रसार किया और आगे बढ़ते गये।

सीता–खोज के लिये हनुमान को प्रेरणा

हनुमान जब माता सीता की खोज के लिये लंका जाने लगे तो भगवान राम से पूछा कि ''महाराज ! मैं कौन सी शक्ति से जाऊँ?'' उस समय राम ने कहा था कि ''तेरे में जो भय है, जो तेरे हृदय में सक्रोच है, उन सबको मेरे में अर्पण कर, अपने अहङ्कार को मेरे अर्पण कर और तू सीता की खोज कर। मैंने वह शक्ति पायी है कि मैं उन पर विजय प्राप्त कर लूँगा।'' आज उन्हीं विचारों को लेकर अपने जीवन को ऊँचा बनाना है। **हमारे हृदय का गौरव तो यही है कि ऐसी महान् आत्माओं को परमात्मा न मानकर इसको शक्तिमान तथा महान् आत्मा मानकर उनकी पूजा करे तो हमारे जीवन का एक बहुत ऊँचा रहस्य बन जायेगा।** काव्य लिखने वालों ने महाराजा राम–कृष्ण के सम्बन्ध में ऐसी रचना की कि उन्हें भगवान के तुल्य माना परन्तु तार्किक समाज में उनका कोई मूल्य नहीं माना गया। जिन महान् आत्माओं ने उनके जीवन के रहस्य को जाना और जिन्होंने उनके जीवन को देखा वे इन वार्ताओं को जानते हैं।

(27–7–65, फिरोजपुर, पंजाब)

हनुमान का योगदान

हनुमान की जन्म–कथा

मुझे महाराजा हनुमान की विवेचना स्मरण आने लगती है। उनका जीवन स्मरण आने लगता है। वह माता की लोरियों का पान कर रहा है, माता अपने प्यारे पुत्र को उपदेश दे रही है और लोरियाँ देती हुई कहती है कि ''हे बाल्य! तू महान् बन। हे बाल्य ! तू ज्ञानी, वैज्ञानिक बन।'' मुझे स्मरण है महाराजा हनुमान का जीवन कितना ज्ञान–विज्ञान में रमण करने वाला था। सूर्य की जितनी विद्याएं थीं, वह सर्वत्र विद्याओं को निगलने वाला एकाकी हनुमान कहलाता था। (29 सितम्बर 1989, धनौरा)

यह तो तुम्हें प्रतीत है कि हनुमान पवन–पुत्र कहलाते थे। वे 'अंजना' के पुत्र थे। महाराजा महीवृतकेतु की कन्या का नाम अंजना था। महाराजा 'महेन्द्र' के राजकुमार 'पवन' कहलाते थे। तुम्हें यह प्रतीत होगा, जब भयङ्कर वनों में ये रहते थे तो उनकी माता अंजना सदैव अपने बालक को शिक्षा देती थी और शिक्षित बनाती हुई कहा करती थी कि ''हे बाल्य ! सूर्य–विद्या पर भी तुम्हारा आधिपत्य होना चहिये।'' तो जब महाराजा हनुमान जी का 'नामकरण अब्रही' नामकरण संस्कार हुआ और वे आचार्य के कुल में प्रविष्ट हुए। उनके राजपुरोहित सुरेश्वर ऋषि कहलाते थे। सुरेश्वर ऋषि महाराज उन्हें धनुर्विद्या प्रदान करते थे तथा सूर्य–विद्या प्रदान करते थे। यह सूर्य क्या–क्या कार्य करता है, सूर्य क्या है, इसके ऊपर अपनी टिप्पणियाँ, अपने विचार देते रहते थे।

बाल्यकाल में ही महाराज हनुमान जी ने 'काल ब्रीहि वृत्तेः' सूर्य–विद्या को अपने में निगलने का प्रयास किया, सूर्य–विद्या को निगल लिया। सूर्य–लोक को नहीं निगला जाता है। सूर्य में जो विद्या है, सूर्य में जो प्रतिभा है, उस प्रतिभा को निगलने का नाम ही सूर्य को निगलना है। सूर्य प्रातःकाल में उदय होकर संसार को जागरूक कर देता है, नाना प्रकार की वनस्पतियों को तपा देता है, पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्य और खनिजों को तपा देता है। सूर्य की आभा से अन्तरिक्ष में विद्युत का भरण हो जाता है। विद्युत का भरण होते हुए सर्वत्र सूर्य से विद्या प्राप्त होती है, परन्तु 'प्राणायाम ब्रह्मं लोकं ब्रीहि वृत्तः' वेद का आचार्य कहता है कि यह जो प्राणत्व है, प्राण है यह विद्युत् में प्रवेश कर रहा है। प्राण–शक्ति को लाने का प्रयास करना, प्राण को ऊँचा बनाना परमात्मा की अनुपम वेद की विद्या को जानना है।

आज कोई भी मानव ऊँचा बनना चाहता है, मानवता को लाना चाहता है तो अपने गृह को स्वर्ग बनाना होगा और गृह को स्वर्ग बनाने के लिये विद्यालय को स्वर्ग बनाना होगा और विद्यालय जब स्वर्ग बन जाता है तो राष्ट्र भी स्वर्गमय हो जाता है। परिणाम क्या, हनुमान जी ने भी यही कहा था। वे अपने उपदेश में अपने वाक्यों में कहा करते थे कि ''जब मैं आचार्य कुल में प्रवेश करता रहता था तो आचार्य कुल में जो ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे, ब्रह्मचारियों के द्वारा किसी प्रकार का व्यसन उनके समीप नहीं रहता था। वे तो सदैव अपने प्रभु का चिंतन करते हुए, आचार्य के चरणों को स्पर्श करते हुए अपनी विद्या में सदैव पारायण रहते, विद्या को जानने का प्रयास करते।'' उन्होंने कहा है कि ''संसार को ऊँचा बनाना है तो हमें सूर्य–विद्या को जानना चाहिये। यह तेजोमयी विद्या कहलाती है, यह अग्निमय विद्या है। सूर्य का हमें तप भी करना है, सूर्य की विद्या को जानकर नाना प्रकार के यन्त्रों का अध्ययन करना है।''

जब माता अंजना के गर्भस्थल में बालक था तो उस काल में वह सूर्य का तप करती थी। सूर्य का तप क्या होता है? सूर्य की प्रातःकाल में जो रश्मियाँ आती हैं, वे जो किरणें आती हैं, उन रशिमयों को वे उषा–काल में पान करती। माता अंजना अन्न–जल का पान नहीं करती थी, सूर्य की नाना प्रकार की जो किरणें हैं, उसमें जो तत्व हैं उन्हें ग्रहण करती रहती थीं और ग्रहण करके उसको निगलती हुई सूर्य–विद्या में पारायण होती थी। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, माता अंजना का आपातकाल तो था ही परन्तु देखो तो अंजना अपने जीवन को सुरक्षित बनाने के लिये, बाल्य को ऊँचा बनाने के लिये उन किरणों को अपने में धारण करती रहती। आह! नग्न हो करके 'उदर ब्रीहि', उन किरणों को निगलती रहती थी और निगल करके कहा करती थी ''हे प्रभु! हे देव! आज तू मेरा स्वामित्व है। मेरे गर्भस्थल से जब बाल्य का जन्म हो तो वह महान् और पवित्र होना चाहिये जो मेरे गर्भाशय को ऊँचा बनाने वाला हो।''

अंजना का आपातकाल तो प्रत्येक प्राणी जानता है लेकिन मुझे जब उनकी गाथा स्मरण आने लगती है, उनका तथ्य जब मुझे स्मरण आता है तो गद्गद् होने लगता हूँ, व्याकुल भी होने लगता हूँ। कैसे अंजना को दुहृदयी बना दिया गया था ! जब राजा रावण ने सहायता के लिये महाराजा पवन को निमंत्रण दिया कि महाराज कुबेर को विजय करने में मेरी सहायता करो। पवन ने अपने गृह का त्याग करके अपनी सेना के सहित जब गमन किया तो मार्ग में अशक्तम् नदी पर उन्होंने विश्राम किया। रात्रिकाल में वहाँ दो पक्षियों की 'चक्रय ग्रहीति' को दृष्टिपात करके उनके हृदय में एक व्याकुलता आयी और उस व्याकुलता का परिणाम यह हुआ कि राजा ने अपने मन्त्री से कहा कि ''यह पक्षी क्या कहते हैं ?'' उन्होंने कहा कि महाराज! देखो ये प्रभु के नियम के

अनुसार दिवस भर एक आसन पर रहते हैं परन्तु जब रात्रि आ जाती है तो ये दोनों पक्षी एक–दूसरे से दूरी पर रहते हैं।'' महाराज पवन के हृदय में यह विचार आया 'अग्न ब्रीहि वृत्तम्' कि ''मैंने तो अपनी पत्नी को बारह वर्ष हो गये हैं, उनको त्याग दिया है, वह भी इसी प्रकार मानवता में व्याकुल होती होगी।''

पवन के हृदय में उन दोनों पक्षियों को दृष्टिपात करके व्याकुलता हुई। व्याकुलता का परिणाम यह हुआ कि वह अपने वाहन पर विराजमान हो करके उस रात्रिकाल में अंजना के द्वार पर जा पहुँचे। अंजना ने अपने पतिदेव को दृष्टिपात करते हुए उनके चरणों को स्पर्श किया। अंजना ने कहा ''आइये, भगवन्! मैं तो आपके गुण–गान गाती रहती हूँ। आपने मुझे दुहृदयी बना दिया परन्तु उसके पश्चात् भी मैं आपका अनिष्ट नहीं चाहती हूँ।'' इन्होंने कहा कि ''देवी धन्य है।'' वहाँ उन्होंने अपने–अपने आभूषणों का परिवर्तन किया और परिवर्तन करके उन्होंने कहा ''मैं रावण की सहायता में जा रहा हूँ, कुबेर को विजय करना है, क्योंकि लंका को विजय करना है। उसकी विजय की सहायता के लिये मैं यहाँ से गमन कर गया था। मार्ग में से तुम्हारे लिये आया हूँ।'' उन्होंने कहा कि ''मैं तो स्वतः ही दुहृदयी हूँ, यदि तुम्हें देरी हो गयी तो माता–पिता मुझे इस गृह से दूरी कर देंगे।'' उन्होंने कहा कि ''देवी कोई वाक्य नहीं, परन्तु यह तो विषय दूरी है, इतने में तो मैं विजय करके अपने राष्ट्र में आ पहुँचूँगा।'' अपने आभूषणों को परिवर्तन करके पवन ने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करके वह अपने मन्त्रियों में जा पहुँचे। दिवस आया तो लंका को विजय करने के लिये रावण की, देखो वरुण की सहायता के लिये पवन ने वहाँ से गमन किया। वहाँ सङ्ग्राम करते–करते देरी हो गयी।

अंजना के गर्भस्थल में वही हनुमान 'देवव्रतः' बालक था। माता सदैव सूर्य की उपासना करती रहती थी। माता ही अपने पुत्र को ऊँचा बना सकती है और कोई नहीं बना सकता, क्योंकि माता जब तपस्वी होती है तो माता का गर्भाशय भी ऊँचा होता है। वह कहा करती कि ''हे बालक! तू संसार में वीर, तू महान् बन।'' वह सूर्य की प्रातःकाल में उपासना करती, चन्द्रमा की रात्रिकाल में उपासना करती। जब पूर्णिमा का दिवस आता तो रात्रिकाल में वह अमृत को अपने में धारण करती रहती। अमृत कैसे धारण किया जाता है? देखो रसना को ऊर्ध्वामुख करके चन्द्रमा के समीप उसमें कान्ति को लेकर शनैः–शनै प्राण को अपने आन्तरिक–जगत् में सींचा जाता है, जिह्वा के द्वारा सींचा जाता है। बालक अमृत को विशेष पान करता है। सूर्य को प्रातः काल में अपनी वाणी से सींचा जाता है, शनैः शनैः अपने आन्तरिक जगत् में उसका प्रवेश किया जाता है। आज कोई मानव सूर्य का तप करना चाहता है, तो सूर्य का कल्प होता है। सूर्य का कल्प कैसा होता है ? उस कल्प में निर्जला रह करके केवल वह जल में, अपने आन्तरिक जगत् में किरणों को लेता है और सूर्य की किरणों को अपनी जिह्वा से और जल के सहयोग से अपने में सींचने लगता है। उसे अग्नि का ज्ञान हो जाता है, अग्नि को प्रतिपदा में जानने लगता है, उसको जानता है। गर्भस्थल में माता उसको कहती रहती है, बाल्य में वो शक्ति आ जाती है कि वह सूर्य के तेज को और सूर्य के गुणों को अपने में धारण करने लगता है, 'बाल्य ब्रीहिवृत्तः'।

जब वह माता गर्भवती हुई, उस समय पवन के पिता महेन्द्र और महारानी ने यह कहा कि यह अंजना हमारे गृह को कलंकित करने के लिये आयी है। काले रथ पर विराजमान करा करके उससे कहा कि ''हे अंजना! तू कहाँ जाना चाहती है ? हमारे राष्ट्र का नियम है कि कोई भी कन्या इस प्रकार से कलंकिनी हो जाती है, उसको काला मुख, काले घोड़े और काले ही रथ पर विद्यमान करके भयक्रर वनों में त्याग दिया जाता है या जहाँ वह जाना चाहती है, वहाँ त्यागा जाता है।'' तो महारानी अंजना ने कहा कि ''हे मातेश्वरी! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, मैं दोष की पात्र नहीं हूँ।'' उन्होंने कहा कि मैं अपने पुत्र का यहाँ आना स्वीकार नहीं कर सकती।'' परिणाम क्या हुआ कि अंजना कहती है कि ''मेरे पिता के गृह में मुझे प्रवेश करा दो।'' काला रथ और काला सारथी, काले ही अश्व पर विद्यमान काले ही वस्त्रों में जब वह पिता के द्वार गयी तब पिता ने यह दृष्टिपात किया कि ''यह कौन आ रहा है? ऐसे काले रथ में तो कोई कलंकिनी आती है।'' रथ जब पिता के गृह में जा पहुँचा तो पिता ने कहा कि ''यह तो हमारी पुत्री अंजना है।'' उन्होंने कहा कि ''यह क्या हुआ कि तू इस प्रकार कलंकिनी बन गयी।'' उन्होंने उसकी वार्ता स्वीकार नहीं की और कहा कि ''जाओ, इसे भयक्रर वन में, कजली वनों में त्याग दो।''

अंजना को कजली वनों में त्यागने के पश्चात् सारथी रथ को अपने राष्ट्र में ले गया तो वह अंजना व्याकुल हो रही थी कि ''हे विधाता! यह आपने मेरे लिये क्या किया है? मैं पापिनी तो नहीं थी परन्तु मेरा कौन सा भोग मेरे समीप आया है, मेरे अन्त–करण में कोई और अपवित्रता नहीं, मैं सदैव अपने जीवन में शुद्ध और पवित्र रही हूँ। मेरा ब्रह्मचर्य भी नितांत रहा है और ब्रह्मचर्य की गति भी ऊर्ध्वा में रही है। प्रभु! यह क्या हुआ कि भयक्रर वनों में व्याकुल हो रही हूँ।'' व्याकुल होती हुई वह कन्दरा में विद्यमान हो गयी। शरद ऋतु का काल था, वायु चल रही थी और अंजना निद्रा में तल्लीन हो गयी। कुछ समय के पश्चात् कन्दरा में विद्यमान हो करके, 'अग्रतम' भयक्रर वनों में पुत्र का जन्म हुआ। अहा! हनुमान का जन्म कहाँ हुआ ? कजली वनों में हुआ, पर्वतों की मालाओं में हुआ ! अंजना व्याकुल हो रही थी ''हे बाल्य ! तेरा जन्म राष्ट्रगृह में होता तो न प्रतीत क्या–क्या दान इत्यादि किये जाते और ऊँचे–ऊँचे याग होते। हे बाल्य ! यह तेरा कैसा भाग्य है, तू कैसा दुर्भागी है? हे बाल्य! देखो, इन कजली वनों में मैं तुम्हें क्या पान करा सकती हूँ?''

इतने में ही अंजना के मामा, ब्रीहिवृणा अपने पुष्प विमान को लिये हुए पर्वतों की माला में भ्रमण कर रहे थे, उन्होंने उसी स्थल पर अपने विमान को स्थिर किया। विमान को स्थिर करके उन्होंने कहा कि ''यह मध्य रात्रि है, इन भयक्रर निर्जन वनों में कौन व्याकुल हो रहा है?'' उन्होंने कहा कि ''भगवन्! मैं अंजना हूँ।'' उन्होंने अंजना को भयक्रर कंदरा में से बाहर किया, अपने पुष्प विमान में लेकर कहा कि चलो ''देवी ! हे पुत्री! मैं तुम्हें अपने गृह लिये जा रहा हूँ।'' मामा उसे अपने गृह ले गये। पुष्प विमान में जो 'द्युति–लोक' थे, वे सूर्य के प्रकाश सा प्रकाश दे रहे थे। हनुमान ऐसा वज्र शरीर वाला था, उसने माता की लोरियों में से 'ब्रीहि' उछल करके लट्टू को अपने मुख में देना चाहा तो वह पर्वत पर उस पुष्प विमान से नीचे गिर गये। उसका मुखारबिन्दु कुछ अपनी स्थली से द्वितीय रूप में परिणित हो गया। अंजना ने कहा ''मामा! मेरा पुत्र तो समाप्त हो गया!'' परन्तु पुष्पक विमान नीचे किया तो बाल्य, जो केवल कुछ ही समय का था परन्तु वज्र शरीर वाला था, वह कुछ व्याकुल सा था, कुछ आनन्दमय था, उसे माता ने कण्ठ किया। कण्ठ में धारण करने के पश्चात् पुष्प विमान पर पुनः स्थिर हो करके वह 'नौतनपुरी' अपने राष्ट्र में आ गये और वहाँ उनकी पालना होने लगी।

कुछ समय के पश्चात् कुबेर को विजय करके महाराजा पवन भी अपने राष्ट्र में आ पहुँचे और माता से कहा ''हे माता! अंजना कहाँ है?'' उन्होंने कहा कि ''हे पुत्र! वह तो बड़ी कलंकिनी थी, हमने उसे गृह से दूरी कर दिया है। उसके पिता ने भी उसे स्वीकार नहीं किया, वह कजली वनों में जा पहुँची है।'' उन्होंने कहा कि ''हे मातेश्वरी! यह तो गृह में एक महापाप हुआ है।'' उन्होंने कहा कि ''पुत्र! मैं क्या करूँ, तुम मुझे सूचना दे करके नहीं गये, जब तुमने यहाँ से गमन किया था। हमने तो उसको अपराधी और कलंकिनी जान करके अपने गृह से दूरी कर दिया।'' पवन ने यह संकल्प कर लिया कि ''हे मां! यदि अंजना मुझे कहीं प्राप्त हो गयी, तब मैं गृह आऊँगा, अन्यथा मैं भी अपने प्राणों को कजली वनों में त्याग दूँगा!'' वह कजली वनों में जा पहुँचे और उसी दिवस अंजना अपने मामा से कह रही थी कि ''हे प्रभु! हे देव! मुझे मेरे गृह में पहुँचा दीजिये। मेरे पति के गृह में ही मैं सुशोभित होऊँगी, क्योंकि मेरे पति भी अब तक भयक्रर सङ्ग्राम से आ गये होंगे।'' उन्होंने कहा कि ''अच्छा, देवी!'' हनुमान और अंजना को लेकर श्वेतामगृह में आये तो उसे जब यह सूचना प्राप्त हुई कि पवन तो अंजना को प्राप्त करने के लिये कजली वनों में जा पहुँचे हैं तो उन्होंने कहा कि ''हे मातेश्वरी! कजली वन तो मेरा दृष्टिपात किया हुआ है।'' उन्होंने भी अपने पुत्र को लेकर कजली वनों को गमन कर दिया।

कजली वन में भ्रमण करते हुए उसी स्थल पर पवन जा पहुँचे, जहाँ हनुमान का जन्म हुआ था और वहाँ कहीं अंजना की एक अंगुष्ठिका, स्वर्ण की मुद्रिका, पवन को प्राप्त हो गयी। मुद्रिका प्राप्त करके उन्होंने कहा कि ''अंजना तो नष्ट हो गयी है।'' वे समिधा एकत्रित कर अग्न्याधान करके जब वह शवयात्रा में परिणित होने लगे, इतने में ही अंजना भी जा पहुँची। उन्होंने कहा कि ''देव! यह क्या कर रहे हो?'' उन्होंने कहा ''देवी! मैं कर क्या रहा हूँ? 'ब्रह्मवृत्ती देवी सनिकृतिः देवाः नित्यं ब्रह्म ब्रीहिब्रतोः' कि अपना जो स्नेही होता है, कोई प्राणी किसी के दाह में नष्ट हो जाता है, मैं तेरे दाह में नष्ट हो रहा हूँ।'' उन्होंने कहा कि ''देव! मैं तो जीवित हूँ।'' दोनों का मिलन हुआ, वे कजली वनों से अपने राष्ट्र में आये।

महापुरुषों का जो जन्म होता है, वह कैसी स्थलियों में होता है? यह विचारने का विषय रहता है। विचारना है कि तपस्विनियों के ही गर्भ से तपस्वी पुत्रों का जन्म होता है। यह तप ही मानव को ऊँचा बनाता है। आज कोई भी मानव ऊँचा बनना चाहता है तो उसे तपस्वी बनने की आवश्यकता है। मेरी माता जब तपस्विनी बन जाती है तो यह संसार और राष्ट्र ऊँचा बन जाता है। जब मानव तपस्वी बन जाता है तो लोक और परलोक ऊँचे बन जाते हैं। माता अंजना का मैंने तुम्हें कुछ संक्षिप्त परिचय दिया है, महाराजा हनुमान का कुछ सूक्ष्म परिचय दिया। विद्यालय में उनका अध्ययन करने का विषय था, सूर्य की विद्या को जानना, क्योंकि माता अंजला के गर्भस्थल में जब बाल्य था तो माता ने सूर्य की विद्या को जाना था। हनुमान जी ऋषि के द्वार प्रातःकालीन सूर्य की तपस्या करते रहते थे वे अपनी रसना के द्वारा प्रातः कालीन ऊषा और शान्ता दोनों किरणों को सींचते रहते थे। जब वे गान गाते थे, वेद का गान गाते थे, वेदों की ध्वनियों को जानते थे, वे ध्वनि से ओतप्रोत हो जाते थे, तो पक्षीगण भी तृप्त हो जाते थे। (26 अक्टूबर 1976, कृष्णनगर, दिल्ली)

शिशु हनुमान को माता की शिक्षा

अंजना के पुत्र जो हनुमान हुए, वे पवन–पुत्र कहलाते थे। महाराजा महेन्द्र के राजकुमार पवन कहलाते थे। जब वह बाल्यकाल में माता अन्जना के गर्भ में क्रीड़ा करता रहता था, तब वह विचारता रहता कि ''माता! यह सूर्य क्या पदार्थ है?'' यह सूर्य क्या है? तो माता उसे यह शिक्षा देती थी कि ''पुत्र ! यह जो सूर्य है, यह प्रकाशक है, यह प्रकाश देने वाला है। नाना प्रकार की किरणें आ करके हमारे को प्रकाशित करती रहती हैं।'' माता जब यह विचार देती रहती तो एक समय बाल्यकाल में इस बालक ने यह कहा कि ''माता! मेरा हृदय तो ऐसा कह रहा है कि सूर्य की आभा को मैं अपने में निगलना चाहता हूँ। अपने में धारण करना चाहता हूँ।'' उन्होंने कहा कि ''पुत्र! वह भी समय आयेगा।'' देखो, माता के स्थल में होने वाला बालक हनुमान वह सारी सूर्य विद्या का विशेषज्ञ बना, क्योंकि माता की अनुपम शिक्षा थी। सूर्य के विज्ञान को जानने वाला सूर्य की जितनी विद्या है, प्रकाश है, उसे वह स्वयं अपने में निगलता रहता था। (4–5–1976, अमृतसर)

गुरुकुल में सूर्य–विद्या की शिक्षा

राजा हनुमान और महाराजा सम्पाति दोनों का मिलान हुआ। एक समय दोनों का मिलन कहाँ हुआ? सोमकेतु, दद्दड़ गोत्र में उत्पन्न होने वाले एक ऋषि थे। वह सोम को अपने में धारण करते थे। सम्पाति उनके चरणों में विद्यमान हो करके सोम को पान कर रहे थे। हनुमान जी ने जब अपने विद्यालय को त्यागा, उनके विद्यालय के जो गुरु थे वह त्रीणकेतुक ऋषि महाराज, उन्हें बटुक ऋषि भी कहते थे। वह बटुक मुनि के द्वारा अध्ययन करते थे। उनकी अध्ययन करने की जो प्रक्रिया थी, वह जो विधान था वह दर्शनों की आभा का अध्ययन था। वेद के मौलिक रहस्य को विचारते थे कि प्रकाश कहाँ से आता है? यह प्रकाश जो धीमा–धीमा आ रहा है, यह जो प्रकाश मौलिक रूपों से आ रहा है, इस प्रकाश की अपनी आभाएं क्या हैं ? यह उनका विचार, विद्यार्थी काल में पठन–पाठन का उनका क्रम बना रहा और वह उसी में पारायण होते रहे।

हमारे ऋषि–मुनियों के यहाँ शिक्षालय थे, शिक्षालय में कई कक्ष होते थे। एक शिक्षा की स्थली है, जहाँ शिक्षा अध्ययन करते थे। उसके पश्चात् शिक्षा में जो उनको वस्तु प्राप्त होती, विषय होता उस विषय पर अनुसन्धानता लाते और वह उसे अनुसन्धानशाला में उसके ऊपर अनुसन्धान करते। उस अनुसन्धान में विज्ञान की तरंगें उत्पन्न होती, विज्ञान में धातुओं के मिलान में, परमाणुओं के सुगठित करने में लग जाते। एक परमाणु से दूसरे परमाणु का मिलान करना, अग्नि के परमाणुओं को सुगठित करके साकार रूप में लाते रहते थे। मेरे प्यारे! महाराजा हनुमान का एक ही विषय था कि सूर्य की किरणें आ रही हैं, इन किरणों से हम विद्युत को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? क्योंकि बाल्यकाल में माता के आंगन में जब क्रीड़ा करते रहते थे, उपनयन संस्कार से पूर्व, उस समय भी यह सूर्य की किरणों को निहारते रहते थे और माता से प्रश्न किया करते थे कि ''हे माता! यह सूर्य क्या है?'' तो माता उत्तर देती, ''पुत्र! सूर्य लोक है, जो द्यौ–लोक से सहायता लेता है। यह हमारा देवता है। चन्द्रमा भी देवता है। यह हमें देते हैं, प्रकाश देते हैं इसलिये यह हमारे देवता हैं। नाना प्रकार की किरणें आती हैं, यह हमें तपाती रहती हैं। हम उससे तपायमान रहते हैं।'' बालक मौन हो जाता। बालक हनुमान एक समय माता के आंगन में क्रीड़ा कर रहा था। माता से कहा ''हे मातेश्वरी! यह सूर्य देवता कैसे है?'' उन्होंने कहा ''हे पुत्र! यह जो सूर्य है, यह देवता इसलिये है कि यह नाना प्रकार की हमें किरणें देता है, तेज देता है, हमें तेजोमयी बनाता है। तेज देता हुआ हमें तेजस्वी बनाता है इसलिये यह देवता है। यह देता ही रहता है।'' उन्होंने माता से कहा ''हे माता! यह देता क्यों है?'' उन्होंने कहा ''पुत्र! यह इसलिये देता है कि मानो अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। यह प्रभु की व्यवस्था में कटिबद्ध है और यह प्रकाश ही प्रकाश देता है। तेजोमयी बनाता है। वनस्पतियों को, प्राणी–मात्र को यह पृथ्वियों को तपाने से पृथ्वी का पिता है।''

जब माता ने यह उपदेश अपने बालक को दिया तो बालक मौन हो गया।विद्यालय में उस ब्रह्मचारी का यही विषय रहा और विषय की आभा एक वित्रित्र बनी रही। बटुक मुनि महाराज भी उनसे आश्चर्य चकित हो जाते थे और कहते कि ''हे ब्रह्मचारी! तुम यह अध्ययन क्यों कर रहे हो? मैं इसकी प्रक्रिया को नहीं जान पा रहा हूँ कि तुम्हारा यह अध्ययन का विषय क्यों बना है ? तुम आध्यात्मिकवाद को नहीं ले रहे हो। तुम सूर्य–विज्ञान को लेना चाहते हो। चन्द्र–विज्ञान को ले रहे हो। पृथ्वी–विज्ञान को ले रहे हो। मैं नहीं जान पाता, तुम्हारा यह विषय क्यों बना?'' उस बाल ब्रह्मचारी ने कहा ''हे ऋषिवर! हे पूज्यपाद! मैं इसलिये इस विषय में चला हूँ क्योंकि माता मुझे यह बाल्यकाल में शिक्षा देती रही है। मानो सूर्य के प्रकाश की आभा मुझे प्रकट कराती रही है। मेरा जो हृदय है वह इससे प्रकाशित हो गया है। हृदय से प्रेरणा उत्पन्न हो रही है। **क्योंकि संसार में जितने भी अविष्कार होते हैं, जितने चमत्कार होते हैं, जितने योगेश्वर बनते हैं, सब मानव को हृदय से प्रेरणा प्राप्त होती रहती है। हृदय इसका केन्द्र माना गया है।** एक मानव विज्ञान में जाना चाहता है, उसके हृदय से विज्ञान की तरंगों का जन्म हो जायेगा। एक मानव सूर्य में जाना चाहता है, तो उसका हृदय केन्द्र बनाता है और उसके आधार पर वह यन्त्रों का निर्माण करने लगता है। इसी प्रकार मैंने भी अपने इस विषय को बनाया है। मैं आचार्य के चरणों में, भगवन्! इसलिये आया हूँ कि मेरा हृदय इससे प्रकाशित हो जायेगा।'' मेरे प्यारे! बटुक मुनि महाराज आश्चर्य चकित हो गये कुशल बुद्धि को दृष्टिपात करके उन्होंने कहा ''धन्य है, ब्रह्मचारी!''

उनके समीप रहने वाले स्वाति ब्रह्मचारी और हनुमान दोनों का परस्पर विचार–विनिमय होता रहा। वह सूर्य सिद्धान्त के ऊपर, सूर्य की किरणों के साथ अपनी गति को बनाना चाहते थे। ऐसे भी वैज्ञानिक बने हुए हैं जो कि सूर्य की किरणों के साथ अपने शरीर को ऊर्ध्वा में बनाने का प्रयास करते हैं। सूर्य की किरणों से परमाणु ले करके यन्त्रों का निर्माण किया, जो सूर्य की किरणों से, उसी के प्रकाश से अन्तरिक्ष में गति करता रहा है। मेरे पुत्रो! तुम्हें स्मरण होगा, जब हनुमान लंका में माता सीता के लिये पहुँचे तो सम्पाति उन्हें समुद्र के तट पर प्राप्त हुआ था। और सम्पाति ने कहा कि ''हनुमान ! क्या तुम उस विद्या को अपने से ओझल कर गये हो?'' तो सम्पाति ने उन्हें शिक्षा 'अभ्यस्त' का स्मरण कराया तो वह ऊर्ध्वा सूर्य की किरणों के आश्रित हो करके विज्ञान की तरंगों के कटिबद्ध हो करके समुद्र को लांघ दिया था। परिणाम क्या? मुनिवरो! वह यन्त्रों की विद्याओं को जानते थे। विचार क्या? सूर्य–विज्ञान ऐसा विज्ञान है, सूर्य की किरणों से विद्युत को जानने वाले वैज्ञानिक अपने को सूर्य–मण्डल तक ले जाते थे। महाराजा हनुमान और सम्पाति दोनों वैज्ञानिक सूर्य किरणों से विज्ञान का गठन करते रहते थे।(18 अक्टूबर 1982, मोदीनगर)

महाराजा हनुमान ने अपने विद्यालयों की विज्ञानशाला में एक–एक सूर्य की किरण को ले करके उसकी विद्युत को यन्त्रों में प्रवेश कराके, उन यन्त्रों को गति कराते थे। (18 मार्च 1983, बरनावा)

'सूर्यकेतु' 'नामक' एक पोथी का निर्माण महाराजा हनुमान ने किया था। सूर्य विद्या के ऊपर नाना रूपों में उन्होंने उस पोथी का निर्माण किया था। आधुनिक जगत् में महाभारत काल के पश्चात् जैनकाल में वह अग्नि के मुखारविन्द में परिणित कर दी गयी थी। (9 मार्च 1979, बरनावा)

हनुमान और गणेश का अनुसन्धान

महाराजा हनुमान और गणेश जी दोनों एक साथ विज्ञान में रत्त रहते थे कि हम वैज्ञानिक यन्त्रों का निर्माण करें। ऐसे–ऐसे यन्त्रों का निर्माण करते रहते थे, जिन यन्त्रों में विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष में पृथ्वी की और चन्द्रमा की जहाँ आकर्षण सीमा प्रारम्भ हो जाती है, वहाँ अपने यन्त्रों की यन्त्रशाला बनाते और वहीं एक निर्माण प्रही आभा में यन्त्र को स्थिर कर देते थे। उस पर विद्यमान हो करके वह यन्त्रों का निर्माण करके दूसरे लोकों में खोज के लिये विज्ञान में रत्त हो जाते थे।

सूर्य की यात्रा करने वाला जो प्राणी होता है, वह सूर्य की परिक्रमा करता रहता है। सूर्य की किरण से उनका यन्त्र गति करने वाला होता है। यह विज्ञान हनुमान के जीवन से हमें प्राप्त होता है। 'विज्ञानां भविते देवाम्,' ऐसे–ऐसे यन्त्र थे कि समुद्रों पर वह गति कर रहे हैं, परन्तु समुद्रों में प्रवेश नहीं हो रहे हैं। ऐसे यन्त्र जिसमें विद्यमान हो करके अग्नि प्रदीप्त करके यन्त्र से रावण की लंका को विध्वंस कर सकते थे। वह सब यन्त्र उनकी आभा में नियुक्त रहते थे। (2 मार्च 1985, लाक्षागृह, बरनावा)

एक समय महाराजा हनुमान और गणेश भ्रमण करते हुए श्वेतान ऋषि के द्वार पर पहुँचे, महाराजा हनुमान और गणेश जी दोनों जब ऋषि के द्वार पर पहुँचे तो ऋषि से उन्होंने यही कहा कि "महाराज! हम वैज्ञानिक बनना चाहते हैं। हम सूर्य–विद्या के ऊपर अपना अनुसंधान करना चाहते हैं।" महाराजा गणेश जी ने और हनुमान जी ने 'पादुका' नामक यन्त्र का निर्माण किया था। उस पादुका यन्त्र कि विशेषता थी कि प्राण–शक्ति का उनमें उन्होंने सृजन किया। 'पादुका' पर विराजमान हो करके इस पृथ्वी से उड़ान उड़ने लगे और पृथ्वी से उड़ते हुए वे मंगल में गये तो मंगल के वैज्ञानिकों ने यंत्र को कटिबद्ध करना चाहा। उस समय मंगल मंडल में स्वेताम् वृहीणिक नाम के एक वैज्ञानिक रहते थे। उन्होंने उस यन्त्र को अपने राष्ट्र मंडल में रखने के लिये प्रतीति की और अपने यन्त्रों के एक रूपांतर द्वारा उसके ऊपर आक्रमण किया तो हनुमान और गणेश जी दोनों उस यन्त्र को ले करके अन्तर्ध्यान हो गये और यन्त्र को ले करके वे पृथ्वी पर आ गये।

एक समय महाराजा हनुमान और शिव पुत्र गणेश हिमालय कन्दराओं में एक स्थली पर विद्यमान थे। दोनों का विचार–विनियम चल रहा था कि "यह सूर्य क्या है ? यह प्रकाश देता ही रहता है।" तो वह अनुसन्धान–शालाओं में विद्यमान हो करके यह विचारने लगे कि कितने लोकों को यह सूर्य प्रकाश देता है। विचार–विनिमय करने वाले हनुमान और गणेश दोनों ने विचारा। मनन और चिन्तन करने से उन्हें यह प्रतीत हुआ, वैज्ञानिक यन्त्रों से उन्हें यह प्रतीत हुआ कि मंगल और चन्द्रमा, बुध और इससे सम्बन्धित जो लोक हैं, उन सबको प्रकाश देने वाला सूर्य ही कहलाता है। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ। उन्होंने सूर्य–विद्या पर अनुसन्धान किया। सूर्य क्या–क्या करता है?(18 सितम्बर 1981, धनौरा)

मेरे पुत्र महानन्द जी ने स्मरण कराया है कि आधुनिक काल मे भी ऐसे वैज्ञानिक यन्त्रो का निर्माण हो गया है, जो यन्त्र इस पृथ्वी मण्डल पर आते है , समुद्र के तटो पर वह यन्त्र प्राप्त होते रहते है । परन्तु मैं आज आधुनिक काल के विज्ञान को तो इतना परिश्रमी नही जान पाता परन्तु वह यन्त्र जब पृथ्वी पर आ गया तो निर्माण हो गया होगा, एक समय बेटा ! दोनो वैज्ञानिक अपनी आभा मे रमण कर रहे थे, उस समय माता पार्वती और शिव दोनो कहीं से भ्रमण करते हुए उनके द्वार पर आ गये , उनकी विज्ञानशाला मे आ गये । उन्होने कहा–" हे बाल्यो ! तुम क्या कर रहे हो?"उन्होने कहा हे मातेश्वरी ! हे पितृजन ! हम यन्त्रो का निर्माण कर रहे है । आज हमको एक ऐसा यन्त्र निर्माणीत करना है , जिन यन्त्रो मे मानव के जीवन को वायुमण्डल से सहायता प्राप्त होती रहे और उस मानव को शत्रु विजय न कर सके।" उन्होने ऐसे यन्त्र का भी निर्माण किया जिस यन्त्र मे मानव को सहायता प्राप्त होती थी । संग्राम कर रहा है, परन्तु यन्त्र सहायता दे रहा है , दूसरा मानव शत्रु से विजय नही हो रहा है तो इस प्रकार के यन्त्रो का भी उन्होने प्रायः निर्माण किया। एक यन्त्र ऐसा निर्माण किया उन्होने जिस यन्त्र मे विद्यमान हो करके समुद्र के निचले स्थल को माप करके वह तट पर आ जाते थे। पार्वती ओर शिव की सहायता से उन्होने एक ऐसे यन्त्र का निर्माण किया जिस यन्त्र को धीमे–धीमे अन्तरिक्ष मे ले गये और जहाँ इस पृथ्वी की आकर्षण शक्ति समाप्त होती है और चन्द्रमा की आकर्षण–शक्ति का मिलान होता है , उस यन्त्र को वहाँ स्थिर कर दिया और उस यन्त्र मे विद्यमान हो करके बहतर मण्डलो का भ्रमण किया करते थे। आज मै क्या वर्णन कर सकता हूँ। उन महापुरूषो का जिन्होने अपने जीवन के ऊपर बहुत अनुसन्धान किया और वैज्ञानिक तथ्यो को जानने का उन्होने प्रयास किया। मैने तुम्हे कई काल मे वर्णन करते हुए कहा कि हनुमान जी की मृत्यु नही हो सकती थी। हनुमान जी के शरीर की आभा इतनी विचित्र बनी रहती थी ! और, महाराजा गणेश जी ने एक चुंगेत नाम के यन्त्र का निर्माण किया था और चुंगेत नाम का जो यन्त्र था, उसमे वह विद्यमान हो करके इस पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए, मंगल की परिक्रमा करते हुए सूर्य की किरणो के साथ मे प्रवेश कर जाते थे ।

हमारे यहाँ, वैदिक सम्पदा मे , वैदिक विज्ञानशाला मे नाना प्रकार के यन्त्रो का निर्माण होता रहा है और उसमे ज्ञान और विज्ञान प्रायः ओत–प्रोत रहते है । एक समण, दोनो वैज्ञानिक , सम्भानु ऋषि महाराज के द्वार पर पंहुचे । सम्भानु ऋषि महाराज ने कहा "आओ महावृति" ! दोनो आश्रम मे विद्यमान हो गये । ऋषि ने कहा–मैने श्रवण किया हे कि तुमने यन्त्रो निर्माण किया है । तुम ये कया कर रहे हो ? इससे संसार का विनाश होता है । उन्होने कहा–विज्ञान से विनाश नही होता । विज्ञान तो मानव की सम्पदा है । ऋषि ने कहा–अस्त्रो–शस्त्रो से तुम विनाश को प्राप्त हो जाओगे। उन्होने कहा –हम विज्ञान को नष्ट नही होने देंगे; न इससे हमारा विनाश होगा। हम प्रातःकाल याग करते है और याग के द्वारा , गोघृत के द्वारा हम गो–वधृन याग करते है , उससे वायुमण्डल पवित्र बनता है ।

मै महाराजा हनुमान और गणेश की चर्चा कर रहा था । गणेश का और लक्ष्मी दोनो का सन्म्बन्ध रहता है । जहाँ गणेश रहते है, वहीं लक्ष्मी रहती है । गणेश जी का अभिप्रायः जहाँ महाराजा शिव के पुत्र का नाम गणेश था वहाँ गणपति भी जो गुणो का स्वामी है , गुणो का स्वामी कौन है ? हमारे यहाँ गण नाम प्राण को कहा गया है और जो प्राणो का स्वामी है , मानो प्राणेश्वर है, वह गणपति कहलाता है और जहाँ गणपति रहता है मानव के शरीरो मे, वहाँ लक्ष्मी भी वास करती है । श्री हमारे यहाँ सरस्वती को कहते है, ज्ञान को कहते है , विज्ञान को कहते है। भिन्न–भिन्न प्रकार के इसके स्वरुप माने गये है और जिन गृहो मे लक्ष्मी का पूजन होता है, वे गृह पवित्र बनते है । (२९ सितम्बर १९८१ , धनौरा)

हनुमान जी की दिनचर्या

जब मै हनुमान जी के जीवन के ऊपर प्रकाश लेता हूँ। तो आश्चर्य सकित हो जाता हूँ। एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह आज्ञा दी कि हनुमान जी की विज्ञानशाााला को दृष्टिपात करो। हनुमान इतनी गम्भीर मुद्रा मे रहते थे कि उस मुद्रा का मै वर्णन नही कर कसता हूँ। जैसे ऋषि–मुनियो और महापुरुषो का जीवन पवित्र होता है । एक समय जब मैने रात्रि मे उनके यहाँ विश्राम किया, उनकी दिनचर्या दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ , वह मध्य रात्रि के द्विती प्रहर मे अपने को जागरूक करते और वह बहुत सूक्ष्म निद्रा मे रहते थे। श्वान निद्रा मे अपने को परिणत करते रहे। उसके पश्चात जब मुझे उनका जीवन स्मरण आता है , वह प्रातः कालीन अपनी सारी क्रियाओ से निवृत हो करके प्रभु का चिन्तन और दर्शनो के ऊपर अध्ययन किया करते और अध्ययन करते हुए उसके पश्चात वह संसार के कार्यो मे रत्त रहते । नाना प्रकार के यन्त्रो को ला करके सूर्य की किरणो से उनका मिलान करते थे । सूर्य की किरणो से वह विद्युत लेते थे। उस विद्युत से उनके यहाँ यन्त्र गति करते थे। वह यन्त्र अपनी आभा मे गति करता रहा है , सूर्य की किरण के साथ उसका समन्वय रहता था। परन्तु वर्तमान का जो काल चल रहा है ऐसे महापुरूषो को ऐसे गम्भीर मुद्रा वाले हनुमान का वानर की संज्ञा दे करके उनके वास्तविक तथ्य को नष्ट किया जा रहा है । (१९ अक्तूबर १९८२ , मोदी नगर महानन्द जी)

सूर्य का समुद्रो से सम्बन्ध

शम्भुक ऋषि महाराज और महाराज हनुमान एक समय समुद्र के तट पर विद्यमान हो करके चिन्तन और मनन कर रहे थे, अनुसन्धान कर रहे थे कि यह जो सूर्य है , यह कितने प्रकार का है ? समुद्रो से इन सूर्यो का क्या सन्म्बन्ध रहता है ? इसका कया समन्वय है ? यह जो समुद्रों मे नाना प्रकार की धाराए जाती है , आदित्य बन करके सूर्य इसे तपाता है , जैसे ब्रह्मचारी आदित्य बन करके ब्रह्मचर्य को तपाता रहता है ,उसकी ऊर्ध्व गति बनती है ,

इसी प्रकार सूर्य को आदित्य कहा जाता है । यह आदित्य जब समुद्र को तपाता है , इसमे बड़नावल नाम की किरण को ओत–प्रोत करा देता है । जब समुद्र मे भरण हो जाता है तो समुद्रो से कहीं जल प्लावन नही आता ,मेघों की उत्पति हो जाती है । जब मेघों की उत्पति हुई , इन दोनो का संघर्ष हुआ तो विद्युत का जन्म हो गया, जब विद्यत का जन्म हो गया तो प्राण विद्युत ओत–प्रोत हो करके मेघ–मण्डलो से पृथ्वी पर वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। वृष्टि का चयन होने लगता है उसी से नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है ।

जब दोनो यह चिनतन कर रहक थे कि सूर्य तो एक ही दृष्टिपात आता हे और वास्तव मे सूर्य अनन्त है । तो उन्होने समुद्र के तट पर एक अपनी विज्ञानशाला का निर्माण किया और विज्ञानशाला मे विद्यमान हो करके एक यन्त्र का निर्माण किया जिस यन्त्र का नाम , ''पादुका हिरणी वाचक'' यन्त्र था। महाराजा हनुमान यन्त्रो पर अन्वेषण करते हुए समुद्र को दूर (पार) कर जाते थे। जल के ऊपर ऐसे गति करना जैसे पृथ्वी पर मानव गति कर रहा हो! सूर्य विद्या को लेकर इसी प्रकार वह समुद्र की प्रतिभा मे रत्त होने लगे। (०५ मार्च १९८४ ,बरनावा)

महाराजा हनुमान, श्रेष्ठानन्द और भी ब्रह्मचारी समुद्र तट पर विज्ञानशाला मे अनुसंधान करते रहते थे,अन्वेषण करते रहते थे, परमाणुओ को आदान–प्रदान करते रहते थे,यन्त्र निर्माण करते रहते थे, सूर्य की किरणो के साथ उनका यन्त्र गति करके, शत्रु का विनाश करके वह यन्त्र उनके आंगन मे प्रवेश कर जाता था। इस प्रकार सूर्य की किरणो के साथ इनका यन्त्र गति करता रहता था। (०७ मार्च १९८४ , लाक्षा गृह बरनावा)

हनुमान जी के जीवन मे एक न एक प्रभु की अनुभूति होती रहती थी, वह सूर्य सिद्धान्त,सूर्य–विद्या के ऊपर अपनी लेखनियाँ बद्ध करते रहते थे। परन्तु उनकी लेखनियाँ अब अप्राप्य है । एक समय ब्रह्मचारी कवन्धि और जवाकेतु उनके द्वार पर पंहुचे तो उन्होने उनका स्वागत किया और स्वागत करने के पश्चात–भगवन आप क्या पान करना चाहते है ब्रह्मचारी कवन्धि ने कहा हे प्रभु ! हम वह वस्तु पान करना चाहते है जो वस्तु हमे जीवन प्रदान करती है , अर्थात हमें सूर्य–विज्ञान को लेना है। हम उसका मनन चाहते है और उसको जानना चाहते है कि आपने उसमे क्या–क्या जाना है । हनुमान जी ने जब यह वाक्य ब्रह्मचारी कवन्धी से श्रवण किया तो उन्होने कहा–मैने अब ते सूर्य विज्ञान को केवल इतना ही जाना है कि मैने उससे एक यन्त्र निर्धारित किया है । इस यन्त्र मे विद्यमान हो करके मैं सूर्य की किरणो के साथ दूर तक गमन करता रहता हूँ। ब्रह्मचारी कवन्धि ने कहा–यह आपने कौन सा याग करने के पश्चात उस विज्ञान को जाना है ? उन्होने कहा मैने इस विज्ञान को अपनी आभा से और एक याग है जिसको अग्निष्टोम याग कहते है , उससे जाना है । उसको यज्ञमान करता है और यज्ञमान के हृदय मे जो अग्नि प्रदीप्त होती है उस अग्नि की तरंगो को मैने जाना है । (१५ अगस्त १९८१ , लाक्षा गृह बरनावा)

हमारे प्राणो की गति चलती है ,छिद्रो से एक सूर्य–स्वर कहलाता है , दूसरा चन्द्र स्वर कहलाता है , इन स्वरो को जानना है । चन्द्र–स्वरो के जानने से रसो का ज्ञान हो जाता है । सूर्य–स्वर के जानने , से यह जो तेजोमयी जगत है , इसका सर्वत्र ज्ञान हो जाता है । सूर्य–स्वर को जानने वाले महाराजा हनुमान थे। सूर्य की जो नाना किरणें है , इन किरणो के ऊपर अनुसन्धान करते हुए , वह वैज्ञाननिकता को प्राप्त होते रहे है। सूर्य–विज्ञान को जानने वाला , सूर्य–विज्ञान के ऊपर प्राणायाम करने वाला, सूर्य की किरणो के साथ मे सूर्य–लोक मे पंहुच जाता है । चन्द्रमा के चन्द्र स्वरो को जानने वाला , चन्द्रमा की सर्वत्र कलाओ को जानने लगता है । चन्द्रमा की जो नाना प्रकार कलाएं है , वे उनकी कान्ति मे छिटकती रहती है । वह जो चन्द्रमा है , वह रसो का भण्डार है । उससे नाना प्रकार के रस आते रहते है भगवान राम भी इन चन्द्र स्वरो को जानते थे । चन्द्र कलाओ को जानते थे। वह पृथ्वी के विज्ञान को ,पृथ्वी की आभा को जानते रहते थे। कितना खनिज, कितनी दूरी पर विद्यमान है ? कितना रस बह रहा है ? इस रस मे कितनी गति है ? यह सब चन्द्रमा की कला को जानने से प्राप्त होता है । (०१ अक्तूबर १९८१ , ग्राम नांगोला)

सूर्य किरण चिकित्सा

हनुमान जी सूर्य विज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित थे । एक समय भगवान राम ने उनसे कहा–हे हनुमन्त! प्रभे कृतं ब्रह्मः! मेरी यह अभिलाषा है कि तम आज सूर्य विज्ञान की वार्ता प्रकट करो । मै यह जानना चाहता हूँ कि संसार मे सूर्य–किरणो से रोगो का विनाश कैसे होता है ? हनुमान जी ने कहा कि–महाराज ! सूर्य की सात प्रकार की मुख्य किरणे होती है । वास्तव मे तो सहस्त्रो प्रकार की होती है , परन्तु यहाँ ऐसा माना गया है कि जैसे वायु है , पृथ्वी है , अग्नि है , अन्तरिक्ष है , इस प्रकार की जो यह पंच महाभौतिकी है , इन्ही के अनुरूप जैसा जिसका रंग होता है , श्वेत,हरित,ललित,जैसा अनका रंग रूप होता है उसी प्राकर की सूर्य मे किरण होती है । मानव के शरीर मे केवल पाँच महाभूत कार्य कर रहे है–जल, अग्नि,वायु,अन्तरिक्ष ओर पृथ्वी । मानव के द्वारा पृथ्वी मा तत्व जब सूक्ष्म हो जाता है जब मानव रूग्ण होता है उसकी रूग्णता मे प्रहवृ गच्छतप्रवे अकृतानम मानो पृथ्वी का प्रवाह सूक्ष्म की जाता है। अग्निका प्रवाह सूक्ष्म हो जाता है या वायु का प्रवाह सूक्ष्म हो जाता है तो जो तत्व मानव के शरीर मे सूक्ष्म हो जाता है , उसी प्रकार की किरण को लाया जाता हे । वही किरण उस मानव मे प्रभावी हो जाती है और उस मानव को रोग शान्त हो जाता है । उसी किरण के आधार से उसका निदान किया जाता है उसी प्रकार का यन्त्र बनाया जाता है जैसे स्वर्ण मे अग्नि की प्रधानता मानी गयी है । स्वर्ण जैसी धातु का प्रतीक बनाया जाता है । उसका एक अक्रात यन्त्र बनाया जाता है सूर्य की किरणो जब उसमे ,उसका प्रवाह होता है तो मानव के अंग को भी शुद्ध बनाता चला जाता है सूर्य वैज्ञानिका ने सूर्य–अस्त्र नाम के यन्त्रो का निर्माण किया, जिससे मानव अग्नि के प्रभाव को अपने मे धारण कर सकते है । जो मानव सूर्य की किरणो के विज्ञान को जानता है , वह ऐसे यन्त्रो को बना देता है , जब सूर्य की किरण के साथ वह मानव यन्त्र मे रमण कर सूर्य की कक्षा मे चले जाते है । (०१ अगसत १९७० , महानन्द जी जोर बाग)

हनुमान जी की प्राण विद्या

एक समय हनुमान जी ने अपने शरीर के प्राणो का अध्ययन करना आरम्भ किया तो वह काकभुषुण्ड जी के द्वार पर पंहुचे और कहा कि–महाराज ! मुझे शिक्षा दीजीये। काक भुषुण्ड जी इस विद्या को जानते थे, वह अन्तरिक्ष मे उड़ान उड़ना भी जानते थे। पृथ्वी मे , समुद्र के आंगन मे भी अपनी गति को जानते थे। काकभुषुण्ड जी कितने वैज्ञाननिक थे! कितने यागेश्वर थे! मुझे जब उनका जीवन स्मरण आता है तो हृदय गद गद हो जाता है । मैं यह कहा करता हूँ कि काकभुषुण्ड जी जैसा बनना चाहिये, जो अन्तरिक्ष मे गति करने वाला हो, उदान प्राण और नाग प्राण दोनो का मिलान करता हुआ कृकल ,देवदत और उदान प्राण को मिलान करके अपने शरीर की अन्तरिक्ष मे उड़ान उड़ने वालो हो । वही क्रिया हनुमान जी ने ऋषि के द्वार पर प्राप्त की।

उस विद्या को पान करने वाले हुमान जी अपने शरीर को ऊर्ध्वा मे भी बना लेते और **आकुञ्चन** कर लेते थे। जैसे एक योगी सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने अन्तरात्मा मे दृष्टिपात करने लगता है , अपने मे मन और प्राण को धारण करके संसार मे मन और प्राण की रचना दृष्टिपात करता है , इसी प्रकार एक योगी , एक साधक , अपने शरीर को इतना सूक्ष्म बना लेता है ,अपनी अस्थियो को प्राण को अर्पित करके , मन को अर्पित करके , अपने शरीर को **आकुञ्चन** बना करके सुरसा जैसे मुखारबिन्दु मे परिणीत हो जाना ओर उससे बाहर आ जाना यह सब प्राणो की ही विशेषता हे । यह **आकुञ्चन** क्रिया है, जिसको जान करके मानव को आश्चर्य होता है ओर उसका अध्ययन न होने के कारण मानव नाना प्रकार की टिप्पणीयाँ कर सकता है । (०४ मई १९७६ , अमृतसर)

हनुमान द्वारा सूर्य को मुख मे लेना

मेरे प्यारे महानन्द जी ने ऐसा कहा कि महाराजा हनुमान जी ने सूर्य को अपने मुख मे अर्पण कर लिया था। हा! यह हमारा गौरव है , हम गौरव के सहित कह रहे है कि महान योगी ने सूर्य को अपने मुख मे लिया था। परन्तु कैसे अर्पण कर लिया? यह मानव को जान लेना चाहिये । उस महान योगी ने महान,महान ब्रह्मचारी ने महान तार्किक ने महाराजा राम के मन्त्री ने सूर्य के महान विज्ञान को जाना। उसके एक–एक कण के महत्व को जाना ओर वह विज्ञान उसके कण्ठ था। इसिलिये यह वाक्य अवश्य मानने वाला हो जाता हे कि उन्होने सूर्य को नहीं , सूर्य के महान गुणो को,उसके महान विज्ञान को अपने मुखारविन्द मे अर्पण कर लिया था। सूर्य निगला नहीं जाता है , उसकी विद्या को निगल लिया करते है।

एक समय महर्षि लोमश और महर्षि काकभुषुण्ड जी महाराज और महाराजा जामवन्त , और महाराजा हनुमान एक स्थली पर विद्यमान थे। हनुमान जी बोले कि–प्रभु !मै सूर्य विद्या को निगलना चाहता हूँ कैसे निगलूँ? काकभुषुण्ड जी ने कहा कि–"तुम विज्ञान के माध्यम से निगलना चाहते हो या योग अभ्यास के द्वारा , प्राणो के द्वारा निगलना चाहते हो? महाराजा हनुमान ने कहा–कि मै दोनो प्रकार से उसके निगलने की प्रक्रिया को जानना चाहता हूँ। महर्षि काकभुषुण्ड जी ने महर्षि लोमश मुनि से कहा कि–महाराज! इसका उत्तर दो। यह युवा बाल्य क्या कर रहा है ? उन्होने कहा–प्रिय , वाक्य तो यथार्थ है । परन्तु उत्तर आप दीजीये। महर्षि–काक भुषुण्ड जी ने कहा कि–बाह्य जगत मे जो सूर्य है, यह अग्नि बन करके रहता है , यह उदयी बन करके रहता है , यह भास्कर बन करके रहता है । सूर्य के नाना पर्यायवाची शब्द हमारे वैदिक साहित्य मे आते है । परन्तु भास्कर इसीलिए कहते है , वह भासता रहता है सदैव प्रकाश देता है उदयी इसीलिये कहते है क्योंकि यह उदय होता है , प्रकाश को लेकर के उदय होता है इसिलिये उदयी कहते है । सूर्य को आदित्य कहते है , क्योंकि अदिति बन करके यह ग्रहो की धारा को लेकर इस रात्रि का अपने मे निगल जाता है ˙ सूर्य वामन रूप धारण करके उस रात्रि को अपने गर्भ मे धारण कर लेता हे । तो यह सूर्य है , इसको तुम निगलना चाहते हो तो तुम सूर्य की किरणो के माध्यम से यन्त्रो का निर्माण करो। महर्षि काकभुषुण्ड जी बोले कि–मेरे विचार मे तो हनुमान तुम इस विद्या को निगलना चाहते हो तो इसके ऊपर तुम्हें अनुसन्धान करना होगा।

अनुसन्धान द्वारा महाराज हनुमान ने पादुका यन्त्र का निर्माण किया था, जो सूर्य के सथ सूर्यमण्डल की यात्रा करता था हनुमान सूर्य–विद्या के महापण्डित थे। "विद्यां ग्रहि अस्तादेवस्य सूर्यः" यह सूर्य कितना विज्ञानमय है ! सूर्य की किरणो का रहस्य क्या है ˙? किस प्रकार स्वर्ण व अन्य धातुओ का निर्माण होता है ? धातु का योग कैसे बनता है ? कैसे शुष्क होता है ? ता`इस सर्व विद्या को पवन पुत्र हनुमान जानते थे। (२६ अक्तुबर १९७६ ,कृष्णा नगर दिल्ली)

गान विद्या

मुझे वह काल स्मरण आता है , जब हनुमान भयंकर वनो मे गान गाते थे , साम गान गाते थे, सूर्य की विद्या का उसमे पुट लगा हुआ रहता थे। जब वह गान गाते थे, भयंकर अन्धकार मे प्रकाश हो जाता था, वे प्रकाश को जानते थे। वे इस विद्या मे परिणत रहते थे। अपनी वाणी के द्वारा मन्त्रो से वृष्टि भी करते थे, अपनी वाणी के द्वारा वे प्रकाश भी कर इदेते थे , कयोंकि वे सूर्य की विद्या को जानते थे। सूर्य की विद्या को जो क्रियात्मक जानता है , वही दोनो प्रकार की आभाओ को जानता है । हनुमान जी का जीवन मुझे स्मरण आता रहता हे । जब मै महापुरूषो की वार्ता को ले करके अपना नृत्य करना प्रारम्भ करता हूँ। तो हृदय गद्‌गद् हो जाता है मै यह कहा करता हूँ कि महाराजा हनुमान जी जैसे संसार मे प्रतयेक बाल्य होने चाहिये कि जिससे यह संसार महान और पवित्र बन जाये। ऋषि के द्वार जब एक समय वे गान गा रहे थे तो ऋषि कहते है कि –हनुमान! है ब्रह्मचारी! हमारे आश्रम प्रकाश होना चाहिये । सूर्य–विद्या के ऊपर कुछ मन्त्र वेद मे आते है , सूर्य मन्त्र ही उनका नामोकरण होता है वे तल्लीन हो करके गान गाने लगे। गान गाते हुए, उस राग से उनके आश्रम मे प्रकाश हो गया। जब प्रकाश हो गया तो गुरु जी कहते है –धन्य है ! हे बाल्य ! यह विद्या तुमने कहाँ से पाई है ? उन्होने कहा कि–यह विद्या मेरी माता के मामा मेरे महामामा इस विद्या को जानते है । यह विद्या मैने बाल्यकाल मे उनमे प्राप्त की है । हमारे राजपुरोहित भी इस विद्या को जानते है । इस विद्या को मेरी माता भी जानती है । मैने माता के द्वारा भी यह विद्या प्राप्त की है ।

दीप–मालिका

आज हम नाना प्रकार की विद्याओ मे परिणत होना चाहते है , क्योंकि वेद के एक एक मन्त्र को ले करके मानव जब गान गाता है तो मानव कृतार्थ हो जाता है , धन्य हो जाता हे ˙ वे दीपमालिका राग को जानते थे, मुझे वह काल स्मरण आता है । दीपमालिका तो परम्परा से ऋषि–मुनियो के मस्तिष्क मे रही है। जब लंका को विजय करके अयोध्या मे राम पंहुचे थे, तो उस समय हनुमान जी ने राम के समीप यह गान गाया था। जब दीपक गान गाने लगे तो अयोध्या मे दीपक ही दीपक प्रकाशित हो गये, तो महाराज भरत को यह प्रतीत हो गया कि राम अयोध्या मे लंका को विजय करके आ गये है । क्योंकि हनुमान जी का यह गान है ओर गान के द्वारा दीपमालिका का प्रकाश होता है । इस विद्या को आदि ब्रह्मा भी जानते थे । इस विद्या को उनके पुत्र अथर्वा भी जानते थे। जब अथर्वा इस विद्या का गान गाते थे तो दीपमलिका प्रकाशित हो जाती थी।

दीपमलिका का प्रकाश कया है

दीपमालिका हे कि मानव की वाणी दीपको का प्रकाश हो जाना , उसको दीपमालिका कहते है । देव गृह मे याग होने को दीपमालिका कहते है । उस अनुपम विद्या का पुनः से अध्ययन करना चाहियें इस विद्या के द्वारा मानव कृतार्थ होता हे , मानव अपने मे यह स्वीकार करता है कि वास्तव मे यह विद्या मेरे द्वारा होनी चाहिये, इस विद्या से मेरा मानवीय जीवन ऊँचा बनेगा । देखो , यह विद्या बिना तप के नही आती । हनुमान जी ने बारह वर्ष एक एकांत निर्जला उपवास करके , अन्न को त्याग करके इस विद्या का अध्ययन किया था । वे सूर्य विद्या मे नाना प्रकार के अणुओ और महाअणुओ को जानते रहते थे। मुखारबिन्द मे इसको अर्पित करना, दीपमालिका का प्रकाश होना, यह हनुमान जी के द्वारा एक अनुपम विद्या थी। इस विद्या का जानने वाले ऋषिजन सूक्ष्म होते है , इस विद्या के लिये तप की आवश्यकता होती हे । मानवीय जीवन को ऊँचा बनाने वाली यह विद्या है । इस विद्या को धारण करने वाले ऐसे महापुरूषो का, ऐसे बुद्धिमानो का, ऐसे ब्रह्मचारियो का जन्म कहाँ होता है ? कजली वनो मे ! मानव का चाहे कितना आपतिकाल आ जाये। परन्तु देखो वही माता सुखद को प्राप्त होती है जो निष्ठा को नहीं त्यागती मानव वही ऊँचा होता है, जो निष्ठावान होता है, जिसके द्वारा निष्ठा होती है और निष्ठित बन करके यह संसार ऊँचा बनाता है । ऐसी निष्ठा मे मानव रमण करता रहता है । (२६ अक्तूबर १९७६ , कृष्ण नगर दिल्ली)

हनुमान का विवाह

जब ब्रह्मचारी हनुमान ४८ वर्ष का हुआ तो महाराजा सुग्रीव की कन्या से उनका संस्कार हुआ। महाराजा सुग्रीव ओर बाली दोंनो विधाता थे। उस संस्कार के पश्चात एक पुत्र को जन्म देकर उस कन्या का निधन हो गया। उसके निधन होने के पश्चात उनकी माता अन्जना ने पुनः कहा कि –पुत्र ! तुम संस्कार कराओ ! उन्होने कहा कि –मातेश्वरी ! अब मै परमात्मा के विज्ञान मे जाना चाहता हूँ। अब मै इस प्रकृतिवाद का जानना चाहता हूँ। मुझे संस्कार की इच्छा नहीं । क्योंकि पितर याग का मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया है । पितर याग कया है ? मेरे पितरो ने जो याग किया था , मुझे उत्पन्न किया, मैने एक पुत्र को जन्म दिया, मेरी पत्नी समाप्त हो गयी। उसका कार्य पूर्ण हो गया। (०४ मई १९७६ ,अमृतसर)

हनुमान जो एक सन्तान को जन्म देने वाला , पुत्र यागी भी बन रहा है, विज्ञान मे भी रमण कर रहा है और उसकी योगेश्वर बनने की भी इच्छा है । इसमे बुद्धि की एक महता होती है । (१९ फरवरी १९८० , लाक्षागृह बरनावा)

महाराजा हनुमान जहाँ विज्ञान मे पांरगत थे, वहाँ ब्रह्मचरिष्यामि मे भी पांरगत थे । वे ब्रह्मचर्य की ऊँची–ऊँची उड़ाने उड़ते रहते थे। हनुमान ने एक सन्तान को जन्म दिया था। अप्रहोसम्भवा पातालं वृही ऊर्ज्वा उनके पुत्र पाताल पुरी मे रहते थे । वह पाताल पुरी मे अपने जीवन को व्यतीत करते थे । हनुमान को एक ही पुत्र था, जिसे वह दीक्षा देने मे लगे हुए थे । (0१ मार्च १९८५ , लाक्षागृह बरनावा)

समुद्र पार करना

आज मानव यह कह रहा है कि ब्रह्मचारी मानव जिनको हनुमान कहा जाता है , वह चौदह सौ अश्विनो के समुद्र को लांघ कर पार कर गया था । यह कोई महत्व दायक आदेश नहीं । महर्षि बाल्मीकि ने इसमे महान लेखनी दी है कि उन्होने अपनी यौगिक क्रियाओं से इस समुद्र पार किया । तुमने देखा होगा कि योगी अपने प्राणो की एकाग्र मुद्रा बना लेते है, और जल पर ऐसे चले जाते है जैसे यह पार्थिव शरीर वाला पृथ्वी पर चला करता है । इसी प्रकार योगी अपने शरीर को इतना आविष्कारमय बना लेते है कि मन की जो गति है वह समुद्र पार जाने वाली है। मन की गति को जानने के यह भी क्रिया आ जाती है कि समुद्र इस प्रकार अवश्य पार हो जाता है । (०७ जुलाई १९६५ , फिरोजपुर)

सीता को खोजने के लिये महाराज हनुमान अपने यान 'पादकेतु' मे विद्यमान होकर लंका पंहुचे। (०९ मार्च १९७९ , लाक्षागृह बरनावा)

सुरसा वध

श्वेतम नामक राजा की कन्या का नाम सुरसा था। उसका पूरा नाम सुरसा था। सोमकेतु उसे माता कहती थी परन्तु उसे सुरसा कहता था। जब वह गुरू के यहाँ अध्ययन करती थी, तो वह उसको सुरसा कहता था। जब वह गुरू के यहाँ अध्ययन करती थी , तो वह उसको सुरसा कहा करते थे । सुरसा ने बहुत से विज्ञान को जाना। प्रकृति की पांच प्रकार की गतियों को लेकर उन्होने बहुत सी क्रियाओ को बाह्य जगत मे जानते हुए आन्तरिक जगत मे जानने को प्रयास किया। मुखारबिन्द को बहुत ऊर्ध्वा मे कर लेना , उसका आंकुचन कर लेना, यह सब क्रिया उनके समक्ष आती रहती थी। सुरसा अपने मुखारबिन्द को ऊर्ध्वा बहुत गति से कर लेती थी। उसी प्रकार आंकुचता मे लाने के लिये भी तत्पर रहती । बहुत से प्राणियो को मनुष्यो को मुख मे अर्पित कर लेना , पुनः उसको आंकुचन की आभा मे परिणत कर लेना , उसका अभ्यास था । एक मुखमानित नामक यन्त्र था जो उन्होने मुख मे आस्वान किया था। उनके द्वारा वह यह क्रिया करती थी । जिस समय महाराजा हनुमान , जामवन्त और सम्पाति की प्रेरणा से समुद्र पर यन्त्रो से गति करने लगे तो मार्ग मे सुरसा का स्थान आता था। सुरसा ने उस यन्त्र को मुखारबिन्द पर धारण किया हुआ था। उसने हनुमान को मुख मे परिणीत कर लिया । हनुमान जी सुरसा से भी विशेष वैज्ञानिक थे । उन्होने अपने शरीर मे प्रसारण शक्ति का प्रहार किया , अपने शरीर को विशाल बनाया । उनकी धारणा मे भी एक यन्त्र था जिस यन्त्र की आभा से मनुष्य जीवीत रह सके और सुरसा के यन्त्र का विनाश हो जाये । वह यन्त्र महाराजा जामवन्त की प्रेरणा से महाराजा सम्पाति ने उन्हे दिया था। महाराजा सम्पाति के राज्य पर सुरसा शासन कर रही थी । महाराजा सम्पाति ने एक यन्त्र उन्हे दिया , जिसका नाम संगतक था। सुरसा के मुख मे जो मुखमानित यन्त्र था, उस यन्त्र पर हनुमान द्वारा प्रहार हुआ। उस यन्त्र पर आक्रमण होने से सुरसा का विनाश हो गया और हनुमान सुरसा के मुख से जीवीत निकल कर लंका मे प्रवेश कर गये। (१५ मार्च १९८३ , लाक्षागृह बरनावा)

हनुमान जी आंकुचन प्रसारण गतियाँ

बहुत से महापुरूष हमारे यहाँ ऐसे हुए है , जिन्होने आकुंचन–शक्ति के ऊपर बहुत अनुसंधान किया है , जैसे महाराजा हनुमान थे। महाराजा हनुमान आंकुचन के ऊपर अध्ययन करते थे तो उनकी आकुंचन–शक्ति बहुत बलवती हो गयी थी। मुझे स्मरण आता रहता है कि त्रेता के काल से महाराजा हनुमान आंकुचन शक्ति के अनुसार अपने शरीर को सूक्ष्म बनाने व विशाल बनाने का अनुसंधान करते रहते थे। आकुंचन की यह गतियां योगाभ्यास के द्वारा ही आती है । (२२ अप्रैल १९७९ , अमृतसर)

मानव के शरीर को स्थूल बनाना, सूक्ष्म बनाना, यह कूर्म और कृकल दोनो प्राणो का कार्य है । यदि हम उदान प्राण मे कूर्म और कृकल प्राणो का मिलान करना जानते है तो अपने शरीर को सूक्ष्म बना लेते है ,जितना संकुचित अपने शरीर को करना चाहें कर लेते है । महाराजा हनुमान इस क्रिया को जानते थे। प्रकृति की पांच प्रकार की गतियां मानी गयी है आकुंचन, प्रसारण, ऊर्ध्वा, ध्रुवा, और गमनम। इन पांचो प्रकार की गतियों को जानने वाला योगेश्वर अपने को स्थूल रूपो मे लो सकता है और सूक्ष्म मे आकुंचन के द्वारा बना सकता है । इसी प्रकार योगीजन इस महान विज्ञान को, इस प्राण की क्रिया को जानते है । (०२ मई १९७६ , अमृतसर)

योगसिद्ध–आत्माए परम्परागतो से ही मानव क्षेत्रो मे आती रहती है । उसी के आधार पर देखो हनुमान के जीवन मे बहुत सी कृतिकाए आती रहती रही है । हनुमान जी का जीवन मे बहुत की कृतिकाएं आती रही है । हनुमान जी का जीवन जिन्होने दुष्टिपात किया है , वे प्रायः इसको जानते है कि वह लघुता–कृतिका दोनो प्रतिक्रियाओं को सर्वत्र जानते थे। वे प्राणायाम के द्वारा वायु मे गमन करते रहते थे। वे प्राणायाम के द्वारा वे जल के , समुद्र के रसातल मे भी गमन करते रहते थे।(२४ फरवरी १९८८ , लाक्षागृह बरनावा)

अशोक वाटिका मे सीता

माता सीता जैसा वैदिकवाद किस मे हो सकता है , रावण के द्वारा अपना राष्ट्र था , प्रजा अपनी थी परन्तु एक सीता को वह अपना नहीं बना सका , क्योंकि उनके द्वारा महान चरित्र की मात्रा थी। कैसा ऊँचा चरित्र , कैसी वैदिकता उनके ह्रदय मे सुगठित थी! मता सीता का ह्रदय वैदिक कणो से गुथा हुआ था कैसा सुन्दर गुथा हुआ कि रावण उसको छू भी नही सकता था। माता सीता ने यह कहा था कि–हे रावण ! मै सती हूँ , पतिव्रता हूँ, मेरे एक पति है , आज जो तूने पाप से मेरे शरीर को छू लिया तो तेरा अनिष्ट होता चला जायेगा। रावण मे इतनी प्रबलता नही हुई कि माता सीता को वह छू भी सके। कैसी महानता उनके ह्रदय मे थी । (०२ अगस्त १९६८ ,जोर बाग)

रावण का कितना ऊँचा साम्राज्य था। जिसके राष्ट्र मे सूर्य अस्त नही हो पाता था। परन्तु माता सीता को वह कलंकित नही बना पाया। क्योंकि उनका तप था, उनकी मानवता थी, उनका सतीत्व था, जो माता को वास्तविक भूषण है । (०३ मई १९७३ ,मेरठ)

यज्ञोपतीव के रक्षक हनुमान

जब महाराजा हनुमान लंका मे पंहुचे और वह वाटिका को नष्ट कर रहे थे तो उस समय रावण के पुत्र मेघनाथ का जब कुछ वश न चला तो ब्रह्मपाश मे उनको फाँस लिया। उस समय हनुमान ने कहा था कि मै ब्रह्मपाश को नष्ट की सकता , क्योंकि मेरी मर्यादा नश्ट हो जायेगी । भैतिक विज्ञान मे ब्रह्मपाश रूपी यन्त्र भी होता है , परन्तु यहाँ पर जिस ब्रह्मपाश मे हनुमान को फाँसा था, वह केवल यज्ञोपतीव ही था । उन्होने कहा कि मै इसे नष्ट कर सकता हूँ परन्तु मुझे मर्यादा की आज्ञा नहीं है कि मै इसे शान्त करूँ, यह मेरा आर्य चिह्न है । आर्य उसको कहते है जो शुद्ध और पवित्र होता है , जो अपनी मर्यादा की रक्षा करता है । (२६ जुलाई १९६३ ,करोल बाग)

यह जो ब्रह्मसूत्र है इस ब्रह्मसूत्र से यह संसार ओत–प्रोत हो रहा है । यह ब्रह्मसूत्र कहलाता है । हमारे यहाँ यज्ञोपतीव को भी ब्रह्मसूत्र कहते है।, क्योंकि यह त्रि–विद्या को प्रदान कराता है । त्रि–विद्या की प्रेरणा देता है । उसे ब्रह्म–सूत्र अथवा ब्रह्म पाश कहते है । त्रेता के काल मे अंजना पुत्र महाराजा हनुमान, जब रावण की वाटिका मे पंहुचे तो रावण–पुत्र मेघनाथ ने उस ब्रह्मसूत्र मे ही हनुमान जी को कटिबद्ध कर लिया । ब्रह्मसूत्र को नष्ट नही कर सके, क्योंकि ब्रह्मसूत्र यज्ञोपवीत कहलाता है । जो यज्ञ के कवच को धारण कर लेता है , उसको संसार मे कोई मृत्यु को प्राप्त नही करा सकता । यज्ञोपवीत एक कवच कहलाता है । जैसे देवी का पूजन करने वाला देवी के कवच को धारण कर लेता है , और सन्ध्या करने वाला सन्धि के कवच को धारण कर लेता है । जो इन कवचो को धारण करता है । दूषितता उनके समीप नही आती। हनुमान को जब रावण के पुत्र ने ब्रह्मसूत्र मे बाँध लिया तो उसको वह नष्ट नहीं कर सके, कयोंकि वह सूत्र होता है , उसको कोई भी मानव नष्ट नहीं कर सकता। ब्रह्मपाश रूपी यन्त्र भी उनके द्वारा था, जिस यन्त्र मे से हनुमान निकल नही सकते थे। ब्रह्मसूत्र धर्म का प्रतीक कहलाया जाता है । वह अपने से दूरी धर्म को नही कर सकते थे। (०६ अगस्त १९७७ ,लाक्षा गृह , बरनावा)

१६. सोलहवां अध्याय–राम रणनीति

शिव का सहयोग

जब समुद्र के तट पर भगवान राम जो पंहुचे थे तो उस समय उन्होने एक सभा की थी । उस सभा मे महर्षियो की जहाँ सभा हुई , वहाँ महाराजा शिव को उन्होने अवतरण किया और शिव को निमन्त्रण दिया। इस हिमालय से, कैलाश से, जब वे आये तो उन्होने नतमस्तक होकर कहा–प्रभु ! राम का, आपके भक्त का निवेदन ही उसका वचन हे और यहाँ मै रावण से संग्राम करने वाला हूँ। अब भगवन! मुझे क्या करना है ? आप क्या आज्ञा देंगे? तो महाराजा शिव ने शिवास्त्र उन्हे प्रदान किया (०७ मार्च १९७९ ,लाक्षा गृह , बरनावा)

शिव पूजा

शिव का पूजन श्रागवान राम समुद्र के तट पर किया था और शिव–पूजा का अभिप्रायः है कि महाराजा शिव की प्रार्थना की और यह कहा कि–आप इनकी रक्षा करते रहते है , मै इनको नष्ट करना चाहता हूँ। रूढ़ियो को नष्ट करना चाहता हूँ। भगवान राम ने अनेक समय रावण को शिक्षा देने को

प्रयास किया परन्तु यह नहीं हो सका । क्योकि जब रूढ़ि आ जाती है और वह रूढ़ि जब नाना प्राकर के धर्मो के नाम पर आती हो तो वह रूढ़ि मानव का विनाश कर देती है । (०७ मार्च १९७७ ,लाक्षा गृह , बरनावा)

जब महाराजा शिव की राम ने पूजा की और महाराजा शिव से आज्ञा प्राप्त करने लगे तो महाराजा शिव ने दो यन्त्र दिये और यह कहा–हे राम ! यह एक यन्त्र ऐसा हैं जिससे राजा रावण की सर्व सेना अग्नि के मुख मे चली जायेगी परन्तु दूसरा यन्त्र ऐसा है, जिससे वृष्टि प्रारम्भ होने लगेगी और रावण की सेना की सुरक्षा होगी और तुम्हारी सेना की भी सुरक्षा होगी। हे राम ! मै तुम्हे इन यन्त्रो को दे रहा हूँ सचेत कर रहा हूँ कि मैने रावण पुत्र मेघनाथ को पूर्व मे यह शक्ति प्रदान कर दी है । जब राम और रावण का संग्राम हो रहा था, महाराजा मेघनाथ ने एक यन्त्र ऐसा आकाश मे त्यागा कि उससे अग्नि कि वृष्टि होने लगी , तो भगवान राम की सेना पर अग्नि की वृष्टि होने लगी तो राम ने उस यन्त्र का प्रहार किया जिससे वृष्टि प्रारम्भ होने लगी, वह अग्नि शीतल हो गयी ओर उन्होने अपनी सेना की रक्ष कर ली।(०९ मार्च १९७७ , बरनावा , महानन्द जी)

वैज्ञानिक राजा जामवन्त का सहयोग

जामवन्त को आज रीछ की संज्ञा दी जाती है , परन्तु वह तो महान वैज्ञानिक थे। समुद्र के तटो पर वह विज्ञान के एक मचान को निर्माणित करते रहते थे, जिस मचान के द्वारा समुद्र मे ऐसे यन्त्रो को निर्धारित करते थे कि जिन यन्त्रो से समुद्र के पदार्थो का ज्ञान हो जाता था। उनके यन्त्र ऊर्ध्वा मे जाते थे । उन्होने और भी यन्त्रो का निर्माण किया था, वह राजा थे । राजा रावण ने इन सबके राज्यो को अपने अधीन बना लिया था। जामवन्त ने युद्व मे राम की सहायता की। उन्होने राम को ऐसा यन्त्र प्रदान किया जो विषैले परमाणुओ को अपने मे निगल जाता था। (०४ मई १९७६ ,अमृतसर)

नल नील का सहयोग

नल–नील दो वैज्ञानिक इसी भूमि के रहने वाले थे । जो लंका को विजय करने के लिये भगवान राम की सहायता को पंहुचे थे। महर्षि बाल्मीकि जी ने अपनी लेखनी बद्ध करते हुए नल–नील की प्रशंसा की है , किष्किन्धा की भी प्रसंशा की है । (०६ मार्च १९६९ ,हैदराबाद)

नल–नील द्वारा सेतुबन्ध

नल ओर नील इतने बड़े वैज्ञानिक थे, उन्होने सेतु बाँध बाँधा । उसका निर्माण करने के पश्चात उसी से आवागमन होने लगा । तब लंका भारत से इतनी दूर नही थी ओर समुद्र इतना लम्बा नही था। लंका द्वीप बहुत ही निकट था। समुद्र की देरी केवल इतनी थी जिस पर सेतुबाँध का निर्माण हो सकता था। (१८ अगस्त, १९७२ ,जोर बाग)

पहले इस भारत भूमि और लंका की इतनी दूरी नहीं थी। समुद्र मानो कुछ समीप आ गया है । पहले की कुछ लंका समुद्र मे लुप्त हो गयी। लगभग साढ़ आठ लाख वर्ष हो गये है उस काल को । इस मध्य न जाने समुद्र कितने समय आया ओर कितने समय चला गया, उसकी तरंगो मे कितना भू–भाग लुप्त हो गया और कितना प्रकट हो गया, यह नही कहा जा सकता । उस काल मे भारत भूमि से लंका की बहुत कम दूरी थी। जब राजा राम आपने महान शिष्यो को लेकर सुग्रीव की सेना को लेकर , समुद्र तट पर आ पंहुचे तो उनके वहाँ दो बहुत बड़े वैाानिक थे , जिनको नल और नील कहते थे, जो शिल्पविद्या बहुत ही अच्छी प्रकार जानते थे। उन्होने समुद्र पर सेतु बांधना प्रारम्भ किया।

रावण को राम की तैयारी की जानकारी

इसके पश्चात रावण को यह सर्वत्र प्रतीत हो रहा था कि राम तेरे संग्राम के लिये चला आ रहा है । परन्तु उनके जो विधाता विभीषण थे, उनका राम से मिलाप था। , वह राम से स्नेह करने वाले थे। वह रावण का दुःखद आधिपत्य स्वीकार नहीं कर पाते थे। वह रावण को पहले से भी अपनी वार्ता से एक सीमा मे स्थित किया हुए थे। (१८ अगस्त १९७२ ,जोर बाग)

रावण की विभीषण से मन्त्रणा

एक समय रावण ने अपने मन्त्री से कहा कि –जाओ ! आज विभीषण को मेरे समक्ष लाओ, उनसे कुछ वार्ता उच्चारण करूँगा। मन्त्री जी ने विभीषण के द्वार जा पंहुचे। उस समय विभीषण ने कहा– कि आज कैसा सौभाग्य है, जो मेरे विधाता ने, जो परमात्मा के बड़े विरोधी है , मुझे कंठ किया है , मै तो परमात्मा का बड़ा प्रिय हूँ। उस समय वह अपना सौभाग्य मानते हुए राजा रावण के समक्ष जा पंहुचे । राजा रावण ने कहा कि –आओ , विघाता ! विराजिये। विभीषण ने कहा कि– मेरे योग्य कौन की सेवा है , विधाता ? आप तो परमात्मा के विरोधी है । आपने आज परमात्मा के भक्त को बलायो है , क्या कारण है , रावण ने कहा कि – नही–नही विधाता ? मै तो तमसे प्रार्थना कर रहा हूँ। मेरी इच्छा है , आज राम मुझसे संग्राम करने आ रहा है , अतः मै यह जानना चाहता हू कि तुम प्रिय परमातमा के भक्त हो , नित्यप्रति ओ३म का जप किया करते हो मैं यह जानना चाहता हूँ कि मै राम से विजय पा सकता हू कि नही ?

विभीषण ने कहा कि–हे विधाता ! आप सात जन्म धारण करेंगे तब भी राम से विजय प्राप्त नही कर सकते । रावण ने पूछा यह कैसे हो सकता है , विभीषण ने कहा कि– वह जो राम है बड़े वैज्ञानिक है बड़े बलवान है । रावण बोला कि–हम भी तो वैज्ञानिक है । विभीषण ने कहा कि–महाराज ! आपके विज्ञान मे और उनके विज्ञान मे भिन्नता है । रावण ने पूछा–क्या भिन्नता है ? विभीषण ने कहा कि–हे विधाता ! राम के द्वारा दोनो ही पदार्थ है आत्मिक सत्ता भी और वैज्ञानिक सत्ता भी। दोनो सत्ताओ के से वह आपको विजय कर सकता है । रावण ने पूछा – तो हमे क्या करना चाहिये? विभीषण ने कहा कि – यह तो पूर्व काल से ही नियम है कि जिस राजा के राज्य मे दुराचार होता है या जो राजा किसी कन्या या देवी का हरण करता है , उस राजा का राज्य आज नही तो कल अवश्य नष्ट हो जाता है। हे भगवन! आपका तो विनाश होने वाला है , यह मुझे पूर्व ही विदित हो गया है । यदि आप मेरी याचना को स्वीकार करतें तो माता सीता को ले जाईये और राम के चरणो को जाकर स्पर्श कीजिये।

विभीषण निष्कासन

रावण ने यह सुनकर क्रोध मे आकर कहा कि–अरे!, विधाता ! तुम मेरे विधाता नही, अपितु शत्रु हो ! क्या मै अपने शत्रु के चरणो का स्पर्श करूं ? जब विनाश का समय आता है , तब बुद्धि भी उसी प्रकार की बन जाती है । अतः रावण ने अपने विधाता को पदो की ठोकर से ठुकराना प्रारम्भ कर दिया । उस समय विभीषण ने कहा कि–विधाता! मै तो आप ही के हित की बात बर रहा हूँ। रावण ने कहा कि– मै हित की बात नही चाहता। जाओ, तुम भी वहीं चले जाओ, जिनकी आज तुम प्रशंसा कर रहे हो।

विभीषण राम के शिविर मे

उस समय विभीषण समुद्र तट पर राम के समक्ष पंहुचे । राम ने उनका सब परिचय लिया। विभीषण ने अपने जीवन की जो महान घटनाएं थी, उन सबका वर्णन किया और कहा कि –महाराज!मै आपकी शरण मे आया हूँ तब राम ने उनको अपनी शरण दे दी। वह वहाँ बड़े आनन्द पूर्वक रहने लगे।

विभीषण की प्रेरणा

कुछ मसय पश्चात राम ने विभीषण सक कहा कि– हे विघाता! मै एक वार्ता जानना चाहता हूँ। आप रावण के विधाता है ,मै रावण से संग्राम करने जा रहा हूँ क्या मै उससे विजय पा सकूंगा? विभीषण ने कहा कि– हे विधाता! हम राम ! आप मेरी अनुमति लेते है तो सुने, आप सात जन्म भी धारण करेंगे तो भी रावण से विजय प्राप्त न कर सकेंगे। राम ने पूछा – क्यो विजय नही कर पाऊँगा, कया विशेषता हे उसमे? विभीषण ने कहा कि–राम ! वास्तव मे रावण के पुत्र बड़े बलवान है , इसके अतिरिक्त रावण स्वयं भी बड़ा ज्ञानी , बलवान और वैज्ञानिक है उसके पुत्रो मे भी यही विशेषताएं है। रावण का पुत्र नारायन्तक बड़ा वैज्ञानिक है , उसने विज्ञान के महान यन्त्रो की खोज की है , वह तुम्हारा विनाश कर देगा । इसके अतिरिक्त रावण के गुरु शिव महाराज हे , जो कैलाश पति है जिनकी प्रजा बहुत ऊँची ओर वैज्ञानिक है । ऐसा राजा रावण की सहायता करता हो तो उसको विजय क्यों न मिलेगी। हे राम ! रावण के समक्ष चाहे जितने राम आ जाये। तब भी आप रावण से संग्राम मे विजय नहीं पा सकोंगे।

राम का अजयमेध–यज्ञ

राम ने कहा कि– हे विधाता ! मुझे विजय पानी है , मुझे क्या करना चाहिये? विभीषण ने कहा कि– आप अजयमेघ यज्ञ कीजीये और यदि या विधान द्वारा किया गया तो आपकी विजय अवश्य होगी। राम ने कहा कि–मै अवश्य करूँगा। क्या शिव मुझसे प्रसन्न हो जायेंगे ? विभीषण ने कहा कि – विधाता ! यदि आप अजयमेघ या करेंगे और शिव निमंत्रण के अनुकूल नियुक्त करोगे तो वह आप एबके समक्ष आ जायेंगे , तब आप अवश्य विजय पा सकेंगे ।

उस समय राम ने विभीषण के आदेशानुसार वहाँ सब सामग्री जुटाना प्रारम्भ कर दिया। जब सब सामग्री,घृत आदि वहाँ एकत्रित होने लगा, बुद्धिमानो को आमन्त्रित किया गया उस समय विभीषण ने कहा कि – हे राम ! यदि यह सब सामग्री भी जुट जावे परन्तु जब तक यज्ञ का ब्रह्मा रावण नही बनेगा तब तक आपका यज्ञ सफल नहीं होगा। राम ने कहा कि –विधाता! यह कैसे होगा, मेरा शत्रु मेरे समक्ष कैसे आयेगा? विभीषण बोले कि–देखो । रावण चारो वेदो का पण्डित है । यदि तुम निमनत्रण देने जाओगे तो वह अवश्य आकर तुम्हारे यज्ञ को पूर्ण करेंगे। (०७ जनवरी, १९६२ ,विनय नगर नयी दिल्ली)

राम के यज्ञ मे ब्रह्मा रूप मे रावण

सब सामग्री जुट जाने के पश्चात राम और लक्ष्मण ने रावण को निमंत्रण देने की योजना बनायी । दोनो वहाँ से बढ़ते हुए रावण के द्वार जा पंहुचे। रावण ने इससे पूर्व राम को कदापि नहीं देखा था , इसीलिए रावण की उनकी कोई पहचान न हो सकीं उस समय रावण अपने न्यायलय मे विराजामन न्याय कर रहा था। उस समय के रावण के न्याय को देख राम ने लक्ष्मण से कहा कि – रावण तो बड़ा नीतिज्ञ है । देखो कैसे सुन्दर न्याय कर रहा है , इसको निमन्त्रण दे ।तो कैसे दें? वह कुछ समय तक शान्त नयायलय मे विराजमान रहे और जब उसका न्याय समाप्त हो गया तब वे उनके समक्ष पंहुचे । रावण ने कहा कि– कहयि, भगवन ! हम एक अजयमेध यज्ञ कर रहे है ˙ वेदो के अनुकूल आप हमारे यज्ञ को पूर्ण करावे।

उन्होने कहा–त्थास्तु! जैसी तुम्हारी इच्छा होगीवैसा ही किया जायेगा।

राम ने कहा – भगवन! स्मुद्र तट परया हो रहा है ओर आपको निमन्त्रण कर चले हैं हम कल नही आ सकेंगे, तृतीय समय मे आप स्वयं वहाँ विराजामन होने का कष्ट करें। उस समय रावण ने राम की उस याचना को स्वीकार कर लिया।

वहाँ से दोनो विघाता बढ़ते हुए समुद्र तट पर आ पंहुचे। हमने महर्षि बाल्मीकि के मुखारबिन्द से ऐसा सुना हे और हमारे महर्षि लोमश मुनि महाराज ने ऐसा देखो भी हे कि जब राम और लक्ष्मण दोनो अपने स्थान पर पंहुच गये तो वहाँ उन्होने यज्ञ की सब सामग्री , घृतादि को एकत्रित किया ओर बड़ी सुन्दर यज्ञशाला बनायीं ऐसी सुंदर यज्ञशाला बनायी जिसका वर्णन नही किया जा सकता। ऐसा विदित होने लगा,जैसे ब्रह्मलोक से ब्रह्मा आ पंहुचा हो । अब द्वितीय समय भी समाप्त हो गया, तृतीय समय आ पंहुचा तो रावण की प्रतिक्षा होने लगी।

कुछ समय पश्चात रावण भी अपने पुष्पक विमान मे विद्यमान हो करके उस महान भूमि पर आ पंहुचे जहाँ राम ने यज्ञशाला का निर्माण किया था ।जब वह वहाँ पंहुचे तो दोनो विघाताओ ने उनका बड़ा स्वागत किया और राम ने उन्हे अजयमेघ यज्ञ का ब्रह्मा नियुक्त कर दिया।

ब्रह्मा चुने जाने के पश्चात जब वहाँ यज्ञोपवीत धारण किये जाने लगे उस समय रावण ने उन सबका परिचय लिया। उस समय उन्होने कहा कि–भगवन! हमे राम कहते है , हमें लक्ष्मण करते हैं। जब उन्होने अपना व्यक्तित्व उच्चारण किया तो रावण बड़े आश्चर्य मे रह गया, अरे, यह क्या हुआ ? हय तो बड़ा आश्चर्यजनक कार्य हुआ! डस समय उन्होने कहा कि–चलो, जब तुमने मुझे ब्रह्मा चुना है , तो मेरा कर्तव्य हे कि विधि–विधान से यज्ञ कराऊँ।

रावण का यज्ञ पूर्ण करने के लिये सीता को लाना

उस समय उन्होने कहा कि–धन्यवाद! तुम्हारी धर्मपत्नी कहाँ है ? राम ने कहा कि–विधाता! मेरी धर्म पत्नी तो आपके गृह लंका मे है । रावण ने कहा –मैने यज्ञ को विधान मे नही किया तो मै देवताओ का महापापी बन जाऊँगा। मुझे अजयमेध या करने के लिये इन्होने ब्रह्मा बनाया है , मुझे परमात्मा ने बुद्धि दी है , मेरा कर्तव्य केवल एक ही हे कि मै सीता को लांऊ और यज्ञ को विधि विघान से पूर्ण करूं।

महर्षि बाल्मीकि ने ऐसा कहा है कि वह वहाँ से विद्यमान हो करके लंका मे सीता के द्वार पर जा पंहुचे और सीता से कहा कि–हे सीते ! समुद्र तट पर चलो तेरा स्वामी रूा रचा रहा है । सीता ने कहा कि–हे रावण ! आप नित्य प्रति मिथ्या ही उच्चारण किया करते हो। किसी समय सत्य भी उच्चारण किया करते हो? रावण बोला कि–नहीं सीते! मुझे तेरे स्वामी ने उस ब्रह्मा चुना है । सीता ने जब यह आदेश पाया तो प्रसन्न हो गयी और उसके पुष्पक विमान मे विद्यमान हो उसी स्थान पर जा पंहुची । जहाँ, विशाल अजयमेध–यज्ञ करने का विधान बनाया गया था। वहाँ जाकर बड़े आनन्द से सीता राम के दक्षिण भाग मे विराजमान हो गयी और रावण उनके दक्षिण भाग मे यज्ञ का ब्रह्मा बन गया। इसके पश्चात यज्ञ आरम्भ होने लगा। वहाँ आनन्द पूर्वक ऋत्विज चुने गये अध्वर्यु आदि भी चुने गयें यज्ञोपवीत धारण किये गये और यज्ञ आरम्भ होने लगा। हमने ऐसा सुना है , महर्षि बाल्मीकि के अनुसार तथा महर्षि लोमश मुनि के अनुसार जिन्होने यज्ञ को देखो था, कि यह यज्ञ इसी प्रकार चलता रहा ।

राम–सीता की दक्षिणा

जिस समय यज्ञ की पुर्णाहुति होने वाली थी उस समय सीता ने राम से कहा कि–हे राम ! आप यज्ञ तो रच रहे है । परन्तु रावण के लिये आपके पास कुछ दक्षिणा भी है या नहीं ? राम ने कहा कि– हे सीते! मेरे पास कया है , मै उन्हे क्या है , मै उन्हे क्या दक्षिणा दूं। सीता बोली कि–यह तो बड़ा द्रव्यपति राजा है । इसके यहाँ तो स्वर्ण तक के गृह है , मणियो के ढ़ेर लगे रहते है , तो यह कार्य कैसे पूर्ण होगा? राम ने कहा–तो मै क्या करू? उस समय सीता ने क्या किया , उसके पास एक कौड़ी जूड़ा था । वह उसने राम को दिया और कहा कि– लीजीये महाराज! आप ब्रह्मा का स्वागत इससे कीजीये। सीता का यह कौड़ी जूड़ा राम ने स्वीकार कर लिया।

यज्ञ चलता रहा पूर्णाहुति होने के पश्चात वहाँ यथा–शक्ति स्वागत होने लगा। राम और सीता दोनो उस कौड़ी जुड़े को लेकर रावण के समक्ष जा पंहुचे ।रावण ने कहा – हे राम! मुझे विदित होता है जैसे यह कौड़ी जूड़ा मेरा क्या है , यह तो मेरे पिता दशरथ ने किसी समय आभूषण बनवाया था। आज यह इस शुभ कार्य मे आ गया। मेरा क्या है ? उस समय रावण ने कहा कि–हे सीते! मुझे तुम्हारी यह दक्षिणा स्वीकार हे परन्तु मै किसी के शृंगार को भ्रष्ट नही करना चाहता। जब रावण का यह वाक्य सुना तो प्रजा सन्न हो गयी ओर कहा कि–अरे!रावण तो बड़ा बुद्धिमान है ।

यज्ञ पूर्ण होने के पश्चात रावण ने कहा था कि– हे राम! विदित होता है कि तुम्हारी मनोकामनाए अवश्य पूरी होंगी। आशीर्वाद देकर सीता से कहा कि– हे सीते! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम अपने पति की सेवा करो, नही तो मेरी लंका मे चलो। सीता ने कहा कि– हे विधाता! आज से तुम मेरे पिता ब्रह्मा बन गये हो। मुझे तो यहाँ भी ऐसा और वहाँ भी ऐसा। भगवन ! मै आपके साथ चलूंगी। इसका नाम धर्म हे । राम ने भी यह नही कहा कि सीता , तुम कहाँ जा रही हो । तब सीता रावण के साथ पुष्पक विमान मे विद्यमान हो गयी।

रावण ने उस समय ऋग्वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए सीता से कहा था कि–हे सीते! आज मुझे विदित होता है कि अब मेरे विनाश का समय आ गया है मेरी लंका नष्ट भ्रष्ट होने वाली है । सीता ने कहा कि हे विधाता–! आप इतने व्याकुल कयों हो रहे है । रावण बोला – हे सीते मेरी जो महान प्रजा है , वह समाप्त होनी वाली है । जिसने शत्रु को अपना लिया और अपना करके उसको ब्रह्मा बना करके उसकी आत्मिक ज्योति को खींच लिया है , हे सीते! उसकी मानेकामना क्यों न पूरी होगी? आज मुझे विदित होता है कि मुझे यज्ञ पूर्ण नहीं करना था यज्ञ पूर्ण होने से मुझे विदित हो गया कि मेरी लंका मे एक भी मानव नहीं रहेगा । यह वाक्य उच्चारण करते हुए रावण बड़ा शोक युक्त हो गया। (०७ जनवरी, १९६२ ,विनय नगर नयी दिल्ली)

अंगद का सहयोग

त्रेता के काल मे महाराजा बाली का एक पुत्र था, जिसका नाम अंगद कहलाया था उसके हृदय मे सदैव यह प्रेरणा रहती कि मै एक योगी बनूं ,प्राण को संचार रूप से जानुं। उस काल मे ब्रीती ऋषि महाराज हिमालय मे रहते थे । अंगद ब्रीती ऋषि के द्वार पर पंहुचे और यह प्रार्थना की कि–महाराज! मुझे आप योगी रूप मे निर्वाचित कीजीये। उन्होने यह वाक्य श्रवण कर लिया परन्तु शान्तना मे परिणत हो करके ब्रह्म कृतं वायु सम्भवं ब्रह्मः ऋषि प्राण को एकत्रित करने को तत्पर हो गयें उन्होने एक संकल्पमयी प्राणायाम उस प्राण का प्रार्दुभाव , उसकी रचना का वर्णन किया। अंगद उसके अभ्यास मे लग गये औा वह सर्वत्र अंग को वृतियो मे जानने वाले बने। रूद्र समय प्रभा, वह अपने मे जब प्राण को जहाँ चाहते थे वहीं स्थिर कर देते थे। (२६ फरवरी, १९८८ ,बरनावा)

बाली पुत्र अंगद बारह वर्षो तक प्राणो का अध्ययन करते रहे। इसलिये देखो उनका नाम अंगद और मेघनाथ दोनो कहलाता था । सदैव प्राणो से उदगीत गाते रहते थे, उच्चारण करते रहते थे देखो यह आवश्यक नहीं है कि रावण के पुत्र का नाम मेघनाथ है तो मेघनाथ और कोई हो नही सकता, यह तो आवश्यक नहीं है । अंगद को दोनो नामो से उच्चारण किया जाता था। उनको माता मेघनाथ कहती , पिता और कुटुम्ब उन्हे अंगद के नाम से वर्णन करता रहता था। राम भी उन्हे अंगद ही कहते थे। (०४ दिसम्बर, १९८५ ,लाजपत नगर नयी दिल्ली)

अंगद की शिक्षा

त्रेता के काल मे महाराजा बाली के पुत्र मेघनाथ (अंगद) ने जिस विद्या का अध्ययन किया वह विद्या अपने मे बड़ी विशिष्ट रही है । अपने पुत्र से एक समय बाली ने कहा कि –हे ब्रह्मचारी तुम कौन सी विद्या का अध्ययन करना चाहते हो ? उन्होने कहा– हे पिता ब्रह्मणे ! मैने वेद–मन्त्रो मे प्राण–विद्या के ऊपर विद्यालयो मे बड़ा अध्ययन किया है । यह प्राण मानव को क्या कया क्रियात्मक मे लाने को तत्पर रहता है, उस विद्या को मे अपने मे धारण करना चाहता हूँ। उस विद्या को अध्ययन करने के लिये मुझे ऐसा आचार्य निहित कराईये। इस विद्या को महाराजा शिव के पुत्र गणेश जी भी भली–भांति जानते थे , जो महर्षि। स्वाति ऋषि महाराज के यहाप्राण–विद्या का अध्ययन करते थे, वेद मन्त्रो के सूक्तो मे एक प्राणसूक्त भी है , जो अपने मे प्राण विद्या को धारयामि बनाये रहता है । इस विद्या के द्वारा माताएं अपने गर्भ स्थल मे अपने पुत्रो को प्राण विद्या का अध्ययन कराती रहती थी। बाली ने एक समय अपने पुत्र अंगद से यह कहा – हे बाल्य ! तुम प्राण –विद्या को अपने मे ग्रहण करना चाहते हो? राजा बाली ने स्वाति ऋषि महाराज के यहाँ अपने पुत्र का प्रवेश कराया ओर प्रवेश कराते हुए उन्होने कहा–प्रभु! यह प्राण विद्या का ब्रह्मचारी बनना चाहता है बहुत,प्रियतम! तो स्वाति ऋषि महाराज ने उसे अपने मे आश्रम मे प्रवेश कर लिया और वे नित्यप्रति प्राण विद्या का अध्ययन करने लगा।

प्राण विद्या

हमारे यहाँ वैदिक साहित्य मे बहुत से प्राण सूक्त है , जो आज के हमारे वैदिक पठन–पाठन मे भी कुछ वर्णित किये जा रहे थे। वही प्राण–विद्या को ले करके ब्रह्मचारी अंगद जब अपने मे अध्ययन करने लगा और अध्ययन करते–करते ऋषि ने इतना पारायण बनाया कि जिस अंग मे वह सर्वस्व शरीर के प्राणो का लाना चाहता था, उसी मे वह प्रवेश हो जाता है। उसी मे वह प्राण सता एकत्रित हो करके इतनी बलवती हो जाती है कि मानव आश्चर्य से चकित हो जाता है । महर्षि स्वाति महाराज ने उन्हे इस विद्या का वर्णन कराया और उन्हे लगभग बारह वर्ष तक इस प्रकार का अभ्यास कराया कि वे प्राण की संकल्पोमयी, प्राण की प्रतिष्ठा मे प्रतिष्ठित हो गये। संकल्प मे प्राण को अपान मे, अपान को प्राण मे, अपान और प्राण को समान मे , समान को व्यान मे और व्यान को वह उदान मे प्रवेश करा करके वे जिस अंग मे लाना चाहते थे। उसी अंग मे वह प्राण प्रतिष्ठित हो जाता था। उसी मे इतना गुरूत्व को धारण कर लेता था कि उसको बलिष्ठ से बलिष्ठ प्राणी भी उसे एक स्थली से दूसरी स्थली पर पंहुचाना चाहे वह उसमे इतना बल नही आ पाता था। वह एक पग मे सर्वत्र प्राण को लाना , एक भुज मे लाना चाहता तो एक भुज मे वह प्राण आ जाता था।

प्राण विद्या हमारे वैदिक साहित्य मे बड़ी विशिष्ठ और महानता मे परिणत होती रही है । मुझे वह काल स्मरण आता रहा है , जहाँ ऋषिवर ब्रह्मचारियो को इस प्रकार की विद्याओ को प्रदान करते रहते थे कि प्राण को इतना सूक्ष्म बना लेना कि वह प्राण के द्वारा वायुमण्डल मे भी गमन करने लगता था जैसे रेचक और कुम्भक प्राणायाम करता हुआ पूरक मे प्रवेश करके वायुमण्डल मे गमन करने लगता है । बाली पुत्र मे यह दोनो विशेषताए कहलाती थी। कि वह वायुमण्डल मे भी गमन करता रहता था और पृथ्वी पर भी । जिस अंग मे प्राण लाना चाहता उस अंग मे पांचो का एकीकरण करके वह अपनी बलिष्ठता मे सदैव बलिष्ठ होता रहा।

बारह वर्ष के इस प्रकार अभ्यास करने से प्राण–शक्ति को जलों मे परिणत कर देना जैसे दीपावली की एक दीपमालिका बन जाती है, इसी प्रकार , प्राण साधक प्राणायाम के द्वारा बाह्य प्राण और आंतरिक प्राण को दोनो का एकोकीकरण कर देता है । प्राण–विद्या से मानव प्राण को सकाग्र करके जब गान गाता है प्राण के द्वारा , तो मुनिवरो ! एक दीपावली बन जाती है , दीपमालिका बन जाती हे । वो दीपमालिका, जैसे मैने तुम्हे कई कालो मे वर्णन कराया था। महाराजा अंगद के यहाँ भी यह विद्याए प्रयः उनके हृदय मे समाहित होती रही है । महर्षि स्वाति मुनि महाराज को रात्रि काल मे जब अपने गृह मे दीपमालिका बनानी होती थी तो उस समय जब वे प्राण को, अपान को , दोनो को एक सूत्र मे ला करके व्यान मे उसकी पुट लगाते , तो उस समय जो गान गाता है , ललाट के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र मे,बेटा देखो इडा,पिंगला,सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा तो उस गृह मे दीपमालिका बन जाती है । जिस भी काल मे उस विद्या को लाना चाहते , वह विद्या अपने मे परिणत होती रहती रही है । वह विद्या पूजा मे परिणीत रही है , वह पूजा की स्थलियो मे पूज्यनीय मानी गयी है । तो इसीलिये इस विद्या का प्रायः अध्ययन करना और इसे क्रियात्मक रूप देना यही पूजा का अभिप्रायः माना गया हे । पूजा का अर्थ केवल इतना ही है कि प्रत्येक विद्या को कार्य मे लाना, उसे कार्य रूप देना उसकी पूजा कही जाती है ।

अंगद के लिये दीक्षान्त उपदेश

महर्षि स्वाति मुनि महाराज के द्वारा ब्रह्मचारी यह विद्या क्रियात्मक मे, अपने मे अध्ययन करते रहे और अध्ययन की परम्परा यह मानी गयी कि अंगद का जीवन हमें भी स्मरण है , उनके जीवन मे प्रायः जहाँ वे प्राण विद्या का अध्ययन करते थे, वहाँ वे मृत्यु को मात्र खिलवाड़ स्वीकार करने लगते थे। जब बाली पुत्र विद्यालय से अवकाश पा करके और दीक्षा ले करके जाने लगे तो उस समय स्वाति ऋषि महाराज ने अपना दीक्षान्त उपदेश दिया ओर यह कहा–हे ब्रह्मचारी! तुमने इस विद्यालय मे, इस आश्रम मे प्राण विद्या का अध्ययन किया है , इस प्राण विद्या को तुम्हे कार्य रूप देना है । हे ब्रह्मचारी ! कार्य मे क्रियात्मक रूप देकर अपने जीवन को महान बनाना है । परन्तु इस विद्या का दुरूपयोग करना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है । जहाँ बहुत ही विशेष कार्यो मे तुम्हे इस विद्या को क्रिया रूप देना है वहाँ दुरूपयोग नहीं होना चाहिये यदि विद्या का दुरूपयोग हो गया तो विद्या , विद्या न रह करके उसका पूजा का स्थान नही रहता है , उसमे केवल विकृतियां आ जाती है । हे ब्रह्मचारी! अब तुम अपने इस विद्यालय को त्याग रहे हो। इस विद्यालय मे तुमने प्राण को अपान मे और अपान को समान मे ओर समान को व्यान मे और व्यान को उदान मे प्रवेश किया है । इस विद्या का प्रायः तुम्हारे मे अध्ययन होता रहना चाहिये। यह अध्ययन की परम्परा तुम्हारे जीवन मे रहनी चाहिये। देखो इसमे विज्ञान , इसमे मानवीयत्व , क्रिया मे लाना तुम्हारा कर्तव्य माना गया है । यदि इसका दुरूपयोग हो गया तो वैदिक विद्या का ह्रास हो जायेगा वेद मन्त्रो का ह्रास हो जायेगा । इसीलिये हे ब्रह्मचारी ! मे तुम्हे दीक्षा दे रहा हूँ कि इस विद्या को क्रिया रूप देने के लिये,जहाँ तुम इसे क्रिया रूप दोगे वहाँ तुम मृत्युंजय बन जाओगे, जहाँ तुम सात्विकता से रहोगे वहीं तुम्हारा जीवन पवित्र बनेगा।

हे ब्रह्मचारी ! तुम्हे इसलिये को ले करके माता की आज्ञा का पालन करना है , माता की सेवा करना है , तुम्हे ऋणी नही रहना है कि मैने इस विद्या का अध्ययन कर लिया है तो मै ऋणी रहता चला जाँऊ हे ब्रह्मचारी ! देखो , वह प्राणी संसार मे ऋणी होते है , जो माता और पितरो की आज्ञा का पालन नहीं करते । जो अपनी परम्पराओ को स्वीकार नहीं करते है , वे मानव ऋणी कहलाते है। जो याग इत्यादि क्रियाओ मे रत्त नही रहते है , वे

देवताओ के ऋणी कहलाते है । तुमने जिस विद्या का अध्ययन किया है , कोई दिवस ऐसा नहीं रहा है , ब्रह्मचारी! जब तुमने याग न किया हो । तुमने प्राण विद्या को जानने के लिये याग का आश्रय लिया है । वास्तव मे तुम्हे याज्ञिक बनना है । याग का अभिप्रायः यह है कि सुगन्ध को देना और दुर्गन्ध को नष्ट करने का नाम याग माना है । याग का अभिप्रायः यह है कि तुम्हे अपने विचारो से सुगन्धी देना है , वैदिक साहित्य से तुम्हे सुगन्धी देना है । उसी सुगन्धी के द्वारा तुम्हारा जीवन ओर गृह पवित्रता मे परिणत होता रहेगा।

आचार्य ने , स्वाति ऋषि महाराज ने यह उपदेश देते हुए कहा—इस विद्या को तुम्हे अणु और परमाणुओ मे निहित करना है , जिससे तुम्हारा जीवन वैज्ञानिक बन जाये और इसके पश्चात तुम्हें अपने जीवन को आध्यात्मिक मे परिणीत कर देना है । आध्यात्मिक उसे कहते है कि मौन रहना और मौन रह करके आत्मा मे आत्मा का मनन करना है। मनन करते हुए, मौन रह करके तुम्हे प्राण विद्या का अभ्यसत बना रहना चाहिये। तुम्हारा जीवन तभी सार्थक बनेगा। इसमे आध्यात्मिकवाद परिणत होता रहे। बिना आध्यात्मिक के प्राण विद्या को अपने मे धाराण नही कर सकते, यह अपने से दूरी हो जायेगी। इसिलिये आध्यात्मिकवादी उसे कहते है कि जो आत्मा मे रमण करने वाला , उसी मे रत्त रहता हो। मेरे शरीर मे एक आत्मा चेतना है जिसके आश्रित यह प्राण रहता है । यदि आत्मा शरीर से निकल जाती है , तो प्राण का भी ह्रास हो जाता है । यह प्राण , गतियों मे गति ही बन करके रह जाता है , ज्ञान और प्रयत्न इसके द्वार से चला जाता है ।

ये विद्याए है , जिन्हे ऋषि—मुनियो ने बड़े गम्भीर रहस्यतम से जानने का प्रयास किया । स्वाति मुनि ने अपना दीक्षान्त उपदेश देते हुए कहा कि—तुम्हारा कर्तव्य हे कि तुम आध्यात्मिक बनो । आत्मा का चिंतन करना , आत्म—वेदना को जान लेना, ज्ञान ओर प्रयत्न दोनो का मिलान करते हुए प्राण इसमे जब समाहित हो जाता हे तो प्राण विद्या तुम्हारे मे सार्थक बन रके रहेगी और तुम अपने मे सौभाग्यशाली बन जाओगे। स्वाति मुनि ने कहा कि – तुम दीक्षा ले रहे हो, आज तुम दीक्षीत बन रहे हो। दीक्षा का अभिप्रायः यह है कि जब आचार्य के गुरु के द्वार से ब्रह्मचारी का विच्छेद होता है अथवा वह आचार्य गुरुजनो के विद्यालयो को त्यागता है तो उस समय वह दीक्षा ले करके गमन करता है । वह दीक्षा आचार्य देता है ओर दीक्षा का अभिप्रायः यह कि जिस विद्या का तुमने अध्ययन किया है , जिस विद्या को जाना है , उसको साकार रूप देना और साकार रूप दे करके उसको सदुपयोग मे लाना यह तुम्हारा कर्तव्य है । तुम्हे अभिमान नही होना चाहिये , क्योंकि यह जो विद्या है यह परमात्मा की धरोहर है । एक—एक परमाणुवाद मे यह विद्या गमन कर रही है , एक—एक मानव के शरीर मे यह विद्यास गमन कर रही है परन्तु यह परमात्मा की धरोहर है । जो इस विद्या को परमात्मा की धरोहर स्वीकार करता है , वह महान बन जाता है और जब इस विद्या को जान करके मानव मे अभिमान आ जाता है , अभिमान मे परिणीत हो जाता है तो यह विद्या उससे देरी चली जाती है, अभिमान के कारण ही वह मानव मुत्यु को प्राप्त हो जाता है । ऋषि ने उपदेश देते हुए अन्त मे एक वाक्य कहा कि—तुम इसका अभ्यास करना और अभ्यास के साथ—साथ तुम्हे अभिमान से नही रहना है , तुम्हे अपने मानवत्व से रहना है।

स्वाति ऋषि ने जब यह वाक्य प्रगट किया तो अंगद बड़े प्रसन्न हुए और ऋषि के चरणो की वन्दना करने लगे और ऋषि से कहा —प्रभु ! मेरे ऊपर आपकी करूणा होनी चाहिये जिस करूणा से मै करूणामयी बना रहूँ मेरे मे अभिमान न आये, क्योंकि अभिमान तब आता है जब विद्या ओर द्रव्य दोनो साथ—साथ होते है । और द्रव्य का अभिमान होना ही द्रव्य को हीनता मे पंहुचाना है और विद्या को अध्ययन मे ला करके विद्या के ऊपर अभिमान करना है तो आत्म तत्व से विमुख हो जाना है । ब्रह्मचारी ने यह वाक्य अन्त मे कहा – प्रभु ! मै चाहता हूँ आपकी करूणा मेरे ऊपर होती रहे,मै प्रभु के राष्ट्र अपने को स्वीकार करता रहूँ और मेरे ह्रदय मे यह निष्ठा बनी रहे कि यह संसार प्रभु का राष्ट्र है और प्रभु के राष्ट्र मे न कोई अभिमानी है , न कोई बुद्धिमान है । परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान बड़ा नितांत माना गया है ं वह इतना नितांत है कि मानव जन्म जन्मान्तरो मे अध्ययन करता रहे तो उसकी प्रतिभा को जान नही पाता । यह वाक्य गुरु शिष्य परस्पर चर्चा करते हुए आचार्य के कुल को उन्होने त्याग दिया । त्यागने के पश्चात भ्रमण करते हुए अपने राष्ट्र मे आ गये और राष्ट्र मे उस समय यह परम्परा मानी गयी, हमारे यहाँ वैदिक परम्परा बड़ी विचित्र मानी गयी है । जब ब्रह्मचारी अपने विद्यालय से सर्वत्र विद्या का अध्ययन करके गृह मे प्रवेश करता है , ब्रह्मचारी बुद्धिमान हो करके जब आचार्य के कुल से गृह मे माता पिता के कुल मे प्रवेश करता है तो माता पिता उसका आदर करते है , माता पिता उसका स्वागत करते है माता दीप के द्वारा उसका पूजन करने लगती है । पूजन का अभिप्रायः वही आ रहा है कि उसका सदुपयोग करना। ब्रह्मचारी ने आचार्य बन करके , बुद्धिमान हो करके गृह मे प्रवेश किया है ं माता पिता आदर सहित उसका पूजन करते है । वे विद्यमान हो जाते है । हमारी वैदिक परम्परा मे जो व्यवहार माना गया , उसी प्रकार अंगद का पूजन हुआ। गृह मे वह उस विद्या का अध्ययन भी करते रहे। प्रातः काल अध्ययन करके अपनी क्रियाओ मे रत्त रहते थे। (२६ जुलाई , १९८८ ,देव नगर , नयी दिल्ली)

राम दूत अंगद रावण के दरबार में

भगवान राम ने मुनिवरो! देखो जब रावण से संग्राम करने के लिये समुद्र के तट पर अपनी सेना नियुक्त की, तो उन्होने देखो बाली के पुत्र अंगद को यह कहर कि—जाओ , तुम दूत बन करके जाओ, क्योंकि देखो एक राजा को राजा के समीप जा करके ऐसा औषध देना चाहिये कि उसका विचार परिवर्तन हो जाये, तो बहुत ही प्रियता है । उसके राष्ट्र की रक्षा हो जायेगी और दूसरे प्राणियो की रक्षा होगी। उन्हाने अंगद से कहा – तुम रावण के द्वार जाओ , क्योंकि वह राजा भी है ओर बुद्धिमान भी है । तुम उनके समीप जा करके याचना करो कि राम का और तुम्हारा दोनो का मिलन हो जाये तो बहुत ही प्रियता है । मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि महाराजा अंगद ने वहाँ से गमन किया और राम से गमन करते समय यह कहा कि—प्रभु मै समन्वय कैसे करवाऊ, कैसे कर सकता हू? मुझे कोई आप आज्ञा तो दीजीये। उन्होने कहा कि —समन्वय यही हे कि वह सीता को मुझे प्रदान करे और वह अपनी लंका का राज्य सुचारू रूप से करें ओर कोई किसी प्रकार का विवाद का विषय नही होना चाहिये। उन्होने यह वाक स्वीकार कर लिया। बाली पुत्र अंगद जी भ्रमण करते हुए लंका मे पंहुचे। लंका मे देखो राजा रावण अपने न्यायलय मे विराजमान थे, अपनी राजयस्थली पर विद्यमान थें। एक आसन पर मेघनाथ जी विद्यमान है , एक आसन पर देखो कुम्भकरण जी विद्यमान है । सर्वत्र राष्ट्र के जो ऊर्ध्वा मे कर्म वेता है , वे सब विद्यमान है । उन्होने द्वारपाल से कहा कि—रावण से मिलना है । द्वारपाल ने उनको वृती कर दिया कि मै आज्ञा ले आऊँ तो वह द्वारपाल वहाँ पंहुचे । द्वारपाल से रावण कहते है – यह कौन है ? उन्होने कहा— यह बाली पुत्र अंगद है । उन्होने कहा— यहाँ कैसे इनका पर्दापण हुआ? उन्होने कहा, आपसे मिलना चाहते है । उन्होने कहा, बहुत प्रियतम! वह राज स्थलियो पर मुनिवरो ! देखो सभा मे पंहुचे।

राज्य सभा मे जब पंहुचे तो उन्होने कहा, हे बाली पुत्र तुम्हारा आगमन कैसे हुआ है? मैने तो यह श्रवण किया हे कि राम की सेना मे तुम सेनापति बन गये हो। उन्होने कहा, प्रभु ! जो आपने श्रवण किया है , वह यथार्थ है । उन्होने कहा, तो तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? उन्होने कहा, मै राम की सेना का राम की आकृतियों से, मै आज आपके यहाँ देखो राजदूत बन करके आया हूँ। ओर मेरी इच्छा है कि आप राम से विलय करके अपने मे समन्वय कर लें तो बहुत ही प्रियता होगी, यह लंका का वृत देखो , लंका एक सुसज्जित रह जायेगीं उन्होने पुछा कि तुम दूत बन करके आये हो । उन्होने कहा भगवन ! अवश्य , मै दूत बन करके आया हूँ, क्योंकि राजा का कर्तव्य हे कि एक दूत बन के भी आना चाहिये, जिससे दोनो का विलय हो जाये या दोनो मे समन्वय की प्रतिभा जागरूक हो जाये। रावण ने कहा कि मै राम से अपना किसी भी काल मे विलय करना नही चाहता , मै उनसे समन्वय नही चाहता हूँ । उन्होने कहा, प्रभु! कारण? कारण यह है कि वह मेरे समीप न तो कोई बलवान है , न वह इतना बड़ा वैज्ञानिक हे , उससे विलय मे अपना सूक्ष्म समय नष्ट न करके अपने राष्ट्र का पालन करूँगा। जब यह वाक उन्होने प्रगट किया तो सम्भूति ब्रह्म वह बोले कि—नहीं भगवन ! ऐसा अभिमान नहीं करना चाहिये , एक राजा को अभिमान मे नहीं आना चाहिये, क्योंकि हो सकता है कि द्वितीय प्राणी तुम पर जो आक्रमण करने वाला है , उसमे कितना बल है , इसको प्रभु जानता है , इसको तुम नहीं जानते । उन्होने कहा कि—हम जानते है कि हममे बहुत बल है , हमारे यहाँ विज्ञान है हम आकाशमार्ग मे , अन्तरिक्ष मे भी संग्राम करने वाले है, पृथ्वी पर भी संग्राम करने वाले हैं , समुद्रो के गर्भ म भी जा करके हम संग्राम करने वाले है ।

जब उन्होने यह वाक प्रगट किया तो उन्होने बहुत नम्रता से कहा नहीं भगवन! देखो यह हमारा कर्तव्य है कि हम अने मे शुद्ध ब्रह्म–बंद्धि से अपने क्रियाकलापो मे तत्पर रहें क्योकि संसार मे विवाद जितने भी होते है , वह बड़े भयंकर होते है ं मानव के रक्त का जैसे नदी अपने मे नीर से प्रणय रहती है , जलाशय से परिपक्व रहती है , ऐसे ही राजा के राष्ट्र मे जब संग्राम होने लगता है तो प्राणियो का रक्त बहाया जाता है । वह रक्त नहीं बहाना चाहिये, रक्त मे से जो तरंगे बन करके वायुमण्डल मे प्रवेश करती हैं, वायुमण्उल भी दूषित हो जाता है देखो वायुमण्डल दूषित होता है ं और पृथ्वी मण्डल दूषित हो जाता है और मानव की मनोवृतियो मे अर्न्तद्वन्द्व आ जाता है ओर वह जो अर्न्तद्वन्द्व होता है , वह वर्ण–शंकर मे परिवर्तित हो जाता है । हे राजन! तुम्हे यह मेरा वाक स्वीकार कर लेना चाहिये ।

रावण ने कहा, हे अंगद ! तुम्हे यह प्रतीत है , तुम्हारे जो पिता थे बाली, वे मेरे मित्र थे। वह इस समय संसार मे नही है परन्तु यदि वह होते तो तुम्हे यह प्रतीत हो जाता कि मेरे मे कितना बल है । उन्होने कहा कि मै यह जानता हूँ कि हे भगवन! तुम मे बहुत बल है परन्तु देखो इस बल का संसार मे बनता क्या है, इसका अन्तिम चरण क्या है? बल का उपयोग करना तो बल की पूजा कहलाती है । जैसे वायु मे प्राण गति करता है , वायु जब दूषित हो जाती है तो वही प्राणघातक बन जाती है , परन्तु देखो वही वायु का जब हम शुद्धीकरण करके उसका उपयोग करते है , वही वायु हमारे भिन्न–भिन्न क्रियाकलापो मे प्रवेश हो जाती है । इसी प्रकार बल का सदुपयोग करो ओर बल तुममे बहुत है , बहुत प्रियता है , हमे बड़ी प्रसन्नता है । तुम बल के कारण राष्ट्र का पालन करो, राष्ट्र मे एक महानता आ जाये, बल के द्वारा ही चरित्र की स्थापना करो इससे तुम्हारा चरित्र ऊँचा बन जाये ओर तुम संसार मे छायामान हो जाओ और तुम्हारा साम्राज्य तुम्हारी अठायु का साम्राज्य संसार मे छायामान हो जाये। यदि तुम्हारा जो क्रियाकलाप है, यदि वह अहिंसा मे नहीं देखो हिंसा मे निहित रहेगा, हिंसा की प्रवृति मे निहित रहेगा, रावण तुम्हे प्रतीत है कि एक राजा का दूसरे की राजकन्या को या दूसरे की राजलक्ष्मी को इपने गृह मे लाना राष्ट्र को शोभा नहीं देता, यह राष्ट्र के लिये एक अपराध है, यह एक राष्ट्र के लिये एक वाम प्रवृति मानी गई है।

रावण को जब यह कहा तो उन्होने कहा, हे अंगद तुम्हे यह प्रतीत है कि तुम किससे वार्ता प्रगट कर रहे हो? मै इस समय राजा हूँ और लंका पति राजा हूँ । मेरा पातालपुरी मे भी राष्ट्र है ं उन्होने कहा, मै जानता हूँ। मुझे प्रतीत है कि तुम्हारे राष्ट्र मे न सूर्य उदय होता है न अस्त होता है । मै यह जानता हूँ परन्तु जानने के साथ साथ मे यह कह रहा हूँ कि तुम्हारे बल का उपयोग यर्थाथ होना चाहिये और यर्थाथ होगा तो तुम्हारे राष्ट्र मे जितनी कन्याए है यह सुरक्षित रहेंगी और तुम्हारे राष्ट्र मे जितना मानव बल हे यह पवित्र बना रहेगा। जब यह वाक उन्होने प्रगट किया तो रावण ने उनका एक वाक भी स्वीकार नही किया। उन्होने कहा, हे अंगद ! तुम पामर हो, तुम उसकी पूजा कर रहे हो जिसने तुम्हारे पिता को मृत्यु मे पंहुचा दियां तब उन्हाने कहा मेरे पिता तो चले गये, कोई बात नहीं , क्योंकि पिता का जाना यर्थाथ है , कोई पिता हो या पुत्र हो या पुत्री हो, जिसके चरित्र मे भिन्नता आ जाती है , चरित्र भ्रष्ट हो जाता है , उसका संसार मे न होना ही प्रियता कहलाती है । क्योंकि वह परिवार , वह कुटुम्ब कलंकित हो जाते है , उस कलंक से ही मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह कलंकित नहीं होना चाहिये, हमारा गृह कलंकित हो गया था वह चले गये, कोई बात नहीं होना । परन्तु तुम अपने लिये विचारो कि तुम्हारा क्या बनना है ? जो श्रेणी उनकी थी उससे आगे की श्रेणी तुम्हारी हे । तुम्हारी श्रेणी उससे कई गुणा ऊर्ध्वा मे है , अब तुम्हारा कया बनेगा? तुम अपने हृदय मे विचारो ! जिस कन्या को तुम अपने गृह मे अपने वाटिका मे निहित किये हो उसके चरित्र को तो तुम नष्ट इसलिये नहीं कर सकते क्योंकि वह महान है वे देवी है । और , यदि मानव प्रह्वे यदि तुम यह चाहते हो कि यह भूल हो गयी हे तो मुझे इतना अषिमार हे राम पर कि तुम सीता माता को मुझे दे दो तुम्हारा देखो उनको कोई विवाद नहीं रहेगा इस संसार मे।

रावण ने कहा कि–हे अंगद ! तुम इन वाक्यो को क्यों उच्चारण कर रहे हो? जब मैने तुम्हे कहा है देखो यह अस्त्रो और शस्त्रो को मेरे यहाँ जो केन्द्र है वह इतना विशाल है कि इस पृथ्वी को भी नष्ट कर सकता है । जब यह वाक नही आया तो रावण ने कहा , मै बहुत बलवान हू मेरे भुजदंडो में बल है , मै राम से अपना संगतिकरण नही करूगा।

अंगद का पद–स्थापन

मुझे कुछ ऐसा स्मरण है जब वह वाक रावण द्वारा स्वीकार नहीं किा गया, तो मुनिवरो ! देखो मै प्राण की चर्चा कर रहा था, अंगद ने अपने पांवो से , नखनो से देखो अप्रितम ब्रह्मः प्राणायाम जो किया, उससे सर्व शरीर काप्राण उनकी अपनी एक जंघा मे आ गया औरउन्होने कहा! श्रावण , यदि तुम बलवान हो तो तुम मेरे इस पग को एक स्थान से दूसरे स्थान पर कर दो तो मै माता सीता को त्याग करके चला जाऊँगा ओर राम को ले करके अयाध्या चला जाऊँगा । तब उन्होने कहा अप्रत ब्रहे देखो वह जब प्राणायाम करके जब अपनी जंघा मे प्राण को ला करके स्थिर हो गये। प्राणायाम मे उन्होने खेचरी प्राणायाम किया और प्राण को खेचरी करके अन्होने अपने पग मे सर्व प्राण को ला करके स्थिर किया ओर वह बोले कि–आओ कोई बलवान है ? तो देखो मेघनाथ जी आये बेलम ब्रह्मः वृतमवही वृताम , मुनिवरो! देखो कौन? अंगद ब्रह्मा अंगदो सम्भवा लोकाम वाचप्रहे लोकं ब्रह्मः लोकस्वताः मुनिवरो! देखो , सम्भूति ब्रह्मा अंगदो वेदां ब्रह्म–लोकाम वरूणस्वति सुप्रजा प्राणः , मुनिवरो ! देखो वह मेघं प्रमाणस्वति सुप्रजाः उन्होने कहा– तुम्हे यह प्रतीत है कि हे रावण ! मेरा नामोकरण दो नामो से उच्चारण किया जाता है एक मेरा अंगद के नाम से परिणीत किया जाता है ं, एक मेघनाथ के नाम से वर्णन किया जाता है । मेरे दो नामोकरण है । मेरी माता मुझे अंगद कहती थी। और पिता मुझे अप्रतिं ब्रह्मः देखो अस्वताम ब्रहे वृणास्तु रूद्राः मेरे दोनो रूपो से मेरा एक नाम अंगद तो एक मेघनाथ के नामो से उच्चारण किया जाता है । तेरा भी पुत्र मेघनाथ विद्यमान है । आज मेघनाथ और मेघनाथ दोनो का संग्राम होगा । जब उन्होने अश्वतम ब्रहे मुनिवरो! देखो, मेघनाथ क्या और भी उससे ऊर्ध्वा मे जो बलिष्ठ थे अपने को बलिष्ठ जानते हुए अंगद के इस पग को दूरी जब करने लगे, तो वह दूरी नहीं हुआ। तो अंगद का मंगलव्रहे देखो मेघनाथ जी आये अब मेघनाथ जी भी अपने बल को अस्वत करने लगे, तो उससे भी उनका पग नहीं हटा, एक स्थली से दूसरी स्थली पर नहीं पंहुचा । जो मुनिवरो! देखो, वहाँ सब जितने बलवान थे, सब अपने मे मौन हो गयें अन्त मे देखो रावण ने विचारा यह कैसा अदभुत प्राणी है , यह कैसा अदभुत बाली पुत्र है , यह मेघनाथ कितना बलिष्ठ पुत्र है , यह अंगद के नामो से पुकारा जाता है ! बाली भी और हम भी इसको मेघनाथ ही उच्चारण करते रहे है । परन्तु देखो यह अंगदाम ब्रहे इसे अंगद के नामो से जो माता उच्चारण करती थी जिससे इसने प्राण की विद्या ली है । उस प्राण की विद्या के आश्रित हो करके मै इसके पग को दूरी करूँगा। जब वह देखो उनके आंगन मे आये तो इतने मे ही अंगद जी ने कहा – नहीं , भगवन! मंगलम, देखो अपने पग को वह अपने आंगन मे ले आये ओर प्राण को ज्यों को त्यों निश्चय करके बोले–रावण! आप इस योग्य क्यो बनते हो कि मेरे पगो का तुम स्पर्श करो। तुम राम के पगो को स्पर्श करो जिससे तुम्हारा उद्वार हो जाये, तुम्हारी लंका सुरक्षित रहे। तो उस समय उन्होने कहा– हे बाली पुत्र ! यहाँ से अपने स्वामी के पास चले जाओ अन्यथा तुम्हारा हमारा संग्राम हो जायेगा। उन्होने कहा बहुत प्रिय भगवन! (०४ दिसम्बर , १९८५ ,लाजपत नगर , नयी दिल्ली)

१७. सत्रहवां अध्याय–रावण के महारथी

राजा रावण के चार राजकुमार हुए। सबसे जयेष्ठ पुत्र का नाम अहिरातकेतु कहलाया था, उसे बाद मे अहिरावण नाम से उच्चारण किया गया, द्वितीय पुत्र का नाम मेघकेतु था, जिसको पश्चात मे मेघनाथ भी कहते थे, नारायन्तक और अक्षयकुमार , ये चार पुत्र थे। दो विभीषण के भी पुत्र थे , जिनका नामोकरण श्वात्रिकेतु और त्रेतकेतु था। एक पुत्र कुम्भकण का था जिसका नामोकरण सुमेतकेतु कहलाता था। यह सातों राजकुमार विद्यालयो मे शिक्षा अध्ययन करते थे। लंका मे ऐसे–ऐसे ऊँचे विश्वविद्यालय थे, जहाँ विज्ञान की उड़ान उड़ने वाला ऊँचे से ऊँचा वैज्ञानिक था। (रावण इतिहास)

अहिरावण

राजा रावण के ज्येष्ठ पुत्र अहिरातकेतु जब शिक्षालय मे अध्ययन करते थे तो उनका जो विषय रहा , वह यह रहा कि मै जिस प्राणी को तरंगवाद मे मूर्छित करके जहाँ भी ले जाना चाहूँ वहाँ ले जा संकू। मोहिनी– राग उनका अनुसंधान का विषय रहा। यह विद्या उन्होने गाड़ीवान रेवक मुनि से प्राप्त की थी । राजा अहिरावण पातालपुरी के राजा थे। पातालपुरी मे विज्ञान भी था। और ज्ञान भी था और दुग्ध देने वाला जो पशु है यह बहुतायात मे रहता था,

वहाँ उसकी पूजा होती थी। राष्ट्र को जो निर्माण , राष्ट्र की जो प्रतिभा है , वह राजाओ के ऊपर होती है । राजा जिस प्रकारका आहार और व्यवहार करता है , उसको जा क्रियाकलाप होता है , उसी के आधार पर समाज का निर्माण होता है । (रावण इतिहास)

इन्द्रजीत मेघनाथ

स्वाति ऋषि के यहाँ , जहाँ अंगद जी विद्या का अध्ययन करते थे, वहीं राजा रावण के पुत्र मेघनाथ भी शिक्षा अध्ययन करते रहे थे। वह प्राण–विद्या को अपने मे धारयामि बनाने वाले 'प्रथम ब्रह्मः ब्रतम थे । राजा रावण के पुत्र मेघनाथ , जो बड़े वैज्ञानिक थे, इन्द्र के यहाँ उन्होने शिक्षा का प्रदर्शन किया था। मंगल–मंडल मे यन्त्रो के द्वारा जा करके उन्होने विद्या का अध्ययन किया । रावण के पुत्र नारायन्तक के यन्त्रो मे विद्यमान हो करके वह बुध मण्डल पर पंहुचे और विद्या का अध्ययन किया । जब आवृताम स्वाति मुनि के यहाँ दोनो ब्रह्मचारियो के जब अवकाश प्राप्त होता , उसी काल मे दोनो अपनी स्थलियो पर विद्यमान हो करके विचार विनिमय करते रहते थे। एक समय सांयकाल के समय मेघनाथ जी ने अंगद से कहा कि भगवन ! यह जो प्राण ब्रह्म कृतम यह जो प्राण है , यह क्या है ? उन्होने कहा कि–हे भगवन! यह प्राण कया नहीं है ? उन्होने कहा, मै तुमसे प्रश्न कर रहा हूँ उन्होने कहा,मै भी तुमसे प्रश्न कर रहा हूँ उन्होने कहा वाक्य तो यर्थाथ है , परन्तु एक दूसरे मे जानने के लिये तत्पर हो जाओ । सांयकाल का समय था, उन्होने कहा, यह प्राण कया है ? तुम यह जानना चाहते हो? मै यह जानना चाहता हूँ । कि प्राण क्या नही है संसार मे ? तो दोनो का प्रश्न एक दूसरे जटिल बन गया है एक वृत बन गया है । मानो देखो , मेरा विचार यह आ रहा है कि यह जो प्राण है , मानव का जीवन है । यह जो प्राण है, यह मानो देखो इस पृथ्वी का पृथ्वी से ले करके और यह माला बनी हुई है , यह प्राण के कारण बनी हुई है । मेरे पुत्रो ! देखो इसिलिये उन्होने कहा कि–प्राण कहाँ नही है ? प्राण सर्वत्रता मे विद्यमान रहता है । यह मानो देखो विशेष – प्राण है और प्राण विशेष प्राण मे देखो जो सामान्य प्राण हे , वह सर्वत्रता मे मानो देखो जड़वत मे भी और चेतना की प्रतिभा मे भी सदैव निहिता रहता है । उन्होने कहा , भगवन ! यह हमने जान लिया।

वह अमृतं ब्रह्मः मेघनाथ जी बोले कि–प्रभु ! यदि हम प्राण मे अपान का मिलान करा देते हे तो क्या बन जाता है ? उन्होने कहा, जब प्राण और अपान दोनो का मिलान होता है तो उग्र क्रिया बन जाती है । उन्होने कहा, यदि दोनो प्राणो के मध्य मे हम सामान्य प्राण का मिलान कर देते है तो क्य बन जाता है उन्होने कहा , वह जो उग्र क्रिया है , उस उग्रता को जान करके वह मानो देखो, सामान्य–प्राण को अपने मे शमन कर जाता है । उन्होने कहा, यदि इसमे हम नाग प्राण की पुट लगा देते है , तो क्या बन जाता है ? उस समय , अंगद जी बोले कि – जब नाग प्राण की पुट लगा देते हे तो वह मानो एक यन्त्र बन करके देखो मानव के प्राणो का घातक बन समता है ।

संकल्पमयी प्राणायाम , चन्द्र प्राण्णयाम और सूर्य प्राणायाम

उन्होने कहा, वाम्य यर्थात्‌ह्म कि तुम अंगद जी बहुत बुद्धिमान हो! प्राण के सम्बन्ध मे ओर क्या जानते हो? यह तो मानो भौतिक–प्राण की प्रतिभा हुई यदि हम आध्यात्मिक मे इन वाक्यो को ले जाना चाहते है , मानो देखो , आध्यात्मिक मे एक संकल्पोमयी प्राण होता है , उस संकल्पमयी प्राण से क्या बनता है , उन्होने कहा, जब संकल्पमयी प्राणायाम करते वाला साधक मानो देखो, संकल्प कर रहा है कि मेरे मे चन्द्रमा का वास हो जाये तो मानो देखो , चन्द्रमा के वास से वह मानो चन्द्र प्राण को ऊर्ध्वा मे लाना चाहता है , उन कणो को, उन परमाणुओ को, मानो उन तरंगो का अपने मे धारयामि बना लेता है और सूर्य के समीप जा करके उन्हे त्याग देता है , सूर्य प्राणायाम के साथ मे । मानो देखो, वह जो चन्द्र–प्राणायाम , संकल्पोमयी चन्द्र और सूर्य दोनो की प्रतिभा बन जाता है और वह दोनो का एकोकी व्रत और एकोकी स्वर मे स्वरित हो करके मानो उसी मे परिणत हो जाते है उन्होने कहा–अस्वतम क्या यह संकल्प–प्राण इसी को कहते है ? उन्होने कहा–संकल्पमयी प्राण ऐसा होता है , कि वह संकल्प–प्राण के द्वारा , जब चन्द्रमा मे उसकी प्रवृति चली जाती है , तो जितने भी शीतल लोक–लोकान्तर होते है, जिसमे जल प्रघान होता है , उन मण्डलो के जानने वाला बन जाता है । और यदि सूर्य प्राणायाम ने वाला संकल्पोमयी बन जाता है , संकल्प से ही चलाता है , तो उसमे वह सूर्य–मण्डल क्या, जितने भी तत्व प्रमाण ब्रह्वे देखो , अग्नि तत्व के जितने भी मण्डल है उनके प्रति , उसकी वृतियां बन करके, उनको जानने वाला बन जाता है ।

आज मै प्राण के सम्बन्ध मे इतना गम्भीरता मे नही जाना चाहता हूँ। केवल यह तो गम्भीर वैज्ञानिक , साधको का विषय है । विचार केवल ये मुझे प्रकट करना है कि दोनो का बड़ा विचार–विनिमय होता रहा। तो उन्होने कहा कि–संकल्पमयी प्राण यह है कि संकल्प से हम प्राण को लें और संकल्प से ही उसको त्यागने को प्रयत्न करें, रेचक और कुम्भक के द्वारा , मानो देखो यह आध्यात्मिक साधना बन हाती है । इस प्राण के करने से यह लाभ होता है देखो कृत होने लगता है कि हमारे जितने रूग्ण है, शान्त हो जाते है, रूग्णो के शान्त होने पर मानो देखो हमारा शरीर मानो देखो सूक्ष्म बन जाता है । हमारे शरीर के परमाणुओ के द्वारा जो अव्यय रहते है , वह सूक्ष्म और विहास्त करके , वह अपने मे ही अपनेपन को दृष्टिपात कराने लगते है । तो मानो देखो यह संकल्पोमयी प्राण है ।

शीतली प्राणयाम, अग्नि प्राणायाम और दीपावली राग

एक शीतली प्राणायाम होता है , जिसमे योगी देखो जल को ही अपने मे सिंचन करता रहता है। एक मानो देखो ,ऐसा प्राणायाम है , पव्राणं ब्रह्वे देखो, जब हम नाग–प्राण , देवदत और देखो प्राण का समन्वय कर देते है , तीनो प्राणो का समन्वय तो यह अग्नि–प्राणयाम है , मानो देखो, अग्नि प्रदीप्त हो जाती है । मैने तुम्हे बहुत पुरातन काल मे वर्णन करते हुए कहा था कि यह जो प्राण की पवित्र विद्या है , इसको जानने के लिये मानव को तत्पर रहना चाहिये । नाग–प्राण और देवदत दोनो का मिलान होता है उसमे प्राण और अपान का मिलान हो जाता है। अपान का मिलान होते ही प्राण का मिलान होते प्राणायाम करने वाले जो साधक जन होते है , वे जब प्राणायाम करते है तो उनके आश्रम मे एक दीपावली बन जाती है । दीपकम्ब्रहे देखो, वह दीपावली बन करके ,उस गान को गाया जाता है । वह प्राण के द्वारा गाया जाता है । अंगद जी भी इस दीपावली राग को जानते थे, मानो देखो, इस को मेघनाथ जी भी जानते थे। मेघनाथ जी जब वनो मे तपस्या करते , जब यह गान गाते तो वनो मे दीपावली बन जाती । यह विद्या हमारे यहाँ बड़ी विशिष्ट बन करके रही है । स्वाति मुनि के यहाँ, जहाँ दीपावली वृत रागो मे परिणीत होता रहा है हमारे यहाँ परम्परागतो से ही बेटा! दीपमालिका के ऊपर बड़ा अध्ययन होता रहा है । मुझे स्मरण आता रहता है , महर्षि वशिष्ठ मुनि के यहाँ भी दीपावली के ऊपर बड़ा अध्ययन होता रहा है, ब्रह्मज्ञान मे कहीं जाना , कहीं भैतिकवाद मे जाना , कहीं अणु–परमाणुओ का मिलान करके दीपमालिका का गुणगान गाते रहते थे। मुझे तो बहुत सा काल स्मरण आता रहता है । राजा नल के यहाँ भी इस दीपावली गान को जानते थे, बेटा ! इस प्राण विद्या को जानने वाले राजा नल भी इसी प्रकार के रहे है । जब यह रात्रि समय किसी नगर मे दीपावली गान गाते थे, तो नगर भी अपने मे दीपमालिका बन करके रह जाते थे।

इन्द्र के यहाँ मेघनाथ द्वारा दीपमालिका गान

जब इस दीपामलिका को पान करने के पश्चात रावण बृहं कृतं मेघनाथ जी एक समय महाराजा इन्द्र के यहाँ पंहुचे। महाराजा इन्द्र के यहाँ जब उनका आगमन हुआ तो इन्द्र ने स्वागत किया जब वह अपनी स्थली मे विद्यमान हो गये तो उन्होने कहा, तुम बड़े वैज्ञानिक हो और प्राण विद्या को जानने वाले हो । हमने यह चर्चा श्रवण की है कि स्वाति मुनि के आश्रम मे अध्ययन करने वाले मेघनाथ जी लंका स्वामी के पुत्र पधार रहे है , उनका वेद–विद्या पर और वेद मे भी जो प्राण विद्या है , उसके ऊपर बड़ा अध्ययन रहा है । उस समय महाराजा इन्द्र की इन्द्राणियों ने कहा कि–हे भगवन! हम दीपमालिका जो तुम्हारा गान है , उसे श्रवण करना चाहते है । उन्होने कहा कि –मातेश्वरी ! इस समय मेरा अर्न्तहृदय मानो देखो उस आंगन मे जाना नही चाह रहा है । उन्होने कहा – तो शान्त हो जाईये, आप विश्राम कीजीये। विश्राम के पश्चात जब रात्रि छा गयी तो मेघनाथ से उन्होने पुनः प्रार्थना की कि–हे प्रभु ! आप बड़े विशेषज्ञ है , ज्ञान ओर विज्ञान की प्रतिभा मे और यन्त्रवाद मे भी आपका बड़ा सहयोग रहा है । विज्ञान अपनी आभा मे रत्त होता रहा है और दीपमालिका के सम्बन्ध मे भी मानो तुम्हारा गान बड़ा विचित्र है , उस गान को और उस प्राण को हम दृष्टिपात करना चाहते है । दीप नृति के दृष्टिपात किये गये और महाराजा मेघनाथ जी ने प्राण को ओर अपान को मानो देवदत से समन्वय किया ओर देवदत को नाग–प्राण से समन्वय करते हुए और

सामान्य प्राण की पुट लगा करके जब प्राण को उन्होने एक –दूसरे मे देखो जैसे धनुषं ग्रहा अपने मे मानो देखो, तरकश को कसा जाता है ऐसे प्राणो को उसने एकाग्र करके , कसना प्रारम्भ किया तो प्राणयाम के द्वारा उनका ललाट विचित्र बन गया और उनके मुखारबिन्द से अग्न्याधान होने लगा । मुझे ऐसा उनका साहित्य अध्ययन करने से प्राप्त हुआ है, जब इस प्रकार उनका अग्न्याधान होने लगा , तो दीपमालिका बन गयी । उनके मानो त्रिपुरी मे दीपमालिका बन गयी।

जब दीपमालिका बनी तो महाराजा इन्द्र की द्वेषाग्नि जागरूक हुई , क्योंकि राजाओ मे द्वेष – भावना परम्परागतो से रही है , क्योंकि जब राष्ट्र बनता है , तो राष्ट्र मे रजोगुण अवश्य आता है और जब रजोगुण आता है तो उसमे द्वेषाग्नि भी जागरूक होती है । तो महाराजा इन्द्र को यह द्वेषाग्नि जागरूक हुई कि हो सकता है कि मेघनाथ मेरी त्रिपुरी को विजय कर न ले और मेरी त्रिपुरी को विजय कर लेगा तो मेरा इन्द्र पद समाप्त हो जायेगा। यह भावना , राजा इन्द्र के हृदय मे मानो प्रविष्ट हो गयी थी। तो उस समय उन्होने अपनी देवियो से कहा कि– हे दिव्याओ ! यह जो मेघनाथ है , यह बड़ा बुद्धिमान तथा विज्ञान मे परायण है ! यह क्रियात्मकता मे यागेश्वर है ! मानो यह प्राण –विद्या को जानता है, अस्त्रो–शस्त्रो की विद्या भी जानता है और यह वरूणास्त्रो मे भी परायण है ! यदि देखो, इसके हृदय मे यह समाहित हो गया कि मैं त्रिपुरी को अपने मे विजय करना चाहता हूँ तो मेरी त्रिपुरी को अपने मे विजय कर सकता है उन्होने कहा हे भगवन ! आप इस प्रकार की जिज्ञासा अपने हृदय मे क्यों कर रहे है , ऐसी ,द्वेष भावना को क्यो अपने मे लाना चाहते हैं? यदि अमृतां यदि इसके हृदय मे यह समाप्ति हो गया कि इन्द्र का मेरा संग्राम होगा तो मानो तुम्हे विजय कर लेगा। देखो, उसके पश्चात भी त्रिपुरी को ले सकता है । आप ऐसी भावना बनाते ही क्यो है?

त्रिपुरी मे मेघनाथ द्वारा प्राणध्ययन का प्रदर्शन

इन्द्र के हृदय मे यह अमृतां ब्रह्मे यह समाहित रहा । परन्तु देखो, मेघनाथ जी ने कहा इस विद्या को अध्ययन क्या , चमत्कार दिखाते हुए विद्या को उन्होने दृष्टिपात कराते हुए उन्होने कहा, अच्छा मातेश्वरी ! अब मुझे आज्ञा दीजीये, मै अपनी लंका मे जाना चाहता हूँ। उन्होने कहा–क्या तुम विशेष प्राण का सामान्य प्राण से मिलान कराना जानते हो । मै यह नही जानता यह मेरे पूज्यपाद गुरूदेव जानते है , मै इसको नही जानता हूँ। मै जिज्ञासा तो कर रहा हूँ कि मै इस प्रा को और जानूं जिससे मेरा सामान्य प्राण देखो विशेष प्राण से समन्वय हो जाये तो मै इस ब्रह्माण्ड मे , जितना यह प्रभु का ब्रह्माण्ड है , जो लोक लोकान्तर है, जो एक ब्रह्म सूत्र मे पिरोया हुआ जगत है , उसको मै दृष्टिपात कर सकूं। मानो देखो मैं अभी दृष्टिपात नही कर सका हूँ। उन्हाने अपने वाक्यो का स्पष्टीकरण किया । स्पष्टीकरण करके उन्होने कहा, धन्य है ! तुम, बड़े सत्यवादी हो ! क्योंकि ब्रह्मचारी तो वास्तव मे सत्यवादी होता है । उन दोनो ने कहा कि – तुम अस्त्रो मे कौन से अस्त्रो–शस्त्रो को जानते हो? उन्होने कहा? मातेश्वरी, ब्रह्मस्त्र को जानता हूँ। मानो देखो मै नागपाश यन्त्रो को जानता हूँ और हे मातेश्वरी ! मै वरूणास्त्रो को जानता हूँ अस्त्रो–शस्त्रो मे मेरी प्राणः बड़ी गति रही है क्योंकि दो वर्ष तक मंगल मंडल मे एक मरिचिका नाम के आचार्य को अपना गुरू बनाया उनसे मैने इस विद्या को अध्ययन किया है और मै नाना प्रकार की विद्याओ को ले करके इस मृत मण्डल मे अपने पृथ्वी मण्डल पर आया हूँ ।

उन्होने कहा, हम ब्रह्मचारी ! विज्ञान मे तुमहारी उड़ान बड़ी विचित्र है, परन्तु प्राण मे तुम और क्या जानते हो? उन्होने कहा, तुम जो प्रश्न करोगे मानो मै उसका उत्तर देता जाऊँगा। उन्होने कहा, तुम श्रुति प्राण को जानते हो उन्होने कहा हां मै श्रुति प्राण को जानता हूँ। उन्होने कहा तुम कैसे जानते हो , उन्होने कहा मै श्रुति प्राण को इसीलिये जानता हूँ। कि जो मेरे श्रोत्रो मे प्राणो की ध्वनियां आती है, उन ध्वनियो का संग्रह करता रहता हूँ और मैंने स्वाति नाम के एक यन्त्र का निर्माण किया है , जिनमे उन परमाणुओ को यन्त्रो के द्वारा एकत्रित करता रहता हूँ। और यन्त्रो मे स्थिर करता हुआ अग्नि के समीप विद्यमान हो करके मै उन परमाणुओ की भिन्न–भिन्न रूपो मे कृतियां बना लेता हूँ। – जो जल के परमाणु है , अग्नि के परमाणु है , उन परमाणुओ को मै भिन्न–भिन्न करता हुआ उनके मिलान करके जिस अवस्था मे मुझे लाना है , जिस यन्त्र मे मुझे परमाणुवाद को लाना हे । उसी यन्त्र को उससे निर्माण हो जाता है ।

उन्होने कहा,धन्य है। तुम तो एक ब्रह्मचारी नहीं तुम, तो ऋषि तुल्य हो। तुम्हारी प्राणो के ऊपर बड़ी गम्भीर अध्ययन गति है , तुम्हारे अर्न्तहृदय मे। उन्होने कहा, ओर क्या जानते हो? उन्होने कहा? मैने नाग प्राण , प्राण और उदान का आश्रय ले करके मैने एक यन्त्र को निर्माण किया है । वह नागपाश कहलाता है । उसमे एक विषेशता है । यदि मै नागपाश के द्वारा , किसी पर प्रहार करता हूँ तो वह सूर्य उदय होने से पूर्व मानो देखो, उसके रक्त ओर मज्जा को ओर देखो ,अस्थियों को भिन्न –भिन्न कर देता है। यह नागपाशं प्राणं ब्रहे वृतम, वह नागपाश कहलाता है , मैने स्वाति मुनि के द्वारा इसका अध्ययन किया है और इसको मैने मरीचिका नामक ऋषि है , उनके द्वारा भी अध्ययन कियाहै । हे मातेश्वरी ! मै इन विद्याओ को कुछ संक्षिपत्ता से जानता हूँ। उन्होने कहा कि तुम सब जानते हो । उन्होने कहा कि–नहीं प्रभु का विज्ञान बड़ा अनन्तमयी माना गया है । मै सर्वत्रता को नही जानता , मे ता उतना जानता हूँ। जितना मेरे पूज्यपाद गेरूदेव ने मुझे वर्णन कराया है मै पूजयपाद गुरूदेव को भी इस अवस्था मे गणित नही कर सकता कि वे कितना जानते है। उनके जानने की कितनी सीमा है , अध्ययन और क्रिया मे लाने का उनका कितना अध्ययन है। हे मातेश्वरी ! मै तो प्रभु की सृष्टि मे देखो , बहुत ही निम्न हूँ, कयोकि प्रभु का ज्ञान और विज्ञान बड़ा अनन्तमयी माना गया है । मेरे पुत्रो ! देखो , ऋषि 'अमृताम' ब्रह्मचारी ने कहा–हे ब्रह्मे ब्रह्म ! हे मातेश्वरी! अब मुझे आज्ञा दो। उन्होने कहा, धन्य है , ब्रह्मचारी! परन्तु देखो , उन्होने एक वाक्य कहा, कि इन्द्रपुरी मै आ करके तुमने कया अनुभव किया हे ? उन्होने कहा कुछ नहीं, मै कोई अनुभव का वाक्य तुमयसे प्रकट नहीं करूगा मानो यह तो समय मुझे कोई आज्ञा देगा तो मै इस अनुभव की चर्चा किसी काल मे ही कर पाँऊगां उन्होने कहा–धन्य है !

मेघनाथ द्वारा गुरू आश्रम मे दीपमालिकागान

वहाँ से उन्होने गमन किया वह इनद्रपुरी वह इन्द्रपुरी से गमन करते हुए पुनः बेटा! देखो ऋषि के आश्रम मे आ गयें स्वाति ऋषि ने कहा, हे ब्रह्मचारी ! अंगद प्रह्वे प्रण ब्रीही तुम कहाँ गये थे ? तुम्हारा कहाँ गमन हुआ था उन्होने कहा, प्रभु ! मै त्रिपुरी मे गया था। और त्रिपुरी मे जा करके मानो देखो कुछ विचार–विनिमय हुआ। उन्होने कहा कुशलतं ब्रह्वे , इन्द्र का राष्ट्र तो कुशल है , उन्होने कहा ''भगवन ! बहुत ही कुशल है , आनन्दवत है । तो ऐसा उच्चारण करके अपनी पंक्ति मे विद्यमान हो गये, वह और उनके पूजयपाद गूरुदेव , एक समय एकांत स्थिति मे विद्यमान थे। अंधकार छाया हुआ है , उन्होने कहा, हे मेघनाथ । तुम दीपमालिका क्यों प्रकाशित नहीं करते हो । उन्होने कहा, प्रभु! क्या करना है अमृतां ब्रह्मे वृतं देखो कुछ अध्ययन करेंगे । तो उन्होने प्राण को अपान मे प्रवेश करके आश्रम को दीपमालिका के रूप मे परिवर्तित कर दिया । उनहोने कहा, हे मेघनाथ ! इस विद्या मे तुम परायण हो गये हो। उन्होने कहा, प्रभु! यह तो आपकी अनुपम कृपा ओर अनुपम देन है कि मै इस विद्या को क्रियात्मक में पान कर गया हूँ।

विद्या और पात्रता

प्राण–विद्या को मेघनाथ जी भी जानते थे, अंगद भी जानते थे, मरीचिका कौतुक ऋषि के पुत्र भी इस विद्या को जानते थे। उनके आंगन मे ब्रह्मचारी , बेटा ! अध्ययन करते रहते थे और ब्रह्मचारियो का हृदय पवित्र बनाने मे आचार्य लगे रहते थे ओर विद्या देने मे बड़े कुशल थे । उन्होने एक समय मेघनाथ जी ने से यह कहा कि– तुम इस विद्या के अधिकारी हो अथवा नहीं? उन्होने कहा, क्या , प्रभु इसकी तो परीक्षा ले लीजीये। विचार यह भी था, ऋषि–मुनियो के मस्तिष्क मे यह कि यह विद्या अधिकारी को ही दी जानी चाहिये, अनाधिकारी को नहीं देनी चाहिये। अनाधिकारी को यह विद्या प्रदान करोगे , तो राष्ट्र और समाज का विनाश हो जायेगा और यदि इस विद्या को अधिकारी को प्रदान करोगे तो उसमें उनका नामोकरण ऊर्ध्वा मे गमन करेगा और ये विद्याए मानो देखो उनके मस्तिष्क मे क्रियात्मक मे और देखो यह विद्या उनकी वृतियों मे सदैव निहित रहेगी तो इसीलिये इस विद्या को अधिकारी को ही प्रदान करना चाहिये। स्वाति मुनि महाराज देखो इस विद्या मे बड़े पारायण थे ।(२९ अक्तूबर , १९८९ ,रामप्रस्थ गाजियाबाद)

मेघो का राग गाने वाला मेघनाथ था

यह विद्या सुलोचना भी जानती थी। राजा रावण के यहाँ जब उनके पुत्रो ने शिक्षा मे पूर्णता प्राप्त कर ली तब उनकी उड़ान भी ऊँची रहती थी। महाराजा मेघनाथ अपने यानो मे विद्यमान होकर त्रिपुरी मे जाते थे। उस काल मे राष्ट्रीय व्यवस्था इस प्रकार थी कि समाज है इसका एक राजा है । इसी प्रकार और भी राजा है उन राजाओ का एक राजा इन्द्र कहलाता है । वैदिक साहित्य मे इन्द्र नाम परमात्मा को कहते है, इन्द्र वायु को भी कहते है, इन्द्र नाम आत्मा का भी कहलाया गया है , इन्द्र दक्षता को भी कहते है और नाम राजा को भी कहते है । त्रिपुरी मे सर्वत्र राजाओ को निर्वाचन किया हुआ एक राजा नियुक्त हुआ था। उसे इन्द्र कहते थे। वह जो इन्द्र है , वह तपस्वी होता है । तपस्या के पश्चात ही वह इन्द्र बनता है ।

महाराजा मेघनाथ जो पातालपुरी के कुछ विभाग पर और त्रिपुरी पर राज्य किया करते थे। परन्तु उनका ज्ञान और विज्ञान विशाल था। उनकी पत्नी सुलोंचना महाराजा शेषनाग की कन्या थी। वह भी उतनी ही वैज्ञानिक थी, जितना उसका पतिदेव मेधनाथ था। नाना प्रकार के अस्त्रो–शस्त्रो पर महा अणु और त्रेसेणुओ के ऊपर वह अनुसन्धान करते रहे। त्रिपुरी महाराजा इन्द्र से उन्होने विजय की थी , जिससे इन्द्रजीत नामोकरण उनका हुआ । महाराजा इन्द्र से उन्हे एक आग्नेय अस्त्र भी प्राप्त हुआ था । जिसका भारद्वाज मुनि द्वारा वह बालयकाल मे अध्ययन करते रहे । और उसके निर्माण करने की विद्या प्राप्त की थी । यही वह अस्त्र था जो मेघनाथ भगवान राम के साथ संग्राम के समय प्रयोग मे लाये। (रावण इतिहास)

नारायन्तक

राजा रावण के तृतीय पुत्र नारायन्तक थे। जिन्हे भारद्वाज मुनि ने चन्द्र यात्री बनाया था˙ चन्द्र यात्रा की शिक्षा नारायन्तक को भारद्वाज ने प्रदान की थी। महाराजा कुम्भकरण तो पहले से ही यह विद्या भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला मे सीख चुके थे। बेटा ! महाराजा कुम्भकरण और नारायन्तक ने अपनी विज्ञानशाला मे यानो का निर्माण किये थे। उन यानो मे एक चन्द्र भानु यान कहलाता था । एक गरूड़केतु यान था। एक कृतकयान था , एक कागावेनकुतु यान था । कागावेनकुतु ऐसा यान था कि लंका से जिस पर विद्यमान होकर मानव पृथ्वी से गति कर रहा है और परिक्रमा करता हुआ चन्द्रमा मे , बुद्ध मण्डल मे, मंगल मे आ जाता था। (रावण इतिहास)

एक समय रावण के पुत्र नारायन्तक देवर्षि नारद के द्वार जा पंहुचे। उस समय और भी ऋषि जैसे महर्षि विश्राण्डक , महर्षि अत्रि ओर महर्षि पिप्लाद आदि भी वहाँ थे। नारायन्तक ने कहा कि–प्रभु! आप तो नित्य प्रति आत्मा परमात्मा की चर्चा करते है परन्तु मैने तो विज्ञान को जाना है और उन महान यन्त्रो का आविष्कार किया है जिसमे विराजामन हो करक चन्द्रमा की यात्रा कर आता हूँ। उस समय ऋषि नारद ने कितना सुन्दर उत्तर दिया कि–हे नारायन्तक! तुमने केवल इसी विज्ञान को जाना है , परन्तु हमने उस विज्ञान को जाना है , जिससे सूर्य लोक ओर ध्रुव की यात्रा किया करते है । (१६ अप्रैल , १९६४ ,जम्मू)

अक्षय कुमार

रावण का पुत्र अक्षय कुमार भी अपने भाईयो के साथ विज्ञान मे तल्लीन रहता था। मुझे प्रभु की असीम कृपा से राजा रावण के पुत्र अक्षय कुमार के दर्शन करने का सौभाग्य मिला जो भौतिक विज्ञान से लोको की गणना किया करते थे कि यह हमारा पृथ्वी मण्डल है , उसके अग्रण्य मे अगरेती भागो मे मंगल है, दक्षिण भागो मे बुद्ध है , पूर्व भाग मे चन्द्रमा है और दक्षिण भागो मे शुक्र का वर्णन किया है । इसी प्रकार ऊपर के अनुपात मे सूर्य मण्डल के जितने सौर मण्डल है उन मण्डलो की परिगणना मानी जाती है ।

एक समय , जब राजा रावण अपने पुत्र अक्षय कुमार की विज्ञानशाला मे पंहुचे तो अक्षयकुमार को यह ज्ञान न था कि तुम्हारे पिता , तुम्हारे द्वार पर विराजमान है । बहुत समय के पश्चात जब कुछ संकेत किया तो उस समय उन्हे ज्ञान हुआ कि मेरे पिता विद्यमान है । उन्होने पिता को नमस्कार करके कहा–कि भगवन! मुझे यह ज्ञान नही था । कि आप भी मेरे द्वार पर है । उस समय राजा रावण ने कहा कि–पुत्र तुमने कुछ पाया ? उन्होने कहो–कि प्रभु ! मै एक ऐसे ब्रह्माण्ड मे पंहुच सुका हूँ। ऐसे भयंकर वन मे पंहुच चुका हूँ । जहाँ मुझे कोई मार्ग प्राप्त नही हा रहा है , मै उसी विचार–विनिमय मे अपने जीवन का मन्थन कर रहा हूँ और जो मैने जाना है उसका मन्थन कर रहा हूँ और कुछ समय के पश्चात मन्थन किया हुआ आपके सम्मुख प्रस्तुत करूँगा। यही बालक अक्षय कुमार जब माता मन्दोदरी के गर्भ मे था, उस समय माता मन्दोदरी आकाश गंगा ओर लोक–लोकान्तरो का चिन्तन किया करती थी। (अप्रैल , १९६५ ,रामकृष्णपुरम , नयी दिल्ली)

रावण का विशाल साम्राज्य

रावण के पुत्रो के राज्य

राजा रावण के पुत्र थे नारायन्तक , अहिरावण, मेघनाथ , अक्षय कुमार इत्यादि । अहिरावण पातालपुरी का राजा था और नारायन्तक सुधित राज्य का राजा था और अक्षय कुमार रोहिणी नाम के राज्य का राजा था , मेघनाथ गांधार का राजा था। रावण का सम्बन्धी खरदूषण था जो इस महान आर्यावर्त की सीमा का दमन करता चला जा रहा था। जो इस महान आर्यावर्त की सीमा का दमन करता चला जा रहा था। मारीच इत्यादि उसके सम्बन्धी आतातायी थे। परन्तु अब यह इतिहास है ।

पूज्य महानन्द जी :– गुरुदेव ! कुछ वर्णन कर दूं। कि आधुनिक काल मे इन राज्यो का कया कहते हैं? भगवन ! यह जो आपने पातालपुरी कहा है जहाँ अहिरावण राज्य करता था। उसे आजकल अमरीका कहते है। , सुधित राष्ट्र जहाँ नारायन्तक राज्य करता था उसको आधुनिक काल मे रूस कहते है और जो रोहिणी नाम का राज्य था, उसको आधुनिक काल मे रूस कहते है और जो रोहिणी नाम का राज्य था, जहाँ अक्षय कुमार राज्य करता था, उसको चीन कहते है। और गान्धार इत्यादि जिनको आधुनिक काल मे काबुल बिलोच जैसा कुछ कहते है । (०२ अक्तूबर , १९६४ ,मोंगा पंजाब)

मुनिवरो ! यह मैने संक्षेप मे तुम्हारे द्वारा रावण के इतिहास का वर्णन किया रावण का इतिहास बड़ा सुन्दर है उसने संसार मे राज्य को अपनाया , पातालपुरी को लिया ,गान्धार को लिया, सुधित नाम के राज्य को लिया , रूधिर नाम के राज्य को लिया, नाना राज्यो का अपना कर आर्यावर्त पर आक्रमण किया। यहाँ भी आकर केवल एक अयोध्या राज्य को छोड़ा था। राजा रावण इतना विस्तार अपने राज्य का कर चुका था। (२२ अक्तूबर , १९६४ ,मोंगा पंजाब)

राजा रावण के राष्ट्र मे प्रजा बहुत कष्ट मे रहती थी परिणम क्या हुआ कि प्रजा को सुखी बनाने के लिये चरित्रवानो की उत्पति होने लगी। (२२ अगस्त , १९६६ ,जोर बाग)

वेद के ज्ञाता रावण

परमपिता परमात्मा की कृपा से मुझे रावण के द्वारा किया गया वेद भाष्य दृष्टिपात करने का सौभाग्य मिला। मै गौरव के साथ कहा करता हूँ। कि रावण ने वेद का अनुपम भाष्य किया था। (०२ अक्तूबर , १९६४ ,जम्मू)

राजा रावण से एक समय महर्षि कृतकेतु ऋषि महाराज ने एक प्रश्न किया कि–तुमने वेदो को जाना है ? रावण ने कहा कि–महाराज ! मै वेदो को अच्छी तरह जानता हूँ तब महर्षि बोले! तुमने वेदो को कैसे जाना , कौन से स्थल को जाना है ? राजा रावण ने कहा कि प्रभु! वह परमात्मा का अमूल्य ज्ञान है । परमात्मा की उसमे अमूल्य निधि है । तब महर्षि ने कहा कि वेदो मे और क्या कुछ है ? रावण ने कहा कि वेदो मे संसार का ज्ञान–विज्ञान है । वह ज्ञान क्या है ? भगवन! ज्ञान विज्ञान यह है कि संसार का ज्ञान करो । और उसके पश्चात भैतिक विज्ञान के द्वारा संसार को देखो उस समय ऋषि ने कहा कि अरे! संसार भैतिक विज्ञान से नहीं देखा जायेगा आज तुम सबसे पूर्व ज्ञान प्राप्त करो ज्ञान के पश्चात आन्तरिक भावना को जानो । इस आत्मा को मेरूदण्ड मे ले जाकर के इस आत्मा का परमात्मा से मिलान करा दो। जब यह आत्मा परमात्मा की गोद मे जायेगा तब जानो कि संसार का यज्ञ करना तुम्हारा सफल हुआ है उस समय तुम्हारा । उस समय तुम्हारा भौतिक और आत्मिक यज्ञ करना सफल हो जायेगा। उस समय यह आत्मा इस संसार को

,जो परमात्मा ने रचाया है , भली–भांति देख सकता है , इसके सब विज्ञान को जानने वाला बन जाता है । (०७ नवम्बर , १९६३ ,सरोजिनी नगर , नयी दिल्ली)

कुक्कुट मुनि का लंका भ्रमण

एक समय राजा रावण अश्विनी कुमारो से औषधियो के सम्बन्ध मे कुछ विचार–विनिमय कर रहे थे। वार्ता करते करते रावण का हृदय अशान्त हो गया। रावण ने कहा कि हे मन्त्रियो ! मै भयंकर वन मे किसी महापुरूष के दर्शन के लिये जा रहा हूं । उन्होने कहा कि–प्रभु ! जैसी आपकी इच्छा , क्योंकि आप स्वतंत्र है । आप जाईये भ्रमण कीजिये।

राजा रावण मन्त्रियो के परामर्श से भ्रमण करते हुए महर्षि शाण्डिलय के आश्रम मे प्रविष्ट हो गये । ऋषि ने पूछा कि–कहाँ , तुम्हारा राष्ट्र कुशल है । रावण ने कहा कि प्रभो! आपकी महिमा है । ऋषि ने कहा कि बहुत सुन्दर हमने श्रवण किा है कि तुम्हारे राष्ट्र मे नाना प्रकार की अनुसंधानशालाए है । रावण ने कहा कि –प्रभु यह एब तो ईश्वर की अनुकम्पा है । राष्ट्र को ऊँचा बनाना महान पुरूषो बुद्धिमानो का कार्य होता है , मेरे द्वारा क्या है ? वहाँ से भ्रमण करते हुए महर्षि कुक्कुट मुनि के आश्रम मे राजा रावण प्रविष्ट हो गये । दोनो का आचार–विचार के ऊपर विचार–विनिमय होने लगा । आत्मा के सम्बन्ध मे नाना प्रकार की चर्चाए जब प्रारम्भ हुई तो रावण का हृदय व मस्तिष्क दोनो ही शान्त हो गये। राजा रावण ने निवेदन किया कि–प्रभु ! मेरी इच्छा है कि आप लंका का भ्रमण करें। उन्होने कहा कि हे रावण ! मुझे समय आज्ञा नही दे रहा है, जो आत मै तुम्हारी लंका का भ्रमण करूं । मुझे तो परमात्मा के चिंतन से ही समय प्राप्त नही होता। राजा रावण ने नम्र निवेदन किया , चरणो को स्पर्श किया। ऋषि का हृदय तो प्रायः उदार होता है । उन्होने कहा कि–बहुत सुन्दा! मै तुम्हारे यहाँ अवश्य भ्रमण करूँगा। दोनो महापुरूषो ने वहाँ से प्रस्थान किया।

राजा रावण कुक्कुट मुनि को नाना प्रकार की शालाओ का दर्शन करेते हुए अ।त मे अपने पुत्र नारायन्तक के द्वार पर जा पंहुचे जो नित्यप्रति चन्द्रमा की यात्रा करते थे । और ऋषि से बोले कि–भगवन ! मेरे पुत्र नारायन्तक चन्द्र यान बनाते है महर्षि ने कहा कि कहो, कि आप कितने समय मे चन्द्रमा की यात्रा कर लेते है? उन्होने कहा कि–भगवन ! एक रात्रि और एक दिवस मे मेरा यान चन्द्रमा पर चला जाता है और इतने समय मे पृथ्वी पर वापस आ जाता है । इसको चन्द्रयान कहते है , कृतकयान भी कहा जाता है । मेरे यहाँ भगवन! ऐसा भी यन्त्र है , जो यान जब पृथ्वी की परिक्रमा करता है तो स्वतः ही उसका चित्रण आ जाता है । मेरे यहाँ सोमभवकी किरकिट नाम का यन्त्र है ।

वहाँ से प्रस्थान करके राजा रावण चिकित्सालय मे पंहुचे जहाँ अश्विनी कुमार जैसे वैद्यराज था। ऐसे–ऐसे वैद्यराज थे जो माता के गर्भ मे जो जरायुज है और माता के रक्त न होने पर, बल न होने पर छः छः माह तक जरायुज को स्थिर कर देते थे। किरकिटा अनाद, सेलखण्डा, प्राणनी व अमेकेतु आदि औषधियो का पात बनाया जाता था। तो ऐसी चिकित्सा रावण के राष्ट्र मे होती थी। (२४ जनवरी , १९७० ,रामेश्वरम)

जिस समय राजा रावण के राष्ट्र मे अग्नि यन्त्रो का निर्माण हो गया , जलास्त्रो का निर्माण हो गया, चन्द्रमा मे यातायात बन गया, मंगल मे यातायात बन गया , सर्वत्रता मे यातायात बन गया। तो कुक्कुट मुनि ने यह कहा था, रावण , तुम्हारा राष्ट्र कोई प्रिय नहीं लग रहा है । यहाँ यन्त्रो का निर्माण है , परन्तु चरित्र का निर्माण नही। । जब तब चरित्र , मानवता नहीं आ पाती यह विज्ञान तुम्हारा नाशक बना रहेगा, यह विज्ञान मानव को नष्ट करता रहेगा। (२३ फरवरी , १९८० ,बरनावा)

राजा रावण के यहाँ भी विशाल यन्त्र थे। क्योंकि रावण को भी इस विद्या की महर्षि भारद्वाज ने ही शिक्षा प्रदान की थी । इसके पश्चात कुछ शिक्षा महर्षि सौमुक से प्राप्त की थी इसके पश्चात उन्होने ब्रह्मा से भी यह शिक्षा प्राप्त की थी अहा ! रावण ने इस विद्या को ले करके अपने राष्ट्र मे विज्ञान का प्रसार किया। अपने पुत्रो को वैज्ञानिक बनाया और अपने विधाता कुम्भकरण को वैज्ञानिक बना दिया। (0२ अगस्त , १९७० ,जोर बाग,नयी दिल्ली)

वैज्ञानिक कुम्भकरण

कुम्भकरण का बाल्यकाल का नाम अश्विनीकेतु था। किन्तु महर्षि भारद्वाज ने उसका नामकरण कुम्भकरण इसिलिये कर दिया, क्योंकि वह बलवान था, बलिष्ठ था, विशाल हृदय का था। क्योंकि कुम्भकरण प्रवे अर्थात जैसे कुम्भ का जल शीतल होता है वैसा ही शीतल सौम्य स्वभाव का कुम्भकरण था । उसका मस्तिष्क इतना विशाल था जैसे कुम्भ आकार होता है । उनमे विशेषता थी कि वह निद्रा को बहुत सूक्ष्म पान करते थे, क्योंकि वह सदैव अनुसंधान मे लगे रहते थे।

याज्ञिक कुम्भकरण प्रातःकाल यज्ञ करते , यज्ञ मे जब स्वाहा करते थे तो वह २८४ प्रकार की औषधियो को एकत्रित करके सामग्री बनाते थे। और , वह जो साकल्य था, वनस्पतियाँ थी, किसी मे अग्नि प्रधान किसी मे वायु प्रधान व किसी मे जल प्रधान होता था, उनका साकल्य बना करके आहुतियां देते थें। उनके यहाँ नौ कोण वाली यज्ञशाला थी उस नौ कोणो वाली यज्ञशाला मे जब सुगन्धित सामग्री प्रदान की जाती थी तो उसमे सुगन्धि उत्पन्न होती थी। उन सुगन्धियो को अपने यन्त्रो मे एकत्र कर लेते थे और फिर उन परमाणुओ के द्वारा मंगल की यात्रा करते थे। एक समय जब उन्होने उड़ान उड़नी प्रारम्भ की तो ऐसा कहा जाता है कि दो दिवस ओर दो रात्रियो मे वह मंगल मे पंहुच गये थे। (११ मार्च , १९७२ ,ग्राम माछरा)

क्रोध पर अनुसन्धान

राजा रावण के काल मे विज्ञान बहुत प्रियतम मे था । कुम्भकरण, अश्विनी कुमार और सुधन्वा एक समय नगरी मे कहीं भ्रमण कर रहे थे तो रात्रि समय मे एक पत्नी , अपने पति से क्रोध कर रही थी, वह अत्यन्त क्रोध कर रही थी। जब क्रोध करते करते वह पृथ्वी पर ओत–प्रोत हो गयी तो , मुनिवरो ! देखा उस माता मे जितना विष बलवती हुआ, उसे उन्होने यन्त्रो मे उसके क्रोध को परिणीत कर लिया। ऐसा कहा जाता है कि उस माता के गर्भ स्थल मे षष्ट मास का गर्भ विद्यमान था। जब अश्विनी कुमारो ने यन्त्र से दृष्टिपात किया और वहाँ के परमाणु को यन्त्रो मे ले करके उन परमाणुओ को विभक्त किया, विभक्त करने से ऐसा उन्होने निर्णय दिया कि यह जो षष्ट माह का माता के गर्भ मे बाल्य है , इस बालक की छटे माह मे बाह्य जगत मे आ करके मृत्यु हो जायेगी । मुनिवरो ! राजा के विघाता कुम्भकरण जो महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ अनुसन्धान करते थे , वे अज्ञातवास मे रह करके अनुसन्धान करते रहते थे। उन्होने और अश्विनी कुमारो ने वैद्यराज की दृष्टि से यह निर्णय दिया था। (२० फरवरी , १९८० , बरनावा)

निंद्रा पर अनुसन्धान

महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम मे देखो पुलत्स्य ऋषि महाराज के जो पौत्र थे । वे मंगल की यात्रा करने को तत्पर रहते थे। उनका विचार अनुसन्धान प्रायः चलता रहता था। एक समय महाराजा कुम्भकरण ने यह कहा कि भगवन ! मै यह जानना चाहता हूँ कि संसार मे निद्रा क्या वस्तु है उस समय भारद्वाज मुनि ने कहा यह जो निद्रा है जिसको हम सुषुप्ति कहते है । यह सुषुप्ति क्या है ? मन, बुद्धि,चित और अहंकार एक स्थान मे आ जाने का नाम ही निद्रा कहलाई जाती है उसको हमारे यहाँ सुषुप्ति कहते है । मन को जो व्यापार है मन की जो रचना है जो संसार मे दृष्टा बना हुआ है उसके शान्त होने की अवस्था का नाम निद्रा है । परन्तु प्रकृति का जो जागरूक अवस्था का व्यापार है वह जब समाप्त हो जाता है उसको निद्रा कहते है सुषुप्ति कहा जाता है । (११ मार्च , १९६२ , माछरा मेरठ)

राजा रावण के विधाता कुम्भकरण बड़े वैज्ञानिक थे। वह निद्रजीत कहलाते थे। मेरे पुत्र महानन्द जी ने मुझे कहा है कि आधुनिक जगत ऐसा स्वीकार करता हे कि वह छः माह तक निद्रा मे रहते थे। परन्तु बेटा! ऐसा नही वह छः माह तक निद्रा का पान नहीं करते थे। वह वर्षो तक निद्रा का पान नहीं करते थे। निद्रा का अभिप्रायः आलस्य कहलाता है , निद्रा का अभिप्रायः अज्ञान कहलाता है । परन्तु वह सूक्ष्म सा मन को विश्राम देते थे । मन, बुद्धि,चित्त,अहंकार को जब वह विश्राम देते थे, तो मुनिवरो ! वे अर्न्तध्यान हो करके बाह्यजगत मे से अपने को समेट करके आन्तरिक जगत मे ले जाते थे, जिससे उन्हे आत्मिक शक्ति प्राप्त हो जाती थी। योग मे निद्रा नही होती । योग तो परमात्मा का मिलान होता है । इसी प्रकार प्रकृति से जो मिलान करता है , परमाणुओ को जो संगठन करता है , परमाणुओ को एक–दूसरे मे पिरो देता है , वह निद्रा को प्राप्त नही होता । (२४ अप्रैल , १९७७ , अमृतसर)

छः मास सोना व छः मास जागने का रहस्य

हमारे यहाँ ऐसा कहा जाता हे जो मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई काल मे वर्णन कराया कि आधुनिक काल मे उनके प्रति एक प्रचलित वार्ता है कि कुम्भकरण छः माह तक निद्रा मे तल्लीन हो जाते थे और छः माह वह जागरूक रहते थे । ऐसा कहा जाता है , परन्तु मुझे ऐसा दृष्टिपात कराया गया था कि महाराजा कुम्भकरण पर्वतो पर अनुसन्धान शाला मे छः मास के लिये चले जाते थे। छः मास मे वह अपनी रात्रि के रूपो मे अपने को स्वीकार करते थे। मैं राष्ट्र मे नहीं हूँ। संसार मे नहीं हूँ मेरा कर्तव्य है कि अपनी अनुसन्धानशाला मे विराजमान रहूँ! ठतना विज्ञान उनके द्वारा था, मेघनाथ को भी उन्होने शिक्षा प्रदान की थी। कुम्भकरण जैसा वैज्ञानिक , जिसका छः मास तक अभ्यास था,वह संसार की वस्तुओ मे लोलुप नहीं होते थे। अहा! ऐसा उनका जीवन रहता था। राष्ट्र मे आते तो रावण की विज्ञानशालाओं मे उदनके वैज्ञानिको को शिक्षा देते । इस प्रकार उनका जीन छः मास के लिये लुप्त रहता था। छः मास के लिये उनका जीवन संसार मे , राष्ट्र मे होता था। राष्ट्रीयकरण पर विचार–विनिमय होता रहता था।

इस प्रकार का विज्ञान हमारे यहाँ प्रायः रहा है और आज यह वैज्ञानिको को और आत्मवेताओ दोनो को एक स्वरूप बनाना चाहिये। जैसे कोई ब्रह्मवेता है , आज किसी ऋचा को जानना है , दर्शनो मे ऋचा का वर्णन आता है , ऋचा का विचारक जो पुरूष होता है , एकान्त स्थान मे चला जाता है , भयंकर बनो मे चला जाता है अपने मे ऋचा को अर्पित कर देता है । समर्पित कर देता है । वह ऋचा को जानने मे एक–एक ऋषि को, बेटा ! लगभग एक सौ और सहस्त्रो वर्ष व्यतीत हो गये है । अहा ! वह अपने को यही नहीं जान पाये कि – मै जगत मे हूँ,संसार मे हूँ कहाँ हूँ? वह अपने को यह अनुभव कर लेते है कि–मै तो चेतना मे हूँ। मेरी चेतना ही भिन्न है । इसी प्रकार जो वैज्ञानिक होते है वे एक–एक वस्तु पर, एक एक परमाणु पर उन परमाणुओ मे जो धाराए होती है । उन पर अनुसन्धान किया करते है । अहा! बेटा मुझे व समय और काल जब स्मरण आता है, मै कहा करता हूँ कि वास्तव मे वह समाज , वह काल , किस प्रकार का था? मुनिवरो ! देखो वह काल मुझे स्मरण है , वहाँ एक एक वैज्ञानिक कैसे छः मास तक लुप्त हो जाता था और उस पर अनुसन्धान करता हुआ नाना प्रकार के परमाणु, अस्त्रो का निर्माण करने वाला बनता था। इस प्रकार की धारा अनकी प्रायः रही है । (०२ अगस्त , १९७० , जोर बाग, नयी दिल्ली)

सात्विक खानपान

भारद्वाज मुनि महाराज के द्वारा कुम्भकरण बारह वर्षो तक यौगिक क्रियाओ का अध्ययन करते रहे थे। मुझे स्मरण है वह इतने अहिंसा परमोधर्मी थे कि वह पुष्पो का व पत्रो का पान करते थे । एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने उन्हे जाल,पीपल,वट, वृक्ष आदि के पांचांग का पान कराया था। उसके पश्चात बारह वर्ष। तक उन्हे योग की विद्याओ , दर्शनो का अध्ययन और चन्द्रमा के यातायात का वर्णन कराया था। (२० फरवरी १९८०,बरनावा)

भारद्वाज के विशेष शिष्य

राजा रावण के विधाता विशेष वैज्ञानिक थे। भरद्वाज मुनि उनके गुरू कहलाते थे। वह एक समय अपने गुरु के चरणो को छू करके यह उच्चारण करने लगे कि–महाराज ! मै अन्तरिक्ष मे प्रवेश करना चाहता हूँ, अन्तरिक्ष के विज्ञान मे रमण करना चाहता हूँ। भारद्वाज मुनि ने उन्हे कुछ युक्तियां प्रकट कीं और महर्षि भारद्वाज के कथनानुसार राजा रावण के विधाता कुम्भकरण एकांत हिमालय की कन्दाराओ मे विद्यमान हो करके छः मास तक निद्रा का पान नहीं करते थें। वे ऐसे ही जागते रहते थे, क्योंकि वे व्रती थे, वह आग्नेय अन्तरिक्ष के ऊपर विचार–विनिमय कर रहे थे, अन्तरिक्ष के परमाणुओ मे अग्नि की पुट लगा रहे थे। वायु के परमाणुओ मे अग्नि की पुअ लगा कर, एक यन्त्र उन्होने अन्तरिक्ष मे त्यागा था । डेढ़ करोड़ वर्ष की आयु वाला वह यन्त्र है , उस यन्त्र की यह विशेषता रही और वह आज भी गति कर रहा है , जिस प्रकार एक लोक दूसरे लोक की परिक्रमा कर रहा है , इसी प्रकार आकाश मे वह यन्त्र भी गति कर रहा है । कुम्भकरण ने हिमालय की कन्दराओ मे विद्यमान हो करके लगभग बारह वर्ष तक अनुसन्धान किया। बारह वर्षो तक अनुसंधान करके उन्होने कुछ अग्नि के परमाणुओ को ले करके ,कुछ जल के परमाणु ले करके , कुछ पृथ्वी के पार्थिव कण को ले करके और विशेष वायु के परमाणु ले करके उन्होने एक यन्त्र का निर्माण किया था, जो पूर्व प्रणाली मे व्रनतकेतु ऋषि हुए थें, उनका उस यन्त्र मे चित्र आने लगा। उस चित्रकेतु यन्त्र मे अंतरिक्ष से चित्र आने लगे। वह जिस प्रकार अपने शिष्यो को उपदेश देते थे, उसको कुम्भकरण अपने यन्त्रो मे दृष्टिपात कर रहे थे।

राजा रावण के विघाता कुम्भकरण भारद्वाज मुनि की विज्ञानशला से नाना यन्त्रो को पान करते हुए अपनी अस्सीवी प्रणाली के जो ऋषि थे। उस समय के चित्रो का उसी प्रकार का आकार बना हुआ है । (२४ अप्रैल , १९७७ ,अमृतसर)

विद्यार्थी और वैज्ञानिक–शिक्षक

कुम्भकरण भारद्वाज मुनि के यहाँ अध्ययन करते रहे थे और उन्होने बारह–बारह वर्ष के अनुष्ठान वहां किये । वे गऊंओ के दुग्ध का आहार करते थे, और गायत्री छन्दो मे अपने को ले गये । वे छः माह भारद्वाज के विद्यालय मे विज्ञान की शिक्षा लेकर छः माह तक अज्ञातवास लेकर हिमालय की कन्दराओ मे अपनी विज्ञानशाला मे अस्त्र–शस्त्रो का निर्माण किया करते थे और वापस आकर छः माह लंका के विश्वविद्यालयो मे ब्रह्मचारियो को विज्ञान की शिक्षा देते थे। जिनका जीवन इस प्रकार का आदर्शवादी हो उनके जीपन को , अपने पूर्वजो के जीवन को , इस समाज ने रावण ने अपनी स्वार्थपरता से भ्रष्ट कर दिया। (१४ मार्च,१९८६ ,बरनावा)

भूवैज्ञानिक

भारद्वाज मुनि के आश्रम मे नाना प्रकार के यन्त्रो का निर्माण होता रहा है और पृथ्वी के राजा रावण का जितना वंशज था, वह भारद्वाज मुनि के शिक्षालयो मे अध्ययन करता रहा और विज्ञान की शिराओ मे महाराजा कुम्भकरण तो उस समय पारायण थे ही। जब वह डड़ान उड़ते रहते थ`, तो उन्होने पृथ्वी–अणु–अन्वेषण एक यन्त्र का निर्माण किया था । जो पृथ्वी के गर्भ मे जितनी–जितनी दूरी तक को जो खनिज था उसका चित्र उस यन्त्र मे चित्रण होता रहा है । कितनी स्वर्ण कितनी दूरी पर है , कौन सा खनिज है कितनी दूरी पर? इसको वह ज्ञानी जन अनुसन्धान करते रहे है । (१४ फरवरी , १९८२ ,मोदीनगर)

सूर्य–विज्ञान के ज्ञाता

महाराजा कुम्भकरण ने भारद्वाज मुनि से कहा कि–प्रभु ! सूर्य किरणो को हम यन्त्रो मे कैसे ला सकते है। मै महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ इस प्रकार की विज्ञानशालाए थी। कि जिन विज्ञानशालाओ मे सूर्य किरणो का निरोध किया जाता था। वे किरणो जल को पृथ्वी के गर्भ मे शक्तिशाली बना करके उसके रूप का परिवर्तन कर रहीं थी। और राष्ट्र के वैज्ञानिक जनों ने पृथ्वी के गर्भ से इस जल को ले करके उसका शोधन करके उसको कार्य–रूप दे दिया। महर्षि भारद्वाज के यहाँ एक ऐसी विज्ञानशाला थी, जहाँ सूर्य की किरणो को यन्त्रो मे लिया जाता था और सूर्य की किरणो से वाहन गति करते थे। राजा रावण के यहाँ इस प्रकार के वाहन थे जो सूर्य की किरणो से गति करते थे, जिनमे कोई मंगल की परिक्रमा कर रहा है , कोई चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहा है , कोई शनि की परिक्रमा कर रहा है ` सूर्य की किरणो से यन्त्रो मे गति रहती थी। (०२ मार्च , १९८२ ,बरनावा)

अन्तरिक्ष वैज्ञानिक

प्रायः ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है कि रावण के विघाता कुम्भकरण , ब्रह्मचारी सुकेता व कवन्धि तीनो ने महर्षि भारद्वाज की निर्माणशाला मे एक यन्त्र का निर्माण किया था और वह यन्त्र उन्होने चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य मे स्थिर किया । वह अपने यन्त्र से उड़ान उड़ कर उस मध्य स्थित अनुसंधानशाला मे जाते और दोनो मण्डलो का परीक्षण करते रहते थे । कहने का आशय क्या है कि हमारे वहां ऐसी–ऐसी अनुसंधानशालाए थी।

कुम्भकरण का विज्ञान इतना नितान्त था कि एक समय भारद्वाज मुनि महाराज को यहाँ ब्रह्मचारी सुकेता और महर्षि पनपेतु मुनि महाराज की कन्या शबरी और कुम्भकरण , इन तीनो ने एक यन्त्र मे विद्यमान हो करके महाराज कुम्भकरण बहतर लोको का भ्रमण किया करते थे । मुझे स्मरण है कि वह जब

पृथ्वी से उड़ान उड़ते तो चन्द्रमा मे जाते , चन्द्रमा से उड़ान उड़ी तो मंगल मे चले गये, मंगल से उड़ान उड़ी तो बुद्ध मे चले गये ओर बुद्ध से उड़ान उड़ी तो बुध मे चले गये और बुध से उड़ान उड़ी तो शुक्र मे चले गये।

स्वर्ण मे सुगन्ध एवं प्राण–विद्या पर विचार

महर्षि कुक्कुट मुनि और प्राणका सम्वाद चल रहाथा उनकी विचार धराएं प्रारम्भ थी। । तभी राजा रावण के विधाता कुम्भकरण भी उनके समीप आ पंहुचे। उनके चरणो को स्पर्श करके , वह आसन पर विद्यमान हो गये। कुम्भकरण ने कहा ,भगवन ! लंका मे आपका पर्दापण किस समय हुआ ? उन्होने कहा–कई दिवस हो गये जब मैने भयंकर वनो मे से इस लंका मे प्रवेश किया है । मै यह दृष्टिपात कर रहा हूँ। कि तुम्हारा जो लंका का चलन है , लंका के वायुमण्डल की जो धाराएं है वह मेरे अन्तःकरण को छूती रहती है और उन्हे स्पर्श करता हुआ उन्हे विचार विनिमय करता रहता हूँ। कि लंका का वायु मण्डल अशुद्ध हो गया है । राजा रावण के विघाता कुम्भकरण विद्यालयो मे ब्रह्मचारियों को विज्ञान की शिक्षा देते थे। उनकी विज्ञान की चर्चाएं चलती रहीं। कुम्भकरण जी बोले , प्रभु ! मै हिमालय की कन्दराओ मे विद्यमान था। वहा। मैने कुछ वैज्ञानिक तत्वो से ऐसा दृष्टिपात किया है कि सूर्य से कोई किरण आती है वह धातु और रसो का पिपाद कनाती है। मेरे मन मे इच्छा है कि यह जो स्वर्ण धातु है यह धातुओ मे सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है । मै इसमे सुगन्धि लाना चाहता हूँ। प्रभु! क्या इसमे सुगनघ आ सकती है अथवा नहीं, इस पर आपके विचार जानना चाहता हूँ।

जब यह वाक्य महर्षि कुक्कुट मुनि ने श्रवण किया तो वह बोले , हे ब्रह्मणे कृताम , हे वैज्ञानिक कुम्भकरण ! तुम इसमे सुगन्ध लाना चाहते हो? सुगन्ध का अभिप्रायः जानते हो कि सुगन्ध किसे कहते है ? हमारी दृष्टि मे सुगन्ध , सौन्दर्य को कहते है । सौन्दर्य उसे कहते है , जिसके जीवन मे एक रसता रहे, एक रस रहे, उस धातु के जीवन मे एक सुगन्धि सदैव उत्पन्न होती रहती है । संसार की कोई धातु ऐसी नहीं है , जिसमे सुगन्धि का प्रादुर्भाव न होता हो। एक विशेष प्रकार की गन्ध उनमे आती रहती है । विशेष प्रकार की एक कृतिभा आती है , जिसका उस धातु के जीवन से समन्वय रहता है । इसलिये आज तुम स्वर्ण मे सुगन्धि लाने के लिये इच्छा न प्रकट करो , क्योंकि स्वर्ण मे सुगन्धि तो स्वतः ही होती है । उसका जैसा प्राकृतिक स्वभाव होता है , वह उसी मे रह करके उसी प्रकार की सुगन्धि आती रहती है । उसमे सुगन्धि तुम ला नहीं सकोगे। कोई भी वैज्ञानिक सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक नहीं हुआ जो इसमे सुगन्धि ला सके । तुम्हारा एक विचार बना है । परन्तु यदि तुम प्राण स्वरूप को ऊर्ध्वा से जानो तो स्वर्ण मे विशेष प्रकार की सुगन्ध स्वतः होती है परन्तु उसमे घ्राण की शक्ति होनी चाहिये । यागियो ने ब्रह्मवेताओ ने ऋषि–मुनियो ने नाना प्रकार की धातुओ को योग के द्वारा जाना है । कुक्कुट मुनि बोले कि एक समय सोमकेतु महाराज जो की हमारे सत्रहवें महापिता थे सोम केतु महाराज एक समय सब धातुओ को अपने समीप ला करके उसमे प्राण की आभा को परिणीत करा रहे थे। तो उसमे एक विशेष प्रकार की सुगन्ध दृष्टिपात की, क्योंकि इस मानव के घ्राण के द्वारा प्राण गति करता है और प्राण मे नाना प्रकार की धातुए गति करती रहती है । नाना प्रकार के परमाणु होते है जो पृथ्वी की आभा मे रमण कर रहे है और उसका समन्वय प्राण से होता है क्योंकि प्राण ही संसार मे सबको रसास्वादन प्राप्त कराता रहता है। वह विभक्त हो करके सबको रस देता रहता है। जब ऋषि ने यह वाक्य उच्चारण किया तो कुम्भकरण ने उनके चरणो को स्पर्श किया ओर उन्होने कहा, घन्य हे , प्रभु ! मै अन्धकार मे था । मुझे तो योगी बनना चाहिये क्योंकि योग से यह वाक्य सिद्ध होगा। विज्ञान से मै इन वस्तुओ को नहीं जान पाँऊगा।

कुम्भकरण ने कहा , प्रभु ! मै आपके द्वारा यह जानना और चाहता हूँ कि हम यदि इस प्राण की साधना करना चाहते है तो प्राण की साधना कैसे करे ? महर्षि कुक्कुट मुनि ने कहा –यदि तुम प्राण की साधना करना चाहते हो तो महर्षि भारद्वाज के द्वार पर चले जाओ । वह तुम्हें इसका निर्णय दे सकेंगे । मेरा तो निर्णय केवल यही है कि संसार मे दो वस्तुओ का विभाजन होता है । दो वस्तु संसार मे दृष्टिपात आ रही है । एक विभक्त क्रिया जो विभाजन कर रही है और एक तो विभाजित हो रही है । दोनो वस्तुओ का जिस काल मे समन्वय हो जाता है , उसी काल मे योग की आभा उत्पन्न हो जताी है और मानव यागेश्वर बनने के लिये तत्पर हो जाता है । क्योंकि यह जात सर्वत्र ब्रह्माण्ड है , चाहे वह मंगल मण्डल मे हो , चाहे सूर्य हो नाना प्राकर की किरणो क्यो न हो परन्तु उनमे जो धातु पिपाद आ रहा है , पृथ्वी पर आ रहा है , मण्डल मे जा रहा है , सूर्य की किरणो मे गति कर रहा है , वह सब मनस्तव और प्राणत्व ही गति कर रहा है । जो इन दोनो का समन्वय कर लेता है , वही विज्ञान मे पारायण हो जाता है , वही महान बन जाता है , वह मृत्यु को विजय कर लेता है । संसार मे प्रत्येक मानव मृत्यु से विजय होना चाहता है । कुम्भकरण ! तुम्हे यह प्रतीत होगा कि मानव जितना भी प्रयास करता है राजा के राष्ट्र मे विज्ञान की उड़ान उड़ी जाती है परन्तु जहाँ ऋषि मुनि होते है , वह योग की उड़ान डड़ते रहते है । वे मृत्यु से बचने का प्रयास करते रहते है । विचारते रहते है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिय। ऐसा कौन सा सोमरस है जिसके पान करने से मानव मृत्यु से उपराम हो जाता है ? मेरी प्यारी माता मृत्यु से उपराम हो जाती है ? ज्ञान से यही विचारता है कि परमाणुओ का मिलान हुआ है , इनका विच्छेद होना है । जो इस प्रकार की प्रतिक्रियाओ को अपने मे विचारता है , चिन्तन करता है , वह मृत्यु के मूल को जान जाता है । मृत्यु क्या हे , संकीर्णता को त्यागतना होगा। मृत्यु क्या है , संकीर्णता है , संकीर्णता मे जितना भी मानव रमण करता रहेगा और व्यापकवाद उसके द्वारा नही होगा, वह मृत्यु के गृह मे , आंगन मे रमण करता रहेगा। मृत्यु उसको निगलती रहेगी, परन्तु जिस समय वह ज्ञान और विज्ञान की आभा को ले करके रमण करता है , व्यापकवाद को ले करके गति करता है । व्यापकवाद किसे कहते है , जो भी वस्तु मेरे द्वार है , वह सर्वत्र प्रभु की आभा है , उसी की महानता हे । जो इस प्रकार का अध्ययन करता है , वह इस अज्ञान रूपी अन्धकार को समाप्त कर देता है । महर्षि। कुक्कुट मुनि महाराज ने यही कहा–हे कुम्भकरण ! यदि आज तुम महान बनना चाहते हो तो दो वस्तुओ के समन्वय का नाम प्रकाश हे और दोनो का विभाजन हो जानाही अन्धकार को क्षेत्र कहलाता है । इसको तुम जानने का प्रयास करों। (२६ नवम्बर , १९८१ ,अजमल खां पार्क, नयी दिल्ली)

रावण के विधाता कुम्भकरण महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला मे विद्यमान हो करके उड़ान उड़ रहे है । स्वर्ण जैसी धातु मे सुगन्धि लाना चाहता है । यह सुगन्धि कैसे आयेगी? इस सुगन्धि के ऊपर वह विचार–विनिमय कर रहे है । मुझे भी अनुभव है कि महाराजा कुम्भकरण छः माह तक अपनी प्रयोशाला मे रहते और छः माह तक वह विद्यालय मे विज्ञान के वैज्ञानिको को शिक्षा देते रहते है। आधुनिक जगत तो यह कहता है कि कुम्भकरण तो छः माह तक निद्रा मे रहता था, माँस को आहार करता था, सुरापान करता था। परन्तु उनके जीवन की बहुत सी विचारधारा मुझे स्मरण है । उन्होने अपने जीवन मे सुरापान नहीं किया। माँस का भक्षण नही किया । भारद्वाज की शाला मे जो वैज्ञानिक हो वह भक्षक होगा या रक्षक होगा? वह रक्षक था, भक्षक नहीं था। वह विज्ञान की तरंगो को जानता था। विज्ञान कैसा विशाल था कि एक–एक यन्त्र ऐसा कि आधुनिक काल मे उस यन्त्र का निर्माण भी नहीं हुआ है। निचले स्थान पर जलाश्य बन गया है , ऊपर से अग्नि की वर्षा हो रही है , सर्वत्र सेना नष्ट हो जाती थी। इस प्रकार का यन्त्र आधुनिक काल मे अभी प्रारम्भ नहीं हुआ।(१८ मार्च , १९७८ ,बरनावा)

महाराज कुम्भकरण का एक यन्त्र था जिको चित्राग्नि यन्त्र कहा करते थे। वह चित्राग्नि यन्त्र इस प्रकार का था कि वह सर्वस्व जितने भी इस पृथ्वी पर लोक है । और लोको मे जो यन्त्रो के केन्द्र है उनसे सम्बन्धित उस यन्त्र मे चित्र आते रहते थे। महाराजा कुम्भकरण नक विज्ञान को लगभग १०० वर्षो तक जाना । १०० वर्ष की आयु तक उन्होने उस पर अनुसन्धान कि। परन्तु जितने भू–मण्डल पर राष्ट्र थे, सबके केन्द्रो का उनमे चित्रण आता तो संसार के सब वैज्ञानिक दृष्टिपात करने के लिये पंहुचते थे। हमारे यहाँ कुम्भकरण को सबसे अधिक वैज्ञानिक माना गया है ।

विद्या का अधिकारी–कुम्भकरण

कुम्भकरण एक समय हिमालय कन्दराओ मे चले गयें हिमालय की कन्दराओ मे उन्होने भुञ्जु महाराज से शिक्षा प्राप्त की। क्योंकि भुञ्जु महाराज वायु मुनि महाराज के १५०००वें प्रपौत्र कहलाते थे। भुञ्जु ऋषि महाराज के यहाँ पंहुचे और उनके द्वार पर जा करके उन्होने कहा, प्रभु ! मै तो आपकी शरण मे आया हूं। उन्होने कहा क्या चाहते हो ब्रह्मपुत्र! उन्होने कहा कि –मै विज्ञान चाहता हूं। मै अपने मस्तिष्क में विज्ञान की प्रतिभा चाहता हूं। उन्होने कहा,

तुम विज्ञान के अधिकारी हो अथवा नही? उन्होने कहाकि यह मेरे मस्तिष्क को अध्ययन कर कीजीये। भुञ्जु ऋषि ने उनके मस्तिष्क का अध्ययन किया। उन्होने कहा, तुम अधिकारी हो। उन्होने शिक्षा प्रदान की। उन्होने नाना प्रकार के यन्त्रो का निर्माण , नाना प्रकार के धातु , अणु, महा–अणुओ का दिग्दर्शन कराया। उनका दिग्दर्शन कराया और निर्देशन दिया–कि तुम अपने विचारो मे सुन्दर और प्रतिभा लिप्त हो जाओ।

कुम्भकरण की रावण को शिक्षा

कुम्भकरण ने सबसे प्रथम रावण को कहा था कि–राम से तुम संग्राम मत करो, राम से संग्राम करने से तुम्हे लाभ नहीं होगा। यह कुम्भकरण की शिक्षा थी, परन्तु रावण क्योंकि अधिकारी नहीं था राष्ट्र का , उसने शिक्षा नहीं मानी। सबसे प्रथम कुम्भकरण ने यह कहा था हे रावण ! हे विधाता ! यह तुमने क्या किया? तुम माता सीता का हरण कर लाये! यह तुम्हारा कार्य नही। था। यह राजाओ का कर्तव्य नहीं होता है । यदि मुझे इस राष्ट्र राष्ट्र का विचार न होता तो मै तुम्हे अस्त्रो–शस्त्रो तुम्हे नष्ट कर देता ! जब कुम्भकरण ने यह वाक्य कहा तो रावण ने कहा – तुम महान कायर हो। मेरे विधाता नहीं हो। अहा! उन्होने यही वाक्य जाना कि मै क्या करूं ? मै विधाता के साथ हूं। (०२ अगस्त , १९७० , जोर बाग)

कुम्भकरण का पश्चाताप

कुम्भकरण ने मृत्यु से पूर्व कहा था कि–हे विधाता ! पूर्व जन्म के संस्कारो के कारण कुबेर की लंका मे जन्म लेने का सौभागय किमला । पुलस्त्य ऋषि का वंशज होत हुए भी आज अपने जीवन पर कोई अनुसंधान नहीं किया,मैने केवल आपको शान्त करने के लिये,आपके राष्ट्रो के जीवो को सताया और कुछ नहीं किया। आज मेरे सब पाप मेरे समक्ष आ रहे है । इस शरीर को त्याग करके मै अगले लोको मे जा रहा हूं। आज जिस गति से मेरी मृत्यु हो रही है उससे तो मुझे वह योनि प्राप्त होगी जहाँ मुझे प्रकाश का अंकुर भी न मिलेगा। (१८ जुजाई , १९६३ ,लोधी कालोनी , नयी दिल्ली)

१८. अठ्ठारवां अध्याय–महासंग्राम

भयंकर अस्त्रो शस्त्रो का दमन–युद्ध

भगवान राम को इतने अस्त्रो शस्त्रो का कोष कहां से प्राप्त हो गया, जिससे रावण जैसे साम्राज्यवादी से संग्राम करने का उनका साहस बन गया था? राम महर्षि भारद्वाज से लगभग छः मास तक अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा ग्रहण करते रहे। यही कोष उन्हे कुछ औरो से भी प्राप्त हुआ था। उन्होने सुग्रीव से मित्रता की, उस मैत्री के बल से उन्होने राजा रावण से संग्राम किया।

एक यन्त्र रावण के काल मे भगवान राम ने त्यागा था, उस यन्त्र मे परमाणु शक्ति थी। मेघनाथ के पास भी परमाणु शक्ति थी मेघनाथ के पास भी परमाणु शक्ति को प्रहार रूप मे लाये तो भगवान राम ने ,चन्द्रमा की सहायता से महर्षि विश्वमित्र के आश्रम मे जिस यन्त्र का निर्माण किया हुआ था, वह यन्त्र चन्द्रवास केतु यन्त्र था, इसको त्यागने से मेघाथ की जिनी परमाणु–शक्ति थी वह सब दमन हो गयी। (२४ फरवरी , १९९१ ,बरनावा)

राम की गायत्री निष्ठा

राम नित्यप्रति लगभग एक सहस्त्र गायत्री का जाप करते थे। वह गायत्री का पाठ मस्तिष्क मे करते थे, शब्दो मे नहीं उनका , अभ्यास इतना ऊर्ध्व था कि वह मस्तिष्क स्थल मे प्रतयेक गायत्री को सहस्त्रो समय उनकी पुनरूक्ति करते और पुनरूक्ति करते समय उनका मन गायत्री मे रमण करता रहता। गायत्री हमारे यहाँ महापुरूषो का गुरूमन्त्र कहलाता है । उनका जीवन ऋषि जीवन था। ब्रह्मचर्य से संलग्न उनके जीवन मे किसी प्रकार की त्रुटि नहीं थी। (३१ जुलाई , १९७३ ,जोर बाग , नयी दिल्ली)

धर्मशील मर्यादा पुरूषोतम राम के जीवन को देखो । जब लंका मे युद्ध चल रहा था, त भी राम नित्य प्रातः एक सहस्त्र गायत्री का जप करके ही युद्ध स्थल मे उतरा करते थे। राम जब तक एक सहस्त्र गायत्री का जप समाप्त नहीं करलेते थे, तब तक वे संग्राम भूमि मे उपस्थित नहीं होते थे। महाराजा राम के चरित्र की तथा इतिहास की इस सुन्दर वार्ता का कथन महर्षि बाल्मीमि ने हमारे समक्ष किया है । महर्षि बाल्मीकि द्वारा वर्णित महाराज रामचन्द्र जी का इतिहास तो एक महान वन के तुल्य है । (०३ अप्रैल , १९६२ ,लाजपत नगर,नयी दिल्ली)

लक्ष्मण मेघनाथ युद्ध

जब राम और रावण का संग्राम हो रहा था तो रावण के पुत्र मेघनाथ जो बड़े पराक्रमी और बलिष्ठ थे, उनके यहाँ एक शस्त्र था, शक्तिशस्त्र उसे कहते थे। महाराजा इन्द्र को जब विजय किया था, तब वह शस्त्र इन्द्र से प्राप्त हुआ था। त्रेता के काल मे जब राम और रावण को संग्राम हुआ, जब वह संग्राम के लिये रण भूमि मे अपने रथो को ले गये तो लक्ष्मण और मेघनाथ दोनो का संग्राम हुआ । जब दोनो का संग्राम हुआ तो लक्ष्मण ने मेधनाथ की बहुत सी सेनाए नष्ट कर दीं ,तो मेघनाथ ने एक शस्त्र का प्रहार किया था। वह शस्त्र ऐसा था कि देखो , मेघ छायावान हो गये, और मेघो मे से अग्नि की वृष्टि होने लगी जब अग्नि की वृष्टि होने लगी और निचले स्थान मे अग्नि का जलाश्य बन गया। तो उसमें लक्ष्मण की सेना समाप्त होने लगी। राम के द्वारा वरूणास्त्र था, जो महर्षि भारद्वाज से उन्हे प्राप्त हुआ था तो उन्होने वरूणास्त्र का जैसे प्रहार किया तो अग्नि–तत्व को उस यन्त्र ने अपने मे निगल लिया, अपने मे धारण कर लिया। धारण करने के पश्चात संग्राम पुनः होता रहा। मेघनाथ जी ने एक यन्त्र को और प्रहार किया जिससे संसार रात्रिमय हो गया। लक्ष्मण के द्वारा एक यन्त्र था जो उन्हे शबरी से प्राप्त हुआ था और भारद्वाज मुनि के उसको निर्माणीत किया था, उस यन्त्र को जैसे ही उन्होने वायुमण्डल मे त्यागा तो एकदम ''बृहीवृतः प्रकाशम्'' सूर्य का प्रकाश हो गया, अंधकार समाप्त हो गया।

लक्ष्मण–मूर्छा और वैद्य सुधन्वा को लाना

जब पुनः संग्राम होने लगा तो मेघनाथ ने एक शक्ति का प्रहार किया, लक्ष्मण मूर्छित हो गये, प्राणशक्ति शून्यत्व को प्राप्त हो गयी। जब शून्य गति को प्राप्त हो गये तो लक्ष्मण को राम के कक्ष मे ले गयें उस सयम महाराजा विभीषण से यह कहा गया कि–तुम इस नगर के वासी हो , तुम लंका के स्वामित्व मे भी रहे हो, यहाँ कौन वैद्यराज है जो इसको सुसज्जित कर सकता है । हमारी सेना मे कोई वैद्य ऐसा नहीं है , कोई वैद्यान्चिततपृही जो इसके मर्म को जानने वाला हो । वैद्यराज बहुत थे, परन्तु उनके यहाँ ऐसा वैद्यराज नहीं था। उस समय विभषण ने यह कहा कि–शम्भो माता ब्रहे विश्वं जनं ब्रही वसचा सेवस्सुतां भुञ्जु पुत्राणि गच्छतः वेदमब्रहे सुधनवच्यातम। उन्होने कहा कि–अश्विनी कुमार भी इसको विशुद्ध रूप मे नही ला सकते । परन्तु रावण के वैद्यराज है , जिनको सुधन्वा कहते है । राम ने कहा–तुम सुधन्वा को लाओ । और उसको दो ही प्राणी ला सकते है । या तो महाराजा जामवन्त ला सकते है , या हनुमान ला सकते है । दोनो ने यह प्रतिज्ञा की कि–हम लो सकते है । हनुमान जीने वहाँ से अपने वाहन मे वेग से गति की और गति करके जहाँ वह सुधन्वा विश्राम को प्राप्त हो रहे थे, उसके आसन को वाहन मे ले करके राम की सेना मे आ गये। जब राम की सेना मे आ गये, उनको जागरूक किया गया तो सुधन्वा ने कहा कि–क्या हो गया , मै कहां निद्रित हुआ था और कहां जागरूक हो रहा हूं महाराजा हनुमान और जामवन्त दोनो ने कहा–प्रभु ! हम आपको इसलिये लाये है कि वैद्य जो होता है, वह परमात्मा के तुल्य होता है । जिस समय वह औधधि के रूग्ण को निदान करता है तो ईश्वर तुल्य उसकी प्रतिभा होती है । वह निष्कपट होता है , निर्दोष होता है, उसमे राग–द्वेष भी नहीं होता , मित्रता–शत्रुता भी नहीं होती वह एक रस रह करके रोगी के रूग्ण को चूस लेता है , अपने मे धारण कर लेता है ।

लक्ष्मण–उपचार और हनुमान द्वारा बूटी लाना

वैद्यराज जैसे निद्रा से जागरूक हुए तो महात्माओ के उपदेशो की जैसे बौछार हो रही हो, ऐसा महाराजा सुधन्वा को प्रतीत हुआ। जब सुधन्वा को यह प्रतीत हुआ कि–मेरे ऊपर तो देव–देवताओ की वृष्टि हो रही है तो अब मुझे क्या करना है यह मेरा कर्तव्य तो नही है परन्तु देखो यह मेरी प्रतिभा और अन्तरात्मा की पुकार है , बाह्यजगत तो नहीं कहता है क्योंकि मेरे राजा का राम शत्रु हे परन्तु देखो, जब मै अपनी अन्तारात्मा को विचारता हूँ तो अन्तरात्मा एक ही रस रहने वाला है , मुझे इसके रूग्ण को शान्त करना चाहिये । वैद्यराज ने उसी सम हनुमान से कहा कि जाओ , नील पर्वत पर चले जाओ ओर

वहाँ सुलक्षणा नामक एक बूटी है , सूलक्षणा वृतिका नामक एक औषधि है , उसी के साथ मे एक संगृत नामक एक औषधी कहलाती है , इन दोनो औषधियो को लाया जाये। हनुमान ने कहा प्रभु उसमी जानकारी मुझे कैसे प्राप्त होगी , कयोंकि मै तो इस विद्या को नहीं जानता ? उन्होने कहा,वह औषध ऐसी है , जिस हिमालय की कृतिका मे तुम्हे जाने के लिये मै प्रेरित कर रहा हूं। अंधरात्रि मे जब तारो के ऊपर भी मेघ छायामान हो उस समय उसके पत्र , उनके पुष्पो पर ऐसी छाया तुम्हें प्राप्त होगी जैसे यहाँ उस औषधि को कोई प्रकाश दे रहा हो । तुम उस औषधि को लाओं उन्होने कहा, बहुत प्रिय मुनिवरो ! देखो , माहराजा हनुमान ने राम की आज्ञा पा करके वहाँ से गमन किया और जाते समय महाराजा सुधन्वा ने यह कहा कि –यदि सूर्य उदय हो गया ओर औषधि को सूर्य की किरण लग गयी तोवह जो कौतुक नाम की किरण होती है , उसको हम वैष्णव नाम की किरण भी कहते है , वह सूर्य–किरण अपने मे उसके गुणो को धारण कर लेती है और रात्रि के काल मे उन गुणो को उस औषध को प्रदान कर देती है ।

यह औषधि विज्ञान बड़ा भयंकर विज्ञान है , बड़ा विचित्र विज्ञान है । इसके ऊपर बहुत अनुसंधान किया जाता है । ऐसा मुझे समरण है कि हनुमान ने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए वह कौचुक पर्वत पर जा पंहुचे और वहाँ सुलक्षणा नामक एक औषध विद्यमान थी। जो उन्होने गुणो का वर्णन किया था वह उसमे विद्यमान थे। एक ऋतिस्वत नामक औषध भी वहाँ विद्यमान थी। हनुमान जी क्योंकि बलवान थे वह शक्ति के स्वरूप को जानते थे । उन औषधियों का एक पर्वत जितनी जगहो का था, वह उस स्थली को ही ले करके गति करने लगे। भ्रमण करते हुए उन्हे नाना बाधा भी आयी , उन्हे नाना प्रकार की आपतियाँ भी आयी परन्तु वह गति से भ्रमण करते रहे, सूर्य उदय नहीं होने दिया, सुधन्वा के समीप आये, सुधन्वा ने कहा , धन्य है , जिस सेना मे ऐसे सेनानायक हों , इस संसार का कौन सा प्राणी है जो उन्हे विजय कर सकता है , जिसमे इतनी संलग्नता हो । एक प्राणी के प्रति इतनी सहानूभूति जिनके हृदय मे है । तो उस समय देखो परमात्मा का , प्रभु का, चिन्तन करते हुए सुलक्षणा नामक औषध , श्वेति नामक औषध , सम्भू नामक औषध , इन तीनो औषधियों का त्रिकोण बना करके और जलो के साथ मे उसको प्रदान करने से , वह जो शक्ति थी उसका प्रभाव समाप्त हो गया जैसे सूर्य की वैष्णव नाम की किरण उसके गुणो को अपने मे धाराण करने लगती है और रात्रि काल मे उस धरोहर को उसमे परिणीत कर देती थी। तो वह धरोहर के तुल्य जैसे धरोहर का प्रहार हो रहा हो ऐसे लक्ष्मण देखो जागरूक हो गये और जागरूक हो करके इतना ही बल , इतनी ही शक्ति उनमे पुनः से प्राप्त हो गयीं प्रातः काल सूर्य उदय होते ही उस औषधि का गुण समाप्त हो गया। बेटा! मै उच्चारण कर रहा था कि वैद्यराज अपने मे कितना मार्मिक होता है , विचारधारा उसकी कितनी विशुद्ध होती है । जीवीत लक्ष्मण अपने स्वरूप मे आ गये और उन्होने अपने ही स्वरूप मे आसन पर गमन किया तो सुधन्वा वैद्यराज अब्रहे , अपने आसन पर चले गये। (१६ जुलाई , १९८४ , जोर बाग , नयी दिल्ली)

सुधन्वा की आयु

सुधन्वा ने जिस समय लक्ष्मण को सुलक्षणा बूटी प्रदान की थी उस समय उनकी आयु सत्रहसौ वर्ष की थी। जिस समय सुधन्वा को हनुमान वहाँ से लाये और उन्होने औषधि दी तो वह युवा की भांति रहते थे क्यांकि वह सदैव साधना मे रत्त रहते और औषध का पान करते रहते थे, अपने क्रियाक्लापो मे परिणीत रहते थें। इस प्रकार का विज्ञान उनके हृदयो मे सदैव परिणीत रहा है , उनका अध्ययन इस प्रकार गम्भीर रहा बारह बारह वर्षो के उन्होने पच्चीस अनुष्ठान किये थे । और वह केवल इसीलिये कि औषधियो के अनुभव मे भयंकर वनो मे रहना कि कौन सी कहां प्राप्त होती है , कौन सा गुण है ? समाधि मे प्राण और मन को एकाग्र करके भी उनके गुणो का गुणवादन उनके समीप होता रहा है। (१७ जुलाई , १९८४ , जोर बाग , नयी दिल्ली)

अहिरावण वध और मकरध्वज का राजतिलक

पातालपुरी मे रावण के पुत्र अहिरावण राजय करते थे, मकरध्वज उनके यहाँ द्वारपाल थे, वह हनुमान का पुत्र था, हनुमान अंजनी और पवन पुत्र थे, उनका संस्कार महाराजा सुग्रीव की कन्या से हुआ था और उससे एक बालक उत्पन्न हुआ था। जिसको हम मकरध्वज कहते है , यह हमारे साहित्य मे मिलता है ।

मुनिवरो ! हनुमान जी कितने ऊँचे ब्रह्मचारी केवल एक पुत्र उत्पन्न करके जीवन भर ब्रह्मचारी रहे । जब राष्ट्र मे ऐसे ब्रह्मचारी सेनापति हो जाते है तो उस समय राष्ट्र का क्यों न कल्याण होगा।

भगवान राम ने अहिरावण को नष्ट किया और उसके पश्चात पातालपुरी मे मकरध्वज स्वामी बने। (२२ अप्रैल , १९८४ , जम्मू)

पूज्य महानन्द जीः–गुरुदेव! ऐसा कहते है कि मकरध्वज को जन्म मछली से हुआ ?

पूज्यपाद गुरूदेवः–(हास्य.....) बेटा! तुम यह जानते हुए मूर्खो वाली चर्चा क्यो किया करते हो। बेटा! त्रेता काल को हमें दृष्टिपात करनेको सौभाग्य मिला। तुम्हें यह जान लेना चाहिये कि सुग्रीव की कन्या रोहिणी थी और उसको संस्कार हनुमान से हुआ और केवल एक बालक उत्पन्न हुआ उसके पश्चात उस कन्या की मृत्यु हो गयी। उस कन्या की मृत्यु के पश्चात पश्चात हनुमान ब्रह्मचारी रहे और जब खर–दूषण आदि आताततियो का यहाँ आक्रमण हो रहा था तो यह बालक यहाँ से किसी कारण वश उनके आंगन मे आ गया और वहाँ से यह बालक पातालपुरी चला गया और अहिरावण के द्वारपाल के रूप मे रहता था। भगवान राम ने जब अहिरावण को विजय किया तो इस बालक से परिचय हुआ ओर ज्ञात हुआ कि यह तो हनुमान का पुत्र है । अहिरावण को नष्ट करने के पश्चात इसे पातालपुरी का राजा बनाया गया। बेटा! मछली के गर्भ मछली ही जन्म लेगी उसका रूप किसी और रूप मे हो जाये यह द्वितीय बात है , परन्तु मछली के गर्भ से बालक का कदापि जन्म न लेगा क्योंकि उसकी प्रकृति मे वह स्थान नहीं है । माता के गर्भ–स्थल मे कमल होता है , कमल मे बिन्दु जाता है , वहाँ तब गर्भ स्थापित होता है और बालक बनता है और जन्म को प्राप्त होते है । हमारा जो इतिहास है उसकी परम्परा को जान लेना चाहिये। (२२ अकतूबर १९८४ , मोगा मण्डी, पंजाब)

रावण का पुत्रो के निधन पर पश्चाताप

रावण–मन्दोदरी संवाद

मुझे स्मरण हे , रावण के पुत्र मेघनाथ का भी निधन हो गया और जब उनके सर्वपुत्रो का निधन हो गया तो महारानी मन्दोदरी ने रावण से एक प्रश्न किया कि–हे प्रभो! हमारा यह वंश समाप्त हो गया हे परन्तु मै यह नहीं जान पायी कि हम वेद के मर्म को जानने वाले है , हमारी परम्परा वैदिक रही है , परन्तु यह क्या कारण हुआ भगवन! जे हम से पहले ही हमारे पुत्रो का निधन हो गया?

रावण और मन्दोदरी दोनो विचार–विनिमय व चिंतन करने लगे। रावण ने कहा देवी, तुम ही इसका कुछ कारण बाताओ मै नहीं जान पा रहा , मुझे अज्ञान छा रहा है । महारानी ने कहा कि –प्रभु ! मेरे विचार मे तो यह आता हे कि जो दूसरो की कन्या को अथवा पत्नी को छल कर लाता है उसका यही दुष्परिणाम होता है । रावण ने कहा कि–नहीं कोई और ही कारण है। मन्दोदरी ने कहा कि–प्रभु! मेरे विचार मे ता`यह भी आता हे कि वेद की विद्या तो हमारे समीप रही किन्तु हम राष्ट्र को चरित्रवान नहीं बना सके तो हम स्वयं भी वैदिकता को नहीं अपना सके।

महारानी ने जब यह कहा तो रावण नक कहा कि यह भी हो सकता है पर मैने संसार मे कुछ ऐसे कर्म किये है, जिनका दुष्परिणाम मेरे सम्मुख आ रहा है । उन्होने कहा कि –प्रभु ! यह कैसे ? रावण ने कहा कि – वह इसीलिये कि मैने संसार मे बहुत सी विद्याओ का अध्यन किया परन्तु जानते हुए सदुपयोग न कर सका। आज सब कुछ जानते हुए भी मुझे भारी अज्ञान छा रहा है । मै समाज को व सवयं को वेद के अनुकूल न बना सका। मै राष्ट्र मे चरित्र की स्थापना न कर सका और जिसका चरित्र व संयम नष्ट हो जाता है , वह अन्ततः विनाश को प्राप्त होता है ।(०२ मई , १९७८ ,मुज्जफरनगर)

रावण की नाभि मे अमृत का रहस्य

महाराजा शिव ने एक यन्त्र का निर्माण किया था जिसमे स्वर शक्ति थी। जब रावण को यह प्रतीत हुआ कि महाराजा शिव के वास ऐसी अमोघ शक्ति है और वह यन्त्र उन्होने मार्कण्डेय ऋषि की सहायता से प्राप्त किया हैं उस यन्त्र को धारण करके युद्ध करने वाले योद्दा को कोई वध नहीं कर सकता। रावण ने शिव के द्वारा प्रार्थना की, चरणो की वन्दना की, प्रसन्न होने से शिव ने वह यन्त्र रावण को प्रदान कर दिया। इस यन्त्र का नाभि और

हृदय से समन्वय रहता था। रावण ने यन्त्र को ला करके अपने गृह मे एक स्तम्भ के मध्य मे स्थिर कर दिया था। परन्तु यन्त्र की तरंगे उन्हे तरंगित रती रहती। मानो जब तरंगे उसमे है , जब तक वह यन्त्र, नाभि और हृदय–केन्द्र को सता प्रदान करतारहता , उस मानव का वध नहीं हो सकता था। महाराजा शिव रावण के आचार्य भी थे और वह गुरू भी कहलाते थे। अतः उन्होने वह यन्त्र प्रदान कर दिया।

जब राजा रावण और भगवान राम का संग्राम हुआ तो उसमे यह विशेशता रही कि रावण की नाभि से उस यन्त्र का समन्वय रहता था और वह राम से नष्ट नहीं होता था। जब राजा रावण और राम के संग्राम को बारह दिवस हो गये तो राम ने आश्चर्य मे होकर अपनी सभा मे कहा कि–यह तो बड़ा आश्चर्यजनक है कि रावण का वध नहीं हो रहा है ! उन्होने कहा–तो भगवन! क्या करें। हनुमान ने जामवंत से कहा ! कि हे जामवंत तुम जानते हो शिव को उन्होने प्रभु जानता हूँ । और हनुमान ने कहा , उनके ज्येष्ठ पुत्र मेरे सखा रहे है और मै उन्हे भी जानता हूँ । उन्होने कहा बहुत प्रियतम और विभीषण से कहा , हे विभीषण ! यह यह रावण का बध क्यों नही हो रहा है? उन्होने कहा, प्रभु! इसका उत्तर महाराजा शिव देंगे। राम नक कहा कि–हनुमान और जामवंत दोनो को ब्रह्माण का रूप धारण करके जाना चाहिये । राम ने यह स्वीकार कर हनुमान ओर जामवंत को आज्ञा दी कि–तुम महाराजा शिव से यह प्रतीत करके आओ कि रावण का वध क्यो नहीं हो रहा है ? क्या राष्ट्र मे अन्धकार ही रहेगा, प्रकाश नहीं आ पायेगा । जब तक यह अभिमानी रहेगा तब तक प्रकाश नहीं आ सकेगा? और यह अन्धकार की उपलब्धि होती ही रहेगी। उन्होने कहा? बहुत प्रियतम!

महाराज जामवंत और हनुमान दोनो ने प्रस्थान किया और भगमण करते हुए कैलाश पर जा पंहुचे, जहाँ वे (शिव) राजस्थली मे राज करते थे। जब वे उनके समीप पंहुचे तो उनका स्वागत कर आसन दिया गया। अतिथि सेवा कर शिव ने कहा '–कहो ब्रह्मण! आज तुम्हारा आगमन कैसे हुआ हैं? उन्होने कहा, प्रभु आपसे कुछ प्रश्न करने है । शिव ने कहा ,मै तो प्रश्न योग्य नहीं हूँ, तुम मंगलम ब्रह्मेः तुमने बड़ा अध्ययन किया है । उन्होने कहा नहीं भगवन । हम राष्ट्रीय विचार गोष्ठी मे विद्धमान होना चाहते है । उन्होने कहा बहुत प्रियतम! रात्रि काल मे उनकी विचार गोष्ठी हुई और प्रश्न यही रक्षा कि राम कैसे विजयी हो सकते है ? महात्मा जामवंत ने कहा मेरी जिज्ञासा हे कि रावण को आप क्या जीवीत ही दृष्टिपात करना चाहते हो, उन्होने कहा नही, विप्र! हमारे समीप कोई ऐसा विचार नहीं है ।

उन्होने एक वाक्य कहा कि–महाराज! रावण और राम का संग्राम चल रहा है । रावण का कुटुम्ब समाप्त होने जा रहा है । हे प्रभु ! आप तो उनके राष्ट्र आचार्य हे , आपको उस कुटुम्ब से , परम्परा से स्नेह है , आप उनकी सहायतार्थ क्यो नहीं अपनी शक्ति का प्रयोग कर रहे है? महाराजा शिव ने कहा कि हे विप्रा! मै इसलिये उनकी सहायता नहीं कर रहा हूँ क्योकि जो राजा अपने उद्देश्य से दूर चला जाता है जो राजा अपने उद्देश्य को द्वितीय स्वरूप धाराण करा लेता है बुद्धिमानो को और जो विचारक पुरूष होते है। उन्हे उनकी सहायतार्थ नहीं जाना चाहिये । इसलिये मै गमन नहीं कर रहा हु। उन्होने कहा, तो क्या आप राजा रावण का समाप्त होना स्वीकार करते है । ऐसा मुझे स्मरण है मै उस कुटुम्ब के निकट रहा हूँ। राजा रावण ने इस समाज के चरित्र की रक्षा न करके उन्होने समाज को दुरूपयोग किया है। महाराज शिव के हृदय मे कुछ कल्पना जागी । उन्होने कहा–ऐसा प्रतीत होता है कि तुम विप्रो के रूप कोई और ही हो । उन्होने अपना भेद स्पष्ट किया और कहा कि एक जामवंत है और एक हनुमान है । उन्होने कहा कि–अच्छा ! तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? उन्होने कहा कि–महाराज ! हम इसलिये आये है कि भगवान राम ने आपको निमन्त्रण किया है कि उनकी सभा मे कुछ अपना विचार प्रकट कर जायें कि क्या करना चाहिये ? महाराजा शिव का स्नेह अयोघ्या के राजाओ पर भी विशेष रहा है । रघुवंश मे भी उनकी विशेष अनुपमता रही है । उन्होने कहा –अच्छा , प्रियतम! मै यहाँ से गमन करूंगा।

महाराज शिव का परामर्श

भ्रमण करते हुए आने यानो मे विद्यमान हो करके महाराजा शिव भगवान राम के समीप आ गये। उनका विचार–विनिमय चल ही रहा था कि एक दिवस समाप्त हो गया था, द्वितीय दिवस आ गया और जो उनकी गोपनीय सभा होने वाली थी , महाराज शिव उसमे सम्मिलित हो गये और विचार–विनिमय होने लगा।

विचार–विनिमय करते हुए भगवान राम ने शिव के चरणो की वन्दना की और कहा कि –भगवन! रावण का कैसे ह्रास कर सकता हू ? मुझे अपनी वाणी से उच्चारण कीजिये , मैं क्या करूं।? उन्होने यह वाक्य स्वीकार कर कहा , हे राम ! तुमसे रावण विजय नही हो सकेगा। उन्होने पूछा कि–क्यों? शिव बोले ,–क्योंकि उनकी नाभि मे अमृत कहलाया जाता है । सबसे प्रथम तो इन्होने बाल्यकाल मे योगाभ्यास किया। उसके पश्चात जब मेरे संपर्क मे आये तो इनको हमने एक यन्त्र दिया था ओर उसने वह महारानी मन्दोदरी को समर्पित किया था और उस यन्त्र मे एक विशेषता है । इनका जो राष्ट्र गृह है और राष्ट्र गृह मे एक स्तम्भ है उस मे यह यन्त्र लगा हुआ है इसकी नाभि की जो जीवन शक्ति है उससे यन्त्र का समन्वय है। इसलिये कोई यन्त्र यहाँ कार्य नहीं कर पाता । जब उन्होने यह वाक्य प्रकट किया तो राम ने कहा कि –महाराज! यह कैसे हो सकता है ? उन्होने कहा, जामवंत और हनुमान दोनो ऐसे है जो महारानी मन्दोदरी की वन्दना करके यन्त्र को दान मे ले सकते है क्योंकि मन्दोदरी जहाँ विदुषी है , पवित्र है वहाँ दानी भी बहुत है , यदि उसने अपने सुहाग का दान तुम्हे प्रदान कर दिया तो तुम राजा रावण को किसी भी काल मे विजय कर सकते हो और यदि सुहाग प्रदान नही किया तो तुम रावण का किसी भी काल मे विजय नहीं कर सकते । महाराजा शिव ने कहा कि–हे राम ! तुम्हे प्रतीत है मार्कण्डेय ऋषि महाराज ने उस यन्त्र का निर्माण किया था। तुमने श्रवण भी यिका होगा, जिस समय अंतरिक्ष मे जा करके हमने यन्त्र को दृष्टिपात किया था। जहाँ पृथ्वी और चन्द्रमा दोनो की आकर्षण शक्ति का समन्वय होता है । , वहाँ एक यन्त्र विद्यमान था और यन्त्र मे कौन? महर्षि। मार्कण्डेय ऋषि महाराज और महर्षि सोनक यह दोनो विद्यमान हो करके अनुसंधान कर रहे थे । वहाँ इस यन्त्र का निर्माण हुआ, जो उन्होने हमे प्रदान किया । हमने यह रावण को प्रदान किया था। यानाम ब्रह्मः कृतं देवः अब महाराजा शिव कहते है कि –मैने यन्त्र इसे प्रदान किया है , यह तुमसे लिया जाये तो इसे अपने मे अपना लो अन्यथा इसकी मृत्यु नहीं होगी।

यन्त्राहरण के लिये जामवंत–हनुमान का प्रयास

महाराज शिव ने इतना उच्चारण करके यान मे विद्यमान हो करके कैलाश के लिये , अपने स्थान के लिये प्रस्थान किया । राम रात्रि समय यह चिंतन करते रहे थे कि इसे कैसे अपनाया जाये, मन्दोदरी से कैसे भिक्षा प्राप्त की जा सकती है? राष्ट्रीय विचारो मे सब प्रकार की आभा प्रकट की जाती है ।महाराजा जामवंत व हनुमान दोनो ने यह स्ववीकार किया कि–महाराज! आप चिंतित न होईये । हम लंका मे प्रवेश करेंगे ओर अपनी आभा प्रकट करके कोई न कोई यत्न करेंगे। दोनो ने ब्राह्मण के स्वरूप को धारण करके , क्षत्रियपन को त्याग करके, क्योंकि दोनो बुद्धिमान थे, वेदो के ऊपर अनुसंधान करने वाले थे, हनुमान और जामवंत दोनो ने गमन किया और भ्रमण करते हुए लंका पंहुचे।

वे भ्रमण करते हुए रावण के कक्ष मे आये और रावण को दृष्टिपात किया । रावण ने विचार किया कि–मेरा कुटुम्ब चला गया है मै अब राम को नष्ट भी कर दूंगा तो भी इतना राज्य करके क्या करूंगा? यह भी उन्हे एक चिन्ता थी। उनके हृदय मे नाना प्रकार की क्रिया उत्पन्न हो रही थी । हनुमान ओर जामवंत जब पंहुचे तो रावण ने उनका बड़ा स्वागत किया और कहा , आओ विराजो। उन्होने कहा–प्रभु! आपं ब्रव्हे कृतम केसे उद्विग्न हो रहे हो? उन्होने कहा,मै चिंतित हो रहा हूँ कि मै लंका राष्ट्र मे अपना क्रिया–कलाप करके क्या करूंगा। मै चिन्तन कर रहा हूँ। मेरा निबटारा नहीं हो रहा है । उनकी एक कृति ले करके हनुमान जी ने कहा , हे भगवन! आप रावण है और राम रावण की एक राशि है , तुम राम के आश्रित हो जाओ। रावण ने कहा , ऐसा नहीं हो सकता। मै उनसे सन्धि नहीं करूंगा। यह विचारधारा उनकी सम्पन्न वृतियो मे रत्त हो गयी। कुछ समय वहाँ वास करने के पश्चात वे एक समय महारानी मन्दोदरी के समीप पंहुचे। महारानी मन्दोदरी ने दन ब्रह्मण रूप धारियों को कहा, आईये भगवन! विराजिये। उन्हे वे जान नहीं सकी। उन्होने मंगलम ब्रह्मे गृह मे उनका स्वागत किया । उन्होने कहा, आईये भगवन विश्राम कीजिये।

जामवंत बोले कि–हम ब्रह्माण है हनुमान जी ने कहा कि–हम ब्रह्माण है । हम तुम्हारा कुछ भी पान नहीं करेंगे। उन्होने कहा, क्या प्रभु! ऐसा क्यो, उन्होने कहा–हम कुछ दान प्राप्त करने आये है । दान हमे प्राप्त होगा तो हम तुम्हारे अन्न इत्यादि का पान कर सकते है । उन्होने कहा, प्रभु ! मेरे समीप

क्या दान देने को है मेरी सर्वत्र लंका विनाश के मार्ग पर जा रही है । हे प्रभु! अमृताम बह्म आप अन्न का पान करो । हमारे यहाँ यह कहते है कि जिस गृह मे बुद्धिमान ब्रह्मा का चिन्तन करने वाले आ जाते है ओर गृह मे आ जाने के पश्चात यदि उसका स्वागत नहीं किया जाता उनको अन्नादि पान नहीं कराया जाता तो वह अपने पापो को त्याग देता है और गृहस्थियो के पुण्यो को ले जाता है । हे प्रभु! आप अपने पाप त्याग देंगे और मेरे पुण्य ले जायेंगे । मै हीन बन जाऊंगी। उन्होने कहा, देवी! हम अन्न नहीं पान करेंगे जब तक हमारी इच्छा पूर्ण नहीं होगी । उन्होने कहा, प्रभु! तुम उच्चारण करो, क्योकि प्रतिज्ञाबद्ध वही प्राणी होता है ,जो चाहता है, उसे वह प्रदान किया जाये तुम भिक्षुक हो और हम गृहस्थ आश्रम मे वास करते है। गृह वही कहलाता है जो सबका स्वागत करता है । हे प्रभु ! हम आपका स्वागत करते हैं। आप दान मे जो चाहते हो वह स्वीकार करो । महारानी मन्दोदरी ने कहा कि क्या तुम वास्तव मे ब्राह्मण हो , उन्होने कहा हाँ महारानी मन्दोदरी ने पूछा तो क्या चाहते हो उन्होने कहा हमारी इच्छा यह है कि हमारी इच्छा यह है आपं ब्रह्मणः वचनतं ब्रही आप अपनी वाणी से हमे दूरिता न करें तो हम अपनी वाणी से कुछ वाक्य उच्चारण करें। महारानी मन्दोदरी ने कहा कि राजलक्ष्मियां अपने वचनो से दूरी नही हुआ करतीं यह इनका आभूणण है । यह इनका धर्म है , यह इनकी मानवता है , यह राष्ट्र की मर्यादा होती है यदि वाक्य उच्चारण करके उन्हे समाप्त कर दिया जाये तो वहाँ राष्ट्र की मर्यादा समाप्त हो जाती है । इसलिये मै अपने वाक्य से दूरी नहीं हो सकूंगी । ब्रह्मणा! तुम उच्चारण करो। उन दोनो ने एक स्वर मे कहा, हे माते! हे दिव्या! तुम्हारे इस खम्बे मे यन्त्र विद्यमान है , हम उस यन्त्र को चाहते है , अन्यथा हम भोज नही करेंगे।

महारानी मन्दोदरी वेद की मर्मज्ञ थी । विचारो वाली थी, वह अपने मे विचार–विनिमय करने लगी कि यह तो तेरा सुहाग है । उन्होने कहा, हे ब्रह्मवेताओ ! यह निर्णय दो कि तुम्हें किसने कहा है कि यह यन्त्र यहाँ स्थिर है ? यह तो मुझे और मेरे स्वामी को ही प्रतीत है , मुझे इन शब्दो से ऐसा प्रतीत होता है तुम ब्रह्माण नहीं हो । उन्होने कहा कि हे ब्रह्मः तुम हमे जानो कि हम ब्राह्माण है आपकी दृष्टि मे , परन्तु महाराज शिव ने ही निर्णय दिया है , हमें शिव ने यह कहा है । उन्होने कहा जब शिव मेरे सुहाग को नहीं चाहते तो मै यन्त्र को प्रदान कर सकती हूँ । क्योकि शिव तो हमारे राष्ट्र के सखा है और इस लंका के वह सर्वस्व है । वह कृतिधर्मा के पुत्र कहलाते है महाराजाशिव के पिता कृतिधर्मा थे। यह हमारा वृत है , मानो वे भी लंका के बड़े मर्म को जानते है और जो भी हिमालय का राजा बनता है , उसी को शिव कहते है । आपको यह तो प्रतीत ही है कि वह जो कृतिधर्मा शिव कहलाते थे। इनके पिता और जो राजा अब शिव है। ये मानोति नाम के राजा कहलाते है । मानोति राम का राजा ही जब हिमालय मे आ गया तो शिव कहलाया । शिव एक उपाधिवृत है । यह शिव एक उपाधि मानी गयी है , जिसके राष्ट्र मे इतने ऊँचे विचारो वाली प्रजा हो , पर्वतीय क्षेत्रो मे जो राज्य करने वाला हो उसे शिव कहते है । महारानी मन्दोदरी ने कहा–वह तो शिव है सखा है । यदि वे ही मेरे सुहाग को नहीं चाहते तो मै यन्त्र को प्रदान कर दूंगी। मेरे प्यारे ! देखो महारानी मन्दोदरी ने शिव की आज्ञा का पालन किया और उन्होने खम्बे के मध्य से यन्त्र को निकाल कर उन्हे प्रदान किया। उन्होने कहा'धन्य है मातेश्वरी! तुम्हारे त्याग को,धन्य है, तुम्हारे दान के लिये तो तुमने मुझे दान दिया ! यह दान नहीं यह तुम्हारा सुहाग है । महारानी बोली–प्रभु! मै तो इसको जानती हूँ, परन्तु तुम इतने प्रसन्न हुए इस यन्त्र को ले करके मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम ब्रह्माण नहीं हो। वे दोनो मौन हो गये और मौन हो करके उन्होने कहा, हां मातेश्वरी ! तुम सत्य कहती हो। मेरा नाम जामवंत है और यह महाराजा हनुमान है । महारानी मन्दोदरी ने अपने मे जब यह स्वीकार किया तो यह कहा कि–अमृतां भूः वर्णनं ब्रह्मे कृतम कुटुम्ब तो मेरा चला गया परन्तु पति रहा है । मै सुहाग की रक्षा चाहती थी। जब सर्वत्र राजा रावण को नहीं चाहते तो उसका वध तो होना ही है । अपने मे इस प्रकार की वार्ता प्रकट करते हुए उन्होने यन्त्र को प्रदान कर दिया । यन्त्र को ले करके वह यन्त्र ब्रह्मणे कृतम जा रहे थे तब उन्ह शिव के यहाँ से एक आकाशवाणी यन्त्रो के द्वारा मिली कि–हे जामवंत इसे समुद्र मे अर्पित कर देना अन्यथा यह शक्ति देता रहेगा। उस यन्त्र को ले करके जो नाभि कुम्भ को शक्ति देता था, जामवंत और हनुमान ने उसे समुद्र के मध्य मे विद्यमान कर दिया । वह यन्त्र वहाँ समाप्त हो गया।

रावण वध

जब राजा रावण से संग्राम हुआ तो उसे वह शक्ति आनी समाप्त हो गयी । जब राम ने यन्त्रो का प्रहार किया तो राजा रावण ने विचारा कि–आज मुझे शक्ति प्राप्त नहीं हो रही है । राम ने कहा , रावण आज तो तुम्हारा वध होना ही है । रावण ने कहा यह क्यों? राम ने कहा क्योकि आज तुम्हे प्रतीत भी हो गया होगा। राम ने रावण को शस्त्रो से बद्ध कर दिया। तब रावण रसातल को चला गया। (०२ सितम्बर , १९९० , रासना,मेरठ)

मैने तुम्हें बहुत पुरातन काल मे निर्णय देते हुए कहा था कि रावण की नाभि मे अमृत का एक भण्डार है । उनके यहाँ एक भण्डार तपस्या का भी था, जो बाल्यकाल मे महाराजा ब्रह्मा के द्वारा उन्होने शिक्षा प्राप्त की थीं मैने कई काल मे वर्णन करते हुए कहा कि हमारे यहाँ कई उपाधि है , उन उपाधियों मे यह जगत , यह राष्ट्र अपनी क्रिया करता रहता है जैसे ब्रह्मा एक उपाधि है । ब्रह्मा परमपिता परमात्मा को भी कहा जाता है , परन्तु ब्रह्मा लौकितता मे , रूढ़ि मे , वेद के प्रकाण्ड विद्वान , वेद के गर्भ को जानने वाले को भी ब्रह्मा की उपाधि प्रदान की जाती है।

विचार–विनिमय क्या ? चन्द्रमा से भी अमृत को ले करके नाभि केन्द्र मे एकत्रित किया जाता है । वह कैसे होता है ? पूर्णिमा के दिवस मानव समुद्र के तट पर विद्यमान होता है , क्योंकि पूर्णिमा और चतुदर्शी के दिवस चन्द्रमा सोम रस को लेता है और वह समुद्रो के जलो को उत्थान और अपनी कान्ति मे सोम को ले लेता है । उस सोम से कृतिभा एक सतो–पिपलादी सतो वृतिका होत्री प्राणायाम करके हम उन परमाणुओ को रसना के साथ मे लेता है । रसना के निचले भाग मे चन्द्र वाहक एक नाड़ी होती है उस नाड़ी का सम्बन्ध पुरातत नामकी नाड़ी से होता है , इंगला–पिंगला–सुषुम्ना नामकी नाड़ियो से होता है । एक नाड़ी पिंगला से चलती है , जो कृति घ्राण नाड़ी कहलाती है उसको अगाध सम्बन्ध मानव की नाभि से होता है । आज मै तुम्हें कुछे यौगिक आचार्यो की आभा प्रकट कर रहा हूँ तो उन्होने मुझे निर्णय कराया है वह अमृत को नाभि मे एकत्रित करते है ।

हमारे यहाँ नाभि के दो केन्द्र माने जाते है । हमारे ऋषियो ने इस मानव शरीर की दो दो नाभियां मानी है । एक नाभि ब्रह्मरन्ध्र माना हे ओर एक नाभि उदर के मध्य माना है । परन्तु योगियो की नाभि जहाँ अमृत एकत्रित किया जाता है , वह ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है , जिससे वह सोमरस का पान करता है और जो प्राणायाम करने वाले , नाभि केन्द्र मे इसको शारीरिक आभा मे एकत्रित करने वाले होते है । वहाँ प्राण को एकत्रित किया जाता है । उस प्राण मे शीतली प्राणायाम करके इस नाभि केन्द्र को ऊर्ध्वा मे लाने के लिये वही अमृत का गमन ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्वा भाग मे एक सतो पिपलाद अवृत नाम का स्थान है, जहाँ सोम रस भरण हो जाता है , वहाँ अमृत एकत्रित हो जाता है । योगीजन जब इस त्रिवेणी के स्थान मे गमन करके अपनी क्रीड़ा करने लगते है । तो प्राण ओर मन की टुकटुकी के द्वारा वह ब्रह्मरन्ध्र मे जा करके जब पंखुड़ियां गति करती है , तो वह जो अमृत है , वह झरना आरम्भ हो जाता है । झरना जब प्रारम्भ हो जाता हे तो उसमे से सोम की वृष्टि होती है । योगीजन उस सोमरस को पान करते है ओर ब्रह्मरन्ध्र की गति होत ही पिपाद स्थान मे परमाणु जब झरने लगता है तो जितना यह ब्रह्माण्ड है , लोक–लोकान्तर है , यह आकाश गंगाए हे इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को योगी अपने मस्तिष्क मे अपने नाभि केन्द्र हृदय मे समाहित कर लेता है ।

मृत्यु शैय्या पर रावण का पश्चाताप

राजा रावण नष्ट हो गया और जब मृत्यु शैय्या पर विद्यमान हो गया वह राम को कहते है कि राम–! तुमने मेरा वध किया और यह वध नहीं होना चाहिये था। उन्होने कहा–क्यों नहीं होना चाहिये था, तुमने अपने जीवन मे एक महान पाप किया है कि तुम भयंकर वनो से एक अनाथ देवी को अपने गृह मे ले आये। राजा के लिये यह बहुत महान पाप होता है , जो वह राष्ट्र मे वास करने वाली किसी भी कन्या को और किसी भी देवी को कोई भी राजा अपने गृह मे ले आता हो उस राजा से अधिक कोई और पापी नहीं होता । जिस राजा के राष्ट्र मे राजा ही देवियों का सतीतव नष्ट करने वाला हो, वह राजा की महानता नहीं कहलाती । वह राजा तो दानव होता है , वह राजा धूर्त कहलाता है । उस राजा का प्रजा को वध कर देना चाहिये, जहाँ राजा के इस प्रकार के दूषित विचार हो जाये।

मुझे एक समय महाननद जी ने यह वर्णन कराया है कि यह जो वर्तमान काकाल चल रहा है यह बहुत समय से इसी कृतिभा मे रत्त हो रहा है । दूसरो की कन्याओ को हनन करना, देवियो का हनन करना, इसीलिये तो आज राजा है , तो वह कल नष्ट होने जा रहा है। आज वह अधिपति है , परन्तु

देखो कल उसका समय ऐसे आ रहा है कि वह पर्वतो मे चला जायेगा। या नष्ट हो जायेगा। बेटा! ब्रह्मणे कृतम, मे इस सम्बन्ध मे विशेषता मे नही जा रहा हूँ। राम ने यही कहा कि–रावण ! तुम यह पाप स्वीकार करते हो अथवा नहीं। उन्होने कहा, प्रभु मै क्या करता, आपने मेरी भगिनी सोमतीति के मुखारबिनदु को दूषित किया। राम ने कहा–रावण ! मैने नहीं किया। आपने मेरी मानवता ओर चरित्र को जाना नहीं । आप मुझे जानने के लिये तत्पर होते तो मे इसका उतर दे सकता था। परन्तु तुमने जाना नहीं , तुम्हे यह प्रतीत है कि उस समय वह मोहिनी बन गयी । मोहिनी बनने पर मैने प्रार्थना की और वह स्वयं वहाँ से वृत चली गयी । उन्होने स्वयं अपने लिये वह नृत्य किया। हम दोनो हम दोनो क्षत्रिय थे और क्षत्रियो का यह धर्म नही है कि हम किसी दिव्या के मुखारबिन्दु को भ्रष्ट कर दें या उसके अंग पर हमारे हस्त दूषित तरंगो को लेकर नहीं जा सकते । माता की दृष्टि से जा सकते है , बहन की दृष्टि से जा सकते है , किन्तु पत्नी जान करके हमारे भुज वहाँ तक नहीं जा सकते । हम क्षत्रिय है , हमारे रघुवंश की कोई परम्परा यह नहीं कहती।

रावण को उस मृत्यु समय यह ज्ञान हुआ। उन्होने कहा–राम ! तुमने मुझे अवगत क्यों नहीं कराया। राम बोले, प्रभु! मै अवगत कैसे कराता , क्योंकि आपका जो राष्ट्रीय अभिमान था, वह मृत था। मुझे स्मरण है तुमने सम्पाति के राज्य को लिया। स्म्पाति का राज्य समुद्र के तट पर था। सम्पाति और गरूड़ दोनो विधाता थे और वे समुद्र राष्ट्र के राष्ट्रपिता थे। तुमने उनसे राज्य ले करके भिक्षुक बनाया था। यथार्थ तुम्हे अच्छा नही लग सकता था। सुरसा मगध राष्ट्र की राज्यवेता थी। तुमने उस राष्ट्र को लेकर के सुरसा को अपने यहाँ मानव सेवक की वृतियों मे रत्त कराया। क्या मै तुम्हारी राष्ट्रीय प्रणाली को नहीं जानता? तुमने ही सोमवृतिका राजा को पातालपुरी मे नष्ट करके अहिरावण को वहां का अधिराज बनाया । अधिराज बना करके तुमने वहाँ की प्रजा को नष्ट किया। दूसरो की देवियो को हनन करने की तुम्हारी बहुत समय से एक वृतिका बन गयी । रावण मौन हो गया और रावण ने यह कहा कि–हे राम ! वास्तव मे जो वर्णन कररहे हो, वह यथार्थ है , मुझे क्षमा करो। राम ने कहा कि–तुमने पातालपुरी मे ही कीति। नाम के राजा को हनन करके उनकी पत्नी को तुमने हनन किया। रावण यहाँ मौन हो गया। राम ने कहा, हमारे रघुवंश के राजा सगर से, महाराजा भागीरथ से ले करके कोई वंशज आपको ऐसा नहीं मिलेगा जो किसी की दिव्या का हनन करने वाला हो । जब भी राजा को अभिमान होता है , उसका उस काल मे नाश हो जाता है , क्योंकि अभिमान मे वह दिव्याओ का हनन करता रहता है । हनन करने का अभिमान राष्ट्र को निगल जाता है । रावण ने कहा–, हे प्रभु! मेरे यह प्राणंत हो जायें। मेरे श्रोत्रो मे यह शब्द सुनने की शक्ति नहीं रही। तब राम लक्ष्मण को ले करके अपने आश्रम मे चले आये, जहाँ पे विश्राम करते थे। (०२ सितम्बर १९९०, ग्राम रासना)

मरणाासन्न रावण की शिक्षा

राम के तीखे वाणो से रावण जब मृत्यु की शैय्या पर विराजमान हो गये, युद्ध क्षेत्र मे उस समय भगवान राम और लक्ष्मण दोनो विद्यमान थे। तब लक्ष्मण कहता है –प्रभु! हम विजयी हो गये है । परन्तु राम कहते है – हे लक्ष्मण! हम विजयी नहीं हुए, क्योंकि रावण इतना नीतिज्ञ था, इतनी नीति को जानने वाला था, इतना वैज्ञानिक था, वेदो का अध्ययन करने वाला था और ऐसा प्रतीत होता है मुझे जैसे आज इस विश्व से व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया है । राम ने जब ऐसा कहा तो उस समय लक्ष्मण कहते है कि– आप ऐसे दुःखित वाक्य क्यों कह रहे हैं? उन्होने कहा कि–जाओ लक्ष्मण तुम रावण से राजनीति की वार्ता रवण करके आओ । उस समय लक्ष्मण ने कहा बहुत प्रिय! लक्ष्मण अपने अस्त्रो शस्त्रो से युक्त होता हुआ उस भूमि मे जाता है , उस युद्ध–क्षेत्र मे प्रवेश करता है । उनके मस्तिष्क के अग्र भाग मे नआ करके पिछले भाग मे विराजमान हो करके यह कहता है हे रावण! हे लंकेपति ! मै कुछ राजनीति की वार्ता जानना चाहता हूं । परन्तु रावण ने कोई वार्ता प्रकट नहीं की और मौन रहे। लक्ष्मण राम समीप पंहुचे और राम सक कहा , प्रभु! वे कोई वार्ता प्रकट नहीं कर रहे है । ऐसे प्रतीत होता है, जैसे मूर्छा मे परिणत हो गयेय है , मृत्यु को प्राप्त हो गये है ।

राम ने लक्ष्मण से पूछा कि– उस समय तुम्हारा स्थान किस आंगन मे रहा,? उन्होने कहा कि–उनके ऊर्ध्व आंगन मे। उनहोने कहा तुम नीतिज्ञ नहीं हो, वह महान है , तुम उनके चरणो मे विद्यमान हो जाओ। लक्ष्मण और राम दोनो का गमन होता है । दोनो जा करके उनके चरणो की वन्दना करके बोले–रावण ! हम कुछ राजनीति की वार्ता को जानना चाहते है। रावण ने कहा–हे राम ! तुम राजनीति को जानना चाहते हो? राम ने कहा, हां प्रभु आप दो शब्द उच्चारण कर जाईये। जिससे राज्यसभा मे हम उन वाक्यो को निर्धारित कर सकें और उसका प्रसार कर सके।

रावण ने कहा कि–राम ! मै क्या उच्चारण कर सकता हूं। अब तो मै मृत्युशैय्या पर विराजमान हूं। तुम्हे प्रतीत है कि **राजा के राष्ट्र मे विज्ञान होना चाहिये , परन्तु उसका दुरूपयोग नहीं होना चाहिये, क्योंकि विज्ञान के दुरूपयोग होने से राष्ट्र का विनाश हो जाता है** , राष्ट्र अग्नि के मुख मे प्रवेश कर जाता है । मै वह नहीं कर पायां मैं उसे अपनेमे धारण नहीं कर सका हूँ। इसलिये , हम राम! सर्वप्रथम तो यह जानो कि यदि राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हो ता विज्ञान का दुरूपयोग न होने देना। विज्ञान को दुरूपयोग होने पर समाज अकर्मण्य बन जाता है और रक्तभरी क्रान्ति होती है ।

उसके पश्चात रावण ने कहा कि–**हे राम ! यदि राष्ट्र को ऊँचा बनानाचाहते हो ता राजा को आलस्य और प्रमादी नहीं होना चाहिये। जब आलस्य और प्रमाद आ जायेगा, दूसरो की कन्याओ एवं पुत्रियो पर अत्याचार आरम्भ हो जायेगा तो जानो वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जायेगा।** रावण कहते है कि – हे राम ! आज मै पराजित हूँ , परन्तु मैने अपने जीवन मे , जब तक मेरा श्वास गति करता रहा , तुम्हे लंका मे प्रविष्ट नहीं होने दिया, क्योंकि मेरा भुजबल बलवान था। मै चाहता था कि विद्या से स्वर्ण मे सुगन्धि आ जाये तो यह स्वर्ण महान धातु बन जायेगा किन्तु मै उसमे सुगन्धि न ला सका। मेरी एक इच्छा यह थी कि मै स्वर्ग मे अपना स्थान स्थापित करूं ,लेकिन स्वर्ग मे मेरा स्थान न बन सका। मैं स्वर्ग की आभा मे रमण करता रहा। स्वर्ग को जानता रहा। किन्तु मै स्वर्ग को नहीं ला सका, क्योंकि मै कल ही कल करता रहा। **अतः हे राम! जिस कार्य को तुम्हे करना है उसे तत्काल कर लो, कल पर छोड़ना मूर्खता है , यह अर्कमण्यता है और यह पामरो का कर्तव्य है। मै तो अब संसार से चला जाऊँगा अतः राष्ट्र को ऊँचा बनाना तुम्हारा कर्तव्य है ।** आज बुद्धिमानो का ह्रास हो रहा है , राष्ट्र का निर्माण बुद्धिमानो से होता है । नम्रता और विवके से राष्ट्र ऊँचा बना करता है ।

राजा रावण इतना बड़ा वैज्ञानिक था जिसका कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता। मुनिवरो! जब राजा रावण समाप्त होने लगा और जब उसके अन्तिम श्वास चल रहे थे तो राजा राम से कहा था–हे राम ! अब तो मै मृत्यु को प्राप्त कर रहा हूँ परन्तु मेरे चार ऐसे कार्य थे जिनको मै करने वाला था अधूरे रह गये। । एक तो यह था कि अग्नि मे हो धुआँ उठता है यह न रहे । दूसरा यह था कि चन्द्रमा मे आने जाने का मार्ग बना दूं और तीसरा यह था कि काल को अपने वश मे कर लूं । यह भी मेरे वश मे न हो पाया, चौथा यह था कि पृथ्वी के नीचे तल और वितल लोक है उनको जानू। जल मे जा नाना दोष है , उन्हे अपने यन्त्रो के द्वारा समाप्त करना चाहता था। यह भी न कर सका। अब मेरा अन्तिम समय आ गया। भगवन! मैने चन्द्र लोक को अच्छी प्रकार जाना है । मेरे राष्ट्र मे यातायात बड़ज्ञ अच्छा है । विमान आदि भी अधिक है मेरे राष्ट्र मे वैज्ञानिक यन्त्र भी आपने देखो होंगे अब तो सब समाप्त हो गये है। उस समय राम ने कहा , भाई ! अब तो आपका अन्तिम समय चल रहा है, कोई भी कार्य आपका पूर्ण न हो सकेगा!

रावण जब मृत्यु शैय्या पर आ गया तब राम ने उससे राजनीतिक वार्ता को पाया था। रावण ने राम से कहा कि–भाई मैने कल ही कल मे कुछ कार्य करने था, वे कल ही कल मे समाप्त हो गये। (०२ अप्रैल १९६२, लोधी कालोनी, नयी दिल्ली)

राम ने रावण के चरणो का छू कर के कहा कि प्रभु ! धन्य है ! आज मुझे दुःख हो रहा है । रावण कहते है कि–हे राम! तुम्हारे राष्ट्र मे , पाण्डित्य मे सूक्ष्मता नहीं होनी चाहिये। । पाण्डित्य से ही राष्ट्र ओर समाज की रक्षा होती है और याग जैसे ऊँचे–ऊँचे कर्मो। की रक्षा होती है । हे राम! तुमने यह लंका विजय कर ली है , किन्तु यह लंका–विजय नही आज तुम्हे मेरे सब आक्रमणो और पराक्रमो का जो भेदन है , वह विभीषण ने प्रदान किया, किन्तु आज मै बड़ा प्रसन्न हूँ। जब मै ब्रह्मा के आश्रम मे पढ़ता था तो मैंने गुरू की पुत्री पर आक्रमण किया था। उसने मुझे शाप दिया था। मेरी धृष्टता से जब उसकी मृत्यु होने लगी तो उसने कहा था कि–हे वरुण ब्रह्मचारी ! तू भी ऐसे ही विनाश को प्राप्त होगा। इस प्रकार दो पाप मैने किये। एक भयंकर पाप गुरु की कन्या को प्रताड़ित करके व दूसरा कि जो वनचर , माता–पिता की आज्ञा से आये थे, उनको व्याकुल करके मैने किये है । इस प्रकार मृत्यु के समय पश्चाताप करते हुए प्राणायाम करके रावण ने अपने शरीर को त्याग दिया। (०९ मार्च १९७७,ग्राम मुजक्की पुर)

विजय दशमी

विजय दशमी का यह जो दिवस है , जब भगवान राम ने रावण का वध किया था। मानो रावण अन्तिम श्वास इसी दिवस को लेकर अमरावती को प्राप्त हो गया था। यह वा दिवस है , जिस दिवस मे देखो अमृताम विजय को एक अग्रित कर दिया जाता है , यहाँ विजय याग का अंतिम चरण समाप्त हो जाता है ।

आज का दिवस , अमृत दिवस कहलाता है , जहाँ देखो , रावण को विजय करने के पश्चात राम अपने मे देखो उऋण हो गये थे। और वे मुनिवरो! उऋण हो करके सम्भव प्रवहा अपने मे जब मानव उऋण हो जाता है , तो वह बड़ा प्रसन्न होता है। इसी प्रकार भगवान राम आज उऋण हो गये थे। लंका को विजय करने के पश्चात अपने मानो कक्ष मे आनन्द की श्वास ले रहे थे और अपने मे गमन कर रहे थे, विचारो मे रत्त हो रहे थे।

लंका विज्य से पूर्व विजय–दशमी की मान्यता

यह जो आज का दिवस है , जो प्रकृति मण्डल में गमन कर रहा है , सूर्य कर नाना प्रकार की किरणे मानव को बाध्य कर रहीं है , चन्द्रमा की कान्तियाँ मानव को बाध्य कर रही है दसो इन्द्रियों को विजय करने वाला मानव दशम् व्रत कहलाता है इसीलिए प्रत्येक इन्द्रियों पर संयम करते हुए इन्द्रियों के विषयो को जानने वाला और इन्द्रियों का साकल्य बनाना और विज्ञान के युग मे अथवा आध्यात्मिक स्वरूप को अपने मे दृष्टिपात करने वाला बन जाता है। तो वह प्रायः तपस्या मे और वह अपने मे दस इन्द्रियो के स्वामित्व का निर्माण करता है और वह अपने पन मे स्वामित्व को जागरुक करता रहता है। मानो यह ऐसा दिवस है कि लक्ष्मी वाले लक्ष्मी का पूजन करते है और छात्रवत अपनी छात्रवृति का पूजन करते है और क्षत्रिय अपने अस्त्रो–शस्त्रो का पूजन करते है और वे क्षत्रियजन कहते है कि अपने अस्त्रो–शस्त्रो का माना देखो, आज के दिवस से अभ्यास करते है । अभ्यस्त होने लगते है । देखो , यह जो दिवस है , जहो देखो त्रेता के काल मे तुम्हे ले जाना चाहूंगा तो मानो देखो यह वो दिवस है , जब महर्षि विश्वमित्र ने सबसे प्रथम धनुर्याग का आयोजन किया और धनुर्याग मे, ब्रह्मचारियो को क्षत्रिय बल को जब एकत्रित करने के लिये उन्होने अस्त्रो–शस्त्रो को अभ्यास प्रारम्भ करायां यह वो दिवस है ,जिसमे अभ्यास कराया जाता है और यन्त्रो मे अभ्यस्त कराया जाता है । महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ भी , यह वो ही दिवस है , जहाँ देखो ब्रह्मचारी कवन्धि ने एक अग्नि–अस्त्र का निर्माण किया था और वह निर्माण मानो देखो अग्नि अस्त्र का निर्माण करके उसको अभ्यास कराया गया तो वह यन्त्र इतना शक्तिशाली बन करके रहा कि वह मानो दखो, अग्नि का एक नृत्य बन गया था, उससे अग्नि कांड हो गये थे। तो इसी प्रकार मानो यह वा दिवसम अमृतम देखो जो अमृत कहलाता है जो "दशम्ब्रहं कृतम एक दिवस है इसका अपने मे बड़ा महत्व माना गया है । मानो यह वो दिवस कहलाता है , इसी दिवस मे लक्ष्मी का पूजन किया जाता है । लक्ष्मी गृह मे आने के लिये तत्पर हो जाती है और देखो कृषक के इस दिवस मे नवीन अन्न देखो उसके गृह मे प्रवेश करता है । उसके गृह मे प्रवेश करता है तो उसका वह पूजन करता है। मानो देखो खलियान से गृह मे लाना ही उसकी पूजन कहलाता है । मानो देखो यह वो दिवस है , जहाँ दसो इन्द्रियों के ऊपर संयम करता हुआ और देखो उनका साकल्य बना करके जो ब्रह्मा मे परिणत होने के लिये तत्पर होता है , वह ब्रह्मग्निवादी बन जाता है । (२६ सितम्बर १९९०, रामप्रस्थ)

१९. उन्नीसवां अध्याय–रावण विनाश के कारण

स्वार्थवाद

जिस समय स्वार्थ पराकाष्ठा को पंहुच जाता है वैश्यजन , द्रव्यपति संग्रह की पराकाष्ठा पर चले जाते है । निर्धन व्यक्तियो मे निर्धनता आती चली जाती है , उस समय उनके हृदय की जो वेदना है वह रक्त–क्रान्ति को ला करके उनके विनाश का कारण बनती चली जायेगी। जिस भी काल मे क्रान्ति होती है उस काल मे केवल यही कारण होता है। रावण के काल मे यह क्रान्ति आयी । क्यों आयी रावण के यहाँ भी यही था द्रव्यपतियो का संग्रह बन गया था ओर निर्धनो का निर्धनता मे साम्राज्य छा गया था यही कारण बना की क्रान्ति आयी । जो संग्रह करने वाले होते है , वह रावण होते है । और रावण का विनाश करने वाला कोई न कोई राम अवश्य उत्पन्न होता है । (२८ जुलाई १९६६, जोर बाग नयी दिल्ली)

रूढ़िवाद

राजा रावण के काल मे ईश्वर के नामो पर भिन्न–भिन्न प्रकार की रूढ़िया बन गयी थीं पिता किसी रूढ़ि को लिये है और पुत्र कहीं और रूढ़िवादी बन रहा है मानो माता कहीं और रूढ़िवादी है तो पुत्री कहीं है । इस प्रकार का रूढ़िवाद राजा रावण के काल मे हुआ था, और ईश्वर के नाम के ऊपर उस रूढ़ि का परिणाम यह हुआ कि लंका अग्नि का काण्ड बन करके रह गयी। राम ने इस मर्यादा को जाना । त्रेता के काल मे वह रूढ़िवाद कुछ राम की सेना मे भी सम्मिलित हो गया था, कुछ रावण के यहाँ चला गया था। अन्त मे यह हुआ कि रूढ़िवाद के कारण ही रावण का विनाश हुआ। इस रूढ़िवाद से ही वे अपने मे प्रतिक्रिया मे रत रहे। (१४ मार्च १९८६, बरनावा)

रावण ब्रह्मवेता न बना उसके यहाँ ईश्वरीय वाद के ऊपर नाना प्रकार की रूढ़ियां बनीं , जिसके कारण रावण का विनाश हो गया था। इसी प्रकार की जो ईश्वर के नाम रूढ़ियां बनती है , वे रूढ़ियां प्रायः नहीं होनी चाहिये। (२३ फरवरी १९९१, बरनावा)

राजा रावण के राष्ट्र मे विनाश क्यों हुआ? क्योंकि राजा रावण के राष्ट्र मे ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ियां बन गयी थीं जब रूढ़ियां बनती है तो जो रूढ़ि से रहित होता है वह उसको नष्ट कर ही देता है । एक शैव मत चला था। शैव रूढ़ि बनी। राजा रावण के यहाँ एक राक्षक रूढ़ि ईश्वर के नाम पर बनी। इसी प्रकार नाना प्रकार के मत–मतान्तरो की आभा मे राजा रावण का राष्ट्र चजा गया था। उसका परिणाम यह हुआ कि राम ने उन रूढ़ियो को नष्ट किया, क्योंकि वे ब्रह्म को जानते थे, वे ब्रह्मवेता थे इसिलिये उन्होने रूढ़ियो को नष्ट किया और वहां वैदिक प्रकाश को लाने का प्रयास किया। (२१ मई १९९२, लाजपत नगर)

अभिमान

महाराजा रावण ने क्या कहा था कि मै विजयी बनूंगा, राम को नहीं आने दूंगा। संसार मे रावण का चिह्न भी नहीं रहा। कहां है रावण ? कहां है वह स्वर्ण की लंका? वह इस पृथ्वी मे रमण कर गया, वह गृह दृष्टिपात भी नही आते, हमारे समक्ष भी नही है , परन्तु हम कल्पना कर लेते है , परन्तु उसका चिह्न हमे प्राप्त नहीं होता। (०२ अगस्त १९६८, जोर बाग)

विनाश के मूल मे कारण–सीता हरण

समाज का राष्ट्र का विनाश किस काल मे होता है ? जब मेरी पुत्रियो का श्रृंगार नष्ट किया जाता है । उस काल मे राष्ट्र के राष्ट्र नष्ट हो जाते है । सबसे प्रथम रावण ने माता के चरित्र को कुदृष्टिपात करना चाहा। उसका परिणाम यह हुआ कि माता सीता तो अडिग रहीं, उनका जीवन भ्रष्ट न हो सका। रावण इतना वैज्ञानिक , इतना महान राजा था परन्तु माता सीता की वेदना ने रावण के परिवार को नष्ट कर दिया। राष्ट्र को अग्नि के मुख मे परिणीत कर दिया। अभिप्रायः यह है कि उस काल मे राष्ट्र बन जाता है , जब मेरी पुत्रियों के श्रृंगार को भ्रष्ट करने वाला राष्ट्र बन जाता है । उस काल मे प्रजा मे अशुद्ध क्रान्ति आने के कारण वह अग्नि के मुख मे स्वतः राजा चला जाता है । इसी प्रकार की राजा रावण के राष्ट्र मे धारा रही। विज्ञान का अभिमान रावण को स्वतः संसार से नष्ट कराता चला गया। परिवार नष्ट हो गया । मेरी पुत्रियां विधवा बन गयीं अहा! सब कुछ समाप्त हो गया। इस प्रकार देखो वह काल बन जाता है । उस राष्ट्र की विज्ञानशाला , परमाणुशाला, सुन्दर–सुन्दर शालाएं थी, परन्तु उस राष्ट्र मे केवल एक माता के जीवन को भ्रष्ट बनाने के प्रयास का परिणाम यह है। कि वह राष्ट्र श्मशान भूमि बन जाता है । वह राष्ट्र केवल सदाचार की भूमि न रह करके दुराचार की भूमि बन जाती है । (०२ अगस्त १९७०, जोर बाग, नयी दिल्ली)

राजा रावण के विषय मे मैंने टिप्पणीयां देते हुए कहा था, मेरे गुरुदेव ने भी वर्णन कराया है कि एक देवी को जब वह लंकापुरी मे ले गये तो लंका नष्ट हो गयी। परन्तु अन्त तक वह यह विचारता रहा कि मेरा आसन बना रहे, चाहे यह लंका कहीं भी भस्म हो जाये। जब यह विचार धारा बन जाती है ,

राष्ट्र मे ता यह देवी है और यह राज्य सभा भी वही देवी है । राज्य सभा देवी की रक्षा करना चाहती है परन्तु राजा देवी है । राज्य सभा देवी की रक्षा करना चाहती है परन्तु राजा देवी को अपनाना चाहता है । चाहे राष्ट्र देवी के ऊपर नष्ट हो जाये परन्तु उसकी दिव्या बनी रहे। ऐसा राष्ट्र देवी के ऊपर नष्ट हो जायें परन्तु उसकी दिव्या बनी रहे। ऐसा का जब विचार बन जाता है तो वहां प्रत्येक मानव चिन्तित हो जाता है और देखो वहां ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं किया जाता। (१८ मार्च १९८१, बरनावा)

२०. बीसवां अध्याया–राम–रावण की तुलना

राम में चरित्र और आत्मिक बल

रावण बलवान और वैज्ञानिक था। उस जैसा वैज्ञानिक अभी तक नहीं हुआ। राम वैज्ञानिक थे, यौगिक थे तथा उनमें आत्मिक बल था। रावण में आत्मिक बल नहीं था, इसीलिये राम को रावण से अधिक महत्ता दी जाती है।(22 अगस्त 1962, विनयनगर, नयी दिल्ली)

भगवान् राम और रावण में क्या भिन्न भेदता थी? रावण में आत्मविश्वास और चरित्र नहीं था, परन्तु राम के द्वारा चरित्र और मानववाद था। संसार में उनकी विजय होती है, जो संसार में आत्मविश्वासी होते हैं। राम का चरित्र कितना शिरोमणि और पवित्र था। उन्होंने पर्वतों के प्राणियों को जो राज्य से दूर थे, उनको अपनाया, राष्ट्र जिन्हें सांत्वना नहीं देते थे, उनको आत्मविश्वास करा करके इतने बड़े साम्राज्य को विजय किया। (18 अक्टूबर 1970, लखनऊ)

पुरुषार्थी राम

राम, रावण से इसलिये बड़े वैज्ञानिक माने गये हैं, क्योंकि रावण ने अपने जीवन में यह नहीं विचारा कि परमात्मा ने शरीर मुझे क्यों दिया है। वह तो केवल दूसरों के, ब्राह्मणों के द्रव्य को अपने में आकर्षित करके अपनी आनन्दित वार्त्ताओं के भोग को भोगता था। राम यह जानते थे कि परमात्मा ने यह शरीर मुझको दूसरों की सेवा करने के लिये दिया है। उसने अपनी आध्यात्मिकता तथा यौगिकता से भी जाना कि परमात्मा ने मुझे यह शरीर माता–पिता की आज्ञा पालन करने के लिये दिया है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम

महाराजा राम ने कितना सुंदर आज्ञा पालन किया कि वह कितने योगी, कितनी ऊँची महान् आत्मा वाले थे, जिन्होंने संसार को पुनः मर्यादा में विकसित कर दिया। आज हम उन महान् आत्माओं के आभारी बन रहे हैं। कहाँ एक स्थान में राम को राज्य–तिलक हो रहा था, द्वितीय स्थान में माता अपनी वाणी से उच्चारण कर रही थी कि राम को वन जाना चाहिये। उस मर्यादा पुरुषोत्तम ने जान लिया कि मैं संसार में केवल माता–पिता की आज्ञा पालन करने के लिये और उनके कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के लिये आया हूँ। उसी समय राम वन के लिये नियुक्त हो गये और कहा कि "हे माता! मुझे आज्ञा दो, मैं वन जा रहा हूँ।" माता ने आज्ञा दी कि "हे पुत्र! तुम अवश्य वन चले जाओ।" माता की आज्ञा पा करके राम ने पिता का वियोग नहीं जाना, केवल कर्त्तव्य जानकर वन चले गये। (22–10–1964, मोगा)

वैज्ञानिक राम

राजा रावण जैसा संसार में अभी तक कोई वैज्ञानिक नहीं बना जिसके कारागार में सब देवता कार्य करते थे, आज तक उस जैसा वैज्ञानिक कोई नहीं बना। उससे निचले स्थान में राम भी बहुत बड़े वैज्ञानिक थे, जिसका कोई विशेषण नहीं दिया जा सकता। उन्होंने पृथ्वी विज्ञान को जाना कि यह भूमि कैसी है, इस भूमि में से हम क्या–क्या निकाल सकते हैं। तुमने सुना होगा, महानन्द जी! जब माता अहिल्या का राम ने पुनः उत्थान किया, जो वज्र तुल्य भूमि अहिल्या थी, उसको राम ने वैज्ञानिक दृष्टि से देखा और निषाद राजा से कह करके वहाँ कृषि करायी, उसमें अन्न उत्पन्न हो गया। वह इतने बड़े वैज्ञानिक थे कि वह जानते थे कि जल की कितनी तीव्र गति है। राम रावण से इसलिये बड़े वैज्ञानिक माने गये, क्योंकि राम यह जानते थे कि परमात्मा ने मुझे यह शरीर दिया है दूसरों की आज्ञा पालन करने के लिये, दूसरों की सेवा करने के लिये, परन्तु रावण ने यह किसी काल में नहीं विचारा।
(18 अगस्त 1962, विनयनगर, नयी दिल्ली)

तपस्वी राम

भगवान् राम और रावण में क्या विशेषता थी? राम के द्वारा तपस्या थी और रावण के द्वारा तपस्या नहीं थी। जिससे राम ने इतने बड़े साम्राज्य को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। (10 मई 1968, उज्जैन)

उदार संस्कृति के पोषक राम

भगवान् राम के समान हमें भी संस्कृति पर बल देना चाहिये। भगवान् राम ने संस्कृति के ऊपर कितना बल दिया। उन्होंने संसार में अपनी संस्कृति का प्रसार किया। राजा रावण द्वारा अपना राष्ट्र इस सर्वत्र संसार में फैलाया जा रहा था, इन्द्रपुरी को उसने विजय किया, पातालपुरी में अहिरावण राज्य करता था, नारायन्तक व खर दूषण भी द्वितीय राष्ट्रों में राज्य करते थे। तात्पर्य यह कि उसने सब पर राज्य किया, परन्तु उसके द्वारा उदारता नहीं थी। भगवान् राम ने उसको नष्ट कर अपनी संस्कृति का प्रसार किया, जिससे यह संसार उदार और पवित्र बन गया। (18 अक्टूबर 1970, लखनऊ)

सूर्यवंशी राम और चन्द्रवंशी रावण

सृष्टि के प्रारम्भ से मानव समाज दो विभागों में विभक्त हुआ एक को चन्द्रवंशी कहते हैं और द्वितीय को सूर्यवंशी कहते हैं। ऐसा क्यों रहा है? क्योंकि रात्रि का रूप चन्द्रमा के आधार पर है और दिवस का स्वरूप सूर्य के आधार पर है। राष्ट्र का एक चन्द्र–ध्वज होता है, जिसे चन्द्रवंशी अपने में धारण करते रहे हैं और सूर्य–ध्वज को सूर्यवंशी अपने में धारण करते रहे हैं। ये दो प्रकार की मान्यताएं सृष्टि के प्रारम्भ से चली आ रही हैं। रात्रि समाप्त हुई तो दिवस आ गया, दिवस समाप्त हुआ तो रात्रि आ गयी, इसी में सर्वस्व जीवन सम्पन्न हो जाता है, और इसी में यह सृष्टि संवत् काल भी चला जाता है। विचार आता है कि हम सूर्यवंशी बने या चन्द्रवंशी, परन्तु दोनों ही अपने में पूर्णत्व को प्राप्त होते रहे हैं।

राम सूर्यवंश को अपने में धारयामि बनाते रहे हैं और रावण अपने में चन्द्रवंशी और शैव मत को स्वीकार करते रहे हैं। समाज की मान्यताएं एक स्वरूप में रहनी चाहिये। बहुत पुरातन काल से विचार–विनिमय होता रहा कि रावण को विजय करने की राम को आवश्यकता क्यों हुई? उस काल की जो मान्यताएं अथवा धाराएं हैं उसी स्वरूप में जाने से यह प्रतीत हुआ कि रावण का राष्ट्र नाना प्रकार की रूढ़ियों में विभक्त हो गया था। रावण के राष्ट्र में विज्ञान बहुत पूर्णत्त्व को प्राप्त हो रहा था, परन्तु मान्यताओं में भिन्नता थी। राजा रावण के पुत्रों की रूढ़िवाद में मान्यताएं कुछ हैं और रावण की मान्यताएं कुछ और रही हैं, परन्तु दोनों रूढ़िवादी रहे।

रूढ़िवादी रावण के रूढ़िवादी सहयोगी

उनकी पूजा का माध्यम अथवा मान्यताओं में नाना प्रकार का भेद बना करके यह विचार आता रहा 'सम्भव ब्रह्मेः व्रतम्', वह रूढ़िवाद लंका से बाह्य जगत् में भी चल गया। भिन्न–भिन्न राष्ट्रों में उसका प्रचलन हो गया। उनकी विचारधारा, मान्यताओं से वे अपने को राक्षस–प्रणाली का उद्‌गीत गाने लगे। राक्षस एक मान्यता थी। **राक्षस कहते हैं, जो 'रक्षक प्रव्हाः', जो रक्षक हैं, रक्षा से राक्षस बन गया।** भिन्न–भिन्न विचारधारा बन जाने के कारण रावण के राष्ट्र में लगभग 50 रूढ़ि बनीं। रूढ़ियों के प्रादुर्भाव का समन्वय अज्ञानता से रहता है और जिससे परमपिता परमात्मा के नाम पर रूढ़ियाँ बन जाती हैं। राजा रावण का विचार शैव मत का था, जिससे 'शैव' नाम की रूढ़ि बनी और मेंघनाद के विचारों से 'वृही' नाम की रूढ़ि बनी और वे परमपिता परमात्मा को वृहित स्वीकार करने लगे। इस प्रकार राजा रावण का मत धार्मिक दृष्टि से शैव–मत बन गया। भिन्न–भिन्न मत–मतान्तर बन करके एक–दूसरे के विचारों में भिन्नता आ गयी। जब ईश्वर के नाम पर भिन्नता आ जाती है तो राष्ट्र रसातल को जाना प्रारम्भ हो जाता है। वहाँ की मान्यता अशुद्ध हो जाती हैं। चाहे वह चन्द्रवंशी हैं, चाहे वह सूर्यवंशी हैं, पूरे समाज की परमपिता के विषय में एक ही मान्यताएं धर्म और विचार एक ही रहना चाहिये। यह जब एक रहता है तो रूढ़ियाँ नहीं पनपती। राजा रावण के यहाँ जब रूढ़ियाँ पनपने लगीं तो उनसे पृथक धर्मज्ञों के प्रति उनकी कुदृष्टि बन गयी और हिंसक विचार बन गये।

उन्हीं हिंसक विचारों से एक–दूसरे प्राणी को नष्ट करने लगे। अपने राष्ट्र के लिये राजा रावण के पुत्र अहिरावण पातालपुरी को चले गये और वहाँ शैव मत का उन्होंने प्रसार किया। उसी से अज्ञानता का एक मूल बन गया। राजा रावण के दूसरे पुत्र का नाम नारायन्तक था जो वृणीहीवास राज्य में चले गये और वहाँ भी उनकी यही मान्यता बनी और वह भी रूढ़ि में परिवर्तित हो गया।(19 फरवरी 1991, बरनावा)

उदार राम के महाबुद्धिमान् सहयोगी – हनुमान

मैंने पूज्यपाद गुरुदेव से एक प्रश्न किया था कि भगवन्! आधुनिक समाज द्वारा हनुमान को वानर के रूप में संज्ञा प्रदान की जाती है, जो एक पशु के तुल्य है। यह कहाँ तक सत्य है? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह निर्णय देते हुए कहा था कि हनुमान पवनपुत्र कहलाते थे, वे अंजना के पुत्र थे। परन्तु देखो वह कैसे जन्मे थे? परन्तु वह कदापि भी पशु नहीं हो सकते। वह बुद्धिमान् मानव, जो विज्ञान में रत्त रहने वाला राम का प्रिय सखा, जो मन्त्री रहा हो, जिस समय राम ने लंका को विजय किया था तो लंका को विजय करने के पश्चात्, विभीषण राम के समीप आये और राम से यह कहा कि ''हे भगवन्! आप यहाँ से अब प्रस्थान करेंगे आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है, अब मेरे यहाँ अन्न ग्रहण करो। आप को निमंत्रण देने आया हूँ। राम की इच्छा बन गयी थी कि हम ग्रहण कर सकेंगे परन्तु देखो, जब हनुमान जी उनके मध्य में गये तो हनुमान जी ने कहा कि इस पर हम विचार करेंगे।'' उन्होंने ऐसा कहा तो राम ने अपने वाक्यों को आगे उच्चारण नहीं किया। राम ने एकांत स्थली में कहा कि ''तुमने ऐसा क्यों कहा, हनुमान जी?'' उन्होंने कहा कि ''भगवन्! यह राष्ट्रीयता है। इसे आप स्वीकार न करें, विभीषण हमारा मित्र ही बना रहेगा। इसका लक्रापति स्वामी समाप्त हो गया, कुटुम्ब समाप्त हो गया, इसीलिये भगवन्! आप इस निमंत्रण को स्वीकार न करो।'' राम ने इस वाक्य को स्वीकार कर लिया। राम ने कहा कि ''हे लक्ष्मण! हनुमान जी तो बड़े बुद्धिमान हैं, बड़े कुशल हैं।'' विभीषण जी लंका में चले गये और राम अपनी अयोध्या को चले गये। उसी काल में ऐसा मुझे स्मरण है कि हनुमान जी को उन्होंने अपना सर्वोपरि मंत्री बनाया और उनको सब प्रकार की उपाधियाँ राम ने प्रदान कीं।

विचार–विनिमय क्या? आधुनिक काल का जगत् ऐसा विचित्र है कि हनुमान जैसे महाबुद्धिमान् को, जो समुद्रों के तटों पर यन्त्र से भ्रमण कर सकता हो, जो सूर्य की किरणों के साथ सूर्य में गमन कर सकता हो, चन्द्रमा की कान्ति के द्वारा जो चन्द्रमा में गमन करता हो, उससे ऊर्जा को पाने वाला हो, ऐसे प्रभु के सेवक को आज पशु की संज्ञा प्रदान की जाती है। यह महापुरुषों के साथ कैसा खिलवाड़ हो रहा है? (2–3–1985, बरनावा)

धर्म नीतिज्ञ राम के भाई धर्मात्मा लक्ष्मण

महाराजा राम के द्वार कितनी आपत्तियाँ आयी, परन्तु वह उन सब में दृढ रहे और अन्त में रावण तक को विजय किया। धर्म परायण वह कैसे थे कि जब लंका से चलने लगे तो उस समय लंका का स्वामी विभीषण को नियुक्त किया। विभीषण ने चलते समय राम को कुछ उपहार देना चाहा। उस समय राम ने लक्ष्मण से कहा, ''हे विधाता! यह मुझे कुछ उपहार देना चाहते हैं। तुम्हारी क्या इच्छा है'' उस समय लक्ष्मण ने कहा, ''हे राम! आप चाहें तो ग्रहण कर लीजिये, परन्तु न मर्यादा यह कहती है और न राजधर्म यह कहता है कि जिसको आपने दान दे दिया हो, उस दान में से आप कुछ लेंवें। वह आपके योग्य कदापि नहीं।'' राम ने लक्ष्मण के कथनानुसार उस उपहार को विभीषण को अर्पण कर दिया और कहा ''यह न मर्यादा कहती है, न धर्म ही कहता है। मैंने लंका–विजय करके तुम्हें इसका राजा बनाया है। अपने राज्य का पालन करो। यही तुम्हारा सबसे विशेष कर्त्तव्य है।'' तो मुनिवरो, राजा राम ने मर्यादा में बंध करके ऐसा किया। आज विचारना चाहिये कि जब मानव मर्यादा में दृढ़ रहता है तब उसका उत्थान अवश्य हो जाता है परन्तु जब मर्यादा तोड़ देता है तो उसके विनाश का समय आ जाता है। मानव को अपने धर्म पर दृढ़ रहना चाहिये और मर्यादा में चलना चाहिये आपत्ति आने पर भी उसे सहना चाहिये। (8 मार्च 1962, सरोजनीनगर, नयी दिल्ली)

वैदिक–संस्कृति के प्रसारक राम

रावण जो चारों वेदों का पण्डित था और जिनके गुरु महर्षि तत्त्व मुनि महाराज थे, जिन्होंने 48 वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन किया और जो महान् प्रकाण्ड बुद्धिमान था, परन्तु अपनी संस्कृति को नष्ट कर चुका था, उस रावण को राम ने नष्ट किया। उसके भ्राता विभीषण को वहाँ का राज्य दिया और राज्य देकर अपनी संस्कृति का प्रसार किया। रावण के पुत्र नारायन्तक, जो 'मधुत' नाम के राष्ट्र में राज्य करते थे, उसे नष्ट किया और सर्वांग नाम के राजा को वहाँ का राज्य देकर संस्कृति का प्रसार करते हुए पातालपुरी पहुँचे, जहाँ रावण का पुत्र अहिरावण राज्य करता था। अहिरावण को नष्ट किया और हनुमान के पुत्र 'मकरध्वज' को वहाँ का राज्य देकर अपनी संस्कृति का प्रसार करते हुए अयोध्या को लौट आये। (18 अप्रैल 1964, जम्मू)

याज्ञिक और देवीपूजक राम

उनके यहाँ एक वर्ष में दो समय देवी पूजा की जाती थी, ये दोनों समय ऐसे हैं, जिसमें पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना की जाती है। एक यज्ञ में, कृषि के गर्भ से नाना प्रकार की वनस्पतियों का अन्न उत्पन्न हो करके गृह में आता है, तो उस समय प्रत्येक गृह में यज्ञ होना चाहिये। जब प्रत्येक गृह में यज्ञ होते हैं, तो वह प्रकृति माता की पूजा है, देवी की पूजा है। वही तो हमारे यहाँ अखण्ड ज्योति है। भगवान् राम का जीवन मुझे स्मरण है, उन्होंने जब से राष्ट्र स्थापित किया और मृत्यु तक उनके गृह से यज्ञ ज्योति का विनाश नहीं हुआ। वह यज्ञ ज्योति, यज्ञ की अग्नि, उनकी यज्ञशाला में सदैव प्रदीप्त रहती थी, यज्ञ होते रहते थे, जिससे राष्ट्र और समाज ऊँचा बना करता था। (20 मार्च 1972, लोधी रोड, नयी दिल्ली)

२१. इक्कीसवां अध्याय–अयोध्या में आगमन

जब राम लंका को विजय करने के पश्चात् अयोध्या में आये, वहाँ उनकी प्रतीक्षा हो रही थी और सर्वत्र नगर प्रतीक्षा कर रहा था। जब राम अयोध्या में पधारे तो ऋषि–मुनि भी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब राम आये तो उनका ऋषि–मुनियों ने स्वागत किया। उसके पश्चात् उन्होंने देवी यज्ञ किया।

(20 मार्च 1992, लोधी रोड, नयी दिल्ली)

भरत का राम से राज्य–ग्रहणानुरोध

जब राम लंका को विजय करके आये, लंका को विजय करने के पश्चात् जब वे अपने कक्ष में अयोध्या में विराजमान हो गये, तो मानो जब तीसरा दिवस हुआ तो उस समय देखो महात्मा भरत उनके समीप आये। वैसे तो भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण उनके चरणों में रहते ही थे। भरत जब उनके समीप आये तो राम से यह प्रार्थना की ''हे प्रभु! मुझे बहुत समय हो गया है, अनाधिकार चेष्टा करते। मैं इस समय मानो देखो राज्य में रहता हूँ और राज्य को अनुशासन में लाना चाहता हूँ। परन्तु मेरे से इतना परिश्रम नहीं हो सका है, प्रभु! मैं इतना ज्ञानी और तपस्वी नहीं बन सका हूँ जो प्रजा मानो देखो, मर्यादा और ज्ञान में हो जाये। प्रभु! मेरी इच्छा यह है कि आप अयोध्या के राज्य को अपनाइये और इस राज्य को अपना करके पृथ्वी के राष्ट्र को ऊँचा बनाइये।'' राम श्रवण करते रहे। भरत ने याचना युक्त हो करके कहा ''हे प्रभु! आप राष्ट्र को अपनाइये यह तुम्हारा अधिकार है, यह तुम्हारा है, तुम इसे अपनाओ।''

राम की राज्यग्रहण असमर्थता

परन्तु राम ने कहा, ''हे भरत! तुम्हें यह प्रतीत है कि मैं अभी राष्ट्र के सुयोग्य नहीं हूँ।'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! क्यों?'' उन्होंने कहा कि ''तुम्हें प्रतीत है कि जो मानव सङ्ग्राम करके आता है तो सङ्ग्राम की प्रवृत्ति कितने समय तक उसके मनों में बनी रहती है। क्योंकि मन–मस्तिष्क का जब दोनों में मानो वो संस्कार विद्यमान होते हैं वो तरंगें विद्यमान होती हैं, जिन तरंगों को ले करके मानव जब भी देखो शांत–मुद्रा में आता है तो वो ही चिन्तन होता रहता है और वही चित्र मानो देखो, मुझे प्रायः प्रभावित करते रहते हैं। तो इसीलिये अभी राष्ट्र का मुझे अधिकार नहीं है। जब तक मेरे मन मस्तिष्क में रजोगुण की भावना रहेगी, तब तक यह अधिकार मुझे नहीं है। क्योंकि राष्ट्र का जो पालन है, राष्ट्र में जो नियमावली बनती है, उसमें सतोगुण प्रधान रहना चाहिये। उसमें रजोगुण प्रधान नहीं रहना चाहिये। रजोगुण तो उस काल में होता है, जब मानो देखो प्रजा अस्त–व्यस्त हो जाती है और जब प्रजा को महान् बनाना है तो उसे सतोगुण को लाना होगा। जब तक सतोगुणी तरंगों का प्रादुर्भाव नहीं होगा तब तक मैं राष्ट्र का अधिकारी नहीं हूँ।'' राम और भरत दोनों

विचार—विनिमय करने लगे। भरत से यह वाक्य समाहित नहीं हो सका। उन्होंने कहा, ''प्रभु! मैं राजाओं को निमन्त्रित करने जा रहा हूँ और ऋषि—मुनियों को निमन्त्रित करने जा रहा हूँ।'' राम ने कहा, ''बहुत प्रिय! तुम ऐसा ही करो।''(18 अक्टूबर 1991, रामप्रस्थ, गाजियाबाद)

भरत द्वारा ऋषि—मुनियों की सभा

भरत ने राम की आज्ञा का पालन किया और उन्होंने सब ऋषि—मुनियों को निमंत्रित किया। निमंत्रित करके एक समय नियुक्त किया गया। उस समय पर बारी—बारी सब ऋषि—मुनि अपने आसनों पर आकर विद्यमान हो गये। महर्षि प्रवाहण, महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि वैशम्पायन, महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज आदि सर्वत्र ऋषियों का आगमन होने लगा। हिमालय के अधिराज शिव और ब्रह्मचारी कबन्धी, महर्षि पणपेतु, भारद्वाज इत्यादि ऋषियों का आगमन हुआ। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि काकभुषुण्ड जी, महर्षि लोमश और भी नाना ऋषियों का आगमन हुआ। महर्षि विभाण्डक और महर्षि विचिका मुनि और भी उद्दालक गोत्र के बहुत से ऋषि विद्यमान थे। राजा—महाराजा, 'अश्वपति वेताम् भू:वर्णम्' महाराजा शिव और महर्षि श्वेका, नाना ऋषि—मुनियों का आगमन हुआ और वे अपने—अपने आसनों पर विद्यमान हो गये। सबसे ऊर्ध्वा आसन पर, क्योंकि राज पुरोहित का अधिकार होता है, वहाँ राजपुरोहित महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज विद्यमान हैं। उसी सभा में लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत और राम भी अपने आसन पर विद्यमान हैं। देखो, जितनी भी राजलक्ष्मियाँ थीं, वे सब अपने—अपने आसनों पर विद्यमान हैं और राष्ट्र के जितने भी कृषक ऊर्ध्वा में गमन करने वाले और ज्ञान—विज्ञान में रमण करने वाले वैज्ञानिक थे उर्ध्वा में, वे आसन पर विद्यमान हैं। उन आसनों पर सब विद्यमान हो करके अपनेपन में अपने में ही निहित हो रहे थे।

महाराजा भरत ने उपस्थित हो करके महाराजा शिव को अपना सभापति बनाने की उनसे आज्ञा ली। परन्तु महाराजा शिव ने कहा कि ''मेरे विचार में तो सभापति महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज को नियुक्त किया जाये।'' वशिष्ठ ने कहा कि ''नहीं, मैं पुरोहित हूँ और पुरोहित को इतना अधिकार नहीं होता है, परन्तु तुम राजा हो और राजा को राज्य—सभा में वह नियुक्ति लेने का अधिकार होता है।'' उन्होंने कहा कि ''नहीं, राजा जो होता है वह ब्रह्मवेत्ता से सूक्ष्म होता है, वह आसन ब्रह्मवेत्ता को ही लेना चाहिये, क्योंकि वह चुनौती प्रदान करता है।'' महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि ''वह चुनौती तो प्रदान करता है, यह तो तुम्हारा वाक्य यथार्थ है, परन्तु यदि कहीं ब्रह्मवेत्ता में भी विकृति आ जाये तो उसका शोधन करने वाला राजा होता है। इसलिये राजा को ही राज्य—सभा में सभापति बनना चाहिये।'' देखो जब यह वाक्य आया तो उन्होंने सब की वार्त्ताओं को स्वीकार किया। महाराजा अश्वपति ने कहा कि ''भगवन्! आप आसन को लीजिये'' और उनसे सौमिक नाम के राजा ने भी कहा, ''प्रभु! आप आसन ग्रहण कीजिये, क्योंकि आप भी तपस्वी हैं और राजा हैं और वैज्ञानिक हैं। प्रभु! कोई ऐसा गुण नहीं है जो आप में हमें दृष्टिपात न आता हो। मानो आपका राष्ट्र प्रायः सूक्ष्म है परन्तु आप राजा हैं, हिमालय जैसी आपकी प्रजा है। जैसे हिमालय पर्वत बहुत उर्ध्वा में उड़ाने उड़ता है इसी प्रकार जिस राजा की प्रजा इस प्रकार के ऊँचे विचारों वाली हो, अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाला समाज हो, ऐसा राजा तो पूज्य होता है।'' ऐसा ही महाराजा अव्रेतकेतु ने भी कहा और भी आचार्यों और राजाओं ने इसे अपनी स्वीकृति प्रदान की।

मेरे प्यारे! वह (महाराजा शिव) अपने आसन पर विद्यमान हो गये, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज उनके संग विद्यामान हो गये, क्योंकि वही तो राष्ट्र का निर्णय देने वाले थे। जब सभापति का निर्वाचन हो गया तो ब्रह्मवेत्ता और सब अपने—अपने आसन पर विद्यमान हो गये। (16 मई 1990, लाजपतनगर)

सभा में भरत की प्रार्थना

सभा का प्रारम्भ होने लगा। वह सभापतित्त्व उन्होंने स्वीकार कर लिया। वशिष्ठ मुनि महाराज तो सभा के गुरु—पुरोहित कहलाये गये। सभा प्रारम्भ होने लगी। उन्होंने कहा, ''क्या विचार—विनिमय होना है?'' महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा, ''भगवन्! भरत की इच्छा यह है कि राम अब राष्ट्र को अपनाने वाला बनें। क्योंकि बहुत समय हो गये हैं, देखो भरत अपनी गुफा में रहते हैं। इन्होंने जिस समय राम को वनवास हो गया था, उसी समय भरत ने अपने में यह संकल्प कर लिया था कि राम का स्थान पृथ्वी पर रहता है, माता सीता का स्थान पृथ्वी पर रहता है, तो मैं अपने विधाता के मानो देखो उसके सामने मेरी कोई शक्ति नहीं। एक गुफा उन्होंने निर्मित की और वह पृथ्वी के अन्तः गुफा में अपना विश्राम—गृह बनाये हुए हैं। तो भरत जी कहते हैं मुझे बहुत समय हो गया है कि मै मानो गुफा में रहता हूँ इसलिये कि राम पृथ्वी पर अपना शयन करते हैं। मैं चाहता हूँ कि राम अब शयन राजस्थलि पर करें और वह देखो पृथ्वी पर मुझे अधिकार प्राप्त हो जाये।'' जब वशिष्ठ ने यह कहा तो महाराजा शिव ने कहा कि ''और क्या चाहते हैं?'' उन्होंने कहा कि, ''यह राजस्थलि राम को समर्पित करना चाहते हैं।''

जब उन्होंने यह कहा, तो महाराजा शिव ने कहा ''राजाओं की अनुमति लेकर कि ''तुम्हारा क्या—क्या विचार है?'' इसमें महाराजा अश्वपति ने यह कहा कि ''तो राम के विचार लिये जायें, क्योंकि यह उनका विषय है, वे स्वयं अपने में तपस्वी हैं, ज्ञानी हैं और मार्यदा में रत्त रहने वाले हैं; वे अपना विचार स्वयं नियुक्त करें। हम तो इतना ही विचार दे सकते हैं कि जैसी इनकी इच्छा हो। क्योंकि यह इनका ही विषय है, यह किसी और का विषय नहीं है।''

भगवान् राम के विचार

राम से यह कहा गया कि ''राम! महाराजा अश्वपति का यह विचार है कि यह तुम्हारा विषय है। क्योंकि महाराजा अश्वपति की जो उपाधि है, यह सतोयुग से चली आ रही है। देखो अश्वपति उसे कहते हैं, जिस राजा के राष्ट्र में कोई भी परम्परा हो और वह परम्परा अपने में पूर्णता को प्राप्त होती रहती है।''

भगवान् राम ने कहा कि ''यह विचार तो भरत से पुनः से लिया जाये।'' तो भरत ने कहा कि ''प्रभु! मेरे विचार तो मेरे पूज्यपाद ने वर्णन कर दिये हैं और मैं यही चाहता हूँ कि यह राष्ट्र, मातेश्वरी मर्यादा में गमन करने वाला हो।'' उन्होंने कहा, ''बहुत प्रियतम।'' सब राजा इत्यादि अपने में विचार कर रहे थे कि राम क्या उच्चारण करते हैं। उनके विचार सुनने के लिये सभी बड़े लालायित थे। राम ने उपस्थित होकर यह कहा, ''हे राजाओ! 'अप्रतिम् बृहे' मानो, हे आचार्यो! हे गुरुजनों! हे ऋषिवर! महान् तपस्वियो! मेरी इच्छा यह है कि मैं राष्ट्र के सुयोग्य अभी नहीं हूँ।'' महाराजा वशिष्ठ बोले कि ''इसका कारण क्या है।'' (18 अक्टूबर 1992, रामप्रस्थ, ग़ाज़ियाबाद)

भगवान राम ने कहा कि ''भगवन्! आपको प्रतीत है कि मैंने लंका को विजय किया है और लंका को मैंने किस लिये विजय किया है, यह भी सर्वत्र जानते हैं। क्योंकि मेरे गुरु का भी मानो देखो महान् आदेश था और वह आदेश यह था कि जो इस पृथ्वी—मण्डल पर जो राजा कर्त्तव्य विहीनता में परिणित हो गया है, ऐसे राजा को कर्त्तव्यवाद की वेदी पर लाया जाये, तो उसी आधार पर मैंने आज्ञा का पालन किया। परन्तु मुझे कहीं रजोगुण आया है, कहीं तमोगुण आया है, कहीं देखो, वहाँ अपमान भी हुआ है, और कहीं मानो देखो मैं निराश हो गया हूँ और मानो देखो वह जो निराशा है, उन संस्कारों की प्रतिभा, मानो मेरे अन्तःकरण में विद्यमान है, इसीलिये मेरी इच्छा नहीं है। हे महात्मन्! हे वशिष्ठ मुनि महाराज! आप ब्रह्मवेत्ता हैं और ब्रह्मनिष्ठ कहलाते हैं। ऐसी ही मेरी प्यारी माता अरून्धती हैं, जिन्होंने महान् तप किया है और तपस्वी बन करके देखो यह जानती हैं और देखो ऐसे ही महात्मा विश्वामित्र हैं और महाराजा शिव तो हिमालय की आभा में मानो देखो, इनके विचार कितने ऊर्ध्वा में गमन करते रहते हैं, मेरी मनोनीत एक इच्छा है कि मैं तपस्या में परिणित होना चाहता हूँ। जब तक मैं तपस्वी नहीं बनूँगा तब तक राज्य का अधिकारी नहीं बनूँगा। क्योंकि तप से ही राज्य का अधिकार प्राप्त होता है। क्योंकि राष्ट्र में कहीं रजोगुण आता है तो कहीं तमोगुण आता है और रजोगुण—तमोगुण को मानो तपस्या का बल ही ऐसा है, जो मानो देखो, उसको सहन कर सकता है। उसमें सहन—शक्ति आ जाती है और यदि राजा के साथ में तपस्या नहीं है, रजोगुण आ गया है, तमोगुण आ गया है, तो वह राजा, राजा नहीं रहता उसमें ममत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है।''

अयोध्या में तपस्वी राजाओं की परम्परा

मुनिवरो! देखो राम ने कहा कि ''मैं तपस्या करने के लिये मानो उद्यत हो रहा हूँ, मैं तपस्या करना चाहता हूँ। क्योंकि यह जो अयोध्यापुरी है, इसमें जो भी राजा हुआ है, वो तपस्वी हुआ है और जो राजा हुआ है, वह ब्रह्मवेत्ता हुआ है। क्योंकि यहाँ देखो जो मेरे वंशज हुए हैं, मेरे जो पिता दशरथ हैं, वे दसों इन्द्रियों को विजय करने वाले थे, वह जब राजा बने और उनके पूर्व मेरे जो महापिता थे, वे भी महान् तपस्वी थे और महात्मा रघु तो राजा नहीं वो तो

महात्मा थे, समय–समय पर सर्वत्र यह देखो जितना कोष में द्रव्य होता था उसको, सबको हूत करते रहे हैं, याग में परिणित करते रहे हैं। वे मानो कई समय, कई याग उन्होंने ऐसे किये हैं, जिसके पश्चात् केवल देखो पृथ्वी के पात्र रह गये हैं। देखो वे खनिज के पात्र भी नहीं रहे हैं। इसी प्रकार मेरे जो महापिता दिलीप जी हैं वे गोधन का याग करते रहे हैं और वो कैसे याग करते रहे हैं कि कामधेनु के, नन्दिनी के पीछे बारह वर्ष तक मानो तपस्वी बने रहे हैं। इसी प्रकार वो राष्ट्र का समय–समय पर अधिकारी बनने से पूर्व तप करते रहे हैं। और राष्ट्र का राज्य, समाज कर रहा है, अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है, परन्तु राजा एक गो के पीछे अपने जीवन को व्यतीत कर रहे हैं। वाह रे! मेरे राजन्! तू कैसा पवित्र बन सकता है! कैसा उसका व्यवहार बन सकता है कि मानो देखो, कामधेनु नन्दिनी की सेवा करने वाले 'अहे ऐसं ब्रह्मे' देखो, इस प्रकार जो पशुओं की रक्षा करने वाला राजा होता है, जहाँ सिंह–राज भी निर्द्वन्द्व हो करके अपने राष्ट्र में विचरण कर सकता है। अरे उसको राष्ट्र की आवश्यकता नहीं। राष्ट्र चल रहा है, शान्ति युक्त हो रहा है। परन्तु देखो, उसको कोई भी अपनाने वाला नहीं, कोई भी देखो रक्तों में क्रांति लाने वाला समाज नहीं उत्पन्न होता। जब राजा बुद्धिमान् होता है और ब्रह्मवेत्ता और तपस्वी होता है, तो वह राजा के यहाँ मानो देखो वह पशुओं की सेवा गौ–धन की सेवा करते रहते हैं और गौधन की जो सेवा करता है, वह राजा पवित्र कहलाता है। गौधन क्या, मानो देखो, दुग्ध देने वाला पशु, वह गौधन कहलाता है। कोई भी पशु हो, जब राजा के राष्ट्र में प्रत्येक प्राणी की रक्षा होती हो, वहाँ राजा ही न्यायाधीश नहीं रहता, अपने में ही न्यायाधीश समाज बन जाता है, प्राणी मात्र बन जाता है।'' भगवान राम ने कहा कि ''मेरे और भी महापिता हुए हैं, देखो हरिश्चन्द्र जैसे, वे स्वप्न में ही राज्य को महात्माओं को प्रदान कर रहे हैं। वह कैसा तप है? वह ज्ञानियों का तप है, क्योंकि ज्ञानी ही अपनी प्रवृत्तियों का विभाजन कर सकता है। इसी प्रकार मेरे महापिता जो सुखमंजस हुए हैं अथवा देखो महाराजा 'अप्रति भूः वर्णं ब्रह्मे' देखो, राजा सगर हुए हैं। यह प्रणाली चली आ रही है, इन प्रणालियों में सब बुद्धिमान और विचित्र और तपस्वी हुए हैं। जब ये तपस्वी हुए हैं। तो मुझे भी तप करना चाहिये। मैं ऋषि–मुनियों से यह आज्ञा चाहता हूँ कि मुझे आदेश दें कि मैं वन में चला जाऊँ और मैं तपस्वी बनूँ। मेरे भरत विधाता राष्ट्र का पालन करें या ना करें परन्तु मुझे तपस्वी अवश्य बनना है। मैं जब तक तपस्या नहीं करूँगा, यह राष्ट्र कदापि ऊँचा नहीं बनेगा। क्योंकि देखो इस अयोध्या का जो निर्माण किया है, अयोध्या का निर्माण करने वाले देखो इक्ष्वाकु मनु थे और मनु ने इसका निर्माण किया। लाखों वंशज मानों वंश देखो मनु के समाप्त हो गये हैं। वे सब इसी प्रकार के थे कि तपस्या के पश्चात्, तपस्या के बल पर, राष्ट्र को ऊँचा करते चले आये। जेठे पुत्र को ब्रह्मवेत्ता बना करके, राष्ट्र को दे करके, वो ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए चले गये। जब पिता त्याग करता है, तो मानो देखो पुत्र भी त्यागी और तपस्वी होता है। जब माता तपस्वी होती है, तो पुत्र और पुत्री भी तपस्या में परिणित हो जाते हैं।'' (28 सितम्बर 1990, रामप्रस्थ, ग़ाज़ियाबाद)

अब ऋषि–मुनियों की सभा में यह प्रसंग आया कि राम को राज्य करना चाहिये अथवा नहीं। तो मेरे प्यारे! क्योंकि उनका यह कथन है कि ''इस अयोध्या के राष्ट्र का अभी मुझे अधिकार नहीं है। यहाँ माता मदालसा जैसी पुत्रों को जन्म दे करके पाँच वर्ष के ब्रह्मचारी को ऋषि बना सकती है। आज, मानो देखो मेरे में वो शक्ति कहाँ है? मैं इतना पारायण नहीं हूँ। मैं 'अग्रमत ब्रह्मः' मैं राष्ट्र को नहीं भोग सकता।'' महर्षि भारद्वाज मुनि ने और भी नाना चर्चाएं कीं। परन्तु देखो इसमें महर्षि प्रवाहण जी ने यह कहा कि ''राम! तुम्हें राज्य भोगना चाहिये।'' उन्होंने कहा ''प्रभु! क्यों? क्योंकि राष्ट्र को तो कोई न कोई क्रियाकलाप में लायेगा। यह भोगना नहीं है, इसमें तो मानव को सात्विक मार्ग देना है। मानो राष्ट्र का पालक तो वही होता है, जो सत्य मार्ग देता है। राज्य का अधिकार किसी प्राणी को नहीं है संसार में, क्योंकि यदि उसमें कर्त्तव्यवाद की भावना नहीं है, यदि उसमें अहिंसा परमोधर्मः की भावना नहीं है, मानो देखो जो मानवता को मानवता नहीं कह सकता तो उसे राष्ट्र का अधिकार नहीं होता।'' उन्होंने कहा कि ''आप सर्वज्ञता को जानने वाले हैं, आप इस राष्ट्र को भोक्तव्य क्या इसको कर्त्तव्यवाद में लाने का प्रयास कीजिये।'' देखो, भगवान् राम ने इन वाक्यों को पान करते हुए, प्रवाहण जी के वाक्यों को पान करते हुए, मौन हो गये। प्रवाहण जी भी मौन हो गये। बारी–बारी सब ने यह कहा कि राष्ट्र का अधिकारी होना चाहिये। जब वशिष्ठ मुनि ने यह कहा कि ''राष्ट्र तो वास्तव में राजा का होता है, कोई न कोई तो अधिकारी इसका बनेगा। राम ने कहा, ''भगवन्! अपने अन्तर्हृदय से माता अरुन्धती और आप दोनों यह उच्चारण कर दो कि मैं राष्ट्र का मैं इस अयोध्या का पालन करूँ, तो मैं अवश्य करूँगा।'' परन्तु वशिष्ठ जी मौन हो गये। (दिसम्बर 1986, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

राम को तपस्या करने की आज्ञा

जब महाराजा राम ने, भगवान् राम ने यह वाक्य प्रकट किया तो ऋषि–मुनि अपने में मौन हो गये और यह कहा कि ''धन्य हैं, प्रभु!'' तो देखो महात्मा वशिष्ठ ने कहा, ''हे राम! तुम्हारा वाक्य यथार्थ है, तुम मानो जानते हो अपने जीवन की प्रतिक्रिया को। क्योंकि राष्ट्र राजा के लिये प्रथम नहीं है, राजा के लिये प्रथम है, कर्त्तव्यवाद और देखो, उसका तप। जब तक वह तपस्या नहीं करेगा, वह ब्रह्मज्ञानी नहीं होगा और जब ज्ञान नहीं होगा तो वह स्वतः अपना निर्णय नहीं ले सकता। वह निर्णय केवल मानो देखो, समब्रही कहलाता है।'' इसी प्रकार विचार–वेत्ता यह कहते हैं, देखो साहित्यकार यह कहते हैं, राम ने जब तपस्या करने के लिये कहा तो महाराजा शिव का यह निर्णय हो गया कि तपस्या करनी चाहिये, जब उन्होंने कहा कि ''तपस्यं ब्रह्मे।'' देखो महाराजा भरत ने कहा, ''हे प्रभु! यह तपस्या करने चले जायेंगे तो मैं भी तपस्या करने चला जाऊँगा।'' उन्होंने कहा, ''हे राम! मैं आत्मा की पुकार को किसी भी काल में 'अमृतम्' उसको नष्ट नहीं करूँगा।'' राम ने भरत से कहा, ''हे भरत! यदि तुम्हारी तपस्या की इच्छा है, तो तुम भी तपस्या करने चले जाओ और मेरी आत्मा की यह प्रतिभा है, मैं तरंगवादी बनूँ तो मैं भी तपस्या में परिणित हो जाऊँ। यह राष्ट्र मानो देखो अपनी आभा में गति करता रहेगा। राष्ट्र कोई राष्ट्र नहीं होता है, तपस्वी प्राणियों के आगे राष्ट्र मानो एक गौण बन जाता है। गृह में माता–पिता देखो जब महान् बन जाते हैं, तो बाल्य–बालिका अपने में गृह को संचारित रूप से परिणित करने लगते हैं। यह महापुरुषों के जो अनुपम विचार हैं, जब ये मुझे स्मरण आने लगते हैं, तो हृदय गदगद् हो जाता है और मैं यह कहता रहता हूँ कि देखो राष्ट्र और अनुशासन अपने में ही अपनेपन को ऊँचा बनाता रहता है। यह अनुशासन जब अपनेपन में ऊँचा बन जाता है तो यह संसार उसी से ऊँचा बन जाता है।''

राम ने अन्त में यही कहा है, ''हे भगवन्! देखो मुझे तो आप जानते हैं। मैं 14 वर्ष तक माता–पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये भयक्रर वन में रहा हूँ और मैंने लंका में, रावण को विजय किया और विजय मानो देखो 'विजय वेत्ता मृतम्' मैं रजोगुण में भी कहीं परिणित हुआ हूँ, मुझे कई समय रजोगुण छाया है। परन्तु बाह्य–जगत् में मैं अपनी वाणी से मधुर–मधुर उच्चारण करता रहा हूँ, परन्तु अन्तःकरण में देखो वह रजोगुण छाया हुआ है। इसी प्रकार देखो मेरे अन्तःकरण में वे संस्कार हैं। मैं उन संस्कारों को जब तक तपस्या रूपी अग्नि से दग्ध नहीं कर लूँगा, इन्हें भोक्तव्य, मैं भोग नहीं पा लूँगा, तब तक मैं राष्ट्र का अधिकारी नहीं हूँ।'' राम ने जब यह कहा तो वशिष्ठ मुनि, महाराजा शिव और अंगीरस गोत्रीय एक ऋषि उन्होंने कहा जाओ ''राम! तुम तपस्या करने चले जाओ!''

सर्व सभा शून्य हो गयी और वह अपने में शून्य हो करके देखो महाराजा शिव ने कहा, ''राम! तुम्हारा वाक्य तो बड़ा महान् है। तुम्हारे विचार तो बड़े महान् हैं। परन्तु तपस्या का मूल क्या होगा?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! तपस्या के मूल दो होते हैं। एक तपस्वी जब तपस्या के लिये त्याग करता है तो वह अपने में विचारता है कि मैं तपस्वी बनूँगा, मैं त्यागी बनूँगा और तपस्वी कौन होता है? जो अपने अन्तःकरण का, जो इसका एक जगत् है उसका शोधन करता है। हमारे दो प्रकार के जगत् माने हैं–एक बाह्य–जगत् है, जो व्यवहार का है, जिसमें व्यवहार आता है और एक आन्तरिक जगत् है, जिसमें अपनी आत्मा को बलिष्ठ किया जाता है, आत्मा को महान् बनाने के लिये प्रयास किया जाता है। तो मैं भयक्रर वन में जा करके मानो अपने आत्मा को तपस्वी बनाऊँगा। वह कैसे बनाया जायेगा? यह मानो देखो, मेरे मन–मस्तिष्क में विचार आ रहा है। क्या, जब तक मानव का, समाज का अन्नाद ऊँचा नहीं बनता, अन्न ऊँचा नहीं बनेगा, तब तक तपस्या प्राप्त नहीं कर सकता। मैं तपस्वी तभी बन पाऊँगा।'' मेरे प्यारे! देखो, भगवान् शिव ने यह कहा, हे राम! तुम्हें धन्य है! तुम्हारा विचार तो बड़ा विचित्र विचारनीय है। हम सभी राजाओं को तपस्वी होना चाहिये।'' मेरे प्यारे! देखो क्योंकि तपस्वी ही पालन कर सकता है, सतोगुण ही पालन कर सकता है। रजोगुण में पालन नहीं कर सकता। रजोगुण में तो दंडित कर सकता है। मेरे प्यारे! यह वाक्य अपने में जब निर्णय हुआ तो महाराजा

भरत से कहा गया "भरत! तुम क्या चाहते हो?" उन्होंने कहा, "हे प्रभु! मैं क्या कह सकता हूँ? मेरा तो यही कर्त्तव्य है, कि मैं उस गुफा में पुनः से विश्राम करूँ। और देखो प्रजा अपने कर्त्तव्य का पालन करती रहेगी।"

मेरे प्यारे! देखो यह वाक्य जब निर्णय हो गया, क्योंकि जिस प्रजा में, जिस प्रजा के राष्ट्र में राजा तपस्या के लिये चला जाता है तो प्रजा भी मानो देखो स्वतः तपस्वी बन जाती है। राजा के हृदय की जो तरंगे हैं, उसका जो त्याग और तप है, वह प्रजा को प्रभावित करता रहता है। वह प्रजा उसके अनुसार बरतती रहती है। महाराजा शिव अपने में मौन हो गये। अश्वपति से कहा गया "कहो अश्वपति! आप तो ज्ञान में महान् हैं, उद्गीत गाओ कि इनका विचार कैसा है।" अश्वपति ने कहा कि "यह जो उच्चारण कर रहे हैं, यथार्थ है, क्योंकि प्रजावान तभी बन सकता है, जब उसे प्रजा का अधिकार प्राप्त हो जाता है।" विभीषण से प्रश्न किया गया कि "तुम्हारा विचार क्या है?" उन्होंने कहा "प्रभु! मैं तो स्वयं इनके ही पिछले भाग में, इनका सेवक बना रहता हूँ। मेरा कोई विचार नहीं हैं, मानो देखो, मैं तो स्वतः तपस्वी बनना चाहता हूँ, विभीषण ने यह कहा। भगवान् राम के वाक्य पर देखो जब वशिष्ठ से कहा गया कि "आपका, ऋषिवर! क्या मन्तव्य है? क्योंकि आप राजपुरोहित हैं।" उन्होंने कहा कि "हे प्रभु! मैं तो राजपुरोहितता करता रहूँगा। मेरा वह कर्त्तव्य है। परन्तु राम यदि वन को जाते हैं तो मुझे उसमें भी किसी प्रकार का विरोध नहीं करना है, मैं इनके लिये बाधक नहीं बनूँगा।" मेरे प्यारे! देखो, भरत भी सहर्ष प्रसन्न हो गये और वहाँ राम ने देखो आज्ञा पा करके शिव ने यह कहा "हे राम ! तुम्हें धन्य है, जो आज तुम तपस्या के लिये परिणित हो रहे हो! तुम तपस्या के लिये राष्ट्र को त्याग रहे हो!"

२२. बाचीवां अध्याय–राम का तपस्या काल

राम वन को चले गये और वन में जा करके तपस्या करने लगे। पत्र–पुष्पों का रस, अध्ययन करते हुए वनस्पतियों का अध्ययन करके उसे पान करते थे। उनका रस बना करके अग्नि में तपा करके, वे उसे स्वतः पान करते थे। उसे पान करते–करते उनका रजोगुण कुछ समय के पश्चात् समाप्त हो गया। तमोगुण की प्रवृत्तियों का तो आने का प्रश्न ही नहीं होता।(18 अक्टूबर 1991, रामप्रस्थ, गाजियाबाद)

राम ने यह विचारा कि "वास्तव में तपस्या करूँ तो मुझे तो तपस्या का ज्ञान नहीं है कि तप किसे कहते हैं? क्योंकि देखो, मैं तो इतना ही जानता हूँ कि इन्द्रियों को संयम में लाने का नाम तप है। अब मैं कैसे इन्द्रियों को संयम में लाऊँ? यह अब तक मैंने नहीं जाना। जो बाल्यकाल में मैंने गुरु के चरणों में जाना है, वह भी मानो मैंने राष्ट्रीय विचार–धाराओं में और रजोगुण–तमोगुण की धाराओं में, वह भी मेरे से ओझल हो गया है।"

भगवान् राम वहाँ से ही विचार–विनिमय करते हुए मित्रा ऋषि के द्वार पर पहुँचे, जहाँ महर्षि लोमश मुनि महाराज, महर्षि मित्रा, और काकभुषुण्ड जी, मानो ये सब, देखो तीनों ऋषि विद्यमान रहते थे। ये अपने में विचार–विनिमय करते रहते थे कि मानव को अपनी इन्द्रियों के विषयों के विज्ञान में परिणित हो जाना चाहिये। क्योंकि इन्द्रियों के विषयों के विज्ञान को जाने बिना मानव तपस्या में परिणित नहीं हो सकता। तो मानो देखो, उस समय राम ने कहा, "प्रभु! मुझे निर्णय कराइये मैं तपस्या के लिये आया हूँ।" उन्होंने कहा, "बहुत प्रिय, विराजिये!" वह विराजमान हो गये।

महर्षि लोमश का राम को अन्न–पवित्रता का आदेश

महर्षि लोमश मुनि ने कहा कि "तुम अन्न को पवित्र बनाओ। उन्होंने कहा, "प्रभु! मैं अन्न को कैसे पवित्र बनाऊँ" उन्होंने कहा, "तुम यह जो कनक है, अन्नाद है, इसे पृथ्वी में से एकत्रित करो और एकत्रित करके उसको जल में वृत करते हुए उसे प्रातःकालीन खरल करने के पश्चात् अग्नि में तपा करके उसका पान करो, क्योंकि 'अन्नतं ब्रह्मे, वह ब्रह्म में परिणित होना बहुत अनिवार्य है और जब तक तुम्हारा अन्न पवित्र नहीं होगा तब तक मन की धारा पवित्र नहीं होगी, मन से जो अन्तःकरण में संस्कार विद्यमान हो गये हैं, उनको भोक्तव्य आहार के द्वारा तुम समाप्त कर भोक्तव्यादी बनो।" राम ने वही किया।

उस काल में जब उन्होंने लगभग इस प्रकार के अन्न को ग्रहण किया तो उन्हें अपनी अन्तरात्मा से ज्ञान होने लगा। ज्ञान जब उदबुद्ध हो जाता है, तो वह वायु का सेवन करने लगता है। वायु से, खेंचरी मुद्रा से जल को अपने में सिंचन कर लेते थे और 'व्रेतः संकल्प प्राण' के द्वारा प्राणायाम् करते हुए, वे पोषक तत्त्वों का वायुमण्डल से अपने में सिंचन करने लगते। तो इस प्रकार वे तप करने लगे और तप करते हुए उनका मनोनीत हृदयग्राही बन गया।

मुझे स्मरण आता रहता है कि इस प्रकार भगवान राम ने बारह वर्ष का तप किया और बारह वर्ष का तप करने के पश्चात् पुनः जो प्रतिभा उनकी नष्ट हो गयी थी, वह प्रतिभा पुनः से जागरूक हो गयी और जागरूक होने के पश्चात् महर्षि लोमश मुनि और काकभुषुण्ड जी से वह शिक्षा पाते रहे। राम ने, मेरे प्यारे! देखो, अपनी लेखनी में लेखनीबद्ध करते हुए कहा है कि राजा के राष्ट्र में विवेकी पुरुष होने चाहिये और वेद के पाण्डित्व होने चाहिये। क्योंकि जब भी राष्ट्र ऊँचा बनता है, बुद्धिमान पुरुषों से ऊँचा बनेगा, विवेकी पुरुषों से ऊँचा बनेगा, अन्यथा राष्ट्र में जब ब्रह्मवेत्ता पुरुष नहीं रहेंगे, तपस्वी नहीं रहेंगे, तो उस समय राष्ट्र अपंग बन करके, एक समय वो नष्ट हो जायेगा।(28 सितम्बर 1990, रामप्रस्थ, गाजियाबाद)

लंका को विजय करने के पश्चात् राम तपस्या के लिये भयक्रर वन में चले गये। कहाँ वह बाल्यकाल का राम था जब वह दीक्षा लेते थे और प्रत्येक वर्ष अपना अभ्यास का कौतुक करते थे और कहाँ वे लंका को विजय करने के पश्चात् तप के लिये चले गये। बाल्य काल का तप भी तप है, जहाँ वह आचार्यों के संरक्षण में तपों में परिणित हो रहे हैं, वह भी तप है। माता–पिता की आज्ञा पा करके भयक्रर वन में चले गये, वह भी तपोमयी जीवन है। विजय करने के पश्चात् भी तपस्या करना तप है। **विजय करने के पश्चात् इसलिये मानव को तपस्या करनी चाहिये, क्योंकि उससे उसे अभिमान न आ जाये। यदि अभिमान आ गया तो मानो विजय–विजय नहीं रह पायेगी।** जब मानव में अभिमान नहीं आयेगा तो वही विजय मानव का आध्यात्मिक रूप में परिवर्तन कर देगी।

मानव को विजेता बनना चाहिये और इस संसार को विजेता क्यों बनाया जाता है? राष्ट्र में राजा राज्य से विजेता नहीं बनता। यदि विजय के करने के पश्चात् उसमें अभिमान आ गया तो अभिमान ही मृत्यु का रूप बन करके रहता है और यदि अभिमान में नहीं, तपस्या में परिणित हो गया है, तपों में निष्ठ हो गया है, तो मानो देखो, वही विजय देखो, संसार की विजय, राष्ट्र की विजय, आध्यत्मिकवाद में परिणित हो करके आत्मा का ज्ञान बन करके रहता है। वह ज्ञान तपस्या के रूप में परिणित हो जाता है। इसी प्रकार, भगवान राम का मानो जो क्रियाकलाप है, वह तपस्या के रूप में परिणित हो गया और वे तपस्या के लिये भयक्रर वन में चले गये और वे जब तप करने लगे तो बेटा! महर्षि लोमश, महर्षि काकभुषुण्डजी और महर्षि वैशम्पायन, ये तीन ऋषियों के यहाँ, उनका आवागमन होता रहा और विचारधाराएं भी प्रारम्भ होती रहीं।

भगवान राम और महर्षि लोमश मुनि के संवाद

राम वहाँ महर्षि लोमश मुनि से यह कहा करते थे कि "हे भगवन्! तुम भयंक्रर वन में क्या करते हो?" उन्होंने कहा, "मैं वह कार्य करता हूँ, जो प्रभु ने आज्ञा दी है।" "प्रभु ने आपको क्या आज्ञा दी है?" उन्होंने कहा, "प्रभु ने यह कहा है कि आत्मा को जानने का प्रयास करो।" उन्होंने कहा, "आत्मा को जानने के लिये क्यों तुम प्रयास करते हो?" उन्होंने कहा, "हमारे आने का, संसार में, यही उद्देश्य रहा है।" उन्होंने कहा, "मानव उद्देश्य के लिये जन्म लेता है।" उन्होंने कहा, "मानव यदि उद्देश्य के लिये जन्म लेता है, तो उसे जन्म नहीं लेना चाहिये।" महर्षि लोमश मुनि बोले "हे वृहे! हे राम! जो प्रसंग तुमने लिया है, वह दर्शन का, तप का और आनन्द का विषय है। जब मानव इस क्षेत्र में पारायण हो जाता है, तो उसके लिये जन्म की धारा उत्पन्न नहीं होती। मानो देखो, यह आनन्द तो स्वतः है, आनन्द आत्मा में है, आनन्द मानो देखो, उसकी क्रियाओं में है, आनन्द, मानो देखो, उसके ज्ञान में है, जहाँ परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ हैं, वहीं आनन्द है, इसीलिये देखो वह सर्वज्ञता में अपने को ले जाये तो उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त हो जाता है।"

तपस्या काल में शिव–पार्वती से भेंट

एक समय, जब वो तप कर रहे थे, तप समापन होने वाला था, तो महाराजा शिव और पार्वती दोनों भ्रमण करते हुए, मुनिवरो! देखो राम के आसन पर दण्डक वनों में पहुँचे। मुनिवरो! देखो, राम ने विचारा, उनका इतना निर्मल स्वच्छ हृदय बन गया, उनको देवता स्वीकार करके उनके चरणों की वन्दना की। चरणों को स्पर्श करके बोले कि "प्रभु! आइये, विराजिये!" वे विराजमान हो गये, महाराजा शिव से कहा कि "महाराज! आप तो मेरे प्राणदाता हो, प्राण के

मानो प्रेरक हो। मुझे आपने प्रेरणा दी और ऋषि–मुनियों के मध्य में यह कहा कि तप करना चाहिये। तो प्रभु! अब मुझे निर्णय दीजिये, क्या मेरा तप पूर्ण हुआ अथवा नहीं? मेरी इच्छा तो यह हो रही है कि मैं मोक्ष को अपने प्रभु को अपनाना चाहता हूँ। मैं अपने प्रभु में ही लीन होना चाहता हूँ। इस संसार के नाना प्रकार के विडम्बनावाद में जाने की मेरी प्रबल इच्छा नहीं है।'' देखो, महाराजा शिव ने कहा ''नहीं, देखो तपस्वी ही राजा होते हैं। यदि राजा के यहाँ से, हृदय से तप को निकाल लिया जाता है, तो राजा का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। तो हे राजन्! तुम्हारा तप ही तो राज्य करता है। तुम्हारा तप ही तो मानो देखो राष्ट्र को, समाज को एकोकीरण कराता है। और यदि तप ही नहीं रहेगा, केवल अपना स्वार्थवाद रह जायेगा, तो वह स्वार्थवाद उस राजा को ऐसे निगल जाता है, जैसे मानो देखो, प्रातःकाल का सूर्य रात्रि को निगल जाता है। तो मानो 'ब्रह्मेवाचः' आप तपस्वी बने हैं, यह राष्ट्र की प्रजा का, राज्य का बड़ा सौभाग्य है। आप राज्य का पालन कीजिये।'' मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने बहुत कहा कि ''तप करने में मेरा तपोमय मन हो गया है, मेरा मन स्थिर हो गया है।'' उन्होंने कहा, ''मन स्थिर हो करके ही राष्ट्र का पालन किया जाता है और जिनके मनों में चंचलता रहती है, वो राष्ट्र का पालन नहीं कर सकते।''

देखो, राम के प्रत्येक शब्द को, महाराजा शिव ने, मध्य में से दो–दो भाग कर दिये। आगे राम ने कहा, ''प्रभु! संसार, यह मानव के साथ नहीं जाता है। तप मैंने इसलिये किया कि प्रभु का और मेरा दोनों का एकोकीकरण हो जाये।'' उन्होंने कहा, ''हे राम! प्रभु से एकोकीकरण करना भी चाहिये। परन्तु देखो, समाज में, जनता में जनार्दन रहता है। अपने को समाज में परिणित कर लो, अपने को पिरो लो और प्रत्येक में, जनता में जर्नादन का अनुभव करो और अनुभव करके, प्रजा को शिक्षा दे करके राष्ट्र को ऊँचा बनाओ।''

कई दिवस यह विचार उनके चलते रहे, परन्तु अन्त में राम मौन हो गये और शिव के चरणों की वन्दना की। शिव जी ने कहा, ''धन्य है, प्रभु!''

(दिसम्बर 1986, लाजपतनगर, दिल्ली)

तपस्या काल में वशिष्ठ के उपदेश

महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती एक समय तपस्वी राम के दर्शन करने जा पहुँचे। राम ने उनके चरणों की पादुका का जल से स्पर्श करके उसका आचमन किया। आचमन करने के पश्चात् 'ब्रहे कृतक', राम तपस्या में परिणित हैं, वे तपस्या कर रहे हैं, मानो मन को पवित्र बना रहे हैं, क्योंकि **मन को पवित्र बनाने का नाम ही तप कहा जाता है, प्राणों को शोधन करने का नाम ही तप कहा जाता है।** 'तपस्यं ब्रह्मः कृतं लोकाः', वे तपस्या में परिणित हैं, परन्तु महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती दोनों अपने आश्रम से भ्रमण करते हुए राम के समीप पहुँचे। राम उन्हें दृष्टिपात करते हुए बड़े हर्षित हुए, उनके हर्ष की कोई सीमा न रही। ऋषि के चरणों को स्पर्श करते बोले कि ''प्रभु! मेरा यह कैसा अहो भाग्य है, भगवन्, जो ब्रह्मवेत्ता का मुझे दर्शन हो रहा है!'' मानो देखो, वह 'दर्शनं ब्रह्मः', वे विचार–विनिमय कर रहे थे और अपने को विचारशील बनाते हुए इस सागर से पार होना चाहते हैं। वह अनुपम सागर है, जिस सागर के लिये प्रत्येक मानव परम्परागतों से महान् से महान् कल्पना करता रहा है। राम उस अन्न को पान करके 'तपस्यं ब्रह्मः' तपस्या में परिणित हैं। वशिष्ठ मुनि ने कहा, ''राम! तुम इस प्रकार का यह तप क्यों कर रहे हो!'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! मैंने लङ्कापति से सङ्ग्राम किया है और सङ्ग्राम में मेरी रजोगुण और तमोगुणी प्रवृत्ति विशेषकर रही है। उस रजोगुणी में मैंने लंका के प्राणीमात्र को नष्ट किया है। मैं पापाचार में परिणित हो गया हूँ। विचारने से यह प्रतीत होता है कि मेरे अंतकरण में, हृदय में जो संस्कार विद्यमान हो गये हैं, जो संस्कारों की उपलब्धियाँ हो गयी हैं, उन्हें नष्ट करना मेरा कर्त्तव्य कहलाता है।''

राष्ट्रवाद पर विचार–विनिमय

जब बारह वर्ष का तप पूर्ण हो गया तो भयंक्रर वन में ही एक विचारवानों का मानव–समाज उपस्थित हुआ। उन्होंने कहा कि ''राम अब तुम राष्ट्र को भोगो।'' उन्होंने कहा, ''राष्ट्र तो मैं भोगने के लिये तत्पर हूँ, परन्तु मेरे विचार में यह नहीं आ रहा है कि यह राष्ट्र क्या है, जिसे मैं भोगूँ।'' उन्होंने कहा, ''राष्ट्र है, अपने पर अनुशासन करना। अपने प्राणों को संयम में लाने का नाम राष्ट्र है। परन्तु देखो, यह ऐसा राष्ट्र है, जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से टिप्पणियाँ करता रहता है, विचारधारा में तत्पर रहता है।'' राम ने कहा कि ''महाराज! मैं राष्ट्रवाद को जानना चाहता हूँ, यह राष्ट्रवाद क्या है?'' तो इन पुरोहितों ने उन वेद के कर्मकाण्डी महापुरुषों ने कहा कि ''यह जो संसार है, यह मानो बड़ी विचित्रता में, तपों का एक क्षेत्र माना गया है। यहाँ प्रत्येक मानव तपस्या में परिणित होना चाहता है और वह अपने को तपश्चर में परिणित करता हुआ सागर से पार होना चाहता है।'' उन्होंने राष्ट्रीयता की घोषणा की और वहाँ यह विचार बन गया था कि राम अब इस समय पूर्णरूपेण 'यज्ञ प्रवाहः' जैसे यज्ञशाला में यज्ञमान विद्यमान हो करके वह अधिपति कहलाता है, इसी प्रकार राष्ट्र को उन्नत बनाने के लिये मानो उसी प्रकार अग्रत होना बहुत अनिवार्य है। 'अनभूतं ब्रह्मः', भगवान राम ने यह स्वीकार कर लिया। ऋषि–मुनियों के उपेदश होने लगे। राम ने यह कहा कि ''हे ब्रह्मवेत्ताओ! मुझे निर्णय कराओ, यह राष्ट्रवाद क्या है, जिसके लिये इतना बल दिया जा रहा है?'' उन्होंने कहा, ''हे प्रभु! मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि आप जो राष्ट्रवाद की चर्चा कर रहे हैं, यह राष्ट्रवाद क्या है?'' उन्होंने कहा, ''राष्ट्रवाद वास्तव में अपने ऊपर अनुशासन करने को कहते हैं। अपने ऊपर अनुशासन करता हुआ जब अपने को जान लेता है, तो वह राष्ट्र को उस प्रकार भोगतव्य में लाता है। जैसे शब्द आता है, 'इदन्नमम' कि यह संसार, यह राष्ट्र मेरा नहीं है; मैं तो कर्त्तव्य करने के लिये तत्पर रहता हूँ। तो जो कर्तव्य करते हुए स्वीकार करता है, वही राष्ट्रवाद कहलाता है।'' भगवान राम ने पुनः यह कहा कि ''महाराज! यह राष्ट्रवाद और क्या है?'' उन्होंने कहा, ''बाह्य–जगत् में राष्ट्रवाद उसे कहते हैं, जहाँ राष्ट्र की प्रजा में महानता और शांति की स्थापना हो। राजा के राष्ट्र में प्रजा और राष्ट्र एक ही रस रहने चाहिये। उसे राष्ट्रवाद कहते हैं।'' भगवान राम ने पुनः यह प्रश्न किया कि ''भगवन्! यह राष्ट्रवाद क्या है?'' उन्होंने कहा ''राष्ट्रवाद वह है, जिस राजा के राष्ट्र में वेद के मर्म को जानने वाले पाण्डित्त्व होते हैं। जिस राजा के राष्ट्र में पाण्डित्त्व हों, वृत्ति वाले हों और उसमें अपनी आभा वाले विवेकी पुरुष होने चाहिये। जिस राजा के राष्ट्र में विवेकी पुरुष नहीं होते, जिस राजा के राष्ट्र में महापुरुष त्याग और तपस्या में नहीं होते उस राजा का राष्ट्र नग्न रह जाता है। इसीलिये हमारे यहाँ परम्परागतों से ही राष्ट्रवेत्ता, राष्ट्रीय प्रणाली में महापुरुषों का बड़ा वर्णन आता है। विवेकी पुरुष ऋषि–मुनि के चरणों को स्पर्श करते रहते हैं और वे किसी न किसी काल में अपनी पिपासा को शान्त करते हैं। वह पिपासा जब शान्त हो जाती है तो राष्ट्रीय प्रणाली पवित्र बनती है। क्योंकि राजा जब अशान्त होगा तो वह कहाँ जायेगा? वह गृह में नहीं जा सकता, वनों में नहीं जा सकता, क्योंकि उसके ऊपर एक राष्ट्रीय परम्परा है। वह वेद के मर्म को जानने वाले विवेकी पुरुषों से विचार–विनिमय करता है और विचार–विनिमय करता हुआ अपने राष्ट्र को उन्नत बनाने में लगा रहता है। हे राम! तुम्हारे पूर्वजों में भी इस प्रकार तप रहा है। महाराजा दिलीप ने सन्तानोत्पति के लिये एक महान् तप किया। उन्होंने धेनु के पीछे बारह वर्ष का जीवन उपार्जन किया और वह अपने में महानता का गान गाने लगे। तपस्या के पूर्ण होने पर देवताओं का उद्गीत गाने वाली अमोघ वाणी का वहाँ उपयोग होता रहता है। उसे श्रवण करता हुआ मानव अपने में मानवीयता की आभा में स्थित हो जाता है।''

महर्षि वशिष्ठ ने इस प्रकार राष्ट्र का विश्लेषण किया तो पुनः राम ने वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि ''महाराज! यह राष्ट्रवाद क्या है?'' उन्होंने कहा ''राष्ट्रवाद वह होता है जब प्रजा में अकर्त्तव्यवाद की मात्रा बलवती हो जाती है। तो राजा एक चुनौती लिये होता है। वह राजा वशिष्ठ कहलाता है जो समय से प्रजा को अपना उपदेश देना प्रारम्भ कर देता है।'' महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि ''राष्ट्रवाद वह कहलाता है, जो राजा 'राष्ट्रतं ब्रह्मः' जो धर्म और मानवीयता को लेकर गमन करता है और अपने राष्ट्र का पालन करता है। संसार में वह राष्ट्र कहलाता है जिस राजा के राष्ट्र में से प्राण न चला जाये। **धर्म ही तो राष्ट्र का प्राण कहलाता है।** जैसे मानव के शरीर से जब धर्म चला जाता है, तो यह आत्मा नग्न रह जाती है। जब राष्ट्र से धर्म चला जाता है, तो राष्ट्र अपंग बन जाता है। धर्म क्या है, जिसके ऊपर मानव इतना बल देता चला आया है? **वह धर्म कहलाता है जो देवताओं की ध्वनि है अथवा जो राष्ट्र को उन्नत बनाती है। राष्ट्र वही कहलाता है जहाँ धर्म मानवीयता को उर्ध्वा में गमन कराके इस सागर से पार होने का मानव प्रयास करता है।**

वही तो राष्ट्रवाद कहलाता है, 'राष्ट्रं ब्रह्मः वृत्तम्' जहाँ विद्यालय में अध्ययन कराने वाला आचार्य ब्रह्मचारी को अनुशासन में लाता है और अनुशासित होता हुआ अपने गृह को भी त्याग देता है।''

महर्षि वशिष्ठ से यह प्रश्न किया गया कि ''राष्ट्रवाद क्या है?'' तो वशिष्ठ बोले, ''हे राम! राष्ट्रवाद उसे कहते हैं, जहाँ प्रत्येक मानव शान्तिप्रिय हो जिस राजा के राष्ट्र में अश्वमेध याग होते हों और अश्वमेध याग इस प्रकार होते हों, जहाँ वृत्ति विद्यमान हो और राष्ट्र अपनी आभा में रत्त होने वाला हो। हे राम, तुम्हारे पूर्वज महाराजा सगर ने जिस समय अश्वमेध याग किया तो उससे पूर्व यह जानकारी की कि मेरा कोई शत्रु तो नहीं है। जब कोई शत्रु नहीं रहेगा तो राजा को यह अधिकार है कि वह राष्ट्र का पालन करे और राष्ट्र का पालन करता हुआ अश्वमेध याग को रचाने वाला हो।''

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने भगवान राम को उनके पूर्वजों की गाथा का वर्णन कराया। पुनः भी राम का यह प्रश्न बना रहा कि ''प्रभु! यह इसका प्रत्युत्तर नहीं है कि राजा सगर ने यह शिक्षा दी, कपिल ने यह किया और वह अश्वमेध याग हो गया। हे प्रभु, मेरा प्रसंग ज्यों का त्यों बना हुआ है।'' महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे, वहाँ वे वशिष्ठ कहलाते थे, अपने में उन्हें वशिष्ठता का अप्रहावृत्ति ज्ञान था। उन्होंने कहा, **''हे राम! राष्ट्रवाद उसे कहते हैं जहाँ धर्म और मानवीयता की रक्षा होती है। वह राष्ट्र कहलाता है, जहाँ मेरी पुत्रियों को पूज्यता की दृष्टि से दृष्टिपात किया जाता है और राष्ट्र के एक छोर से दूसरे छोर में मेरी पुत्री चली जाये, कोई भी उसको कुदृष्टिपात करने वाला नहीं होना चाहिये।''** वशिष्ठ ने जब यह कहा तो राम बड़े प्रसन्न हुए कि प्रभु आप मुझे बाल्यकाल में भी यह शिक्षा देते रहे हैं। उन्होंने कहा कि ''शिक्षा तो शिक्षा है, चाहे वह बाल्यकाल में प्राप्त हो या युवा काल में, परन्तु शिक्षा अपनी स्थली में शिक्षा बनी रहती है।'' महात्मा वशिष्ठ ने कहा, ''तुम यदि अपने राष्ट्र को ऐसा बनाना चाहते हो तो प्रियतम है। राष्ट्र जब ऊँचा बनता है, जब प्रत्येक मानव के अव्यव पवित्र बन जाते हैं।''

भगवान् राम ने कहा, ''प्रभु! मेरी दृष्टि में तो वही प्रसंग पुनः बना रहा कि यह राष्ट्रवाद क्या है? राष्ट्रवाद किसे कहते हैं?'' भगवान् राम के शब्दों को श्रवण करते हुए महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले ''राष्ट्रवाद का यह कर्त्तव्य कहलाता है कि वह मोह नहीं करे। अपने पुत्र, पुत्री व गृह ऐसे स्वीकार करे जैसे राजा के राष्ट्र में और अन्य प्रजा होती है। प्रजा की भाँति जब उसे दृष्टिपात करोगे तो प्रजा तुम्हारी हितकर बनकर तुम्हारे राष्ट्र को उन्नत करेगी। प्रजा और पुत्र दोनों में अंतर्द्वद है। पुत्र तो कहते हैं ममता की, मोह की कुंजी को और 'गृहणे सुधनं ब्रह्मः' प्रजा कहते हैं, जो अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं, वही तो प्रजा कहलाती है। माता–पिता को संतान देने से पूर्व, संसार को संतान देने से पूर्व यही विचारना है। राष्ट्रवाद में यह आया है कि राजा पुत्र को उत्पन्न न करे वह प्रजा को उत्पन्न करने वाला हो। वही प्रजा राष्ट्रवाद का चिंतन करने वाली बनती है।'' उन्होंने कहा कि ''तुम्हारे राष्ट्र में प्रजा होनी चाहिये और पालक उनका राजा होना चाहिये जिससे राष्ट्र अपनी आभा में उन्नत हो जाये।''

देखो विचार आता रहता है, वशिष्ठ ने कहा कि ''हे राम! राष्ट्रवाद वह कहलाता है, जब राजा अपने नियम में पूर्णता को प्राप्त होता है। प्रातः काल जब अंतरिक्ष तारा मंड़ल अपनी छटा में हो, उस समय राजा को भ्रमण करना चाहिये। उसके पश्चात् अपनी शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त होकर व्यायाम करे, योगासनों में आरूढ़ हो। इन क्रिया–कलापों को करने के पश्चात् राजा अपनी स्थली पर आता है और वह चाहता है कि मेरे राष्ट्र में प्रत्येक प्राणी याज्ञिक बने और सुगन्ध का देने वाला हो।'' 'महात्मा ब्रह्मणः कृतं देवत्वां ब्रव्हे' राम बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, ''जब तक अपने शरीरिक क्रिया को और जीवन को उन्नत नहीं करते, विचारों में सुगन्धि नहीं ला सकते, तब तक हम समाज को, राष्ट्र को ऊँचा नहीं बना सकते।'' उन्होंने कहा, ''संभव प्रव्हे कृतम्' जो वाणी में है, वही क्रिया में है और जो क्रिया में है, वही वाणी में है, वही उसके हृदय में सदा बन करके रहती है।''

जब यह वाक्य उद्‌गीत रूप में गाया और यह कहा कि ''राजा में सबसे प्रथम नैतिकता होनी चाहिये, वैदिक विद्याओं में उसे रमण करना चाहिये। जैसे राष्ट्रवाद में नाना प्रकार की विद्याओं का वर्णन आता रहता है। मेरी प्यारी माता अपनी विद्या (आयुर्वेद) में पूर्ण हो उच्च सन्तान को जन्म देने वाली हो तो राष्ट्र उन्नत बनता है। ये विद्याएं राजा के राष्ट्र में होनी चाहिये। राजा के राष्ट्र में जब ये विद्या होती हैं तो उसे राष्ट्रवाद कहते हैं। वह 'तपं ब्रहे', वह भी विद्या होनी चाहिये जब वह तपस्या में परिणित होता हुआ अपनी आत्मा का परमात्मा से मिलान करता हुआ, ब्रह्माण्ड की उसमें पुट लगा करके ब्रह्म की चरी को जानने लगता है। वही तो ब्रह्मणत्व कहलाता है। यदि राजा के राष्ट्र में विवेकी पुरुष नहीं हैं, महापुरुष नहीं हैं, मेरी पुत्रियाँ बुद्धिमान नहीं हैं, तो वह राजा अपने राष्ट्र को उन्नत नहीं बना सकता। ये विद्याएं परम्परागतों से ही मानवीय मस्तिष्कों में पाडित्व के रूप में रमण करती रही हैं। ब्रह्मवेत्ता इस संसार से उपराम हो जाता है। महात्मा वशिष्ठ ने भगवान राम से कहा कि ''इसको ही राष्ट्रवाद कहते हैं, जिस राष्ट्रवाद की तुम चर्चा कर रहे थे।''

आदर्श राष्ट्रवाद का क्रिक्यात्मक रूप

उसके पश्चात् उन्होंने कहा कि ''प्रभु यह तो मैने जान लिया कि इसे राष्ट्रवाद कहते हैं, परन्तु इसे कार्य रूप कैसे दिया जायेगा?'' उन्होंने कहा, **''स्वतः इस प्रकार के बन जाओ तो कार्य रूप स्वतः दिया जाता है। जब अपने में सूक्ष्मता रहेगी तो जगत् सूक्ष्म बनेगा। अपने में जब मानवता रहेगी तो समाज भी मानव बनेगा। जब मानव स्वयं दार्शनिक बनेगा तो मानव समाज भी दार्शनिक बन जायेगा। जब अपनेपन में मृत्यु को विजय करने वाले बनेंगे तो यह संसार मृत्युंजयी बन जायेगा। जब हम अपने में ब्रह्मज्ञान की चर्चा करेंगे, ब्रह्मज्ञानी बनेंगे तो संसार ब्रह्मज्ञानी बन जायेगा। अपनेपन को विचारते हुए परमपिता परमात्मा के जगत् में अपने को स्वीकार करो। वही राष्ट्र अपने में पवित्र बनता है। प्रजा उसी के अनुसार बरतने लगती है और जब राजा इस प्रकार का नहीं होगा तो प्रजा नहीं बरतेगी और जब प्रजा नहीं बरतेगी तो राजा केवल अपने आलस्य प्रमाद में परिणित हो जायेगा। समाज भी उसी प्रकार के अधिकार की पुकार करने लगेगा। अधिकार ही चाहने लगेगा परन्तु कर्त्तव्य नष्ट हो जायेगा।** जब अधिकार ही अधिकार को पूर्ण करेगा तो आज तक सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके कोई भी मानव किसी के अधिकार को पूर्ण नहीं कर सका है। कर्त्तव्य करते रहो तो अधिकार स्वतः प्राप्त होता है। उसे आवश्यकता नहीं है, पुकारने की। **परन्तु जब कर्त्तव्य करता है तो वह अपनी उस आत्मा को प्रसन्न करता है तो आत्मा प्रभु से मिलान करती है; उसके मन में जो इच्छित फल होते हैं, वह उसे प्राप्त हो जाते हैं।''** (25 मई 1990, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

अयोध्या के राजवेत्ताओं को राम के उपदेश

एक समय, जब राम अपना तपस्या का अनुष्ठान पूर्ण कर रहे थे तो अयोध्या के राजवेत्ताओं ने वन में जाकर राम से प्रार्थना की कि वे अब अयोध्या में आकर राज्य भार संभाले और उनका मार्ग–दर्शन करें। उन्होंने राम से कहा ''प्रभु! हमारा मार्ग–दर्शन करें!'' राम ने कहा कि ''जब सबको ज्ञान हो जायेगा, ब्रह्म ज्ञानी बन जायेंगे, कर्मठ कर्मकांड में परिणित समाज हो जायेगा तो अनुशासन की आवश्यकता नहीं रहती।'' राम ने कहा, ''अनुशासन वहाँ होता है, जहाँ कुरीतियाँ आ जाती हैं, विकृतियाँ आ जाती हैं, वहीं अनुशासन की आवश्यकता है और जहाँ, मानव अपने में अपनेपन को, चिंतन में ला रहा है उसके लिए राष्ट्रवाद की आवश्यकता होना, न होना एक समान है। जब राजा अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, प्रजा अपने कर्त्तव्य का पालन करती है और विज्ञान का सदुपयोग होता रहता है तो समाज में एक महानता का जन्म हो जाता है।'' राम ने कहा कि ''जब प्रत्येक मानव एक–दूसरे से रत्त हो जायेगा, मानो उसी का नाम राष्ट्रवाद कहा जाता है, क्योंकि उस राष्ट्रवाद में अपनी अन्तरात्मा की पवित्रता होती है और जहाँ मानव की अपने चित्त और इन्द्रियों में पवित्रता नहीं आयेगी उस समय द्वितीय राष्ट्र के निर्वाचन से कोई लाभ नहीं होना है संसार में, जब तक प्रत्येक मानव का इन्द्रियत्त्व ऊँचा न बन जाये और विचारधारा पवित्रत्व को प्राप्त न हो जाये।'' राम ने कहा कि ''मैं इस राष्ट्र को अवश्य भोगूँगा परन्तु मेरा अन्तरात्मा यह कहता है कि प्रत्येक मानव को अपने कर्त्तव्य में तल्लीन हो जाना चाहिये। यदि हम राजा बन करके राष्ट्र को उन्नत नहीं बना सकते और जीवन की चर्या में पवित्रता नहीं ला सकते और उस पवित्रता को हम धारण नहीं करेंगे तो हमारा राष्ट्रीयत्व शान्त हो जायेगा।''

भगवान राम ने जब इस प्रकार उपदेश दिया अथवा राष्ट्रवाद के ऊपर यह कहा कि देखो ''हे कर्मवेत्ताओ! तुम राष्ट्र कृतियों को मुझे प्रदान कर रहे हो, मेरा अन्तरात्मा यह कहता है कि राजा के राष्ट्र में विवेकी और वेद को जानने वाले पुरुष होने चाहिये, जिन्हें वेदज्ञ कहते हैं। जिस राजा के राष्ट्र में वेदों का उद्‌गीत गाया जाता है और वेदों का उच्चारण करने वाले पक्षीगण भी होते हैं, उस राजा का राष्ट्र पवित्र होता है, जिस राजा के राष्ट्र में हिंसा नाम की

कोई वस्तु नहीं होती, क्योंकि हिंसा वहाँ होती है जहाँ स्वार्थपरता होती है। जहाँ स्वार्थ नहीं हुआ करता, वहाँ हिंसा भी नहीं होती। जब हिंसा नहीं होती तो अहिंसा में मानव परिणित हो जाता है। अहिंसा में राजा है, अहिंसा में प्रजा है, अहिंसा में विद्यालय है, अहिंसा में स्वतन्त्र हो करके ब्रह्मचारी गमन करता रहता है।'' राम ने जो कर्मवेत्ताओं को उपदेश दिया, कर्मवेत्ताओं से कहा ''हे कर्मवेत्ताओ! तुम अपने राष्ट्र को उन्नत बनाने के लिये सदैव तत्पर हो जाओ, जिससे मैं अपनी आभा में रत्त हो जाऊँ।'' राम यह उपदेश देकर के मौन हो गये और यह कहा कि प्रत्येक गृह में वेद के कर्मकांड और सुगंधि आना चाहिए, क्योंकि राजा का राष्ट्र तभी ऊँचा बनता है जब प्रत्येक प्रकार की सुगंधि आने लगती है। जैसे यजमान यज्ञशाला में विद्यमान हो करके हूत कर रहा है, वह अग्नि में स्वाहा दे रहा है और गृह में वायुमण्डल पवित्र बन रहा है और गृह पवित्रता को धारण कर रहा है। यजमान कहता है, हे प्रभु, मेरा राष्ट्र पवित्रता में परिणित होना चाहिये। मेरे यहाँ सुगंधि होनी चाहिये', और वह सुगंधि में परिणत हो रहा है। यह सुगंधि भी दो प्रकार की है जो मैंने पुरातन काल में भी यह सुना है कि एक वह जो साकल्य से आती है, अग्नि जिसको विभाजन कर रही है, अग्नि ही मानो देवता कहलाती है और द्वितीय अग्नि वह जो गृह में सुगंध आती है मानो अग्नि प्रदीप्त हुई और सुगंध आने लगी। भगवान राम ने यही कहा है कि मेरा राष्ट्र जो अयोध्या है, यह विष्णु राष्ट्र की स्थापना करे और प्रत्येक गृह में सुगंधि होनी चाहिये।''(16 मई 1990, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

राम के तपस्या काल में भरत द्वारा कर्त्तव्यपालन

राम जब राष्ट्र का शासन करते थे उससे पूर्व वनों में तपस्या करते रहे, ऋषि, मुनि आते, साधारण प्राणी या कोई भी जब चाहे उनके दर्शन करते। भरत भी इसी प्रकार के क्रियाकलाप करते रहते थे। वे सायं काल में, दिवस काल में सदैव भ्रमण करते थे और भ्रमण करके प्रजाओं की मनौति लेते कि मेरी कोई प्रजा दुःखी तो नहीं है। जब इस प्रकार का कार्य कोई राजा नहीं करेगा तो प्रजा कैसे ऊँची बनेगी? जब राजा प्रजा में नहीं जायेगा तो वह निकृष्टता को प्राप्त होगी। जब राजा प्रजा से अपनी वार्त्ता प्रकट करेगा, प्रजा राजा से अपनी वार्त्ता उद्‌गीत रूप से गायेगी तो यह समाज पवित्र बनेगा।

(24 मार्च 1992, लाक्षागृह, बरनावा)

२३. तेईसवां अध्याय–राज्याभिषेक

अयोध्या–आगमन

भगवान् राम ने बारह वर्ष तक अनुष्ठान किया। बारह वर्ष का अनुष्ठान करने के पश्चात्, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न और उनके सखा हनुमान, चारों प्राणी भ्रमण करते हुए, नदी के तट पर आ करके राम के समीप आ पहुँचे। राम ने उनका यथोचित स्वागत किया और वे विद्यमान हो गये। भरत कहते हैं कि ''प्रभु! अब आपका अनुष्ठान भी समाप्त हो गया है। मेरी इच्छा यह है कि अब ऐसा कोई दिवस नियुक्त किया जाये जिस दिवस में आपका राज्याभिषेक हो जाये और राष्ट्र की परम्परा सुचारू रूप से प्रारम्भ हो और कोई न कोई निर्वाचन की नियमावली बना करके राष्ट्र को एक नवीन जीवन देना चाहिये।''

भगवान राम कहते हैं कि ''हे भरत! तुम्हें यह प्रतीत है कि दर्शनकार क्या कहते हैं? दर्शनकार कहते हैं कि संसार में राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं होती। राष्ट्र की आवश्यकता उस काल में होती है, जिस काल में पापाचारी प्राणी, अकर्तव्यवादी प्राणियों की विशेषता हो जाती है। उस काल में राजा का निर्वाचन होता है। राज्य सभा होती हैं, वह सभा नित्य नियमावली को धारण करती है। बिखरे हुए समाज को या प्रजा को एक अनुशासन में लाने के लिये उस नियमावली का आदेश प्रारम्भिक होता है। इन्द्रियों का विषय जब बिखर जाता है, तो उस मानव को योगाभ्यास की जैसे आवश्यकता होती है, अनुशासन की आवश्यकता भी उस काल में होती है जब प्रजा कर्तव्य से विहीन हो जाती है। जब प्रजा में कर्त्तव्यवाद होता है, प्रजा अनुशासन में होती है तो उस काल में राजा हो, अथवा न हो, उसका महत्त्व नहीं होता। इसीलिये मेरा विचार तो यह है कि आज राष्ट्र को इसी प्रकार सुचारु रूप से गति करना चाहिये।'' परन्तु भरत और शत्रुघ्न कहते हैं कि ''भगवन्! अब बहुत समय हो गया है, आप चौदह वर्ष तक वन में रहे, उसके पश्चात् आज बारह वर्ष छः माह बाद यह समय आ गया है, हमारी इच्छा है कि इस समय शरद ऋतु है, कृष्ण पक्ष आ गया है, कृष्ण पक्ष भी समाप्त हो रहा है, अब शुक्ल पक्ष प्रारम्भ होना है, दीपावली के पश्चात शुक्ल पक्ष आ जाता है, प्रकाश आ जाता है, तो हे प्रभु! आप राष्ट्र को अपनाइये।'' भगवान राम ने भरत के इन वाक्यों को पान करके अनुष्ठान को पूर्ण करते हुए, अन्तिम चरण को पूर्ण करते हुए, उसका समापन करके अपनी अयोध्या को गमन किया।

राजा बनने से पूर्व राम का वशिष्ठ–विश्वामित्र से विचार–विमर्श

भगवान् राम ने संसार में अपनी प्रतिभा, अपनी संस्कृति के प्रसार के लिये क्या नहीं किया। लंका को विजय किया, रावण के विधाता विभीषण को राज्य दिया और अपनी अयोध्या में आ गये। अयोध्या में आ जाने के पश्चात् राष्ट्र को स्थापित करने से पूर्व वशिष्ठ के चरणों में ओत–प्रोत हो गये। वहीं विश्वामित्र आ पहुँचे। दोनों महापुरुषों के चरणों में ओत–प्रोत होकर राम ने यह कहा ''भगवन्! अब आप मुझे कोई ऐसा निश्चय मार्ग दीजिये जिससे मैं अपने राष्ट्र को राम–राज्य बना सकूँ, अपने राष्ट्र को सदाचार के मार्ग पर ले जा सकूँ।'' तब ऋषि–मुनियों ने कहा कि ''हे राम! सबसे प्रथम वाक्य यह है कि तुम्हारे राष्ट्र में मिथ्यावाद नहीं होना चाहिये। प्रजा में जब मिथ्यावाद हो जाता है तो दूसरा मानव उसका अनुसरण करने लगता है और यह भी निश्चित है कि राजा को मिथ्यावादी नहीं होना चाहिये। जब राजा स्वयं मिथ्यावादी और अनुशासनहीन हो जाता है तो प्रजा भी स्वयं उसका अनुसरण करने लगती है और प्रजा में जब उसका अनुसरण हो जाता है, तो प्रजा में एक रक्तभरी क्रान्ति आ ही जाती है।'' विश्वामित्र जी ने कहा कि ''हे राम! हम यह सदैव जानते हैं कि राम कितना चरित्रवान है, उसके द्वारा कितनी मानवता है। ऐसे मानव ही जब संसार में अवतरित हो जाते हैं उसके पश्चात् ही संसार महानता को प्राप्त होता है।''

राम ने उन महर्षियों के वाक्यों को ग्रहण किया और कहा कि ''प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैं ऐसे राष्ट्र का अधिकारी भी हूँ या नहीं।'' उस समय ऋषि ने कहा कि ''हे राम! यह तुम्हारा हृदय जानता है। यदि तुम्हारा हृदय इस वाक्य को उच्चारण करता है तो तुम राष्ट्र के अधिकारी हो। यदि तुम्हारा हृदय इस वाक्य को स्वीकार नहीं कर रहा है तो वास्तव में तुम अधिकारी बन ही नहीं पाओगे। आज तुम्हें हमारे ऊपर और अपनी आत्मा के ऊपर विश्वास होना चाहिये, क्योंकि **जो अपने कर्त्तव्य को ईश्वर के ऊपर त्याग देता है, उस मानव का जीवन ऋणों से उपराम होता रहता है और जिसके द्वारा अभिमान आ जाता है, वह मानव सदैव त्रुटियों में रमण करता है। जो मानव अपने कर्त्तव्य को करता हुआ, प्रभु को स्मरण करता रहता है और अपने कार्यों को प्रभु के लिये त्याग देता है, उस मानव के द्वारा प्रायः सदाचार आ जाता है।''** राम नतमस्तक हो गये। उन्होंने कहा, ''प्रभु! अपने महान देव की याचना करता हुआ और आपकी शरण में रहता हुआ राष्ट्र का पालन करूँगा।''

वास्तव में राजा का जो प्रभु होता है, वह गुरु होता है, परन्तु गुरु वह होना चाहिये जिसके द्वारा पक्षपात न हो, जो तपस्वी हो, आत्मवेत्ता हो, ब्रह्म का चिन्तन करने वाला हो, महान् प्रभु की प्रतिभाओं को जानने वाला हो। गुरु–पद–चिह्नों पर चलता हुआ वह राजा को सदाचार के मार्ग पर ले जाता है।

राम ने उनके वाक्यों को स्मरण करते हुए सर्व प्रजा में स्वयं भ्रमण किया। राम की प्रजा कैसी सुन्दर थी! प्रत्येक गृह में यज्ञ हो रहे हैं, प्रत्येक गृह में मानो यज्ञों की ध्वनि आ रही है, वेद–मन्त्रों की ध्वनि आ रही है। शंख ध्वनि होती थी। शंख ध्वनि नाम वेद–वाणी का है। जिस राजा के राष्ट्र में वेद–वाणी का प्रसारण होता हो उस राष्ट्र में प्रायः महानता आ ही जाती है, क्योंकि वेदों को हमारे यहाँ ईश्वरीय ज्ञान माना गया है। जहाँ ईश्वर का ज्ञान होता है, वहाँ जो प्रभु की चेतना होती है, वह प्रजा उस चेतना के ही वन्धन में रहती है और चेतना के आधार पर मानव के जीवन का निर्माण होता है। उसी निर्माण के द्वारा उसकी शरण में रहने वाला जो प्राणी होता है, वह पापों से उपरामता को प्राप्त होता रहता है। वह मानव एक चेतना के वशीभूत रहता है। भगवान् राम ने अपने राष्ट्र में सर्वत्र संस्कृति का प्रसार किया। जिस राजा के राष्ट्र में अपनी संस्कृति होती है, अपना विचार होता है, वह राष्ट्र संसार में सफलता को प्राप्त होता रहता है। परन्तु जिस राजा के राष्ट्र में अपना कोई विचार नहीं होता, अपनी संस्कृति नहीं होती, वह राष्ट्र कभी भी सफलता को प्राप्त नहीं होता।

वह अपने कर्मों में असफल होता रहता है। उस राजा के राष्ट्र में अनुशासनहीनता रहती है, रक्तभरी क्रान्तियाँ आती रहती हैं। वहाँ का वायुमण्डल अशुद्ध हो जाता है, जिससे मानववाद अस्त–व्यस्त हो जाता है। (26 मार्च 1970, सिकन्दाराबाद आ. प्र.)

राज्याभिषेक उत्सव

दीपावली के दो दिवस रह गये थे, जिस दिवस राम का राज्याभिषेक होना था। उस समय भरत ने यह कहा था कि "प्रभु! कृष्ण पक्ष है, दीपावली आने वाली है और शुक्ल पक्ष में आपका राज्याभिषेक होगा।" उन्होंने यह स्वीकार कर लिया। एक सभा एकत्रित की जिसमें नाना ऋषिवर और सर्व भू–मण्डल के राजा, एक सूचना के अनुसार अपने–अपने वैज्ञानिक अप्रेत यन्त्रों के द्वारा अयोध्या में आ पहुँचे। पातालपुरी के मकरध्वज और लंका से विभीषण और जहाँ भी घोष की आभा रमण करती थी, वहाँ से राजा, ऋषि–मुनि अयोध्या में आने लगे। अयोध्या में एक भव्य सभा हुई और दीपावली का दिवस आया। सब राजा–महाराजा एकत्रित हो रहे थे। एकत्रित दार्शनिकों ने कहा कि "याग होना चाहिये।"

उस समय राम ने एक और सूक्ष्म याग किया। याग करके, गायत्री छन्दों के पठन–पाठन के पश्चात् उन्होंने कहा कि "अब अपना–अपना विचार प्रकट होना चाहिये क्योंकि राष्ट्र भी याग है, वह मुझे प्रदान किया जा रहा है। वास्तव में मैं इस योग्य नहीं हूँ जो मैं राष्ट्रीयता को अपनाने का प्रयास करूँ, मेरे में इतनी सत्ता कहाँ है? यह राष्ट्र तो प्रजा के आनंद, प्रजा के वैभव की सुरक्षा के लिये होता है।" राम ने जब यह वाक्य कहा तो सब ऋषि–मुनि आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने कहा कि "हे राम! तुम्हें राष्ट्र का अधिकार क्यों नहीं है?" उन्होंने कहा कि वास्तव में राष्ट्र के अधिकारी तो प्रभु ही होते हैं क्योंकि वह इतने त्याग और तपस्या में रहते हैं। वे ही सर्वत्र ब्रह्मांड के नियन्ता हैं अथवा निर्माण करते हैं, उसका संचालन कर रहे हैं परन्तु उसके पश्चात् भी उसमें लिप्त नहीं होते। वास्तव में सर्वत्र राष्ट्रों का स्वामी तो परमपिता ही होता है। मुझे भी प्रजा का दायित्व दिया जा रहा है, प्रजा को कर्त्तव्य में लाने के लिये मुझे कार्य भार दिया जा रहा है। मैं इसको स्वीकार तो कर लूँगा। परन्तु मैं इसके योग्य नहीं हूँ।" राम इतना उच्चारण करके मौन हो गये।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की अध्यक्षता में वह राजसभा एकत्रित हुई। सभा में माता अरुन्धती, महर्षि अत्रि और माता अनुसूया विराजमान थीं। नाना राजा–महाराजा एकत्रित थे। सब ही राजा–महाराजा एक ही आभा में थे, एक ही पंक्ति में थे। वशिष्ठ मुनि महाराज ने सबसे प्रथम यह कहा कि "यदि किसी को अपना विचार व्यक्त करना है तो कर सकता है, यह यज्ञशाला भी है और राष्ट्रीय वेदी भी है।" उस समय लक्रापति विभीषण उपस्थित हुए और कहा कि "प्रभु! मैं कुछ वाक्य प्रकट करना चाहता हूँ।" उन्होंने कहा कि "बहुत प्रिय! तुम्हारा जो वाक्य है, वह सर्वोपरि है।"

विभीषण वक्तव्य

विभीषण जी कहते हैं कि "आज हम इस अयोध्या में पधारे हैं। आज प्रथम समय लंका से हमारा गमन हुआ है। लंका में ही जन्म भी लिया, हमने अपनी लंका में ही प्रवेश किया परन्तु राम का प्रियवर्ती रहा हूँ। मेरी इच्छा यह है कि अयोध्या का राष्ट्र अपना करके राम, संसार के लिये गौरव करेंगे, क्योंकि संसार उनके आदेशानुसार अपनी राष्ट्रीय पद्धति का निर्माण करेगा। कोई भी राजा किसी काल में राम के वचनों की अवहेलना नहीं करेगा। मेरा तो यह संकल्प बन गया है कि मैं एक राष्ट्रीयता को चाहता हूँ। मेरे विधाता रावण को महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज ने, भृगु जी ने और महात्मा पुलस्त्य तीनों ने, एक स्वर में एक वाक्य कहा था कि 'रावण! तुम लंका को अपनाने जा रहे हो, यह लंका बड़ी विदुषी रही है, इसका जो राष्ट्र है, वह महान् रहा है, इसमें जो भी राजा आया उसने चरित्र की सुगन्धि दे करके प्रजा को नवीन् दर्शन दिया है। आप लंका को अपना रहे हो, कुबेर से उसको विजय कर लिया है। इसी प्रकार हमारी इच्छा यह है कि तुम अपनी लंका में चरित्र और मानवता से सुरक्षा करना। विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होने देना है, और एक चरित्र की शाला का निर्माण करना। राजा के राष्ट्र में चार प्रकार की नियमावली होती हैं। एक नियमावली यह होती है जो राष्ट्रीयता की हितकर है। एक विवेकी पुरुषों की सभा होती है, ब्राह्मण समाज की एक सभा होती है उस सभा में विवेकी पुरुष होते हैं, बुद्धिमान संस्कृति के प्रसारण के लिये रहते हैं। समाज को शिक्षित बनाने के लिये, एक नियमावली होती है। द्वितीय नियमावली, राजा के राष्ट्र में राष्ट्रीय कोष होता है जो अपने राष्ट्र की सुरक्षा के लिये होता है और तृतीय जो कोष होता है वह प्रजा और आंतरिक राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिये, कर्त्तव्य में लाने के लिये होता है और चतुर्थ जो हमारे यहाँ राष्ट्रीय कोष होता है, वह ऐसा होता है, वह नित्यप्रति एकत्रित किया जाता है और राष्ट्र के शिक्षालयों के कार्य में लाया जाता है। राष्ट्र के यह चार नियम होते हैं'।" विभीषण कहते हैं कि "मेरे महापिता ने क्या, नाना आचार्यों ने रावण को यह शिक्षा दी। महात्मा भृगु ने क्या, पुलस्त्य ने क्या और भी नाना ऋषियों ने इस प्रकार की शिक्षा दी। परन्तु देखो, उन वाक्यों को न मानते हुए राजा रावण ने संसार को विजय किया, उनमें प्राणी बड़े दुःखी हो रहे थे और दुःखित होने का कारण यही था कि चरित्र तो था नहीं। अभिमान विशेष आ गया था, क्रोध की मात्रा आ गयी थी। क्रोध शील को समाप्त कर देता है। कामना समाज के प्राण को हर लेती है। राष्ट्रीयता उसी काल में नष्ट हो जाती है। वह वाक्य आज तक मुझे स्मरण आ रहा है। मैं इसलिये आज्ञानुसार आज लंका से आ पहुँचा हूँ। मेरी इच्छा यही है कि राम जैसा महापुरुष यदि राष्ट्र का नायक बनेगा तो प्रत्येक राष्ट्र को एक नवीन प्रकाश प्राप्त होगा और नवीन प्रकाश को ले करके राष्ट्र की, समाज की पद्धति ऊँची बनेगी।" उन्होंने यह भी कहा था कि "मैं इनके वाक्यों का आदर करूँगा, सत्कार करूँगा और मैं राम के वाक्यों को अपने जीवन में लाने का प्रयास करूँगा, क्योंकि अपने जीवन में इनके वाक्य को ला करके, उस आभा को और हमें राष्ट्र के गौरव को ऊँचा बनाना है।" यह कह करके विभीषण मौन हो गये।

मकरध्वज के विचार

इतने में हनुमान के पुत्र मकरध्वज ने कहा कि "प्रभु! मैं भी कुछ वाक्य प्रकट कर सकता हूँ?" महर्षि वशिष्ठ बोले कि "जो तुम्हारी इच्छा हो प्रकट करो।" उस समय मकरध्वज जी कहते हैं कि "आज मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मैं अपने पितरों में गति कर रहा हूँ। राम और लक्ष्मण भी मेरे पितर ही हैं और मेरे पिता तो पितर हैं ही, और ऋषि–मुनि तो महापितर होते हैं। आज यह मेरा कैसा सौभाग्य है, मैं कैसी गोष्ठी में विराजमान हूँ, जहाँ पितरों के दर्शन हो रहे हैं। मैं इसलिये उपस्थित हुआ हूँ कि मेरी केवल एक ही कामना है कि हम अपने जीवन में एक आभा को लाना चाहते हैं, पवित्रता को लाना चाहते हैं। उस पवित्रता के लिये प्रत्येक प्राणी अपने–अपने कार्य में रत्त हो रहा है। हम अपने जीवन में एक आभा की पद्धति को अपनाना चाहते हैं परन्तु हमें यह विचारना है कि राष्ट्रयिता का क्या सम्बन्ध है? राम से हमें नवजीवन प्राप्त होगा, त्याग और तपस्या का जीवन हमें सहकारिता से प्राप्त होता रहा है। जो उन्हीं की देन है, आज इतने बड़े राष्ट्र के स्वामी का भार मुझे प्रदान किया है, मैं उसको अपनाने के लिये तत्पर हूँ, मैं त्याग और तपस्या को अपनाना चाहता हूँ। मेरी उत्सुकता बन गयी है कि राम द्वारा अयोध्या के राष्ट्र की जो भी नियमावली निर्मित होगी, मैं अपने जीवन में उसकी अवहेलना नहीं करूँगा। यह मुझे मेरे पिता की देन है। मैं तपस्वी बन सकता हूँ। मेरे पिता महान् तपस्वी रहे हैं, सूर्य–विज्ञान के ज्ञाता रहे हैं, सूर्य विद्या को निगलने वाले रहे हैं इसीलिये आज मेरा यह बड़ा सौभाग्य है। इस सौभाग्यशाला में मेरा ध्येय तो यह है कि यहाँ धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिये, इस प्रकार की राम–राज्य की स्थापना होनी चाहिये, जहाँ विष्णु राज्य की स्थापना होती है, वहाँ आज मैं राम–राज्य की स्थापना चाहता हूँ।" इतना उच्चारण करके वह भी मौन हो गये।

महाराजा शिव का उपदेश

इसके पश्चात् महाराजा शिव ने जो निमंत्रण के अनुसार हिमालय कन्दारओं से आ पहुँचे थे, सभापति से कहा कि "महाराज! मैं भी कोई वाक्य उच्चारण कर सकता हूँ।" उन्होंने कहा कि "बहुत प्रिय!" "भगवन्! हमारी तो यह इच्छा है कि आप जैसे महापुरुषों के वाक्य हों।" महाराजा शिव कहते हैं कि "आज हमारा बड़ा सौभाग्य है, आज हम अयोध्या में विद्यमान हैं, जिस अयोध्या का निर्माण भगवान मनु ने किया था। भगवान मनु का जीवन संसार में सर्वोपरि राष्ट्रवाद में रहा था। उन्होंने राष्ट्र–पद्धति का निर्माण किया और राष्ट्र–पद्धति का निर्माण करने के पश्चात् उन्होने महत्ता की एक आभा को ओत–प्रोत किया है। उस अयोध्या का निर्माण किया जो 'नव द्वारा अष्ट चक्रा' नगरी कहलायी जाती है। यही वह अयोध्या है, जिसमें राम विद्यमान हैं, आज हमारा सौभाग्य है। मुझे वह काल स्मरण है जिस काल में लंका को विजय करने के लिये एक मेरी ही सम्मति नहीं थी, महर्षि भारद्वाज की भी सम्मति थी

कि लंका को विजय किया जाये और लंका में आर्यत्त्व का प्रसार होना चाहिये। आर्यत्त्व किसे कहते हैं? **आर्यत्व उसे कहते हैं, जहाँ मानव अपने नियम, धर्म और मानवता को अपनाता है और सत्यता को अपनाता हुआ अपने राष्ट्र की पद्धति को ऊँचा बनाता है।** समुद्र के तट पर जब मुझे उन्होंने निमंत्रण दिया, जामवंत मुझे निमंत्रण देने जा पहुँचे और जैसे ही राम का नामोच्चारण किया तो मैं अपनी स्थली को त्याग करके, पार्वती को साथ लेकर के समुद्र के तट पर आ गया।

समुद्र के तट पर राम ने कहा कि 'महाराज! मुझे क्या करना चाहिये?' क्योंकि राम परम्परा से ही नीतिज्ञ हैं। यह त्याग और तपस्या में रमण करने वाले हैं। वह ये भी उच्चारण कर सकते थे कि मेरी सहायता करो, परन्तु नहीं। वह मेरा पूजन करने के पश्चात्, पूजन का अभिप्रायः क्या था, मुझे उचित आसन दे करके, नाना औषधियों को एकत्रित करके चंदन आदि को खरल करके, जब मुझे शिष्टाचार के साथ आसन दिया तो चरणों में ओत–प्रोत हो करके यह कहा कि 'आप अधिराज हैं, अब मैं ऐसे काल में क्या करूँ? मेरी इच्छा है, मैंने ऐसा संकल्प किया है कि आर्यत्व का प्रसार होना चाहिये, सत्य सनातन धर्म होना चाहिये।' उस समय मैंने हर्षध्वनि करते हुए कहा कि 'हे राम! तुम्हारी इच्छा यह है कि सङ्ग्राम करूँ। इसमें मेरी सम्मति है। जितना भी द्रव्य कोष है, वह मैं तुम्हें प्रदान करूँगा। प्रायः मैं रावण का सखा हूँ, रावण ने मेरे यहाँ अस्त्रों–शस्त्रों की विद्या पायी है। वह मेरा शिष्य भी कहलाता है परन्तु शिष्य इसलिये होता है कि वह चरित्र की स्थापना करने वाला हो, मानवता को लाने वाला हो। परन्तु वह मानवता नहीं ला सकता, सत्यता का प्रसार नहीं कर सकता तो मैं उस प्राणी के साथ नहीं रहने वाला। जो त्याग और तपस्या में रत्त रहने वाला हो, अपने गृह को गृह नहीं स्वीकार करता वह केवल त्याग में रहता है, महापुरुषों की सेवा करता रहता है और दुरिता को नष्ट करने की जिसमें भावना होती है उनके साथ मैं हूँ और, इसीलिये मैं राम! तुम्हारे समीप हूँ। मेरा जितना भी अस्त्रो–शस्त्रों का कोष है, यह तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ।' जब मैंने वह प्रदान किया तो राम ने हर्ष–ध्वनि की, पूजन किया और पूजन का अभिप्रायः यही था कि मुझे मग्न करना था। संसार के जितने भी राष्ट्र लंका से दूरी हो रहे थे, उन सर्व राष्ट्रों को राम ने अपनाने का प्रयास किया। क्यों किया? क्योंकि राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिये त्याग और तपस्या में संसार के राष्ट्र की पद्धतियों का निर्माण होता है। इसीलिये मैं चाहता हूँ कि राम! जिस भावना से तुमने लंका को विजय करके उसके विधाता को प्रदान कर दिया है, वहाँ के प्राणियों को वहाँ का राष्ट्र दे दिया, यह कितना भव्यवाद है! विजय करके तुम इस पर अनुशासन भी कर सकते थे, अधिराज भी बन सकते थे, परन्तु तुम्हारा जो हृदय है, वह त्याग और तपस्या में इतना दक्ष था कि मैं आज संसार में आर्यत्व की स्थापना करना चाहता हूँ। वह स्थापना तुम्हारी संसार में हो गयी है, अब अयोध्या को अपनाओ। अयोध्या में जिस नियमावली का निर्माण होगा उसे प्रत्येक राष्ट्र अपनाने के लिये तत्पर है।" महाराजा शिव ने कहा कि "हे राम! देखो अयोध्यापुरी एक ऐसी पुरी है जिसमें आने के पश्चात् हमारा हृदय, हमारी मानवता का जैसा प्रतीक दृष्टिपात होता है, उसको ऊँचा बनाना है। तुम राष्ट्र को अपनाओ और वशिष्ठ जैसे ब्रह्मवेत्ता तुम्हारे राष्ट्र में संरक्षण करने वाले हैं। ऐसे महापुरुषों की सेवा में नियुक्त रहो। राष्ट्र का पालन करो यही हमारी इच्छा है!" यह वाक्य उच्चारण करके महाराजा शिव मौन हो गये।

महर्षि विश्वामित्र का उपदेश

मुद्गल ऋषि और महर्षि विश्वामित्र वहाँ उपस्थित थे। महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि "मैं ब्रह्मवेत्ता महर्षि वशिष्ठ जी से प्रार्थना कर रहा हूँ कि मैं भी शब्दों की विवेचना करना चाहता हूँ।" वशिष्ठ कहते हैं कि "हे विश्वामित्र! जो वाक्य तुम उच्चारण करना चाहते हो, करो।" महर्षि विश्वामित्र कहते हैं कि "हे राम! हे उपस्थित महापुरुषो! वास्तव में इतना तो योग्य मैं नहीं जो तुम्हारी सभा में कोई वाक्य उच्चारण करूँ, परन्तु मैंने अपने राष्ट्र को त्याग करके ब्रह्मा गुरु आदियों को प्रदान किया है, मैंने नाना गायत्राणी छन्दों के नाना अनुष्ठान किये हैं और अनुष्ठान करने के पश्चात् मेरा मानवत्व ऊँचा रहा है। मेरा विचार यह है कि हम राष्ट्रों को त्याग करके तपस्वी बनें। राम एक ऐसी शक्ति है, इनमें ऐसी महानता है जो राष्ट्र का पालन भी कर सकता है। क्योंकि मैं इनके हृदय को जानता हूँ कि इनमें कितने गुण हैं। कितने समय यह अपनी निद्रा से जागृत हो जाते हैं, क्रियाक्रम इनका कैसे प्रारम्भ होता है। सदाचार की भावना इनके मनोनीत हृदय में सदैव ओतप्रोत रहती है।"

विश्वामित्र कहते हैं कि "हे राम! तुम्हें प्रतीत है जब मैंने तुमको धनुर्याग पूर्ण कराया था उस समय तुमने क्या कहा था? तुमने यह कहा था कि 'गुरुदेव! यदि मैं राजा बनूँगा तो मैं उन शत्रुओं को समाप्त करूँगा जो धर्म के मर्म को नहीं जानते और शिक्षा में पारायण नहीं होंगे, ऐसे निपात्रों को शिक्षा दूँगा। ऐसी राष्ट्र की परम्परा बनायी जायेगी।' हे राम! अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम जिस लक्ष्य को बाल्यकाल में प्रकट किया करते थे, आज वह समय आ गया है कि आज तुम्हारा राष्ट्र ऊँचा होना चाहिये, जिसमें ब्राह्मणों की पताका रहनी चाहिये। त्याग और तपस्या में रत्त रहता हुआ मानव हो, ब्रह्म को जानने वाले पुरुष होने चाहिये। जिस राजा के राष्ट्र में जितने ब्रह्मवेत्ता पुरुष होते हैं, उतना राष्ट्र में प्रकाश होता है और जब राजा के राष्ट्र में से धार्मिक प्राणी चले जाते हैं, धर्म के मर्म को जानने वाले प्राणी चले जाते हैं, उस समय राजा की कोई पद्धत्ति नहीं होती। समाज में अंधकार आ जाता है। नाना प्रकार की रूढ़ियाँ आ जाती हैं। इसलिये हे राजन्! ऊँचे–ऊँचे ब्राह्मण होने चाहिये, वेद के मर्म को जानने वाले होने चाहिये जिससे राष्ट्र में रूढ़ि न बन सके।"

महर्षि विश्वामित्र ने कहा "जब राजा के राष्ट्र में रूढ़ि बन जाती है, तो राजा ऊँचा शासक नहीं होता। राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं होनी चाहिये। धर्म का पूजन होना चाहिये क्योंकि धर्म के लिये राष्ट्र होता है। राष्ट्र का निर्माण, धर्म, मानवता और समाज को ऊँचा बनाने के लिये होता है। राजा राष्ट्र में धर्म और मानवता की स्थापना नहीं कर सकता तो ऐसा राजा, राजा नहीं होता, वह धर्म के मर्म को नहीं जानता। धर्म के मर्म को जानने वाला राजा होना चाहिये, जिसके साथ में एक महान् पद्धत्ति हो, ऊँची पद्धत्ति हो, वेद का प्रसार हो, ज्ञान का प्रकाश होना चाहिये। ज्ञान का प्रकाश होगा तो नाना रूढ़ियाँ नहीं रहेंगी, रूढ़ियाँ नहीं रहेंगी और उतना समाज ऊँचा बनेगा तो राजा का राष्ट्र पवित्र बनेगा।" ऋषि विश्वामित्र ने कहा कि "मैंने अपने जीवन में राष्ट्र को त्याग दिया, कई काल में अनुष्ठान किये, आज मैं ब्रह्मर्षि बन गया हूँ। तुम्हारे राष्ट्र में एक विवेकी परम्परा होनी चाहिये, विवेकी पुरुष होने चाहिये जितने भी विवेकी पुरुष होंगे उतना राष्ट्र भव्य बनता चला जायेगा!" यह उच्चारण करके वे भी मौन हो गये।

महर्षि भारद्वाज का उपदेश

महर्षि भारद्वाज ने कहा था कि "हे राम! मैं विज्ञान का बहुत विशेषज्ञ हूँ। तुम्हारे राष्ट्र में भी विज्ञान है। मेरी तो इच्छा केवल यही है कि तुम्हारे राष्ट्र में विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। विज्ञान के दुरुपयोग होने से राष्ट्र का प्राण चला जाता है, राष्ट्र की तपस्या चली जाती है। वहाँ विवेकी पुरुष नहीं होते, ब्रह्मवेत्ता पुरुष नहीं होते, वहाँ धर्म नाना रूढ़ियों में परिणित हो करके भिन्न–भिन्न प्रकार की रक्त–भरी क्रान्ति आने का सन्देह बना रहता है। जब कर्त्तव्य का पालन न करने वाले अधिकार चाहते हैं तो कर्त्तव्यवादी प्राणी नहीं रहते। मेरी आकांक्षा यही है, कि यह जो अयोध्या है, यह आदर्श परम्परा से रही है, यहाँ आदर्श रहा है, अपनी राष्ट्रीयता में विशेष रुचि रही है, इसीलिये हमारी इच्छा यही है कि तुम्हारी जो राष्ट्रीय परम्परा है, वह महान् और ऊँची बननी चाहिये। विज्ञान का दुरुपयोग न हो और रूढ़ियों का विनाश होना चाहिये!" वशिष्ठ मुनि की अध्यक्षता में ये वाक्य उच्चारण करके भारद्वाज मौन हो गये।

इसके पश्चात् नाना राजाओं ने अपना–अपना उपदेश दिया। महर्षि वशिष्ठ ने उपसंहार किया, और बोले कि "राजा महाराजाओं ने, ऋषि–मुनियों ने जो आभा प्रकट की है, मानो यहाँ विज्ञान की चर्चाएं की हैं अर्थात विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये।" वशिष्ठ जी उपस्थित होकर के कहते हैं "हे ब्रह्मवेत्ता! 'हिरण्यं देवाः हिरण्यं पृथ्वी वृधाः देवं ब्रह्म लोकाः अप्याम् लोकाः।" सबने कहा "हे भगवन्! आप अपने वाक्यों से अमृत का पान कराइये।" उससे पूर्व अरुन्धती बोली कि "प्रभु! मैं भी तो कुछ उच्चारण करना चाहती हूँ।"

माता अरुन्धती का उपदेश

माता अरुन्धती को भी आज्ञा दी गयी। माता अरुन्धती कहती है कि "हे राम! मेरी इच्छा तो यह है कि राष्ट्र में किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं रहनी चाहिये। रावण के राज्य को तुम विजय करके आये हो, वहाँ तुमने यही दृष्टिपात किया होगा कि वहाँ सतियों के सतित्व को हनन किया जाता था। परन्तु अयोध्या जो राष्ट्र है, यहाँ सतियों के सतीत्व की सदैव सुरक्षा रही है और सुरक्षा लाने वाले रहे हैं। मेरी इच्छा है कि तुम्हारे राष्ट्र में याग होने चाहिये और

यागों में मेरी पुत्रियों के चरित्र की सुरक्षा होनी चाहिये, क्योंकि चारित्र की सुरक्षा होना बहुत अनिवार्य है। जिस राजा के राष्ट्र में पुत्रियों का शृंगार हनन होने लगता है, वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अग्नि का काण्ड बन सकता है। इसीलिये मेरी इच्छा यही है कि तुम्हारे राष्ट्र में देवियों का पूजन होना चाहिये। देवियों की सुरक्षा होनी चाहिये, जिससे मानवता का प्रसार हो। महत्ता की उपलब्धि होती चली जाये, जिससे तुम्हारा जीवन और मेरी पुत्रियों का जीवन ऊँचा बने। जिस राजा के राष्ट्र में पुत्रियों के सतीत्व को समाज समाप्त करके वे अपने उदर की पूर्ति करती हैं, ऐसा राष्ट्र कदापि भी प्रिय नहीं होता। हे राम! जिस राजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रियों के शृंगार को हनन करने वाले मानव हों ऐसा राष्ट्र कोई प्रिय नहीं होता। ऐसे मानव राजा के राष्ट्र में नहीं रहने चाहिये।'' यह वाक्य माता अरुन्धती प्रकट कर रही थीं। माता अरुन्धती ने राम को यह शिक्षा दी। राम ने इन वाक्यों को श्रवण किया और श्रवण करके माता अरुधती के चरणों को स्पर्श किया। चरणों को स्पर्श होने के पश्चात वे मौन हो गयीं। उनके मौन होने के पश्चात् महर्षि वशिष्ठ उपस्थित हुए।

ब्रह्मवेत्ता महर्षि वशिष्ठ का उपदेश

वशिष्ठ ने कहा कि ''हे राम! आज तुम्हारा राज्याभिषेक होने वाला है। तुम राज्याभिषेक के लिये, तत्पर हो। मुझे तो केवल इन वाक्यों का उपसंहार करना है।''

राम ने जब राष्ट्र में भ्रमण कर लिया तो महर्षि वशिष्ठ और माता अरुन्धती ने उनका अभिषेक किया और कहा कि ''अब तुम योग्य बन गये हो। तुमने राष्ट्र को बनाने में अपने पूर्वजों के कर्त्तव्यों का पालन किया है, इसलिये हम तुम्हारा राज्याभिषेक कर रहे हैं। तुमने वन में रमण करके भीलों और द्रविडों को अपनाया है और आर्यबल को बढ़ाया है, इस राष्ट्र को विशाल बनाया है, अपनी संस्कृति का प्रसार किया है। जिसके द्वारा निष्ठा होती है, चरित्र होता है, मानवता होती है और प्रभु पर जिसका विश्वास होता है, आत्मनिष्ठा जिनके द्वारा होती है, उनका जगत् मित्र बन जाता है!''

राम का राज्याभिषेक किया गया। राजा महाराजाओं ने राम से कहा ''उन्हें राजस्थली प्राप्त हो!'' राजस्थली प्राप्त हो जाने के पश्चात् महर्षि वशिष्ठ मुनि कहते हैं कि ''हे राजाओ! हे ऋषियो! राम का राज्याभिषेक हुआ। राम आज अपनी स्थली पर विद्यमान हैं, जितने तुमने वाक्य कहे हैं, वे सब सारगर्भित हैं, उन वाक्यों के ऊपर इस अयोध्या में पालन किया जायेगा और पालन करने के पश्चात् राम को भी यह सदैव ध्यान रहे कि राजा को वैश्य के वैभव को नहीं अपनाना चाहिये। जब राजा वैश्य की परम्परा को अपना लेता है, वैश्यपन राजा में आ जाता है तो राष्ट्र में महान् स्वार्थ आ जाता है और स्वार्थ के आ जाने से स्वार्थ ही संसार में मृत्यु है। इसीलिये आज का हमारा वाक्य यह कहा रहा है कि हम प्रत्येक मानवता में अपने जीवन को ऊँचा बनाने के लिये सदैव तत्पर रहें।'' यह वाक्य महर्षि वशिष्ठ ने नतमस्तिष्क होकर राम को कहा। सभा में उनका राज्याभिषेक हो गया।

भगवान् राम के विचार

नतमस्तिष्क होकर राम ने कहा, ''हे महापुरुषो! हे राजाओ! आज तुमने इतने बड़े राष्ट्र का भार मेरे भुजों में ओत–प्रोत कर दिया है। आज तुम्हारे विचारों से मेरा अन्तरात्मा गद्‌गद् हो रहा है। मेरा हृदय तो यही चाहता है कि न्यायालयों में न्याय होना चाहिये, कर्त्तव्य का पालन होना चाहिये, कर्त्तव्य की पद्धत्ति को अपनाना यह हमारा कर्त्तव्य होगा और यहाँ एक समय विवेक–सभा होनी चाहिये, जिसका निर्वाचन समय समय पर किया जायेगा!''

(20 अक्टूबर 1976, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

काकभुषुण्ड जी के प्रश्नों का राम द्वारा उत्तर

राम ने जब राष्ट्रीयता का निर्माण किया तो, उन्होंने सबसे प्रथम प्रजा को यह कहा कि ''हे समाज! तुम्हारी इच्छा हो तो मैं राष्ट्र का पिता बन जाऊँ।'' जब प्रजा ने एक स्वर में कहा, बुद्धिजीवी प्राणियों ने कहा कि ''बहुत प्रियतम!'' जब वह राष्ट्र का पालन करने लगे, राष्ट्र की नियमावली को उन्होंने अपनाया तो ऋषि–मुनियों के प्रश्नोत्तर होने लगे। जब राम का राज्याभिषेक होने वाला था तो महर्षि काकभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश मुनि महाराज राम के समीप आये। राम को यह दायित्व दिया गया कि राष्ट्र को ऊँचा बनाना है। उस समय काकभुषुण्ड जी ने राम से कहा कि ''हे राम! तुम इस राष्ट्र को क्यों अपनाना चाहते हो, तुम्हारी इसमें कौन सी स्वार्थपरता है? जबकि परमपिता परमात्मा ने तुम्हें जीवन तपस्या के लिये दिया है।'' भगवान राम ने ऊँचे स्वर में कहा कि ''हे ऋषिवर! राजा राष्ट्र में अपने कर्त्तव्य का पालन और आप जैसे महापुरुषों के चरणों की धूलि को अपने मस्तक पर आलिंगन करता हुआ राष्ट्र को ऊँचा बनाता है।''

जब राम ने यह कहा तो काकभुषण्ड जी ने कहा कि ''मेरे प्रश्न का यह उत्तर नहीं बना है।'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! तो अन्तिम उत्तर यह है कि इस मानव शरीर में यह आत्मा अनुशासन रूप में रहती है। जैसे मन प्रत्येक इन्द्रियों के साथ लगा रहता है और उसका चित्त से समन्वय होता है और चित्त का समन्वय चेतना से होता है और चेतना का समन्वय महान चेतना से होता है तो मानो ब्रह्म–चेतना, आत्मा–चेतना, और मन–वृत्तियाँ, इन्द्रियों का समन्वय जब होता है तो यह एक अनुशासन है। मेरे हृदय की यह आकांक्षा रहती है कि जैसे परमपिता परमात्मा अनुशासन करने वाला है, जैसे आत्मा इस शरीर पर शासन करने वाला है, प्रत्येक इन्द्रियों के ऊपर मन शासन कर रहा है, वह एक–दूसरे का सूत्र बन करके उससे कटिबद्ध रहता है। जैसे मन इन्द्रियों का सूत्र है और मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार यह साम्य अवस्था में आत्मा के सूत्र बने हुए हैं, मानो प्राणत्व के सूत्र बने हुए हैं तो वहाँ आत्मा का जो सूत्र है, वह ब्रह्म है और ब्रह्म–सूत्र में जब संसार को हम स्वीकार करते हैं, तो राष्ट्र पवित्र बन जाता है, भौतिक याग और आध्यात्मिक याग दोनों का समन्वय हो जाता है!''

भगवान राम ने जब यह आत्मिक चर्चाएं प्रकट कीं तो काकभुषण्ड जी बड़े प्रसन्न हुए और यह प्रश्न किया कि ''आप अपने राष्ट्र का क्या नियम बनाना चाहते हैं?'' उन्होंने कहा, ''जब मैं बाल्यकाल में अपने आचार्य वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती के चरणों का चुम्बन करता रहता था, श्रद्धा में अपने को ओत–प्रोत करता रहता था तो उन्होंने मुझे राष्ट्रीयता की बहुत सी चर्चाएं प्रकट कीं, भयङ्कर वनों में बहुत से ऋषि–मुनियों ने मुझे उद्‌गार दिये हैं। उन्हीं उद्‌गारों के साथ मैं यह चाहता हूँ कि यदि राजा को राष्ट्र ऊँचा बनाना है तो राजा के राष्ट्र में विद्यालयों में अनुशासन होना चाहिये। विद्यालयों में अनुशासन जब होगा, जब कि गृह में माता–पिता दोनों अनुशासित रहेंगे।'' ऋषि ने पूछा कि ''यह दो वाक्य हो गये, इनमें से कौन–सा प्रथम है?'' क्योंकि राम भी ऋषित्व को प्राप्त थे। उन्होंने कहा कि ''यदि मैं राष्ट्र का निर्माण करूँगा तो सबसे प्रथम यह कि प्रत्येक गृह में देव–पूजा होनी चाहिये, प्रत्येक गृह में याग होना चाहिये, मानो सुगन्धित मेरा राष्ट्र हो जायेगा। मेरे पितरों में, महापिता महाराजा दलीप के काल में यहाँ प्रत्येक गृह में सुगन्धि होती रही है, महाराजा अज के समय में सुगन्धि होती रही है, मेरे पिता ने उस सुगन्ध को कुछ शांत कर दिया। मैं पुनः से उस सुगन्ध को जागरूक करना चाहता हूँ, यदि मुझे राष्ट्र और समाज के ऊपर विचारना है और मानव को मोक्ष की आभा में रत्त करना है।''

भगवान राम ने कहा कि ''सबसे प्रथम, मैं प्रत्येक माता से कहूँगा कि हे माता! तुझे नाना भौतिक शृंगार को त्याग करके अपने कंठ के शृंगार को अपनाना है। यह कंठ का शृंगार क्या है? माता के कण्ठ में इतना माधुर्यपन होना चाहिये जिससे बालक को लोरियाँ देती हुई वह ब्रह्म का ज्ञान करा दे, वह याग का ज्ञान करा दे, माता के हृदय में इस प्रकार की क्षमता होनी चाहिये। जब माता का हृदय सजातीय बन जाता है, ज्ञान में परिणित हो जाता है तो माता का जो शिक्षा का स्तर है, शिक्षा की जो वृत्तियाँ हैं, वह ऊर्ध्वा में गति करने लगती हैं। वेदों का अध्ययन करते हुए, दर्शनों का अध्ययन करते हुए, माता अपने कण्ठ को सजातीय बना लेती है। जहाँ नाना प्रकार के आभूषणों से माता आभूषित हो जाती है, ऐसे ही माता के हृदय में ज्ञान होना चाहिये और विवेक होना चाहिये। माता अपने पुत्र को जब तक ब्रह्मवेत्ता या याज्ञिक नहीं बनायेगी, ज्ञान में परिणित नहीं करेगी, तब तक वह लोक ऊँचा नहीं बनेगा। उसके पश्चात् माता अपने बालक को ब्रह्म–आभा में, याग में परिणित कर देती है। जब वह विद्यालय में जाता है तो आचार्य उस ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में धारण करता है। अपने गर्भ में धारण करता हुआ कहता है कि 'हे बाल्य! तू अपनी इन्द्रियों को मुझे प्रदान कर।' वह सर्वत्र इन्द्रियों को प्रदान कर देता है। आचार्य उनके विषयों को ज्ञान के माध्यम से तपा करके वेद के मन्त्र के द्वारा बालक को विद्या अध्ययन कराता हुआ वह प्रकाश में गोमेध याग करा देता है।''

राम ने कहा कि ''प्रत्येक मानव को गोमेध–याग करना चाहिये। गोमेध याग का अभिप्रायः यह है कि ब्रह्मचारी विद्यालयों में जब अध्ययन करता है तो आचार्य उसे याग की प्रणाली में परिणित कर देता है और आचार्य मानो उसे स्वर्ण बना देता है, वैज्ञानिक बना देता है, पुरोहित बना देता है। जब वे लोक–लोकान्तरों की उड़ानें उड़ते हैं तो राष्ट्र में विज्ञान होता है, राष्ट्र में मानवीयता होती है, मानव–दर्शन होता है। वास्तव में मानव–दर्शन क्या है? हे माता! जब तू अपने पुत्र को, हे आचार्य! तू अपने ब्रह्मचारी को यह निर्णय देता है कि धर्म क्या है? **धर्म मानव की इन्द्रियों का निर्णय करा देता है कि तेरी इन्द्रियों में तेरा धर्म, तेरी मानवीयता, तेरी ओजस्विता विद्यमान रहती है।** आचार्य इस प्रकार का जब ज्ञान करा देता है तो इस राष्ट्र में नाना प्रकार की रूढ़ियों का जन्म नहीं हुआ करता। जैसे मुझे महानन्द जी ने इससे पूर्वकाल में प्रकट किया कि अज्ञानता में नाना प्रकार की ईश्वरवाद के ऊपर रूढ़ियाँ बना करती हैं और जब बुद्धिमान प्राणी होते हैं, राजा राम जैसे ब्रह्मवेत्ता हों, जो ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले हों, तो रूढियाँ नहीं होतीं। आचार्यों के समीप जो एक पत्नी को, धर्म देवी को स्वीकार करके माता और पुत्रियों और भगिनी के तुल्य सर्वत्र राष्ट्र को स्वीकार और दृष्टिपात करने वाले हों, तो राष्ट्र ऊँचा बनता है।''

भगवान राम ने काकभुषण्ड जी को उत्तर देते हुए कहा कि ''सबसे प्रथम मेरा नियम यह है कि मेरी माताएं, मेरी पुत्रियाँ कण्ठ में सजातीय हो जायें। उनका कण्ठ–माधुर्य रहना चाहिये, पालन करने की भी क्षमता होनी चाहिये, शिक्षा में अग्रणीय होनी चाहिये। इस प्रकार जब राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी उत्पन्न होता रहेगा तो राजा के राष्ट्र में रक्त–भरी क्रान्ति नहीं आ सकती। राजा के राष्ट्र में कर्त्तव्यवादी प्राणी होते हैं और कर्त्तव्यवादी प्राणी ही राष्ट्र को ऊँचा और ऊर्ध्वा में ले जाते हैं।'' राम ने कहा कि ''मेरे राष्ट्र में प्रत्येक गृह में प्रातःकालीन शंख–ध्वनि (वेदगान) होनी चाहिये। जैसे शंख ध्वनि होती है, शंखनाद होता है, नाद का अभिप्रायः है कि वाणी से वेदों का उद्‌गीत गाया जाये, वेद–मन्त्रों की ध्वनियाँ होनी चाहियें। प्रातःकाल क्या, सायंकाल क्या, अग्नि के समीप विद्यमान हो करके मानव को अपने को प्रकाश में लाना है। वही प्रकाश इस संसार को ऊँचा बनाता है, प्रत्येक प्राणी मात्र को महान् बना देता है।'' राम ने जब काकभुषण्ड जी के प्रश्नों का उत्तर दिया तो काकभुषण्ड जी मौन हो गये और यह कहा कि ''आपके वाक्यों से मेरा अन्तर्हृदय बड़ा प्रसन्न हो रहा है, परन्तु आपका नियम और क्या होगा?''

राम ने कहा कि ''मेरे राष्ट्र में कर्त्तव्यवाद का महत्व विशेष होगा।'' उन्होंने कहा, ''आप क्या कर्त्तव्य करेंगे?'' उन्होंने कहा, ''मैं प्रातःकालीन अपने प्रभु को धन्यवाद दूँगा, प्रभु का गुणगान गाता रहूँगा क्योंकि ब्रह्म का चिन्तन करना और ब्रह्म को यह स्वीकार करना कि मेरी अन्तरात्मा में ब्रह्म विद्यमान है और उसके पश्चात् मैं याग करूँगा क्योंकि प्रभु याज्ञिक है। वेदों की ध्वनि जब मेरे अन्तर्हृदय से उद्‌गीत गाती रहेगी तो यह समाज मेरा अनुसरण करेगा और प्रजा का अनुसरण ही मानव को और हमारे इस राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है। तब हमारे राष्ट्र के इस प्रकार के क्रियाकलापों को द्वितीय राष्ट्र अपनाने वाले होंगे। राष्ट्र में मैं विज्ञान को लाना चाहता हूँ और विज्ञान हमारा एक अंग बना हुआ है तो विज्ञान में नाना प्रकार की चित्रावलियाँ होनी चाहिये और नाना प्रकार की चित्रावलियों में जो दर्शन होंगे वहाँ ऋषि–मुनियों के तपस्वी विचार होंगे और ऋषि–मुनियों के क्रियाकलाप होंगे। मेरी माताओं, मेरी पुत्रियों का जीवन–चरित्र, उनकी महानता, उनकी याज्ञिकता को जब चित्रावलियों में दृष्टिपात किया जायेगा तो मेरा राष्ट्र विज्ञान के वांगमय में प्रवेश करता हुआ महानता को और मानव–दर्शन को दर्शनित करता रहेगा। इसी प्रकार मेरे राष्ट्र में विज्ञान अनूठा बन करके रहेगा। नाना प्रकार की ऊर्जा से मेरे राष्ट्र में धातु विज्ञान में रमण करने वाला विज्ञान होना चाहिये। ऋषिवर! बाल्यकाल में भारद्वाज मुनि महाराज के यहाँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे निर्णय कराते रहते थे।''

ऋषियों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए, राष्ट्रीयता को अपनाते हुए राम ने कहा कि ''समाज में अनुशासन तब रह सकता है जब कि मानव चरित्रवान बनेना और चरित्र की प्रतिभा महानता में रत्त होती रहेगी। राजा के राष्ट्र में चरित्र और मानवीयता होनी चाहिये, रक्तों में जीवन नहीं बनता। वास्तव में तो जब से शासनवाद की प्रवृत्ति संसार में उत्पन्न हुई है उसी काल से रक्तों का एक दूसरे में आदान–प्रदान होता रहा है।'' **राम ने यह कहा कि ''साम्यवाद मेरा राष्ट्र होगा, जिसमें प्रत्येक प्राणी को अपने विचारों में अधिकार होगा, परन्तु वह अधिकार बुद्धियुक्त और विज्ञान से युक्त होना चाहिये। वही विचार तो मानव को ऊँचा बनाते हैं, वही विचारधारा महानता में ले जाती है!''** (7 मार्च 1987, बरनावा)

राम ने अपने राष्ट्र की नाना प्रकार की आभाओं को प्रकट करके यह कहा कि ''मैं सब राजाओं का, ऋषि–मुनियों का सेवक बन करके रहूँगा।'' उसके पश्चात् सभा का विसर्जन हो गया। राज्य सभा को अपनाकर के सब ऋषि–मुनियों ने अपने–अपने आसन को प्रस्थान किया। (20 अक्टूबर 1976, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

राजा राम की आचार–संहिता

वशिष्ठ मुनि, महर्षि लोमश और आदि–आदि ऋषियों ने राम का राजतिलक किया और वह राष्ट्र के अधिकारी बने। उन्होंने प्रजा में जब कहा कि ''मैं अब राष्ट्र का अधिकारी बन गया हूँ, मेरे में गायत्री माता का प्रभाव आ गया है, वेदध्वनि मेरे में ध्वनित हो गयी है, मुझे विवेक हो गया है। मैं वास्तव में राष्ट्र को चाहता नहीं हूँ, परन्तु जब ऋषि–मुनियों की आज्ञा है, तो मैं इनकी आज्ञा का पालन करूँगा, मैं राष्ट्र का अभिलाषी नहीं हूँ।'' राम ने यह वाक् कह करके राष्ट्र को अपनाया। राम के जो राष्ट्र की स्थापना हुई है वह बड़ी विचित्र रही है। राम ने माताओं का पूजन किया और राष्ट्र में यह घोषणा की कि ''मेरे राष्ट्र में एक मानव हो तो एक ही उसकी देवी होनी चाहिये, परन्तु दोनों का परस्पर प्रेम होना चाहिये। द्वितीय नियम उन्होंने लगाया कि राष्ट्र में याग होना चाहिये, याग विचारों का हो, ब्रह्मयाग का हो अथवा देखो देवयाग वेदों की ध्वनि प्रत्येक गृह में से आनी चाहिये। मेरे गृह में भी यही ध्वनि आती रहेगी।'' तो राम ने यह नियमावली बनायी और राष्ट्र के बहुत से उद्‌गीत गाये। राष्ट्र में जो वैज्ञानिक हुए, उन वैज्ञानिकों की धाराओं में रत्त रहने लगे। तो विचार–विनिमय क्या, राम ने यह कहा कि राष्ट्र हमारा यागमय रहेगा और यज्ञ राष्ट्रमय रहेगा। प्रत्येक मानव कर्त्तव्य का पालन करेगा और जब कर्त्तव्य का पालन करेगा तो राष्ट्र में, एक–दूसरे में कुरीति नहीं आयेगी। प्रत्येक सामान्यता में, अपने–अपने क्रिया–कलापों को करता रहेगा। तो राम ने देखो यह घोषणा की और अयोध्यापुरी स्वर्ग बन गया, अयोध्यापुरी महान् बन गया!(15 मार्च 1986, लाक्षागृह, बरनावा)

राष्ट्र को चुनने वाले चुनौती देने वाले बुद्धिमान होते हैं, ऋषि होते हैं, बुद्धिमान प्राणी होते हैं, यही भव्य वृत्तियाँ रहती हैं। वे जब चुनौती देते हैं तो पुरोहित जो कहते हैं, राजा वही करता है। उसकी आचार–संहिता भी ऋषि–मुनियों के यहाँ निर्माणित होती है। जब भगवान राम का निर्वाचन हुआ था किसी काल में, राष्ट्रीयता में उनके बुद्धिमानों ने, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र, काकभुषुंड जी, महर्षि लोमश, महर्षि अत्रि जी और महर्षि भारद्वाज ने आ करके उनकी आचार–संहिता का निर्माण किया।

आचार–संहिता क्या है? राजा, जब तारामण्डलों की छाया रहती हो, तब आसन को त्याग देता है। त्याग करके वह प्रातःकालीन अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके, अग्नि के तत्त्वों का अपने में भेदन करता है, वह याग में परिणित होता है। उसके पश्चात् वह ब्रह्मयागी बन करके प्रजा का नेतृत्व करता है, क्योंकि राजा को यह ब्रह्म–ज्ञान नहीं होगा तो राष्ट्र को कदापि ऊँचा नहीं बना सकता, अपनी प्रजा की आचार–संहिता को भी नहीं बना सकता, परन्तु भगवान राम प्रातःकालीन, सूर्य उदय से पूर्व ही अपनी क्रियाओं से प्रभु का चिंतन, भेदन करना, वह ये सर्वत्र करते थे। उसके पश्चात् वह अपने वाहनों में विद्यमान हो करके अपने राष्ट्र में भ्रमण करते कि गृह–गृह की आचार–संहिता क्या है? जब गृह–गृह में भ्रमण राजा का कर्त्तव्य होता है तब वह राष्ट्र पवित्र बनते हैं, उन राजाओं के यहाँ एक महानता की प्रतिभा आती है।

आधुनिक काल के राष्ट्रवेत्ता की आचार–संहिता क्या है? आचार–संहिता यह है कि प्रातःकालीन अपने आसन को त्याग दिया, कब? जब सूर्य भव्य उदय हो जाता है। जब सूर्य की आभा उर्ध्वा में गति कर जाती है तो आसन को त्याग, कुछ स्नान किया, कुछ नहीं किया, परन्तु वस्त्रों को धारण कर लिया और वही अपने होने, न होने की, दूसरों में घृणा की चर्चा करना। चर्चा करके उसका जो आहार है, इतने में कुछ प्राणियों को, आहार में उनका वृत्त बना करके, उनका रस बना करके लाया जाता है। कुछ फलों के रसों को लाया जाता है। आधुनिक काल की जो आचार–संहिता है, वह क्या कहती है? उनके

लिये नाना सेवक होने चाहिये, उनके प्राणों की रक्षा करने के लिये। अरे, राजा! जब तू दूसरों के प्राणों का हनन करके अपना आहार बना लेगा तो तेरी रक्षा कौन कर सकता है, इस संसार में? तेरी रक्षा कोई नहीं कर सकता। जो प्रभु सबका रक्षक है जब उसका विश्वास नहीं रहा, आचार–संहिता पवित्र नहीं रही तो तेरा कौन ऐसा प्राणी है जो तेरी रक्षा कर सकता है। गुरुजी आश्चर्य चकित हो जाते है क्योंकि इन्होंने राम का काल देखा है, राम के काल को दृष्टिपात किया है। जहाँ राम की आचार–संहिता पवित्र, गृह–गृह में सुगंधि आना, गृह–गृह में वेदोक्त पाठन होना, जब राजा के गृह में इस प्रकार की आचार–संहिता हो, वह राष्ट्र राम–राज्य कहलाता है, वह राष्ट्र विष्णु कहलाता है!(17 दिसम्बर 1984, जोरबाग, नयी दिल्ली)

२४. चौबीसवां अध्याय–रामराज्य

राष्ट्र–निर्माण

भगवान् राम का यह संसार मित्र बन गया और उसके पश्चात् उन्होंने आततायी रावण को समाप्त कर अयोध्या के स्वामित्व को प्राप्त किया। इसी को रामराज्य कहते हैं। रामराज्य का अभिप्राय:, जहाँ प्रजा में प्रभु का स्मरण हो, और जहाँ अपने धर्म को जानने वाले प्राणी हों। क्योंकि धर्म की रक्षा के लिये राष्ट्र का निर्माण होता है और जहाँ धर्म की रक्षा नहीं की जाती, उसको राष्ट्र नहीं कहा जायेगा। क्योंकि राष्ट्र का निर्माण ही उस काल में हुआ जब प्रजा में अशान्ति हो गयी थी अपने कर्त्तव्यवाद को त्याग दिया था। प्रजा में कर्त्तव्यवाद लाने के लिये, धर्म में सुगठित करने के लिये, उसी समय राष्ट्र का निर्माण हुआ था। जहाँ राजा होते हुए धर्म की अवहेलना होती हो, अकर्त्तव्यवाद आ जाता हो, उस राजा को राजा उच्चारण नहीं करना चाहिये। हमारे यहाँ माना गया है कि महापुरुषों का कर्त्तव्य है कि उस राजा को राष्ट्र से दूर कर देना चाहिये, उसके स्थान पर उत्तम निष्ठावान जितेन्द्रिय राजा को अधिराज बना देना चाहिये, ऐसा हमारे यहाँ दर्शन–शस्त्रों और वैदिक–परम्परा में आता रहा है।

भगवान् राम अपनी राष्ट्रीयता में सफल हो गये। कैसा सुन्दर उनका राष्ट्र था! उनके राष्ट्र में कोई कन्या दुराचारणी न थी। मार्ग में जाने वाले प्राणी उसे भौजाई के तुल्य, माता के तुल्य दृष्टिपात करने वाले हो, धर्म के मर्म को जानने वाले हो, ऐसे राजा का राष्ट्र शुद्ध होता है और जिस राजा के राष्ट्र में शोषण करने वाले प्राणी हो जाते हैं, उस राजा का राष्ट्र अजीर्ण हो जाता है। उसका परिणाम क्या होता है, कि वहाँ विनाश हो जाता है। राष्ट्र के अजीर्ण होने का परिणाम राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति आ जाती है, मृत्यु आ जाती है। भगवान् राम को वशिष्ठ, विश्वामित्र और माता अरुन्धती शिक्षा देते रहते थे कि वही राज्य रामराज्य होता है जब एक भी मानव राजा के राष्ट्र में अन्न से विमुख न हो, अपने कर्त्तव्य से पीड़ित न हो, वही तो रामराज्य कहलाया गया है। (26 मार्च 1970, सिकन्दाराबाद)

यह जो समाज है, इसको महान् बनाना चाहिये। वह ऊँचा उस काल में बनेगा, जब यहाँ महर्षि वशिष्ठ जैसे पुरोहित होंगे, राम जैसे यहाँ राजा होंगे और राजा के मन्त्री हनुमान जैसे होंगे। (6 मार्च 1982, बरनावा)

जिस काल में, बेटा! बुद्धिमान् अपने कर्त्तव्य पर दृढ रहते हैं, उस काल को ही रामराज्य कहा जाता है। रामराज्य वैसे नहीं आता, रामराज्य की व्याख्या बहुत ही विशाल है। जिस काल में कर्मो के अनुकूल वर्णव्यवस्था होती है, जिस राजा के राष्ट्र में इस प्रकार की प्रजा होती है, उसको हमारे यहाँ रामराज्य कहा जाता है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का तो कर्त्तव्य ही यह था कि वहाँ राम के राज्य में जितने भी अवर्ण रहते, वे उनको विद्या के अनुकूल जानकारी करा देते थे।(7 मार्च 1962, विनयनगर, नयी दिल्ली)

विष्णु राज्य

भगवान् राम ने राजा रावण के यहाँ की नाना प्रकार की रुढ़ियों को नष्ट किया। रुढ़ियों को नष्ट करने से ही विष्णु–राष्ट्र की स्थापना होती है। विष्णु–राष्ट्र में ही सर्वत्रता प्राप्त होती है। विष्णु–राष्ट्र उसे कहते हैं जो चार प्रकार के नियमों में बद्ध रहता है, उन नियमों के आधार पर अपने राष्ट्र का निर्माण करता है। पद्म, गदा, चक्र और शंख चारों से युक्त रहता है। मेरे प्यारे! पद्म चरित्र का मूलक है, गदा, रक्षा का मूलक है, चक्र संस्कृति का मूलक है और शंख वेद–वाणी का मूलक कहलाता है। जिस राजा के राष्ट्र में यह मूलक होता है वह राजा विष्णु बन जाता है, वह विष्णु कहलाता है और विष्णु के राष्ट्र में ही चार प्रकार की नियमावलियों का व्यवधान वैदिक–साहित्य में आता है। रामराज्य का कोई वर्णन वैदिक–साहित्य में नहीं आता, क्योंकि राम ने जो विष्णु–राष्ट्र की स्थापना की है। राम ने रावण, मेंघनाद को नष्ट करके वहाँ विष्णु की स्थापना की। विष्णु–राष्ट्र की स्थापना करने से नाना रुढ़ियों का विनाश होता है। जब राजा स्वयं अपने क्रियाकलापों में रत्त हो करके, इन्द्रियों को संयम में बना करके तपस्वी बनता है, अपने आहार और व्यवहार को क्रियात्मकता में लाता है तो राष्ट्र पवित्र बन जाता है।(19 फरवरी 1991, लाक्षागृह, बरनावा)

राम की पवित्र जीवनचर्या

भगवान् राम कैसे पवित्र थे जो इन्द्र की याचना करते थे और कहा करते थे कि ''हे इन्द्र! मुझे वैज्ञानिक बना, संसार में देवताओं की रक्षा करने वाले भाव मेरे द्वारा प्रकट कर, मैं देववत बनना चाहता हूँ, अपने राष्ट्र को मैं इन्द्रपुरी नही बनाना चाहता परन्तु रामराज्य बनाना चाहता हूँ, परन्तु भगवन्! उसी काल में बना सकता हूँ जब आपके गुणों का ग्राही बन जाऊँगा और मेरी आत्मा बलिष्ठ होती चली जायेगी।'' परम–पिता परमात्मा की कृपा से मुझे भगवान् राम के दर्शन करने का सौभाग्य भी मिला। भगवान् राम का जीवन कितना पवित्र था! आज हमें राम का अनुकरण करना है, राम के उन गुणों को धारण करना है जिन गुणों से भगवान् राम ने अयोध्या नगरी को और अपनी उज्ज्वल संस्कृति को पवित्र बनाया। (19 अक्टूबर 1964, मोगा, पंजाब)

मुझे स्मरण है कि राम जैसे राजा के द्वारा कोई रक्षक नहीं था। परन्तु वह स्वतः रात्रि काल में जब भ्रमण करते, वे निर्भय हो करके वृत्तियों में रत्त हो करके, प्रजाजन, अन्तर्गृहों में जो वार्ता प्रकट करते थे, उनको श्रवण करते और दिवस काल में उनका न्याय करते रहे। आधुनिक काल में न्याय क्या है? न्याय के ऊपर मैं टिप्पणी नहीं देना चाहता हूँ। यह तो केवल मैं अपवाद में चला गया हूँ। विचार–विनिमय यही है कि राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तो राजा को किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं होती। रक्षक की आवश्यकता उन्हें होती है, जिनके हृदयों में वाममार्ग की भावना होती है। जो दूसरे की रक्षा नहीं कर पाता, रक्षा कराने का उसे कोई अधिकार नहीं होता है। प्रकृति का यह नियम कहलाता है कि हम रक्षक बनें। और, यदि रक्षक नहीं बन सकते तो हमारी रक्षा कौन कर सकता है? (24 फरवरी 1991, लाक्षागृह, बरनावा)

राम का आहार

राम अपने जीवन में सात्विक आहार का पान करते थे। राजा होकर यागों का चयन करते थे। आज उनके नामों का कीर्तन है, परन्तु गृहों में मांस का भक्षण हो रहा है। यह कैसा दुर्भाग्य है! राम जीवन में केवल कन्दमूल का आहार करते थे, तपस्याकाल में उन्होंने देखो वनस्पतियों के रसों का पान करके अपने मन और प्राण को तपोमय बनाया और तपश्चर रहते हुए बारह–बारह वर्ष अनुष्ठान करते रहते थे। तपस्वी का जीवन, तपस्या का होता है।

(16 मार्च 1986, लाक्षागृह, बरनावा)

राम के काल में, जब वे तपस्या में परिणित थे, तो वहाँ उन्हें एक इन्द्र ने कामधेनु गो प्रदान कर दी और उस गो धन से वे दुग्ध का आहार करते थे और उसी से वह तपस्या में परिणित रहते। (30–9–1990, रामप्रस्थ)

वह राजा, जिसे राम हम कहते हैं, जो प्रातःकालीन अपने आसन को त्याग करके, बिना याग के अन्न का जलपान भी नहीं करते थे और जो अपने कृषि उद्यम करके अन्न को पान करते थे। आज का राजा वह है, जो दूसरे के वैभव को सङ्ग्रह करके अपने उदर की पूर्ति में लगा हुआ है।

(11 अप्रैल 1986, शिवपुरी)

भगवान् राम अपनी अयोध्या में विद्यमान है। विष्णु–राष्ट्र की स्थापना करना चाहते हैं। विष्णु राजा कहलाता है। परन्तु विष्णु नाम परमपिता परमात्मा का भी है। वह अपने राष्ट्र के कर्मचारियों से, राष्ट्र के नायकों से कहते हैं कि तुम्हारे प्रत्येक गृह में मानव एक–दूसरे का ऋणी नहीं रहना चाहिये। जब यह घोषणा राजा के राष्ट्र में होती है कि एक–दूसरे का ऋणी नहीं रहना चाहिये। वह ऋणी कौन है? जो प्रभु का चिन्तन नहीं करता, वह प्रभु का ऋणी है। जो

माता–पिता की सेवा नहीं करता, वह माता–पिता का ऋणी है। समाज में अच्छाईयों को उत्पन्न नहीं करता, वह समाज का ऋणी है। जो राष्ट्र के ऊँचे विचारों को स्वीकार नहीं करता, वह राजा राष्ट्र का ऋणी होता है। इस प्रकार के ऋणों की उन्होंने गणना करायी और कहा कि ''राष्ट्र में कोई ऋणी नहीं रहना चाहिये। प्रत्येक गृह में ऊँचे विचारों के साथ गृह–आश्रम में गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजा होनी चाहिये। गृहपथ्य नाम की अग्नि पूजा क्या है? गृह में माता–पिता उस क्रिया–कलाप को करें, उस उद्देश्य को प्रातःकाल बाल्यों को प्रदान करें, जिससे बालक के हृदय में एक महानता की तरंग आ जायें और वह उदण्ड न बने। वह विद्यालय में जाये तो ब्रह्मचारी सुगन्धियुक्त रहे। राष्ट्र में जाये तो राष्ट्र भी सुगन्धियुक्त बना रहे। इसी प्रकार एक मानव दूसरे का तब ऋणी नहीं रहेगा। प्रातःकालीन प्रत्येक गृह में सुगन्धि आती है, प्रत्येक गृह में याग होते हैं, वेदों की ध्वनियाँ होती रहती हैं, उस राजा का राष्ट्र जब यह घोषित करता है कि मेरे राष्ट्र में कोई भी दूषित प्राणी नहीं है तो वह विष्णु–राष्ट्र कहलाता है। उसमें क्षत्रिय अपना क्रिया कलाप विशुद्ध रूप से कर रहे हैं।''

विष्णु–राष्ट्र कैसा होता है? उस राजा के राष्ट्र में चार नियमावली होनी चाहिये। चार नियमावली क्या कि राजा ही विष्णु है और उसकी चार भुजाएं हैं। सबसे प्रथम उसकी गदा है अर्थात् क्षत्रिय पवित्र है, अपने बल से युक्त है; द्वितीय भुजा में पद्म है, अर्थात् उसका चरित्र ऊँचा होना चाहिये। चरित्र किसे कहते हैं? चरित्र कहते हैं, जो अन्तरात्मा से प्रेरणा प्राप्त होती है, उसको स्वीकार करना और दुष्ट भावना को समाप्त करने का नाम चरित्र कहलाता है। तृतीय में चक्र होना चाहिये अर्थात् एक संस्कृति होनी चाहिये। एक ही संस्कृति, एक ही विचारधारा जब मानव के समीप होती है, तो राष्ट्र पवित्र बन जाता है, राष्ट्र में सग्राम नहीं होते, राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्तियाँ नहीं आतीं। रक्तभरी क्रान्तियाँ उस काल में आती हैं, जब मानव के विचारों का विभाजन हो जाता है। उसके पश्चात् शंख–ध्वनि होनी चाहिये अर्थात् राष्ट्र में ज्ञानी पुरुष होने चाहिये, विवेकी पुरुष होने चाहिये और पुरोहितों के द्वारा राष्ट्र का निर्माण होना चाहिये। (7 अक्टूबर 1982, खतौली, मुजफ्फरनगर)

राम को अयोध्यावासियों से अपेक्षा

रामराज्य का अभिप्रायः यह है कि जहाँ प्रजा में प्रभु का स्मरण हो और अपने धर्म को जानने वाले प्राणी हों, क्योंकि धर्म की रक्षा के लिये ही राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र में कोई कन्या दुराचारी न हो, मार्ग में जाने वाले प्राणी उसे माता के तुल्य, भौजाई के तुल्य दृष्टिपात करने वाले हों, उस राजा का राष्ट्र शुद्ध होता है।

भगवान् राम ने अयोध्या वासियों से कहा था कि ''अयोध्या वासियो! मैं रावण को विजय करके अयोध्या में आ पहुँचा हूँ। यदि मुझे अयोध्या का नरेश बनाना चाहते हो तो तुम्हें अपने में सदाचार, मानवता और वेद की प्रतिभा को अपनाना होगा, संसार के लोगों को संस्कृति से ओत–प्रोत करना होगा, अन्यथा राजा रावण और मेंघनाद जैसे राजाओं को नष्ट करने का मेरा कोई अभिप्रायः शुद्ध रूप से पूर्ण नहीं हो सकेगा, क्योंकि संस्कृति के बिना मेरे जीवन में सार्थकता नहीं आ सकेगी। जब तक भील, द्रविड़ इत्यादियों को अपनाया नहीं जायेगा तब तक मेरा अयोध्या राष्ट्र ऊँचा नहीं बनेगा।'' प्रजा ने इसको स्वीकार किया। राष्ट्र में वह प्रतिभा तथा जागरूकता आ गयी, जिसके जागरूक होने के पश्चात् भगवान् राम का राष्ट्र पवित्रता में परिणित हो गया, सदाचारिता में परिणित हो गया।

राम–राज्य की नियमावली

राम के यहाँ राष्ट्र वृत्तियों में आधिपत्य को एक खिलवाड़ बनाया और यह विचारा गया कि राष्ट्रीयता में वास्तव में कोई रहस्य नहीं है। इस रहस्यता को उन्होंने अपने पगों से दूरी करते हुए अपना त्यागमयी जीवन बनाने का प्रयास किया। (17 अक्टूबर 1987, विकासपुरी, नयी दिल्ली)

भगवान् राम के यहाँ प्रातःकाल याग होता था। याग में उपदेश मंजरियाँ चलती थीं। मानव के जन–जीवन की आभा में हमारा जीवन कैसे ऊर्ध्वा में बने, यह विचार–धारा भी याग में परिणित होती रहती थी। (1 अक्टूबर 1981, ग्राम नागोला)

भगवान् राम जब राष्ट्रीय नियम बनाने लगे तो यह परम्परा बनायी कि सबसे प्रथम तो यज्ञ होने चाहिये, विचारों की सुगन्धि होनी चाहिये, ये दोनों ही राष्ट्र और समाज को ऊँचा बना सकते हैं। मानव के द्वारा राष्ट्र रहे या न रहे, परन्तु सदाचार और मानवता अवश्य रहनी चाहिये। द्वितीय नियम यह बनाया था कि राष्ट्र में किसी प्राणी की हिंसा नहीं होनी चाहिये। इससे पूर्वकाल में भी नहीं होती थी, परन्तु नियम यह था, किसी प्रकार का अपराध नहीं होना चाहिये। 'अहिंसा परमो धर्मः' होना चाहिये। वहाँ धर्म, शिष्टाचार और मानवता को लाने का सदैव प्रयास किया करते थे।

(28–10–1973, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

उनकी यह घोषणा थी राष्ट्र के कर्मचारियों से कि ''प्रत्येक गृह से वेद की सुगन्ध होनी चाहिये। अग्नि में आहूति देने के शब्द होने चाहिये। वेद के मन्त्रों की ध्वनि होनी चाहिये, जिससे वायुमण्डल और गृह दोनों पवित्र बन करके मानव–समाज सत्यता के आंगन में प्रवेश करके अपने को ऊँचा बनाता रहे।'' जब भगवान् राम का राष्ट्र पनप रहा था और अयोध्या में इस प्रकार की अयोध्या का क्रियात्मक निर्माण हुआ था जैसे मानव का शरीर है, अष्ट चक्र और नौ द्वारों वाली अयोध्यापुरी कहलाती थी। उसमें अष्टचक्र थे और नौ द्वार थे, जैसे मानव के शरीर में अष्ट चक्र और नौ द्वार है, इसी प्रकार अयोध्या का निर्माण किसी काल में भगवान् मनु ने किया था। (21 सितम्बर 1985, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

राम के काल में माता–पिता से प्रथम पुत्र का हनन नहीं होता था, मृत्यु नहीं होती थी। उसका मूल क्या है? उसके मूल में प्रत्येक गृह में याग होता था। माता–पिता संयमी बन करके और ओजस्वी सन्तान को जन्म देते थे। माता अपने गर्भस्थल में ही बालक को बनाना प्रारम्भ करती थी, अपने अंग–अंग को जब वेद की ध्वनि से ध्वनित हो रहा है तो माता के गर्भ में बालक का निर्माण हो रहा है। परन्तु वह निर्माण इतने पूर्ण आयु की आत्मा संस्कारों से ओतप्रोत आती कि माता–पिता से पूर्व उस बालक का हनन नहीं होता है। माता–पिता जो सन्तानों का उपार्जन करते, अन्त में देखो वह प्रसन्न हो करके संसार से जाते हैं। (4 नवम्बर 1985, काशीपुर)

भगवान् राम के समीप कुछ ऋषि–मुनि पहुँचे तो उन्होंने कहा, ''प्रभु! आओ, आप तो वेद के जानने वाले हो, बुद्धिजीवी हो, चलो आज हम अयोध्या राष्ट्र में भ्रमण करेंगे। हमारे राष्ट्र में प्रातःकालीन वेदध्वनियाँ आती हैं या नहीं। जैसे हम अपने गृह को वेद–ध्वनि के द्वारा सुगन्धित करते हैं, ऐसे ही मैं अपने राष्ट्र को चाहता हूँ।'' कुछ ऋषियों और भगवान् राम दोनों ने अयोध्या राष्ट्र में भ्रमण करना प्रारम्भ किया। तो प्रत्येक गृह से प्रातःकालीन सूर्य उदय होने से पूर्व ध्वनियाँ आ रही थीं और सुगन्धि आ रही थी। भगवान् राम बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्न–चित्त होकर के ऋषियों से बोले कि ''प्रभु! यह जो तुम हमें नाना शिक्षा देते रहते हो, उस शिक्षा का यह परिणाम है।'' देखो सर्वत्र राष्ट्र की नगरी में भ्रमण कर उपनगरों में पहुँचे, उपनगरों में भी सुगन्धि आ रही है, वनों में पहुँचे जहाँ मानव विद्यमान है तो वह वहाँ भी याग कर रहा है, कोई जल से याग कर रहा है कोई सुगन्धि से याग कर रहा है।

(21 सितम्बर 1985, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

ऋषियों का अयोध्या में राम के साथ यज्ञ

एक समय मध्य रात्रि का काल था। रात्रि के काल में, वैशम्पायन ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान है। वैशम्पायन अत्रि कहलाते थे, क्योंकि वे अत्रि गोत्र में थे। वैशम्पायन जब यह विचारने लगे कि वेद का मन्त्र क्या कहता है? क्योंकि आगे नाना मन्त्र इस प्रकार के आते रहे थे, क्योंकि वह याग सूत्र कहलाता था। याग जो सूत्र था वह मानव का विचार–विनिमय करने के लिये बाध्य कर रहा था कि मानव का चित्र कैसे जाता है? यजमान का चित्र कैसे बन कर के चलेगा? इसके ऊपर यह वेद–मन्त्र था और ऋषि वैशम्पायन अपने आश्रम में विद्यमान हो कर के चिन्तन करने लगे, मनन करने लगे, ऊँची उड़ान उड़ने लगे। जब वह ऊँची उड़ान उड़ने लगे तो विचार आया कि विमान कैसे बनेगा? प्रातः कालीन हो गया था। मध्य रात्रि से प्रातः काल तक वह चिन्तन करते रहे थे। इतने में महर्षि विभाण्डक मुनि आ पहुँचे, महर्षि विभाण्डक मुनि कहते हैं ''कहो वैशम्पायन्! आज तुम्हारा चित्त मुझे प्रसन्न नहीं दृष्टिपात हो रहा है'' वैशम्पायन ऋषि बोले कि ''महाराज! मेरे समीप एक वेद–मन्त्र आया है और उसके संसर्ग में नाना मन्त्र हैं। परन्तु वह मन्त्र अपने यहाँ एक आभा प्रकट कर रहा है कि यज्ञशाला में जो यज्ञमान है उसका विमान बन करके अन्तरिक्ष में जाता है। वह कैसा याग है, जिस याग में यजमान

विराजमान हो करके उसका विमान बन जाता है? और वह द्यौ–लोकों को प्राप्त होकर अन्तरिक्ष–लोकों को जाता है? क्या इसको आप हमें निर्णय कर सकेंगे?''

महर्षि विभाण्डक मुनि कहते हैं कि ''निर्णय क्या? इसके ऊपर चिन्तन किया जाये। इसको क्रिया में लाना है तो तुम एक याग की रचना करो और जब याग की रचना होगी तो इन वाक्यों का स्पष्टीकरण हो जायेगा।'' वैशम्पायन, महर्षि विभाण्डक, महर्षि शमीक इत्यादि ऋषि विद्यमान थे। सर्वत्र ने यही विचारा कि ''हम याग की रचना करें और याग की रचना करके हम उसके ऊपर अनुसंधान करें और उसके संसर्ग में जो भी वाक्य आयेगा अथवा जो भी प्रतिभा हमें दृष्टिपात होगी उसी के ऊपर अपने विचारों को निष्ठावान बना सकेंगे।'' देखो यही विचार होता रहा। अन्त में यह चिन्तन किया गया कि ''चलो राम की अयोध्या में चलेंगे। और राम की अयोध्या में जाकर के एक याग करायेंगे। क्योंकि याग के द्वारा ही हम उस को जान सकेंगे।''

महर्षि वैशम्पायन, महर्षि विभाण्डक, महर्षि शमीक, महर्षि पणपेतु, महर्षि सोमकेतु इत्यादि ऋषि आश्रम से प्रस्थान करने लगे। जब कोई निर्णय नहीं हुआ, दार्शनिक रूपों में तो निर्णय आता है कि मानव के विचार कहीं के कहीं गति करते हैं। वह स्थिर भी हो जाते हैं। मन और आत्मा से जो भी कर्म होता है वह चित्त में प्रवेश कर जाते हैं। चित्त भी दो रूपों में रहता है एक विशेष चित्त होता है, एक सार्वभौम चित्त का मण्डल होता है, वह जो चित्त का मण्डल है वह मानव के द्वारा होता है और एक चित्त का मण्डल द्यौ–मण्डल के द्वारा रहता है, वह समष्टि चित्त कहलाता है। समष्टि चित्त में ही सूक्ष्म शरीर रमण करता रहता है। इस सम्बन्ध में ऋषि–मुनि उड़ान उड़ते रहे। हो सकता है कि वेद का मन्त्र यही कह रहा है कि विमान बनता है, हो सकता है शब्दों का विमान बनता है। ऐसा ऋषि अपने आँगन में निर्णय कर रहे हैं। परन्तु उनके विचारों में यह आया कि हम इसको क्रियात्मक दृष्टिपात करेंगे। नाना ऋषियों ने वहाँ से, आश्रमों से प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए वह सायंकाल क्या, रात्रिकाल के आनन्द मनाते हुए ऋषिवर प्रातःकाल होते ही अयोध्या में आ पहुँचे। तो भगवान् राम के यहाँ अयोध्या में यह नियम था कि प्रत्येक प्राणी उनके राष्ट्र में याज्ञिक था। यज्ञमयी जीवन को बनाने वाला था। क्योंकि राम का यह उपदेश रहता था अपनी प्रजा को कि किसी प्रकार की भी कर्त्तव्य विहीनता नहीं होनी चाहिये। कर्त्तव्य का पालन होना चाहिये। कर्त्तव्य के पालन में सबसे प्रथम याग हो क्योंकि प्रत्येक गृह सुगन्धित हो जाये और उसके ऊपर मानव के जीवन का अध्ययन होना चाहिये। मानव के जीवन में भी सुगन्धि होनी चाहिये।

मानव के जीवन में नाना प्रकार की सुगन्धि होती है। परन्तु एक सुगन्धि मानव के जीवन में चरित्र की सुगन्धि होती है। वाणी की सुगन्धि होती है, चक्षु की सुगन्धि होती है। परन्तु ज्ञान और विज्ञान की भी एक सुगन्धि होती है। हमारे यहाँ यह माना गया है कि चारित्रिक जो निर्माण है अथवा चारित्रिक जो सुगन्धि है वह एक महान् सुगन्धि कहलाती है। वही सुगन्धि है जो अपनी तरंगों से संसार के ज्ञान और विज्ञान को एकत्रित कर सकती है। तो सुगन्धि को लाना हमारा कर्त्तव्य है। हमें अपने समाज में, अपने राष्ट्र में, अपनी मानवता में, चारित्रिक निर्माण करना चाहिये। उसका निर्माण होता रहे।

वह काल स्मरण है भगवान् राम के यहाँ, जब राष्ट्र की स्थापना हुई, लंका को विजय करने के पश्चात् तो उन्होंने अपना राष्ट्रीय नियम बनाया, एक कर्म बनाया जो उनके रघुवंश में नाना प्रणालियों में, नाना प्रकार की नियमावली रही। मध्य काल में वह कुछ शान्तना को प्राप्त हो गयी। परन्तु, भगवान् राम ने और महर्षि वशिष्ठ इत्यादियों ने उन नियमावलियों को पुनः से धारण कराने का प्रयास किया। ऐसा स्मरण है कि वह नित्य प्रति चारों विधाता अपनी यज्ञशाला में याग कर रहे थे। जब चारों विधाता याग कर रहे थे तो ऋषियों का आगमन हुआ। ऋषि अपने–अपने उचित आसनों पर विद्यमान हो गये और राम ने जब याग समाप्त किया। याग समाप्त करने के पश्चात्, नाना मन्त्रीगण विद्यमान हैं, वह अपने मन्त्रीगणों को यह उपदेश दे रहे थे कि राष्ट्र को उन्नत बनाना हमारा कर्त्तव्य है। राष्ट्र, ज्ञान और विज्ञान की तरंगें को धारण करने वाला हो। ऐसा भगवान राम का उपदेश चल रहा था। प्रत्येक प्राणी का जीवन त्याग और तपस्यामयी हो। विद्यालयों में त्यागी और तपस्वी ही पति–पत्नी, शिक्षा देने में कुशलता को प्राप्त हो सकते हैं।

वह काल जब मुझे स्मरण आता है उस काल में यह नियमावली बनी हुई थी। जब नियम बनाया गया तो सबसे प्रथम यह नियमावली थी। राष्ट्र और समाज का जो चारित्रिक निर्माण होता है वह विद्यालयों में होता है। तो इसीलिये उन्होंने विचारा कि विद्यालय पवित्र होने चाहिये। उनके यहाँ नाना ऋषिवर पत्नी सहित शिक्षा प्रदान कर रहे थे। राम के काल में, मेरे प्यारे! कन्याओं का विद्यालय, ब्रह्मचारियों का विद्यालय जो उसमें अपने गृह को त्याग करके, अपने ज्येष्ठ पुत्र को, मुनिवरो! वधू को अपना गृह का सर्वत्र त्याग करके प्रसन्नता से त्याग करने के पश्चात् जब विवेक से गृह को त्यागा जाता है और वह विद्यालयों में अपने अनुभव ब्रह्मचारियों को जब प्रकट करते तो ब्रह्मचारी सुसज्जित हो जाते। ब्रह्मचारिणी मानो विद्यालय में पवित्र बन रही है, क्योंकि वह गृह त्याग करके त्यागमयी और तपस्यामयी और यागमयी जीवन को बना कर वह ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मचारियों को शिक्षा प्रदान कर रही है। क्योंकि जहाँ मन की प्रवृत्ति स्थिर रहती है, मन में एक ओज की धारा रहती है तो ज्ञान को जितना भी दूसरों को प्रदान करता है उसकी उतनी ही उपलब्धि होती रहती है। प्रसन्नता से ज्ञान में विशालता आती रहती है। विज्ञान में भी यही गति मानी गयी है।

परन्तु जब यह नियम बनाया तो यह नियमावली राजा के राष्ट्र में चल रही थी। राम प्रातःकालीन याग करते और याग के ऊपर मानो इनका कुछ उपदेश होता और वह यह कहा करते थे, ''हे लक्ष्मण! यह राष्ट्र हमारा पवित्र होना चाहिये और राष्ट्र प्रिय वही होता है, पवित्र वही होता है, जिस राजा के राष्ट्र में कोई एक दूसरे का ऋणी न हो। अब ऋण मुनिवरो! यहाँ कई प्रकार के माने हैं। एक ऋण वह कहलाता है जिसको हमारे यहाँ पितृ–ऋण कहते हैं क्योंकि पितरों की सेवा करना, पितरों को ऊँचा बनाना यह पितृ–याग कहलाता है। यहाँ मानो नाना प्रकार की आभा में मानव रमण करता रहता है, परन्तु पितरों को नहीं विचार पाता, क्योंकि सबसे महान् जो हमारा पितर है वह हमारा चैतन्य देव है। जो नाना प्रकार की वस्तुओं को प्रदान करता रहता है। जीवन को सुसज्जित बनाता रहता है।'' भगवान् राम कहते हैं ''हमारे राष्ट्र में कोई एक–दूसरे का ऋणी नहीं होना चाहिये। प्रत्येक मानव उऋण होना चाहिये जिससे हम अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकें और प्रजा को सुखद बना सकें।'' ऐसा भगवान् राम ने कहा। उच्चारण करने के पश्चात् ब्रह्मचारी भी मौन रहते और यज्ञशाला में जो मन्त्रीगण थे वह मौन थे। अपना विचार प्रारम्भ हो रहा था। राम कहते थे कि ''मानव का जीवन त्यागमयी होना चाहिये। जब तक त्यागमयी जीवन नहीं होगा तब तक मानव का जीवन किसी काल में भी ऊँचा नहीं बनता। किसी भी काल में महान् नहीं बनता इसलिये जीवन त्यागमयी और याज्ञिक होना चाहिये।''

याग के सम्बन्ध में ये चर्चाएं हो रही थीं। भगवान राम ने यह दृष्टिपात किया कि ऋषि भी विद्यमान हैं। ये भी पूज्य होते हैं। अपने विचारों को शान्त करके यही उन्होंने अपना विचार दिया कि ''सब प्रजा अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन करे तो एक–दूसरे का मानव ऋणी रह ही नहीं सकता। ऋणी उस काल में रहता है जब मानव नाना प्रकार की विडम्बना में युक्त होता है नाना प्रकार की विडम्बना वाला जो मानव कहलाता है, वह इस संसार को, गृह को, राष्ट्र को स्वर्ग नहीं बना सकता। स्वर्ग वही प्राणी बना सकता है, जिसका चारित्रिक निर्माण हो जो महान् और पवित्र है, वही मानव साधना के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। हमारे यहाँ याग के सम्बन्ध में नाना प्रकार की आभाएं हैं, नाना ब्रह्मवेत्ता आये, उनका सर्वत्र एक मन्तव्य रहा है कि संसार को ऊँचा बनाने के लिये महान् विचारों की आवश्यकता रही है, पवित्रता की आवश्यकता रहती है। इसीलिये वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है। आज हम अपने मानव जीवन को यागमय बनाना चाहते हैं।''

तो वैशम्पायन इत्यादि ऋषि वहाँ विद्यमान थे। राम ने अपना उपदेश समाप्त किया। राम ऋषियों के चरणों को स्पर्श करके बोले, ''कहो, भगवन्! आज प्रातःकालीन् मेरे आश्रम में आपका आगमन कैसे हुआ?'' महर्षि विभाण्डक मुनि बोले कि ''महाराज हम इसलिये आये हैं कि तुम्हारे राष्ट्र में एक याग होना चाहिये। हम एक याग की कल्पना करके आये हैं। सङ्कल्पवादी बन कर आये हैं कि राम के द्वारा एक याग हो सकता है।'' राम बोले, ''बहुत प्रिय! यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो याग की रचना करो। याग होना चाहिये।''

उस समय राम का आदेश पाते ही नाना ब्रह्मचारी, नाना ऋषिवर, ब्राह्मण समाज याग के रचाने के लिये नाना सामग्री एकत्रित करने लगे। जब नाना सामग्री एकत्रित हो गयी तो वह याग के लिये अपने आसन से प्रस्थान करने लगे। मेरे प्यारे! याग प्रारम्भ हो रहा है। याग में नाना ऋषिवर विद्यमान हैं।

महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज की अध्यक्षता में, बेटा! वह याग हुआ। वशिष्ठ मुनि महाराज उस याग के पुरोहित बनें। अध्वर्यु, उद्गाता देखो नाना ऋषि अपने आसनों को अपनाते हुए विराजमान हो गये। तब याग का प्रारम्भ होने लगा प्रारम्भ होने के पश्चात् भगवान् राम मौन हो गये। यजमान की सूक्ष्मता थी इतने में महर्षि बाल्मीकि मुनि महाराज माता सीता के सहित भ्रमण करते यज्ञशाला में आ पहुँचे। क्योंकि हमारे यहाँ रघुवंश की परम्परागतों से एक नियमावली बनी हुई थी कि जो सन्तान कन्या के, राज–लक्ष्मियों के, यहाँ जन्म लेती, उनका विद्यालयों में, आयुर्वेदाचार्यों के गृहों में, उनकी पालना होती थी। मुझे वह काल स्मरण है, मुनिवरो! जब सीता महर्षि बाल्मीकि आश्रम में, जो ब्रह्मवेत्ता थे, वह आयुर्वेद के मर्म को जानने वाले थे, मेरे प्यारे! सीता का वहाँ पर्दापण हुआ और पर्दापण होने के पश्चात् 'ब्रह्मवृत देवः' यज्ञ एक महान् कर्म तो होता है, विचित्र कार्य तो होता है, परन्तु महर्षि बाल्मीकि भी सीता के सहित यज्ञ में आ पधारे और याग होने लगा।

जब याग प्रारम्भ होने लगा तो देवता प्रसन्न होने लगे। क्योंकि देवताओं को सबसे प्रथम आह्वान किया जाता है। स्वस्ति के द्वारा आह्वान करता है। मानव अपने अन्तःकरण से आह्वान करके कहता है, "आओ देवताओ! तुम देव पूजा करते हुए देववत् को प्राप्त हो जाओ।" ऐसा वह उच्चारण कर रहे थे। मेरे पुत्रो! देखो जब महर्षि बाल्मीकि भी विद्यमान हो गये और याग प्रारम्भ का वेद–मन्त्र जब उन्होंने उच्चारण किया, द्वितीय किया, तृतीय किया। इसी प्रकार छटा मन्त्र जब उच्चारण किया तो राम कहते हैं कि "यहीं याग को शान्त कर दो।" उन्होंने कहा, "क्यों महाराज?" राम ने ऋषियों से कहा कि "महाराज! वेद–मन्त्र यह है कहता कि यह जो यज्ञशाला है यह महापुरुषों का विमान कहलाता है और इस विमान पर विद्यमान हो कर जब याग करता है तो वह देवतत्त्व को प्राप्त होता है।" मेरे पुत्रो! देखो वह 'ब्रह्मवृत देवः' वह शान्त हो गये और कहा कि "मुझे यह निर्णय करो कि यजमान का विमान अन्तरिक्ष में कैसे जाता है? वह कैसे बनता है? हम यह जानना चाहते हैं।" मेरे प्यारे! देखो नाना ब्राह्मण मौन हो गये। क्योंकि ब्राह्मण उस प्रक्रिया को क्रिया से नहीं जानते थे। मेरे प्यारे! जब यजमान ने ऐसा कहा तो नाना ऋषिवर मौन रहे, क्योंकि दर्शनों की भाषा में तो वह निर्णय दे सकते थे। परन्तु वह चाहते थे कि विज्ञान की महत्ता होनी चाहिये, विज्ञान इस सम्बन्ध में क्या कहता है? तो मेरे प्यारे! देखो वह शान्त हो गये।

इतने में महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारिणी शबरी ने यह विचारा कि चलो आज महापुरुष के यहाँ याग हो रहा है। ऐसा मुझे स्मरण है, पुत्रो! जब भारद्वाज का पर्दापण हुआ तो भारद्वाज मुनि महाराज ने दृष्टिपात किया कि सभा शून्य है। यज्ञशाला में प्राणी शून्य हैं। यजमान भी शून्य गति को प्राप्त हो रहा है। उन्होंने कहा कि "महाराज! आप मौन क्यों हैं?" राम कहते हैं कि "मैंने यह निश्चय किया है मुझे निर्णय कराओ कि मेरा याग यह ऊँचा होना चाहिये। याग में सफलता प्राप्त होनी चाहिये। परन्तु मुझे सफलता का कोई आकार प्रतीत नहीं हो रहा।" वह बोले कि "क्यों?" वह बोले कि "मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है स्वतः हो रहा है। परन्तु कोई वाक्य नहीं मेरा यह प्रतीत मिथ्या भी हो सकता है।" मेरे प्यारे! देखो 'यज्ञं ब्रह्मे' जब महर्षि भारद्वाज ने ऐसा कहा तो राम कहते हैं, "महाराज! मेरी यह कामना है, मेरी यह इच्छा है कि मैं इस यज्ञशाला को यजमान का विमान दृष्टिपात करना चाहता हूँ।" यह वाक्य उच्चारण किया और मौन हो गये। परन्तु महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचरिणी शबरी को आदेश दिया और वह भ्रमण करते हुए अपने आश्रम में आये। नाना प्रकार के यन्त्रों को स्थिर करके मेरे पुत्रो! वहाँ से उन्होंने गमन किया और अयोध्या में आ गये जहाँ राम यज्ञशाला में यजमान की उपाधि से सुशोभित हो रहे थे। उद्गाता उद्गान गा रहा है। अध्वर्यु अपनी स्वर ध्वनि में प्रवेश कर रहा है। मेरे प्यारे! भिन्न–भिन्न विचारधाराएं मानव के मस्तिष्कों में रहती है। संसार इसके सम्बन्ध में, विचारता रहता है और चिन्तन करता रहता है कि हमारा जीवन कैसे महान् और पवित्रता को प्राप्त हो सकता है। 'यज्ञं ब्रह्मे!' ऋषि ने कहा कि "राम! तुम याग करो।" राम, मुनिवरो! ज्यो ही यज्ञशाला में आहुति देने लगे, त्यों ही इतने में ब्रह्मचारियों ने नाना प्रकार के तन्तुओं को कटिबद्ध कर दिया और याग उन्हें दृष्टिपात आने लगा। मानो उनकी विज्ञानशाला में जो नाना प्रकार के यन्त्र विद्यमान थे, उन यन्त्रों में यह विशेषता थी कि शब्द के साथ में जो चित्र जाता है, वह कहाँ जाता है? किस गति को प्राप्त होता है? वह उन यन्त्रों में स्वतः दृष्टिपात होता था। तो मेरे प्यारे! महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने नाना प्रकार के यन्त्रों में राम का, सीता का चित्र, नाना अध्वर्यु, उद्गाता जो भी स्वाहा कहता था उसका चित्र बन करके द्यौ–लोक को गमन करता राम को दृष्टिपात होने लगा। उस समय भारद्वाज मुनि कहते हैं, "हे राजन्! यह हमने विज्ञान को तुम्हें कुछ दृष्टिपात कराया है।" नाना प्रकार का विज्ञान मानव के मस्तिष्क में रहता है। विचारों में रहता है।

देखो जब नाना प्रकार के यंत्र चित्रावली में दृष्टिपात आने लगे तो राम मौन हो गये। महर्षि भारद्वाज मुनि कहते हैं, "राम! यह तुम्हें ज्ञान होना चाहिये। यह तुम्हें प्रतीत रहना चाहिये। कोई भी मानव इतनी आभा में, इतनी वृत्तियों में रमण नहीं करना चाहिये।" परन्तु उसमें शनैः शनैः जीवन को ऊँचा ले जाना चहिए। परन्तु जब ऐसा वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो वह बोले, "महाराज! हम आपके वाक्यों को स्वीकार नहीं करेंगे। क्योंकि नाना प्रकार की जो कृति हैं, नाना प्रकार की जो भाषिताएं हैं यही तो मानव को एक सूत्र में ला देती हैं। एक ही सूत्र में मानव को पिरो देती हैं। (30 अप्रैल 1977, तपोवन)

अकाल को नष्ट करने हेतु राम द्वारा वाजपेयी याग

राम ने लंका को विजय करके अयोध्या में प्रवेश किया उसके पश्चात् बारह वर्ष का उन्होंने तप किया और तप करने के पश्चात् राष्ट्रपिता बने, राष्ट्रवेत्ता बने, तो कुछ समय तक वह राष्ट्र का पालन करते रहे, परन्तु कुछ समय के पश्चात् उनके राष्ट्र में एक अकाल पड़ गया और वह भयक्रर अकाल था। सब और जल प्लावन आ गया। तो मुनिवरो! राम ने विचारा कि अब मैं क्या करूँ? माता अरुन्धती और वशिष्ठ, दोनों विद्यालय में ब्रह्मचारियों को अध्ययन कराते रहते, ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ते रहते। राम और उनकी देवी सीता दोनों ने भ्रमण करते हुए आचार्य कुल में प्रवेश किया। माता अरुन्धती और वशिष्ठ ने उनका आदर किया तो राम ने कहा कि "प्रभु! आपको प्रतीत नहीं है कि हमारे राष्ट्र में अकाल हो रहा है।" उन्होंने कहा कि "प्रिय राम! तुम क्या चाहते हो?" राम ने कहा "यह अकाल नहीं रहना चाहिये, यह अकाल समाप्त होना चाहिये।" उन्होंने कहा, "बहुत प्रिय!"

महर्षि वशिष्ठ मुनि ने वार्त्ता प्रकट करते हुए यह कहा था कि "तुम याग करो।" उन्होंने अग्निष्टोम याग को त्याग करके वाजपेयी याग किया और ऋषि ने पन्द्रह दिवस तक उनके हृदय को हृदयग्राही बनाया। राम और सीता, पति और पत्नी दोनों ने अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके पन्द्रह दिवस तक उन्होंने विद्या का अध्ययन किया और उस अन्न को पान किया, जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं था। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि राम जैसे महापुरुष इस पृथ्वी के गर्भ से नाना प्रकार के अन्न को उत्पन्न करके पान करते थे। एक गऊ थी जो महात्मा वशिष्ठ से उन्हें प्राप्त हुई। वह कामधेनु गऊ का दुग्ध आहार करते थे और उस अन्न को पान करते जो स्वयं पुरुषार्थ करके उन्हें प्राप्त होता। इसके पश्चात् उन्होंने वाजपेयी याग किया। वाजपेयी याग करने के पश्चात् मेंघ समाप्त हो गये। वायुमंडल में क्या, उनका विचार, उनका क्रियाकलाप स्वाहा के साथ द्यौ–लोक में चला गया।

(4 मार्च 1987, लाक्षागृह, बरनावा)

पावमान्य राम

चन्द्रमा सदैव अपनी आभा में रत्त रहता है। क्रियात्मकता में प्रतिपदा से ले करके पूर्णेष्टि तक ये षोडश कला कहलाती हैं, इन कलाओं का अपना–अपना महत्त्व माना गया है। इन कलाओं को भगवान् राम ने जानने का प्रयास किया क्योंकि वे राजा ही नहीं थे, वास्तव में राम अपने में तपस्वी थे। राज्य का उन्हें वैभव नहीं था, वे सदैव तपस्या में रत्त रहते। क्योंकि राजा वास्तव में तपस्वी होता है और वह पावमान्य कहलाता है। पावमान्य का अर्थ ही यह कहलाता है कि वह राजा गंतत्त्व अपने वैभव में रत्त हो करके भी उसे अभिमान न आना चाहिये उसे उग्रवाद नहीं आना चाहिये इसीलिये वेदमन्त्र कहता है कि वह राजा है। राजा को ही पावमान्य कहते हैं। भगवान् राम के जीवन में, राजा होने पर भी वह तपस्वी कहलाते थे।

(27 फरवरी 1991, अश्वमेघ याग चन्द्रसक्त, बरनावा)

राम के यज्ञ में ऋषि स्वानभूमि की अशुद्ध आहुति

एक समय राम जब याग कर रहे थे। तृतीय चतुर्थ दिवस में एक स्वानभूमि ऋषि महाराज अपने विद्यालय से भ्रमण करते हुए आये। उन्होंने यह संकल्प किया था कि आज मैं राम के समीप जाऊँगा और राम के द्वार पर जा करके उनका अनुष्ठान दृष्टिपात करूँगा। मेरे प्यारे! देखो जब स्वानभूमि ऋषि

महाराज राम के यहाँ पहुँचे तो वह, मानो नेत्रों को वृहीत करते हुए अन्तर्मुखी हो करके याग में सुगन्ध और देखो बाह्मय–जगत् को अपने में दृष्टिपात् कर रहे थे।

जब स्वानभूमि ऋषि महाराज ने जा करके याग में आहुति देना प्रारम्भ किया, और जैसे ही अग्नि में आहुति दी, तो स्वानभूमि ऋषि महाराज और वर्तेन्तु का किसी वाक्य पर मानो संघर्ष हुआ था। क्योंकि दोनों सहपाठी थे, विद्यालय में अध्ययन करते थे, ऋषित्त्व में तपस्वी थे, और स्वानभूमि के हृदय में, वर्तेन्तु के प्रति एक द्वेष की मात्रा थी। तो देखो, वो बनी रही हृदय में और उनके हृदय में यह वाक्य आया कि तेरा तप जब ऊर्ध्वा में पहुँचेगा जब इसका तप किसी कारण से हम खण्डित कर पायेंगे। तो जब यह विचार आया 'सम्भवं लोकां वाचन्नमं ब्रह्मेः वायु सम्भूति लोकाम्' तो जब यह वाक्य आया तो 'सम्भव वृत्ताम्' तो मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि उन्होंने जैसे आहुति दी यज्ञ में, वो आहुति मानो देखो अशुद्ध दृष्टिपात् हुई राम को। अन्तर्मुखी आभा में जब वो अशुद्ध दृष्टिपात् होने लगी तो उस आभा में, रक्तता में, 'ग्रेण रूपां अभ्याम् उदय देवं ब्रह्मः, वाचन्नमं वृही कृतम्', तो उसी आभा में वो रक्त रहा। भगवान् राम ने कहा, नेत्रों को अग्रणीय करते हुए कि, "हे ऋषिवर, हे ब्रह्मचारी! तुमने बिना आज्ञा के आहुति देना प्रारम्भ किया, तुम्हारी यह चिन्ता में, रजोगुण में, जो तुम्हारी आहुति है, वो मानो देखो अन्तरिक्ष में, मेरे इस यज्ञशाला के रथ के योग्य नहीं है।" तो स्वानभूमि ऋषि महाराज ने, राम के चरणों का स्पर्श करते हुये यह कहा कि "प्रभु! मैं वास्तव में अशुद्ध हूँ। मैं अशुद्ध हूँ, प्रभु!" वह उनकी प्रतिभा के स्मारक का 'ब्रहे, वाचन्नमं ब्रह्माः, वायु सम्भूति लोकाम्' पुनः से शुद्धिकरण हुआ। शुद्धिकरण के होने से, उसकी आभा में रक्त रहा।(दिसम्बर 1986, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

ऋषियों की प्रेरणा से अयोध्या में राष्ट्रीय याग

एक समय कजली वनों में ऋषियों की एक सभा हुई थी। जिसमें महर्षि विभाण्डक, महर्षि शमीक, महर्षि शौनक, महर्षि दालभ्य, महर्षि शिलक, महर्षि प्रवाहण, महर्षि पणपेतु, महर्षि सुकेत–केतु, महर्षि सोमभानु, देवर्षि नारद, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि सुकेतु, गार्हपथ्य, वर्तेन्तु ब्रह्मचारी, प्रभानुक्रतिमा आदि नाना ऋषि थे। उस सभा में विचार–विनिमय आरम्भ होने पर महाराजा शौनक ने यह कहा कि यह हमारा विचार है कि अयोध्या में एक याग होना चाहिये और उस याग में राम का यजमान के रूप में निर्वाचन किया जाये और कर्त्तव्य का पालन करते हुए अयोध्या नगरी को सुगन्धित बनाया जाये। जिन्होंने संसार में अपनी संस्कृति का प्रसार किया, ऐसे महान् जनों को ऊर्वागति में ले जाया जाये। बुद्धिमानों का समाज था। यह विचार बन गया। काकभुषुण्ड जी उसमें नियुक्त हो गये। महर्षि विभाण्डक, शमीक, महर्षि शौनक और महर्षि सुकेत चित्र महाराज और दालभ्य इन पाँचों ऋषियों ने यह विचार बनाया कि भगवान् राम के समीप जाये और अपनी विचार–धारा प्रकट करें।

उन पाँचों ने प्रातःकाल होते ही अपने आसन से गमन किया। भ्रमण करते हुए अयोध्या में उनका प्रवेश हुआ। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों विधाता प्रातःकाल में देवताओं के ऋण से उऋण हो रहे थे। इतने में ही ऋषि–मुनियों का आगमन हुआ। इन चारों विधाताओं ने अपने–अपने आसन को त्याग करके ऋषियों का स्वागत किया। आसन दिया और उनके चरणों को छू करके नमस्कार करके कहा कि "भगवन्! आप लोगों का आगमन कैसे हुआ?" उन्होंने कहा कि "महाराज! हम इसलिये तुम्हारे यहाँ आ पहुँचे हैं कि हमारा एक विचार है कि हम चाहते हैं कि तुम एक याग करो।" उन्होंने कहा कि "बहुत प्रिय! जो आपकी आज्ञा हो, उसका पालन अवश्य करेंगे।"

देखो, उन्होंने याग करने का अपना विचार–विनिमय किया। याग करने की उनकी इच्छा को चारों विधाताओं ने स्वीकार किया और एक दिवस नियुक्त किया गया। जब दिवस नियुक्त हो गया और अब वह दिवस आया तो यज्ञशाला का निर्माण होने लगा, पण्डितों के परामर्श से यज्ञशाला का निर्माण हुआ। जैसा महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बारह वर्ष के तप करने के पश्चात् एक पोथी का निर्माण किया था, जिसको 'शतपथ–ब्राह्मण' कहा जाता है, उसके अनुसार उन्होंने यज्ञशाला का निर्माण किया और यज्ञशाला का निर्माण करने के पश्चात् नाना ऋषि उस यज्ञशाला में विराजमान हो गये और राम को यजमान नियुक्त किया गया। होता इत्यादियों का निर्वाचन हो गया। निर्वाचन होने के पश्चात् नाना ऋषि–मुनि, महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी शबरी आदि सब उस यज्ञशाला में विराजमान हैं। जब यज्ञ प्रारम्भ होने लगा तो राम ने एक वाक्य कहा कि "हे ऋषियो! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो याग होने जा रहा है इस याग का अन्तरिक्ष में क्या परिणाम होता है?" ऋषि–मुनि मौन हो गये और राम का उत्तर नहीं दे सके। राम ने पुनः यह कहा कि "मैं जानना चाहता हूँ, इस आहूतियों का अन्तरिक्ष में का क्या परिणाम है?" इसमें महर्षि भारद्वाज से, ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि "महाराज! मुझे आज्ञा दो, मैं भगवान राम के प्रश्नों का उत्तर दूं।" उन्होंने कहा, "नहीं।" तब राम ने पुनः प्रश्न किया कि "इस याग को मैं तब करूँगा जब मुझे अन्तरिक्ष के चित्रों का प्रतीत होगा।"

भारद्वाज ने कहा "राम! तुम्हारी यही इच्छा है कि हम ऋषि–मुनि वैज्ञानिक रूपों से तुम्हें यज्ञ के चित्रों का दिग्दर्शन करायें। तब यज्ञ को पूर्ण करो।" राम बोले, "महाराज! मेरी तो यही इच्छा है।" उन्होंने कहा, "बहुत सुन्दर।" महर्षि भारद्वाज वैज्ञानिक थे। उन्होंने अपने शिष्य ब्रह्मचारी सुकेता से कहा, जाओ, यज्ञशाला के यन्त्रों को लाया जाये। यन्त्र वहाँ आ गये तो ऋषि कहता है कि "राम! प्रश्न करो क्या जानना चाहते हो।" राम ने कहा, "प्रभु! मैं इसका विधान जानना चाहता हूँ।" वेद का ऋषि यह कहता है, वेद का मन्त्र यह कहता है "चित्रावली "वृत गृभे बृत्त यज्ञाः देवतम् पूर्वले अप प्रभे वृत्त देवाः।" भगवान राम ने कहा कि "इस वेद–मन्त्र के आधार पर यजमान का चित्र प्राप्त होता है, परन्तु मैं इसको जानना चाहता हूँ कि यजमान–रथ कैसे बनता है।" महर्षि भारद्वाज ने कहा कि "तुम्हें यह प्रतीत होगा कि हमारा जो वंश है, वह भारद्वाज कहलाता है और भारद्वाज का जो वंश है वह हारिद्रत गोत्र से उसका निकास है और हारिद्रत गोत्र का निकास ददढ़ गोत्र से है और ददढ़ गोत्र का निकास अग्नि–ऋषि गोत्र से माना जाता है और अग्नि ऋषि का गोत्र अथर्वा में माना जाता है और अथर्वा जो गोत्र है वह हरिकेतु भानु ऋषियों से माना जाता है। तुम्हें यह तो प्रतीत होगा हमारे यहाँ परम्परा से ब्रह्मवेत्ता होते चले आये हैं। वैज्ञानिक भी होते चले आये हैं। जहाँ वे आध्यात्मिक–विज्ञान को जानते हैं वहाँ भौतिक–विज्ञान में भी पारंगत रहे हैं, विज्ञान उनका मौलिक कर्त्तव्य रहा है। राम! तुम दृष्टिपात करो।"

जब याग प्रारम्भ होने लगा, अग्नि प्रदीप्त हो गयी और उसके पश्चात् जब यज्ञशाला में साकल्य की आहुति दी जाने लगी तो महर्षि भारद्वाज ने उन यन्त्रों को दृष्टिपात कराया। मानो इन शब्दों के साथ में यजमान, होता, ब्रह्मा के चित्र अन्तरिक्ष में जा रहे हैं। मन्त्रों में दृष्टिपात कराने लगे और उन्होंने कहा कि "हे राम! तुम दृष्टिपात करो इस मन्त्र में तुम्हारी यज्ञशाला का जितना यह चित्र है वह सब अन्तरिक्ष को जा रहा है, द्यौ–लोक को जा रहा है। द्यौ लोक को जाने वाला शब्द, द्यौ–लोक के मानव को प्राप्त हो रहा है।" मुझे वह काल स्मरण आता रहता है तो हृदय गदगद हो जाता है। मैं यह कहा करता हूँ कि ऋषियों की विज्ञान में कितनी उड़ान रही है। उन्होंने कहा कि "हे राम! तुम्हें प्रतीत है कि मानव का जिस प्रकार का शब्द है उतने ही शब्दों के आकार का उसका चित्र अन्तरिक्ष में रमण कर रहा है।"

जब वे दृष्टिपात करने लगे तो राम बोले, "धन्य है! मैं जीवन में यही जानना चाहता था। यज्ञशाला में जो अशुद्ध शब्दों का उच्चारण करता है वह शब्द द्यौ–लोक में, ऊर्ध्व गति को इतना नहीं जाता। परन्तु जब चित्त प्रसन्न करके यजमान, होताजन, ब्रह्मा, उद्गाता यज्ञशाला में विराजमान हो करके याग करते हैं तो यज्ञशाला का और अग्नि का चित्र अन्तरिक्ष में गति करने लगता है अर्थात् शब्दों के याग में वह मानव का चित्र भी गति करता है, श्वास के साथ में गति करता है।" भगवान राम को जब यह दृष्टिपात हुआ, ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि "प्रभु! हमारी विज्ञानशाला में ऐसे–ऐसे यन्त्र हैं कि यदि एक सहस्त्र वर्षों पूर्व मानव का निधन हो चुका है, परन्तु उस मानव का एक रक्त का बिन्दु आ जाये तो उस यन्त्र में उस रक्त के बिन्दु से मानव का चित्र भी साक्षात्कार हो जाता है।" महर्षि भारद्वाज ने जब यह निर्णय कराया और यह कहा कि एक रक्त के बिन्दु में इतने परमाणु होते हैं कि माता के गर्भ–स्थल में एक बालक का निर्माण हो जाता है। आज का वेद का आचार्य कहता है, वेद–मंत्र कहता है कि नाना चित्र अन्तरिक्ष में रमण कर रहे हैं। ऋषि–मुनियों की जो उड़ान है, वह विज्ञान की बहुत ऊँची उड़ान रही है, परमाणुवाद की उड़ान है, एक–एक शब्द को चित्र में लाया जाता है, उन शब्दों के साथ जब चित्र

दृष्टिपात होने लगते हैं, चित्रावलियों में जो मानव का जीवन बन करके हैं, यदि विज्ञान में सतोगुण आ जाता है, तो मानव का राष्ट्र पुष्ट हो जाता है। यदि उसी विज्ञान में, इन चित्रावलियों में, अश्लीलता आ जाये तो राजा का राष्ट्र नारकिक बन जाता है।''

भारद्वाज ने भगवान् राम को यज्ञशाला के सर्वस्व रूप को वर्णित किया और दृष्टिपात कराया। मुझे ऐसा स्मरण है कि वह याग छः माह तक रहा, छः माह के पश्चात् उसकी पूर्णाहुति हुई। क्योंकि वह राष्ट्रीय याग था। भगवान् राम ने संसार को विजय करके यह याग किया था। उसका समापन हो गया। ऋषि–मुनियों का हृदय प्रसन्न चित्त हो गया। विचार–विनिमय क्या कि देव पूजा के द्वारा राष्ट्र को सुगन्धित बनाना है। यागों के द्वारा, साकल्य के द्वारा, अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। (6 मई 1976, अमृतसर)

भगवान् राम ने संसार को विजय करने के पश्चात् अपना एक याग किया। जिसको राजसूय याग कहते हैं। याग के पश्चात् भगवान् राम ऋषियों के मध्य विराजमान हैं। महर्षि बाल्मीकि, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि विभाण्डक, और महर्षि भारद्वाज आदि ऋषिवर विराजमान हो गये। उनके मध्य में राम, लक्ष्मण और सीता हैं। भगवान राम ने कहा कि ''मैं इस याग का भौतिक रूप ही जानता रहा हूँ। इसका यदि और कोई स्वरूप है तो वर्णन कीजिये।'' महर्षि भारद्वाज और महर्षि विभाण्डक ने कहा कि ''इसके दो स्वरूप हैं एक तो आध्यात्मिकवाद है और एक भौतिकवाद है। भौतिकवाद तो यह कि परमाणु गति करता है, अशुद्ध परमाणुओं को निगलता है। परमाणु शुद्ध हो करके याग में से साकल्य बन करके उनका प्रसारण करता है, तो वह वायुमण्डल को शोधन करता है, शोधन तो वनस्पत्तियाँ भी किया करती हैं। दूसरा स्वरूप आध्यात्मिकवाद है।

यह परमात्मा का याग है। जैसे एक मानव सुगन्धि के द्वारा याग रच रहा है, यह बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है। आदि ब्रह्मा ने, आदि–आदि महापुरुषों ने यह निर्णय दिया कि इस याग में जैसे मानव निर्द्वन्द्व (चिन्ता रहित) है इसी प्रकार सुगन्धि युक्त होना चाहिये। सुगन्धि युक्त कैसे बनेगा ? अग्नि में साकल्य का दाह करके, सुगन्धियों के दाह को याग कहते हैं। वह सुगन्धि को वायुमण्डल में प्रसारित करता है, सुगन्धि करता है। भगवान् राम से विभाण्डक जी कहते हैं कि ''हे राजन् ! तुम्हारा जो जन्म है, वह सूर्य वंश में हुआ है। तुम्हारी जो प्रखर बुद्धि है, वह विचित्र है। परम्परा से तुम्हें यह प्रभु की अनुपम देन है, इसमें जीवन की सार्थकता निहित रहती है। उस समय जो विभक्त करने वाली शक्ति है, विभाजन होने वाली शक्ति है, दोनों एक सूत्र में पिरोये जाते हैं, एक माला के मनके बन करके वह अन्तरात्मा में हूत हो रहा है। आत्मा, मन, बुद्धि और प्राण जब तीनों एक माला के मनके बन करके एक माला में पिरो दिये जाते हैं तो यह पांचिकयाग बन जाता है।'' जब महर्षि विभाण्डक ऋषि ने भगवान् राम को यह दृष्टिपात कराया तो उनका अन्तरात्मा गद्‌गद् हो गया। (23 मई 1975, मालवीय नगर, दिल्ली)

२५. पच्चीसवां अध्याय–बाल्मीकि आश्रम में सीता

सीता को आश्रम में छोड़ने का कारण

माता सीता का जीवन बड़ा तपस्यामय रहा। कहीं सिंह राज से ज्ञान की वार्त्ता कर रही है और कहीं अपने चरित्र और मानवीयता की रक्षा कर रही है। उनके जीवन में एक बड़ा कौतुक होता रहा। परन्तु जब अयोध्या में आ गयी तो माता के गर्भ–स्थल में जब गर्भ की आवृत्तियाँ प्राप्त हो गयीं तो राम ने लक्ष्मण से यह कहा कि ''हे लक्ष्मण! जाओ, सीता को महर्षि बाल्मीकि आश्रम में त्याग आओ। वहाँ इनका पोषण होना चाहिये क्योंकि राष्ट्र को ऊँचा बनाना है और राष्ट्र में माताओं का सहयोग इसलिये चाहिये क्योंकि उनके गर्भ से एक महान् तपस्वी का जन्म होना चाहिये। जिससे राष्ट्र तपस्वियों का हो राष्ट्र सक्रीर्ण प्राणियों का नहीं होता। राष्ट्र में पद की लोलुपता का कोई समन्वय नहीं होता। राष्ट्र उस समय ऊँचे शिखर पर जाता है, ऊर्ध्वा में गमन करता है जब उसमें विवेक होता है, ऊँची धारणा होती है कि राष्ट्र मुझे प्राप्त हो या न हो परन्तु मेरी आत्मा की जो वृत्तियाँ हैं, वह नष्ट नहीं होनी चाहिये।''

लक्ष्मण ने अपने रथ में 'ब्रहे' माता सीता को महर्षि बाल्मीकि आश्रम में त्यागा था। महर्षि बाल्मीकि आयुर्वेद के मर्म को, आयुर्वेद की प्रतिभा को जानते थे। वे आयुर्वेद में लगे रहते थे। किस माह में कैसा अन्न, कैसा भोजन होना चाहिये, किस प्रकार का औषध होना चाहिये? आयुर्वेद को ले करके वहाँ यह सब अनुसन्धान होता रहता था। (30 नवम्बर 1988, लाजपतनगर, नयी दिल्ली)

जब भगवान राम ने यह विचारा कि मेरे गृह में विवेकी बालक का जन्म हो तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि ''हे लक्ष्मण! तुम सीता को महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में पहुँचाकर आओ, क्योंकि वहाँ नदी का तट है, उसी पर पत्नी स्वच्छ वायुमण्डल में बालक को जन्म देगी तो राष्ट्र का कल्याण होगा।''

राम की आज्ञा थी, लक्ष्मण सीता को लेकर बाल्मीकि आश्रम में गये। ऐसा क्यों किया? मेरे महानन्द जी कहा करते हैं कि राम ने इसलिये ऐसा किया क्योंकि बालक का जन्म शुद्ध व पवित्र वायु में होना चाहिये। शुद्धि का जो वातावरण था, वह उनके आंगन में आने वाला नहीं था। हमारे यहाँ परम्परा से मर्यादा थी, ऋषि– मुनियों के द्वार पर बालक का जन्म होना चाहिये, जहाँ वातावरण शुद्ध हो।

बाल्मीकि आयुर्वेद के महान् प्रकाण्ड पण्डित थे। आयुर्वेद का आचार्य औषधि–विज्ञान को जानता है। माताओं को चाहिये कि बालक का जन्म होते ही 'स्वर्णका रूद्रा''मधु' 'सेमकृतिभा' और अमृता (गिलोय) यह चार औषधियाँ होती हैं, इनका उसकी रसना पर स्पर्श कराना चाहिये, जिससे उसके दोष समाप्त हो जायें। राम जानते थे कि आयुर्वेद का महत्व कितना है। बाल्मीकि तपस्वी थे, गायत्री के ऋषि थे, छन्द के ऋषि थे और आयुर्वेद के महापण्डित भी थे। अतः राम ने सीता को बालक के स्वर्णिम स्वास्थ्य हेतु बाल्मीकि आश्रम में भेजा था। (इक्कीसवाँ पुष्प)

महर्षि बाल्मीकि आश्रम में जब सीता का आगमन हुआ और वह आयुर्वेदाचार्य थे, आयुर्वेद को जानने वाले वाले थे। इसीलिये रघुवंश में यह परम्परा रही, यह नियमावली बनी रही थी कि राजा के राष्ट्र में, जब भी राज–लक्ष्मियों के सन्तान का जन्म हो वह आयुर्वेदाचार्यों के गृह में होना चाहिये और वहीं वह बालक अस्त्र–शस्त्रों की शिक्षा पाता था, जो आचार्यों को देनी चाहिये। प्रायः राम ने सीता को भयक्रर बनों में भेजकर यह कहा कि ''तुम्हारे सन्तानं ब्रह्मेः'' वह सन्तान का जन्म कहाँ हुआ? बाल्मीकि आश्रम में।

सीता प्रातःकालीन याग करती रहती थी। याग में परिणित होना, याग में अपने जीवन को हूत कर देना, यह क्रिया–कलाप, महानता का कर्म है, उससे वायुमण्डल पवित्र होता है। ब्रह्मचारी को, किसी प्रकार की ऐसी वायु उसे स्पर्श न कर जाये, जिस वायु से उसका निधन हो जाये।

लव–कुश का जन्म

ऋषि बाल्मीकि के आश्रम में आ करके इनके गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ, बालक जन्म के पश्चात् बड़े आनन्द से ऋषि आश्रम में रहा करता था।

ऋषि प्रेम से उस बालक को 'लव' नाम से उच्चारण करने लगे परन्तु कुछ समय के पश्चात् ऐसा कारण हुआ कि महर्षि सुरन्धित की एक कन्या थी जिसका नाम सुमित्रा था। एक बृहित नाम के ब्रह्मचारी सुरन्धित ऋषि के आश्रम में आये और 'सुमित्रा' से दृष्टिपात हुआ वह 'अग्रहि' हो गयी। पिता से कहा भी, 'भगवन्! 'मम हृदश्चत'। वह कन्या गायत्री का पाठ भी करती थी। मनुष्य में दोष आ सकते हैं, इस कन्या में भी किसी कारणवश दोष आ गया। वह गर्भवती रह गयी। कुछ समय के पश्चात् उसके बालक हुआ और वह उस बालक को कुशा पर स्थिर कर बाल्मीकि आश्रम के निकट छोड़ अपने ऋषि–स्थान पर चली गयी। जब सीता पवित्र जल–पान करने के लिये गयी तो उसे यह बालक प्राप्त हो गया। माता सीता ने उस बालक को उपने कण्ठ लगाया और एक लोरी उस बालक को और एक लोरी अपने पुत्र को देने लगी। **ऋषि बाल्मीकि ने दशरथ से लेकर राम के जीवन चरित्र का निर्माण किया।** जीवन चरित्र ही क्या, सब कर्म जो उन्होंने किया उस सबका पोथी रूप में निर्माण किया। ऐसा सुना गया है ऐसा कुछ पान किया गया है।

मुनिवरो ! दो पुत्र सीता के कहलाते हैं लव, जो उसके गर्भ से उत्पन्न हुआ और कुश, जो उसे कुशा से मिला। बेटा ! दोनों बालक माता सीता के कहलाये। ये दोनों बालक बाल्मीकि की सेवा करते थे और महर्षि बाल्मीकि इन्हें अस्त्र–शस्त्रों की शिक्षा देते थे। कुछ समय के पश्चात् राम को विदित हुआ। नाना सङ्ग्राम भी उनके एवम् उनके प्यारे पुत्रों के द्वारा हुए। (22 अक्टूबर 1964, मोगा मण्डी, पंजाब)

लव का जन्म बाल्मीकि के आश्रम में हुआ था और कुश, कुशा के वन में मिला जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय प्रकट कराया कि सीता लव को त्याग अंजनी में जल लेने गयी, वापस आने पर वह प्राप्त नहीं हुआ तो बाल्मीकि ऋषि ने तपस्या के द्वारा कुश को जन्म दिया। परन्तु ऐसा नहीं था कि तपस्या से बालक को धारण किया जा सके। वास्तविकता तो यह है कि कुशा का छेदन करते समय में यह बालक उन्हें प्राप्त हुआ। (पुष्प 22)

लव–कुश की शिक्षा

माता सीता अपने कार्य में बड़ी दक्ष थीं। वे आयुर्वेद तथा धनुर्विद्या के मर्म को जानने वाली विदुषी कहलायी जाती हैं। जो मर्म है, वह उसका वेद है। धनुर्वेद को पान करने के पश्चात् धनुर्विद्या मानव के समीप आकर नृत्य करने लगती है। **माता का यह कर्त्तव्य है जो माता अपने पुत्र को योग्य बनाती है, क्योंकि वेद में माता को पृथा कहा है।** वह अपनी प्रतिभा, अपनी महानता के द्वारा अपने बाल्य को ऊँचा बनाती है। माता अपने प्यारे पुत्रों की वसुन्धरा कहलाती है, उन्हें अपने में धारण करने वाली है। देखो, वह धनुर्विद्या से, आयु की विद्या से बाल्य को, मानो पारायण करा देती है और वह कहा करती है कि ''बाल्य! आओ तुम ब्रह्मवेत्ता बनना चाहते हो तो मैं तुम्हें ब्रह्म की पिपासा के, ब्रह्म के आंगन में ले जाऊँ, जिससे तुम्हारी पिपासा वहाँ शान्त हो या तुम संसार के वैभव, संसार के कार्यों में रत्त रहना चाहते हो तो मानो, कौन से मार्ग को अपनाना चाहते हो?'' माता के इन शब्दों को पान करने वाला ब्रह्मचारी कहता है कि ''माता! जैसी तुम्हारी इच्छा। जैसी प्रेरणा मुझे प्राप्त होगी, उसी आधार पर अपने कार्य में रत्त रहना चाहता हूँ।'' जब बाल्य यह कहता है, तब माता उसे भयक्रर वनों में ले जाती है, आचार्य के कुलों में ले जाती है और कहती है कि ''बाल्य! तुम धनुर्विद्या में पारायण हो जाओ।''

लव और कुश को कौन सुयोग्य बनाने वाली हैं? 'बृह वृत्तम्' सीता यह कहा करती थी कि ''हे बाल्य! माता कौशल्या भी तुम्हारे पितर को इसी प्रकार शिक्षा दिया करती थीं।'' कौशल्या, यह कौशल वृत्त कहलाया जाता है, क्योंकि कुशल हो जाना जीवन में बहुत अनिवार्य है।

माता सीता अपने पुत्रों को धनुर्विद्या प्रदान कर रही है। प्रातःकाल में यज्ञ करना, देव पूजा करना, ब्रह्म का चिंतन करना और बाल्यों को शिक्षा देना, यह माता का कार्य होता है, यह माता के कर्त्तव्यवाद की प्रतिभा होती है। हमारे यहाँ माताएं अपने जीवन में दक्ष रही हैं।

महर्षि बाल्मीकि जहाँ ब्रह्मविद्या में पारायण थे वहाँ वह आयुर्वेद को भी जानते थे। आयुर्वेद में जहाँ वह पारायण थे वहाँ अपने क्रियाकलापों में बड़े विचित्र कहलाये गये। देखो 'अध्ययनं ब्रह्मे,' वह (लवकुश) अध्ययन करने के लिये जब तत्पर हुए, सीता माता ने बाल्यों को धनुर्विद्या प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया। आचार्य ने ब्रह्मविद्या देनी प्रारम्भ की। दोनों विद्याओं का जब समन्वय हो गया तो वह विद्या अपनी स्थली पर बड़ी विचित्र बन करके रही। उनके वंश में एक नियम बना हुआ था और यह नियमावली बनी हुई कि धनुर्विद्या का अध्ययन किया जाये और ब्रह्मविद्या को पान किया जाये, जिस विद्या के द्वारा हमारे जीवन का उत्थान होता है।

'मम ब्रह्मः कृतं लोकम्,' माता धनुर्विद्या प्रदान करती रहती है और आचार्य उसे ब्रह्मविद्या की स्थली 'अमृताम्' प्रदान करने लगे। देखो, धनु और ब्रह्म–विद्या का समन्वय होता रहा है। आचार्यकुल में यह भी प्रतीत नहीं होता की बाल्य के पिता कौन है ? क्योंकि माता उनके संग रहती है, माता तपस्वी है, तप कर रही है और अपने गर्भ से उत्पन्न होने वाले बाल्य को धनुर्विद्या पान करा रही है, वह अपनी आभा में परिणित करा रही है। ये विद्याएं माता के द्वारा होती हैं, आचार्य उसे ज्ञात करा देता है कि मोह नहीं होना चाहिये, प्रीति होनी चाहिये। (22 मार्च 1989, बरनावा)

माता सीता के द्वारा दो ही पुत्र थे। वह देवी अपने दोनों बाल्यों को प्रातःकाल में ऋषि के आश्रम में भिन्न–भिन्न प्रकार की शिक्षा देती रहती। (12 मार्च 1986, बरनावा)

हमारे यहाँ परम्परागतों से, बेटा! एक पद्धति मानी गयी कि ब्रह्मचारीजन आचार्यजनों के कुल में अध्ययन करते रहे और माता–पिता ने उनको यह कहा कि ''जाओ, तुम्हें अपने में पूर्णरूपेण बन करके हमारे समीप आना है।'' बाल्यकाल में माता–पिता को बाल्यों का इतना ज्ञान नहीं होता और बाल्यों को भी माता–पिता का ज्ञान नहीं होता तो वह आचार्य पद्धति को धारण करते हुए आयार्य कुल में प्रवेश करते रहे हैं और आचार्य उन्हें शिक्षा देते रहे हैं। राष्ट्रीय पद्धति इस प्रकार की निर्माणित की हुई होती है कि जिससे वे ब्रह्मचारी आचार्य के यहाँ अध्ययन करने के लिये तत्पर रहें। माता–पिता भी यह नहीं जानते कि कौन तुम्हारा बाल्य है? और आचार्य भी अपने में यह शान्त कर जाता है कि कौन इनके माता–पिता हैं? तो वेद का अध्ययन प्रारम्भ रहता है। और देखो, उस शिक्षा–प्रणाली को, उस पद्धति को वे अपने में धारयामि बनाते रहते हैं और धारण करते हुए वे अपने मातृत्व को भी शान्त कर जाते हैं। परन्तु बाल्य को उस आचार्य के कुल में प्रवेश कराया जाता है, जो आचार्य, बेटा! धनुर्याग का प्रवीण हो और धनुर्याग के कर्मकांड को जानने वाला हो। कर्मकांड का अभिप्रायः यह होता है कि कर्म जब अपनी आभा में वह अपने में प्रविष्ट होता रहता है तो वह अपने में अध्ययन करता हुआ और विचारशील बनता हुआ, बेटा! देखो, वह अस्त्रों–शस्त्रों की विद्या में पारायण होता है तो उसे हमारे यहाँ धनुर्याग कहते हैं। (12–3–89, लाक्षागृह)

सीता प्रातःकालीन याग करती रहती थी। याग में परिणित होना, याग में अपने जीवन को हूत कर देना यह क्रिया–कलाप महानता का कर्म है। उससे वायुमण्डल पवित्र होता है। ब्रह्मचारी को, किसी प्रकार की ऐसी वायु, उसे स्पर्श न कर जाये, जिस वायु से उसका निधन हो जाये या उसकी अन्तर आत्मा का निधन हो जाये। (19 मार्च 1989, लाक्षागृह बरनावा)

माता सीता के जीवन की नाना प्रकार की उद्गीतता प्रायः मुझे स्मरण आती रहती है। वे जब महर्षि के आश्रम में अपने बाल्यों को, राजकुमारों को विद्या अध्ययन कराती थी और वे विद्या अध्ययन करके अस्त्रों–शस्त्रों की विद्या में पारायण होकर जब वे गृह में गये, तो उनका वास होता रहा है। (8 अक्टूबर 1989, विक्रम विहार,लाजपतनगर, नयी दिल्ली पुष्प, 60)

२६. छबीसवां अध्याय–अश्वमेध याग

लव–कुश और सीता का अयोध्या आगमन

बाल्मीकि आश्रम में माता सीता प्रविष्ट हो गयी थी तो वे बालक युवा होने लगे, आयुर्वेद की विद्या में पारायण हो गये। जब महाराजा राम ने अश्वमेध याग किया तो उस याग में अश्वमेध के घोड़े को छोड़ने का प्रचलन था, जैसा कि नियम है। उसको किसी ने अंकित नहीं किया, परन्तु उन दोनों पुत्रों ने अंकित कर लिया। माता सीता ने उनसे कहा कि ''पुत्र! भगवान राम, तुम्हारे पिता, मेरे स्वामी का यह अश्व है, यह अश्वमेध याग का है, बाल्मीकि आश्रम पर उसका निमंत्रण आया है।'' तब उन्होंने यह कहा कि ''अब हम बालक शिक्षा में उत्तीर्ण हो गये हैं।''

हनुमान उनके महामंत्री और लक्ष्मण, ये दोनों भ्रमण करते हुए बाल्मीकि आश्रम में आये और दोनों पुत्रों का गमन करके माता सीता से प्रार्थना की कि हे माँ! अब तू राष्ट्र–गृह में चल, तू राजलक्ष्मी है। हमारा उद्देश्य पूर्ण हो गया है, क्योंकि जब यह बालक तुम्हारें गर्भ में था, तुम्हारी जो गति थी, तुम्हारे हृदय का जो एक भाग था, शरीर का एक भाग रुग्ण हो गया, तो हमने इस भय से कि तुम्हारा यह रोग शांत हो जायेगा, बाल्मीकि आश्रम में छोड़ा था, तो अब वह पूर्ण हो गया है, अब तू राष्ट्रगृह में प्रविष्ट हो।'' माता सीता ने इस वाक्य को स्वीकार कर लिया।

महामंत्री हनुमान और वे दोनों बालक गमन करते हुए अयोध्या में आये। अयोध्या में आ करके सीता ने राम के चरणों को स्पर्श किया और स्पर्श करके वहाँ राजेश्वरी याग (अश्वमेध–याग) हुआ। उस याग में राम और सीता दोनों यजमान बने और याग पूर्ण हुआ। पूर्ण होने के पश्चात् माता सीता ने यह कहा कि ''हे भगवान्! अब तुम्हारा यह याग पूर्ण हो गया है, आचार्य के कुल में मैंने कुछ पुत्रेष्टि याग भी पूर्ण कर लिया और आपका राजेश्वरी याग (अश्वमेध याग) भी पूर्ण हो गया, परन्तु अब मुझे यह भान हो रहा है कि आज से सातवें दिवस मेरी मृत्यु हो जायेगी।''

शरीर–त्याग

माता सीता ने याग की पूर्ण आहुति के सातवें दिवस शरीर को त्यागा उसके सातवें दिवस राम ने भी शरीर को त्याग दिया, तृतीय दिवस लक्ष्मण ने त्यागा, बारी–बारी उन पाँचों ने अपने शरीर को त्यागा। विचार–विनिमय यह है कि सीता पृथ्वी में समाहित नहीं हुई। उसने शरीर को स्थूलता से त्यागा,

प्राणायाम के द्वारा त्यागा क्योंकि वे तो सर्व–धर्मात्मा महापुरुष थे, उन्हें पृथ्वी में समाहित होने की क्या अवश्यकता थी? पृथ्वी में समाहित होना, आत्महत्या मानी जाती है और शास्त्रों में आत्महत्या एक पाप है तो वे यह पाप कर्म क्यों करते, जब उन्होंने कोई अपराध किया ही नहीं था?

(1–8–1973, जोरबाग, नयी दिल्ली)

भगवान् राम ने अपने जीवन में, अपनी अयोध्या में पाँच अश्वमेघ याग कराये। राजा रावण ने अपने राष्ट्र में इक्कीस अश्वमेघ याग कराये थे।

(26 जुलाई 1987, अमृतसर)

मुनिवरो! देखो महान् आत्माओं ने, मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कुछ मर्मादा दी हैं, हमें उस पर विचार करना चाहिये। उनके वाक्यों को शान्त नहीं करना है, उन्हें स्वीकार करना है। **आज नाम उच्चारण करने से हमारा कार्य नहीं चलेगा। कार्य उस काल में चलेगा, जब उनके गुणों को धारण किया जायेगा, गुण ग्राही बनेगें। हम एक–दूसरे का अपमान करते रहते हैं, उनका अपमान नहीं, हम उसके गुणग्राही बनें, ऋषित्व को जानें, उनके वाक्यों को अर्थ रूपों में जाने, इससे मानव समाज का कल्याण होता है, हमारी संस्कृति और राष्ट्र का उत्थान होता है, ज्ञान–विज्ञान दोनों की प्रगति होती है!** (20 अक्टूबर 1964, मोगा पंजाब)

२७. सताईसवां अध्याय–राम के जीवन से शिक्षा

भगवान राम ने वशिष्ठ मुनि से सर्वप्रथम यही कहा था कि ''मैं अपनी संस्कृति को, अपनी मानवता को इस विश्व में प्रसारण करना चाहता हूँ।'' वशिष्ठ ने कहा था कि ''हे राम! तुम कैसे कर सकते हो, क्योंकि रावण के राज्य का इस आंगन में आधिपत्य हो गया है। तुम इसे कैसे ऊँचा बना सकते हो?'' राम ने कहा कि ''महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपकी कृपा से यह कार्य कर सकता हूँ।'' तब उस ब्राह्मण गुरु ने अपने प्रतिभा से युक्त तथा ओजभरी वाणी से उपदेश दिये। राजा दशरथ ने जिन भीलों, द्रविडों और अपंगों को त्याग दिया था, भगवान राम ने उन्हीं को अपनाया और उनकी सेना बनायी। पवनपुत्र हनुमान को अपनाया। बाली के यहाँ अपनी संस्कृति का प्रसार किया। सुग्रीव को अपनाकर रावण से सङ्ग्राम किया।(1–11–1968, आगरा)

भगवान राम ने जब अपने राष्ट्र की भूमि को त्यागा और पर्वतों की शैय्या बनायी तो सबसे पूर्व वे निषाद के राष्ट्र में पहुँचे। उनके राष्ट्र में अपनी संस्कृति का प्रसार किया। आगे चले तो जो पिशाच थे, दुराचारी थे, उन्हें धनुर्विद्या से, नाना प्रकार के आविष्कारों से नष्ट करते चले गये। उसके बाद बाली को नष्ट किया, जो चारों वेदों का पंडित था, परन्तु संस्कृति को नष्ट कर चुका था। (17–4–1964, जम्मू)

प्रत्येक मानव भगवान राम की चर्चा करता रहता है, भगवान कृष्ण के मुखारविन्द से उद्गीत को मानव अपने हृदय का उद्गार बनाना चाहता है। परन्तु भगवान् राम और कृष्ण का जीवन कैसा ऊँचा था, कैसी ऊँची उनके जीवन की प्रतिभा रही है! भगवान् राम सदैव शाकाहार में परिणित रहते थे। शाकाहार किसे कहते हैं, मानो पृथ्वी के गर्भ से जो आहार प्राप्त हो, उस आहार को पान करना, उसी में सतोगुणी भावना का जन्म देना। आधुनिक काल के जो राम को मानने वाले हैं, या कृष्ण को मानने वाले हैं, उनके आहार और व्यवहार दोनों दूषित हो गये हैं। वह फल इत्यादि का पान करते थे, गो–घृत का पान करते थे, फलों के रस का पान करते थे, उनके मानने वाले आज गऊओं के माँस का भक्षण कर जाते हैं, तो कितना अन्तर्द्वद्व आ गया है। विचार आता रहा है और राष्ट्र यह कहता है कि मैं राम–राज्य लाना चाहता हूँ। अरे! रामराज्य कैसे आ सकता है? रामराज्य जब आयेगा जब यहाँ प्रत्येक प्राणी की रक्षा होगी, चाहे वह प्राणी जल में रहने वाला हो, चाहे वह अन्तरिक्ष में गमन करने वाला हो, चाहे पृथ्वी के गर्भ में रमण करने वाला हो। प्रत्येक प्राणी की जब तक राष्ट्र में रक्षा नहीं होगी, राजा का राष्ट्र पवित्र नहीं बना करता। (5–3–1987, बरनावा)

महाराजा राम, महाराजा कृष्ण के जीवन पर दृष्टि पहुँचाना ही उनकी वास्तविक पूजा है। दृष्टि पहुँचा करके अपने जीवन को उन्हीं के तुल्य बनायें, यही उनका मानना है। उनको भगवान भी मान लिया जाये, परन्तु उनके जीवन पर दृष्टि तो पहुँचाओ। दृष्टि पहुँचाते नहीं तो तुम्हारे भगवान् मानने से क्या लाभ? कोई लाभ नहीं। उन महान् आत्माओं को उच्च बनाने के लिये उनके जीवन पर दृष्टि पहुँचानी है, उनके आदेशों पर चलना है, तभी हमारा जीवन ऊँचा बनेगा। आज मानव को यह नहीं मान लेना चाहिये कि यदि राम जन्म न लेते तो रावण को कौन नष्ट करता। यह वाक्य इसलिये यहाँ शान्त हो जाता है कि रावण माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ, पंच भौतिक शरीर वाला था, वह तो नष्ट होता ही। अपनी अवधि पर सब समाप्त हो जाते हैं। बिना समय के कोई भी सत्य को प्राप्त नहीं होता, यह सिद्धान्त है। (22 अगस्त, 1962)

प्रत्येक युग में महान् आत्मा

महानन्द जी ने प्रश्न किया है कि जब यह त्रेता या द्वापर काल आता है तो हर युग में राजा दशरथ एक ही होता है और उनके पुत्र भगवान राम हर युग में जन्म लेते हैं। इसका कुछ निर्णय दीजिये। महर्षि बाल्मीकि ने इस सम्बन्ध में अपनी कुछ ऐसी लेखनी दी है कि जहाँ तक आत्माओं का सम्बन्ध है उसका रुपान्तर नहीं किया जाता परन्तु ऐसा अनिवार्य है कि हर युग में मर्यादा का ऐसा महान् व्यक्ति उत्पन्न होता है कि उनकी महानता से उनको राजा राम कहा जाता है, महाराजा कृष्ण कहा जाता है।

जैसे, मुनिवरो ! हमारे यहाँ राजा जनक की एक वार्ता मानी जाती है कि जो महान् व्यक्ति अपनी धार्मिकता से अपने मन को विदेह कर लेता है, वह महान् व्यक्ति उस राज्य का राजा जनक चुना जाता है। इसी प्रकार इन्द्र की उपाधि है, जो एक सौ एक अश्वमेघ यज्ञ कर लेता है, उसे महान् 'इन्द्र' की उपाधि प्राप्त हो जाती है। हर महान् चतुर्युगी में ऐसा माना गया कि प्रत्येक चतुर्युगी में ऐसी महान् आत्मा आ करके परमात्मा की विभूतियाँ दे करके संसार को मर्यादा में बाँध करके वह संसार से अपना पुनः उत्थान करके चला जाता है!

(7–7–65, फिरोजपुर, पंजाब)